विशेष द्रष्टव्य ।

अनुस्वार और चन्द्रबिन्दुके उच्चारणभेदानुसार (यथा—काञ्चन, काँच, दन्त, दाँत इत्यादि) 'हैं', 'नहीं', 'यहाँ', 'करें', 'क्यों', 'कवियोंका' इत्यादि स्थलोंमें प्रचलित प्रयोगके अनुरूप अनुस्वार न होकर चन्द्रबिन्दु होना चाहिये । और 'में', 'दोनों', 'गुणोंका', 'परिणामोंमें' इत्यादि पञ्चमवर्णोंके ऊपर ('ऊपर' नहीं) अनुस्वारका प्रयोग युक्त नहीं (क्योंकि 'मे' में अनुस्वार देनेसे Menz होता है), और चन्द्रबिन्दु भी नहीं लगाना चाहिये, कारण पञ्चमवर्णोंका उच्चारण स्वतः नासिकामेंसे होता है ।

नासिकासे उच्चारित ध्वनि जहाँ बाहर निकल जाती है, वहाँ 'अनुस्वार', और जहाँ नाकके भीतरही रह जाती है, वहाँ 'चन्द्रबिन्दु' होगा ।

* * * *

हिन्दीमें प्रयुक्त अविकृत संस्कृतशब्दका लिङ्ग संस्कृतव्याकरणके नियमानुसार ही होना चाहिये ।

पृष्ठ १०८ पङ्क्ति ११ में—'अनन्तम्' शब्दके पश्चात् 'मननम्' शब्द पढ़ना ।

पृष्ठ २०८ पङ्क्ति ८ में—'इम चतुर्धा विभज्य' के स्थानमें 'इदं चतुर्धा विभज्य' पढ़ना ।

पृष्ठ २३४ पङ्क्ति ४ में—'अध्यापय' के स्थानमें 'अध्यापयतु' पढ़ना ।



मुखबन्ध ।

"अज्ञानतिमिराच्छन्नं तदाऽस्थास्यच्चराचरम् ।
नाभविष्यद्यदि ज्योतिः संस्कृताह्वं सुमङ्गलम् ॥"

यह संसार अज्ञानान्धकारसे आवृत हो रहता, यदि संस्कृतभाषारूप परममङ्गलमय ज्योति प्रकाशित न होती । इसीके द्वारा मनुष्य धर्म और मोक्षके दुर्विज्ञेय तत्त्वोंको अवगत होकर सम्यक् कृतार्थ हो सकते । इस भारतवर्षमें यह संस्कृतभाषाही हितोपदेष्ट्री जननीके तुल्य सबके परम आश्रयणीय है । अधिक क्या, वैदेशिक विद्वान् भी इसे 'सर्वभाषाओंकी जननी' कहते हैं । किन्तु कालके विपर्ययसे हमारी यही मातृभूता देववाणी संस्कृतभाषा भाषान्तरव्यासक्तचित्त भोगप्रवण आधुनिक मानवोंसे कुछभी आदर और सम्मान प्राप्त न होकर उन्हींकी दुर्दशाकी परा काष्ठा सूचित करती है । साधारणलोगोंकी ऐसी शोचनीय अवस्था होनेपरभी कई एक मनुष्योंके हृदयमें संस्कृतसेवाका अभिलाष उत्पन्न होता है । पर उनमेंसे अधिकांशलोग संस्कृतभाषाके साक्षात्कार-(व्युत्पत्ति-)के द्वारभूत व्याकरण प्रभृतिकी संस्कृतसूत्रादिनिबद्ध भीषण मूर्त्ति सन्दर्शन करतेही व्याकुल हो उस सङ्कल्पको छोड़ देते हैं । यह विषय सभीको

प्रत्यक्ष गोचर है। और व्याकरणका यह कष्टकर भयानक वर्म्म अतिक्रम न करनेसे संस्कृतशास्त्रोंके मधुर सुधानिर्झरका सौभाग्य सम्भावित नहीं। यदि ऐसे कठिन व्याकरण अवश्यज्ञातव्य विषय देशीय भाषामें सरलरूपसे विवृत किये जायँ, तो संस्कृतशिक्षार्थी इस "व्याकरण विभीषिका"-से मुक्त होकर सुगमताके साथ इसमें प्रविष्ट और व्युत्पन्न हो सकते। इसी आशयको चित्तमें स्थापन कर कई हिन्दीभाषाभाषी सहृदय महोदयोंके साग्रह अनुरोधसे यह व्याकरण हिन्दीभाषामें सङ्कलित किया गया। इससे हिन्दीभाषाभिज्ञ सभी लोग संस्कृतभाषा सीख रामायण महाभारत मनुस्मृति प्रभृति आर्ष ग्रन्थोंके अध्ययनसे धर्म और ज्ञानकी उन्नति कर सकेंगे। धर्म विरहित जीवन निष्फल; और उस धर्मानुष्ठानके समस्त रहस्य संस्कृतभाषामें रचित ऋषिप्रणीत निबन्धोंके अनुशीलनसेही अभ्रान्तरूपसे जाने जा सकते, अन्यथा नहीं। इसलिये सबको चाहिये, कि अपने अपने लड़कोंको यह व्याकरण पढ़ाकर स्वल्पसमयमेंही उच्चधर्मग्रन्थाध्ययनके अधिकारी बना पुत्रनिष्ठगत स्वकीय कर्त्तव्य निर्वाहित करें।

इसमें शिक्षार्थीकल्याणार्थ विद्यार्थीके प्रथमज्ञातव्य स्थूल विषय किञ्चित् स्थूलाक्षरमें, और अन्यान्य विषय तदपेक्षा क्षुद्राक्षरमें मुद्रित किये गये। पहले स्थूलाक्षरमुद्रित अंश सम्पूर्ण पढ़कर व्याकरणमें एकप्रकार व्युत्पन्न होनेके पश्चात् अवशिष्ट अंश पढ़नेसे अल्प कालमें और अल्प प्रयासमें संस्कृतभाषामें विशेष व्युत्पत्ति होगी, इसमें सन्देह

संस्कृतमें बोध होनेके लिये, इसमें साथ साथ हिन्दीसे सं

प्रणाली प्रदर्शित की गयी, और परीक्षाके लिये प्र

नियम और प्रकरणके अन्तमे प्रश्न सन्निवेशित किये गये । प्रचलित प्राय समस्त धातुओंके उदाहरण समेत अर्थ और उपसर्गोंके योगसे उनके अर्थभेदभी दिखलाये गये ।

बच्चोंको प्रथम वर्णज्ञानके अनन्तर शब्दरूप और धातुरूप समग्र अच्छे प्रकारसे कण्ठस्थ कराकर पीछे सन्धि, कारक, समास, और तत्पश्चात् अन्यान्य विषय समझाना चाहिये ।

यह ग्रन्थ केवल अल्पवयस्क बालक अथवा अन्यभाषामे प्रविष्ट संस्कृतशिक्षार्थियोंकेही उपयोगी नहीं, किन्तु इससे दुरुहसंस्कृतसूत्रग्रन्थ-पाठी संस्कृतपरीक्षार्थियोंकाभी महोपकार साधित होगा । इत्यलमतिपल्लवितेनेति शम् ।

श्रीरामस्वामी ।

विषय-सूची ।

विषय सूची ।

विषय-सूची।

विषय सूची।

अव्यय-सूची ।

अव्यय-सूची।

अव्यय-सूची।

अव्यय-सूची ।

अव्यय सूची ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	भास.	भाभ्याम्	भाभ्य.
षष्ठी	भासः	भासो	भासाम्
सप्तमी	भासि	भासो.	भाःसु।
सम्बोधन	भाः	भासौ	भासः

'इस्'-भागान्त—अर्चिस् शब्द* (शिखा, ज्वाला Flame)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अर्चिः	अर्चिषौ	अर्चिषः
द्वितीया	अर्चिषम्	अर्चिषौ	अर्चिषः
तृतीया	अर्चिषा	अर्चिर्भ्याम्	अर्चिर्भिः
चतुर्थी	अर्चिषे	अर्चिर्भ्याम्	अर्चिर्भ्य.
पञ्चमी	अर्चिषः	अर्चिर्भ्याम्	अर्चिर्भ्यः
षष्ठी	अर्चिष.	अर्चिषोः	अर्चिषाम्
सप्तमी	अर्चिषि	अर्चिषो.	अर्चि षु
सम्बोधन	अर्चि	अर्चिषौ	अर्चिषः

सब 'इस्'-भागान्त शब्दके रूप 'अर्चिस्'-शब्दके तुल्य।

आशिस् शब्द (शुभाकाङ्क्षा , अभिलाष Benediction, desire)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	आशी	आशिषौ	आशिष.
द्वितीया	आशिषम्	आशिषौ	आशिषः

* 'अर्चिस्'-शब्द स्त्रीलिङ्गभी होता है।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृतीया	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः
चतुर्थी	आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
पञ्चमी	आशिषः	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
षष्ठी	आशिषः	आशिषोः	आशिषाम्
सप्तमी	आशिषि	आशिषोः	आशीःषु
सम्बोधन	आशीः	आशिषौ	आशिषः

शुद्ध करो—पूर्वस्मिन् दिशि निशाकरो राजते। उत्तरस्मिन् दिशि हिमालयवर्त्तते। सर्वे देवता मयि गुरू आशीः कुर्वन्ति। तेन आशिषा अहं सुस्थ भवामि। पश्चिमस्या दिशि चन्द्रमाम् अस्तमितां पश्यामि। ग्रीष्मे काका वाप्या अपं पिबन्ति। य सत्य गिर वदति, स सर्वदा दिवे वसति। तव आशिषस्य अपूर्वं शक्ति।

हकारान्त।

उपानह् शब्द (जूता Sandal, shoe)।

(१मा) उपानत्, उपानहौ, उपानहः, (२या) उपानहम्, उपानहौ, उपानहः; (३या) उपानहा, उपानद्भ्याम्, उपानद्भिः, (४र्थी) उपानहे, उपानद्भ्याम्, उपानद्भ्यः, (५मी) उपानहः, उपानद्भ्याम्, उपानद्भ्यः, (६ष्ठी) उपानहः, उपानहोः, उपानहाम्, (७मी) उपानहि, उपानहोः, उपानत्सु, (सम्बो) उपानत्।



व्यञ्जनान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र।

१९४। 'सु', 'अम्' और सम्बोधनके 'सु' का लोप होता है,

धातु-सूची।

धातु		पृष्ठ	धातु		पृष्ठ
ऋ	भ्वा० प०	२७७	कॄ	तु० प०	२६३
एज्	भ्वा० प०	२८९	कॄत्	चु० प०	३७८
एध्	भ्वा० आ०	३०७	क्लृप्	भ्वा० आ०	३०८
कण्ठ् (उत्)	भ्वा० आ०	३०७	,,	चु० प०	३७८
कत्थ्	भ्वा० आ०	३०१	क्रन्द्	भ्वा० प०	२८९
कथ	चु० प०	३९०	क्रम्	भ्वा० प०	२७८
कम्	भ्वा० आ०	३०१	क्री	क्र्या० उ०	३६३
कम्प्	भ्वा० आ०	३०८	क्रीड्	भ्वा० प०	२९०
कर्ण (आ)	चु० प०	३९०	क्रुध्	दि० प०	३१९
कल	चु० प०	३९०	क्रुश्	भ्वा० प०	२९०
कष्	भ्वा० प०	२७७	क्लम्	दि० प०	३२९
कस् (वि)	भ्वा० प०	२७७	क्लिद्	दि० प०	३२९
काङ्क्ष्	भ्वा० प०	२७७	क्लिश्	दि० उ०	३४०
कास्	भ्वा० आ०	३०८	,,	क्र्या० प०	३५१
किन्	भ्वा० प०	२७८	क्वण्	भ्वा० प०	२९०
कुच् (सम्)	तु० प०	२९९	क्षप	चु० प०	३९१
कुस्म	चु० आ०	३८८	क्षम्	भ्वा० आ०	३०१
कुप्	दि० प०	३२८	,,	दि० प०	३२७
कुष्	क्र्या० प०	३७१	क्षर्	भ्वा० प०	२९०
कूज्	भ्वा० प०	२८९	क्षल्	चु० प०	३७९
कृ	त० उ०	३५७	क्षि	भ्वा० प०	३५०
कृत्	तु० प०	२६३	क्षिप्	तु० उ०	२६१
कृष्	भ्वा० प०	२७८	क्षु	अ० प०	४४१

धातु-सूची ।

धातु सूची ।

† पाणिनि-मते—भ्वा० प० ।

धातु सूची।

धातु सूची ।

संक्षेप-स्पष्टीकरण ।

अनर्घ°	अनर्घराघवम् ।	मालती°	मालतीमाधवम् ।
उत्तर°	उत्तररामचरितम् ।	मालविका	मालविकाग्निमित्रम् ।
ऋतु°	ऋतुसंहारम् ।	मुद्रा°	मुद्राराक्षसम् ।
काद°	कादम्बरी ।	मृच्छ°	मृच्छकटिकम् ।
कु°	कुमारसम्भवम् ।	मेघ°	मेघदूतम् ।
गीतगो°	गीतगोविन्दम् ।	र°	रघुवंशम् ।
गीता	श्रीमद्भगवद्गीता ।	रत्ना°	रत्नावली ।
दशकु°	दशकुमारचरितम् ।	रामा°	रामायणम् ।
नै°	नैषधचरितम् ।	विक्रमो°	विक्रमोर्वशीयम् ।
पञ्च°	पञ्चतन्त्रम् ।	विद्ध°	विद्धशालभञ्जिका ।
भ°	भट्टिकाव्यम् ।	वेणी°	वेणीसंहारम् ।
भर्तृ°	भर्तृहरिशतकम् ।	शाकु°	शाकुन्तलम् (अभिज्ञानशाकुन्तलम्) ।
भा°	भारवि काव्यम् (किरातार्जुनीयम्) ।	सुश्रुत°	सुश्रुतसंहिता ।
भामिनी°	भामिनीविलास ।	हितो°	हितोपदेश ।
मनु°	मनुसंहिता ।	अक°	अकर्मक ।
महाना°	महानाटकम् ।	सक°	सकर्मक ।
महाभा°	महाभारतम् ।	पुं°	पुल्लिङ्ग ।
महावीर°	महावीरचरितम् ।	स्त्री°	स्त्रीलिङ्ग ।
माघ°	माघ काव्यम् (शिशुपालवधम्) ।	क्लीं°	क्लीबलिङ्ग ।

ॐ तत् सत् ।

संस्कृत-

व्याकरण-मञ्जरी ।

१। जिस शास्त्रसे शब्दोंकी व्युत्पत्ति (अर्थात् वाक्यके अन्तर्गत एक एक पद किस प्रकारसे निष्पन्न होता है, उसका विवरण) जानी जाती है, और तदनुसार विशुद्ध भाषामें लिखनेकी बोलनेकी तथा वाक्यके अर्थ समझनेकी शक्ति होती है, उसको 'व्याकरण'* कहते हैं।

वर्ण-प्रकरण ।

२। अ आ प्रभृति एक एकको 'वर्ण या अक्षर' (Letter) कहते हैं, यथा—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ए ऐ ओ औ। क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व। श ष स ह†।

---

* व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते साधुशब्दा अस्मिन् अनेन वा इति व्याकरणम्।

† न् और म् के स्थानमें अनुस्वार, तथा र् और स् के स्थानमें विसर्ग होता है, इसलिये अनुस्वार और विसर्ग अलग वर्णोंमें गिने नहीं गये।

(क) वर्ण दो-प्रकार—(१) स्वर वा अच् (Vowel) और (२)व्यञ्जन, हल् वा हस् (Consonant)।

स्वरवर्ण।

३। जिन वर्णोंका आपसे आप उच्चारण होता है, अर्थात् जिनके उच्चारणमें और किसी वर्णकी अपेक्षा नहीं, उनको 'स्वरवर्ण' कहते हैं. यथा—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ए ऐ ओ औ*।

४। स्वरवर्ण दो-प्रकार—(१) ह्रस्व (Short) और (२)दीर्घ (Long)। अ इ उ ऋ ऌ—ये पाँच ह्रस्व स्वर, आ ई ऊ ॠ ए ऐ ओ औ—ये आठ दीर्घ स्वर†।

(क) अवर्ण इत्यादि—अवर्ण कहनेसे अ आ, इवर्ण कहनेसे इ ई, उवर्ण कहनेसे उ ऊ, ऋवर्ण कहनेसे ऋ ॠ, और ऌवर्ण कहनेसे ऌ समझना चाहिये।

(ख) ह्रस्व—आकारका ह्रस्व अकार,‡ ईकार, एकार और

---

* दीर्घ ॡकारभी एक वर्ण है, किन्तु उसका प्रयोग नहीं है। अकारसे दीर्घ ॡकारतक दश वर्णोंको 'समान-वर्ण' कहते हैं—दश समाना। इनमें दो दो वर्ण परस्पर 'सवर्ण' होते हैं—तेषां द्वौ द्वावन्योन्यस्य सवर्णौ।

† उच्चारणके नियमानुसार ह्रस्वको एकमात्र, दीर्घको द्विमात्र, और व्यञ्जनको अर्द्धमात्र कहते हैं।

‡ वर्णके उत्तर स्वार्थमें 'कार' प्रत्यय होता है, यथा—अकार, इकार, ककार, गकार इत्यादि। स्वरवर्णके उत्तर विकल्पसे 'त्' प्रत्यय होता है, यथा—अत्, आत्, इत् इत्यादि।

ऐकारका ह्रस्व—इकार, उकार, ओकार और औकारका ह्रस्व—उकार, ॠकारका ह्रस्व—ऋकार।

(ग) लघु, गुरु—ह्रस्वस्वरको 'लघुवर्ण', और दीर्घस्वरको 'गुरुवर्ण' कहते हैं।

संयुक्त वर्ण,* विसर्ग अथवा अनुस्वार परे रहनेमें, ह्रस्वस्वर-भी गुरुवर्णमें गिना जाता है, यथा—(संयुक्तवर्ण परे) इक्ष्वाकु—यहाँ 'इ' गुरुस्वर, (विसर्ग परे) पतिः, (अनुस्वार परे) पतिं।†

व्यञ्जनवर्ण।

५। जो वर्ण स्वरके साहाय्य विना स्वयं उच्चारित नहीं होते, उनको 'व्यञ्जनवर्ण' कहते हैं, यथा—क् ख् ग् घ् ङ्, च् छ् ज् झ् ञ्, ट् ठ् ड् ढ् ण्, त् थ् द् ध् न्, प् फ् ब् भ् म्, य् र् ल् व्, श् ष् स् ह्।‡

---

* व्यञ्जनवर्ण व्यञ्जनवर्णके साथ युक्त होनेसे, समुदायको 'युक्ताक्षर' वा 'संयुक्तवर्ण' कहते हैं, यथा—क्क, ग्म, र्त्व, र्द्ध इत्यादि।

† पद्यको चारभाग करनेसे, उनके एक एक भागको 'पाद' वा 'चरण' कहते हैं। पादके अन्तस्थित वर्ण विकल्पसे गुरु होता है। प्र और ह्र परे रहने-सेभी लघुवर्ण विकल्पसे गुरु होता है।

"सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥"

‡ स्वरवर्णका योग न होनेसे व्यञ्जनवर्ण उच्चारण नहीं किये जा सकते, इसलिये उनके अन्तमें अकार-योग करके क ख ग घ इत्यादिरूप-

६। व्यञ्जनवर्ण तीन भागोंमें विभक्त, यथा—

(१) क् से म् तक पचीस स्पर्शवर्ण* या वर्गीयवर्ण।

(२) य् र् ल् व्—ये चार अन्तःस्थवर्ण† (Semi-vowel)।

(३) श् ष् स् ह्—ये चार ऊष्मवर्ण‡ (Sibilant)।

७। स्पर्शवर्ण पुनः पाँच भागोंमें विभक्त, इनके एक एक भागको 'वर्ग' (Class) कहते हैं, यथा—

(१) क ख ग घ ङ—कवर्ग।

(२) च छ ज झ ञ—चवर्ग।

(३) ट ठ ड ढ ण—टवर्ग।

(४) त थ द ध न—तवर्ग।

(५) प फ ब भ म—पवर्ग।

से लिखने और पढ़नेकी रीति है। हल्वर्णोंमें स्वर न रहनेसे उनके नीचे (्) ऐसा चिह्न दिया जाता है, इसको 'हसन्त चिह्न' कहते हैं।

* जिह्वाके अग्र, उपाग्र (अग्रभागके समीपस्थ प्रदेश), मध्य और मूल द्वारा तालु-दन्त-प्रभृति स्थान स्पर्श करके इन वर्णोंको उच्चारण करना होता है, इसलिये इनका नाम 'स्पर्शवर्ण'।

† स्पर्शवर्ण और ऊष्मवर्ण—इन दोनोंके बीचमें निर्दिष्ट होनेके कारण इनको 'अन्तःस्थ' (मध्यवर्ती) वर्ण कहते हैं।

‡ ऊष्मन् (पु०) शब्दका अर्थ—उत्ताप। ऊष्मवर्ण—उत्तापयुक्त वायुप्रधान वर्ण, अर्थात् इनके उच्चारणमें उष्णवायुका प्राधान्य है, इसलिये इनका नाम 'ऊष्मवर्ण'।

८। अघोषवर्ण—वर्गके प्रथम और द्वितीय वर्ण तथा श ष स—इन तेरह व्यञ्जनोंको 'अघोषवर्ण' कहते हैं, यथा—क ख च छ ट ठ त थ प फ श ष स।*

९। घोषवद्वर्ण—वर्गके तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम वर्ण तथा य र ल व ह—इन बीस व्यञ्जनोंको 'घोषवद्वर्ण' कहते हैं, यथा—ग घ ङ ज झ ञ ड ढ ण द ध न ब भ म य र ल व ह।†

वर्णोंका उच्चारणस्थान।

१०। (१) अ आ ह—इनका उच्चारणस्थान कण्ठ, इसलिये इनको 'कण्ठ्य वर्ण' (Guttural or throat-letter) कहते हैं।

(२) क ख ग घ ङ—इनका उच्चारणस्थान जिह्वामूल, इस लिये इनको 'जिह्वामूलीय वर्ण' (Linguae radical) कहते हैं।‡

(३) इ ई च छ ज झ ञ य श—इनका उच्चारणस्थान तालु, इस

---

* वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसाश्चाघोषाः।

† घोषवन्तोऽन्ये।

‡ वैयाकरणलोग अ आ ह क ख ग घ ङ—इन सभीका उच्चारण स्थान 'कण्ठ' कहते हैं। किन्तु शिक्षाग्रन्थमें अ आ ह—इन तीनोंका उच्चारणस्थान 'कण्ठ', और कवर्गका उच्चारणस्थान 'जिह्वामूल'—ऐसा स्पष्ट निर्देश है, यथा—"कण्ठ्यावहौ", "जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तः" इति। वास्तवमें अ आ ह—इन तीनोंके और कवर्गके उच्चारणमें बहुत भेद है। इस भेदके अनुसार विचार करनेसे शिक्षाग्रन्थका निर्देशही सत्य प्रतीत होता है। इसलिये यहाँ शिक्षाग्रन्थकी व्यवस्थानुसारही कवर्गका उच्चारण-स्थान जिह्वामूल निर्दिष्ट हुआ।

लिये इनको 'तालव्य वर्ण' (Palatal or palate-letter) कहते हैं।

(४) ऋ ॠ ट ठ ड ढ ण र ष—इनका उच्चारणस्थान मूर्द्धा, इसलिये इनको 'मूर्द्धन्य वर्ण' (Cerebral or brain-letter) कहते हैं।

(५) ऌ त थ द ध न ल स—इनका उच्चारणस्थान दन्त, इसलिये इनको 'दन्त्य वर्ण' (Dental or tooth-letter) कहते हैं।

(६) उ ऊ प फ ब भ म—इनका उच्चारणस्थान ओष्ठ, इसलिये इनको 'ओष्ठ्य वर्ण' (Labial or lip-letter) कहते हैं।

(७) ए ऐ—इनके उच्चारणस्थान कण्ठ और तालु, इसलिये इनको 'कण्ठ-तालव्य वर्ण' (Palato-guttural) कहते हैं।

(८) ओ औ—इनके उच्चारणस्थान कण्ठ और ओष्ठ, इसलिये इनको 'कण्ठौष्ठ्य वर्ण' (Labio-guttural) कहते हैं।

(९) अन्तःस्थ वकारके उच्चारणस्थान दन्त और ओष्ठ, इसलिये इसको 'दन्तौष्ठ्य वर्ण' (Dento-labial) कहते हैं।*

(१०) ङ ञ ण न म—ये जिह्वामूल-तालु-प्रभृतिके साथ नासिकासे भी उच्चारित होते हैं, इसलिये इनको 'अनुनासिक वर्ण' भी (Nasal or nose-letter) कहते हैं।

(११) अनुस्वार (ं), चन्द्रबिन्दु (ँ)—देखो 'अनुनासिक वर्ण'।†

---

* वर्गीय बकारका उच्चारण अङ्गरेजी b के तुल्य, और अन्तःस्थ वकारका उच्चारण अङ्गरेजी v के तुल्य।

† चन्द्रबिन्दु अनुस्वारका ही रूपान्तरमात्र। चन्द्रबिन्दुयुक्त वर्णको 'सानुनासिक' कहते हैं।

(१२) विसर्ग (ः) आश्रयस्थानभागी, अर्थात् जिस स्वरवर्णको आश्रय करके उच्चारित होता है, उस स्वरवर्णका उच्चारणस्थानही विसर्गका उच्चारणस्थान।

प्रश्नमाला।

(१) व्याकरण किसको कहते हैं? (२) वर्णका द्वितीय नाम क्या है? (३) अ उ ऋ ओ आ ऊ—इन स्वरोंमेंसे कौन ह्रस्व, कौन दीर्घ,—कहो। (४) व्यञ्जनवर्ण किसे कहते हैं? (५) स्वर और व्यञ्जनमें प्रभेद क्या है? (६) व्यञ्जनवर्ण कितने भागोंमें विभक्त? (७) स्पर्शवर्णके बीचमें कितने वर्ण हैं? (८) जिह्वामूलीय वर्ण किनको कहते हैं? (९) उनका नाम 'जिह्वामूलीय' क्यों हुआ? (१०) दन्त्यौष्ठ्य वर्ण क्या है? (११) ज श ड ट द ध व म ऐ ओ—इन वर्णोंमें किसका उच्चारणस्थान क्या है,—बतलाओ। (१२) विसर्गको 'आश्रयस्थानभागी' क्यों कहा गया?

सन्धि-प्रकरण।

सन्धि (Conjunction of letters or Euphonic Combination)।

११। दो वर्ण परस्पर अत्यन्त निकटवर्त्ती होनेसे जो मिल जाते हैं, उस मिलनको 'सन्धि' कहते हैं।*

---

* जिन दो वर्णोंमें सन्धि होगी, उनके प्रथम वर्णको 'पूर्ववर्ण', और

(क) सन्धिमें कभी दो वर्णोंका मिलन होता है, कभी पूर्ववर्ण विकृत (रूपान्तरित) होता है, कभी परवर्ण विकृत होता है, कभी दोनो वर्णही विकृत होते हैं, कभी पूर्ववर्णका लोप होता है, कभी परवर्णका लोप होता है, यथा—(मिलन) महान्+आग्रह=महानाग्रह, (पूर्ववर्ण विकृत) सत्+जय=सज्जय, (परवर्ण विकृत) यत्+न=यत्न, (दोनो वर्ण विकृत) सत्+शक्ति=सच्छक्ति, (पूर्ववर्णलोप) त्रयः+ऋतु=त्रयऋतु, (परवर्णलोप) सर्वे+अपेहि=सर्वेऽपेहि।

१२। सन्धि तीन-प्रकार—(१) स्वरसन्धि, (२) व्यञ्जनसन्धि और (३) विसर्गसन्धि।

(१) स्वरवर्ण और स्वरवर्णमें जो सन्धि होती है, उसे 'स्वरसन्धि' कहते हैं, यथा—मुर+अरिः=मुरारिः।

(२) व्यञ्जनसन्धि दो-प्रकार—(१) व्यञ्जनवर्ण और व्यञ्जनवर्णमें, यथा—तत्+हितम्=तद्धितम्, (२) व्यञ्जनवर्ण और स्वरवर्णमें, यथा—सत्+आशयः=सदाशयः।

(३) विसर्गसन्धि दो प्रकार—(१) विसर्ग और स्वरवर्णमें, यथा—नरः+अयम्=नरोऽयम्, (२) विसर्ग और व्यञ्जनवर्णमें, यथा—मयूरः+नृत्यति=मयूरो नृत्यति।

(क) एकपदमें, धातु और उपसर्गमें, तथा समासमें नित्य सन्धि होती है, अर्थात् इनमें सन्धि अवश्य करनी चाहिये, किन्तु वाक्यमें सन्धि इच्छाधीन, अर्थात् वाक्यके बीचमें सन्धिकी सम्भावना रहनेसे, इच्छा

द्वितीय वर्णको 'परवर्ण' कहते हैं। सुतरां पूर्वपदके अन्त्य वर्णको 'पूर्ववर्ण', और परपदके आदि वर्णको 'परवर्ण' समझना चाहिये।

हो, सन्धि करना, न हो, न करना, यथा—(एकपदमें) ने + अनम् = नयनम्, (धातु और उपसर्गमें) अनु + एति = अन्वेति, (समासमें) नित्य + आनन्द = नित्यानन्द । (वाक्यमें) "कस्मिंश्चिद्वने भासुरको नाम सिंह प्रतिवसति । असौ नित्यमेव अनेकान् मृगशशकादीन् व्यापादयति"—यहां 'कस्मिंश्चित् + वने', 'भासुरक + नाम' इन दोनों स्थलोंमें सन्धि की हुई है, न करनेसे भी चल सकता, 'नित्यमेव + अनेकान्'—यहाँ सन्धि नहीं की है, कोभी जा सकती, किन्तु 'कस्मिंश्चित्'—इस एकपदमें, और 'मृगशशकादीन्'—इस समासमें सन्धि करनीही होगी, 'कस्मिन् चित्' 'मृगशशक आदीन्'—ऐसा लिखनेसे भूल होगी । *

पद्य (श्लोक)में भी सन्धि न करनेसे दोष होता है । विसर्गसन्धि की सम्भावना रहनेसे, सन्धि करनीही अच्छी, न करनेसे श्रुतिकटु होता है, यथा—'स हि दाशरथि राम'—यहां 'स हि दाशरथी राम' कहनेसे सुननेमें अच्छा लगता है ।

स्वर-सन्धि (Conjunction of vowels) ।

[अ आ + अ आ]

१३ । अकार वा आकारसे परे अकार वा आकार रहनेसे, दोनों मिलके आकार होता है†, आकार पूर्ववर्णमें युक्त होता

---

* सन्धिरेकपदे नित्यो, नित्यो धातूपसर्गयोः ।
नित्य समासे, वाक्ये तु स विवक्षामपेक्षते ॥

† अ आ के स्थानमें आ, इ ई के स्थानमें ई, उ ऊ के स्थानमें ऊ, ऋ ॠ के स्थानमें ॠ होनेको 'दीर्घ होना' कहते हैं ।

है,* यथा—

अ + अ = आ—मुर + अरिः = मुरारि।

अ + आ = आ—देव + आलय = देवालय।

आ + अ = आ—दया + अर्णव = दयार्णव।

आ + आ = आ—विद्या + आलय = विद्यालयः।

सन्धि करो—पद + अर्थ, रत्न + आकर, एक + अन्त, महा + आशय।

विच्छेद करो—तथापि, कुशासन, महार्घ, गदाघात, नयनानन्द, अन्नागम।

[अ आ + इ ई]

१४। अकार या आकारसे परे ह्रस्व इ या दीर्घ ई रहनेसे दोनो मिलके एकार होता है†‡ एकार पूर्ववर्णमें युक्त होता है, यथा—

अ + इ = ए—देव + इन्द्र = देवेन्द्रः।

अ + ई = ए—गण + ईश = गणेश।

आ + इ = ए—महा + इन्द्र = महेन्द्र।

आ + ई = ए—महा + ईश्वर = महेश्वर।

---

* समानः सवर्णे दीर्घो भवति, परश्च लोपम्। (समानसंज्ञको वर्णः सवर्णे परे दीर्घो भवति परश्च लोपमापद्यते।)

† इ ई के स्थानमें ए, उ ऊ के स्थानमें ओ, ऋके स्थानमें अर् होनेको 'गुण' कहते हैं।

‡ अवर्ण इवर्णे—ए। (अवर्ण इवर्णे परे एर्भवति, परश्च लोपमापद्यते।)

सन्धि करो—पूर्ण + इन्दु, गज + ईश, लता + इव, उमा + ईश, घन + ईहा।

विश्लेष करो—लोकेन्द्र, महेन्द्र, अवेक्षणम्, दुर्गेश, रमेश, शुष्केन्धनम्।

[अ आ + उ ऊ]

१५। अकार या आकारसे परे ह्रस्व उ वा दीर्घ ऊ रहनेसे, दोनो मिलके ओकार होता है, ओकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है; *यथा—

अ + उ = ओ-ज्ञान + उदय = ज्ञानोदय।

अ + ऊ = ओ-एक + ऊनविंशति = एकोनविंशति।

आ + उ = ओ-गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम्।

आ + ऊ = ओ-महा + ऊर्मिः = महोर्मि।

सन्धि करो—व्याघ्र + उत्पात, यमुना + उत्तरणम्, गृह + ऊर्द्ध्व, विद्या + ऊन।

विश्लेष करो—काव्योत्पत्ति, प्रोतु, कथोपकथनम्, सहोदर, लम्बोदर।

[अ आ + ऋ]

१६। अकार वा आकारसे परे ऋकार रहनेसे, दोनो मिलके 'अर्' होताहै, अकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है, और र् परवर्णके मस्तकमे जाता है,† यथा—

अ + ऋ = अर्-देव + ऋषि = देवर्षि।

---

* उवर्णे-ओ। (अवर्ण उवर्णे परे ओर्भवति, परश्च लोपमापद्यते।)

† ऋवर्णे—अर्। (अवर्ण ऋवर्णे परे अर् भवति, परश्च लोपमापद्यते।)

आ + ऋ = आर्-देवता + ऋषभ = देवतर्षभ ।

सन्धि करो—पवित्र + ऋत्विक्, महा + ऋक्ष ।

विश्लेष करो—हिमर्त्तु, नरर्षभ ।

[अ आ + ए ऐ]

१३। अकार या आकारसे परे 'ए' या 'ऐ' रहनेसे, दोनो मिलके 'ऐ' होता है*, ऐकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है, †यथा—

अ + ए = ऐ-मम + एव = ममैव ।

अ + ऐ = ऐ-धन + ऐश्वर्य्यम् = धनैश्वर्य्यम् ।

आ + ए = ऐ-सदा + एव = सदैव ।

आ + ऐ = ऐ-सदा + ऐक्यम् = सदैक्यम् ।

सन्धि करो—तव + एतत्, तथा + एव, मत + ऐक्यम्, महा + ऐरावत ।

विश्लेष करो—एकैकम्, मयैव, चित्तैकाग्र्यम्, महैश्वर्यम् ।

[अ आ + ओ औ]

१४। अकार या आकारसे परे 'ओ' या 'औ' रहनेसे, दोनो मिलके 'औ' होता है, औकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है‡

---

* इ ई ए ऐ के स्थानमे ऐ, उ ऊ ओ औ के स्थानमे औ, ऋ के स्थानमे आर् होनेको 'वृद्धि' कहते हैं।

† एकारे ऐ ऐकारे च। (अवर्ण एकारे ऐकारे च परे ऐर्भवति, परश्च लोपमापद्यते।)

‡ ओकारे औ औकारे च। (अवर्ण ओकारे औकारे च परे और्भवति, परश्च लोपमापद्यते।)

यथा—

अ + ओ = औ—जल + ओघ = जलौघ ।

अ + औ = औ—चित्त + औदास्यम् = चित्तौदास्यम् ।

आ + ओ = औ—महा + ओषधि = महौषधि ।

आ + औ = औ—सदा + औत्सुक्यम् = सदौत्सुक्यम् ।

सन्धि करो—दिन + ओकस, हृदय + औदार्यम् ।

विश्लेष करो—महौजस, जलौका, रुचिरौपम्यम् ।

[इ ई + इ ई]

१९ । ह्रस्व इकार या दीर्घ ईकारसे परे ह्रस्व इ या दीर्घ ई रहनेसे, दोनो मिलके दीर्घ ईकार होता है, ईकार पूर्ववर्णमें युक्त होता है,* यथा—

इ + इ = ई—अभि + इष्टम् = अभीष्टम् ।

इ + ई = ई—प्रति + ईक्षणम् = प्रतीक्षणम् ।

ई + इ = ई—महती + इच्छा = महतीच्छा ।

ई + ई = ई—पृथ्वी + ईश = पृथ्वीशः ।

सन्धि करो—अति + इव, कवि + ईश्वर, मही + इन्द्र, लक्ष्मी + ईश ।

विश्लेष करो—गिरीन्द्र, गौरीक्षणम्, क्षितीश, धात्रीक्षणम् ।

[इ ई + असमान स्वरवर्ण]

२० । ह्रस्व इकार या दीर्घ ईकारसे परे इ ई भिन्नस्वरवर्ण रहनेसे, ह्रस्व इ और दीर्घ ई के स्थानमे 'य्' होता है, 'य्' पूर्व-

---

* समानः सवर्णे दीर्घी भवति, परश्च लोपम् ।

वर्णमें युक्त होता है,* यथा—

इ + अ = य् + अ—अति + अन्नम् = अत्यन्नम्।

ई + आ = य् + आ—देवी + आगमनम् = देव्यागमनम्।

सन्धि करो—अति + आचार, प्रति + एकम्, अभि + उदय, मुनि + ऐक्यम्।

विश्लेष करो—सत्युक्ति, नद्यम्बु, नुन्युचितम्, यद्येवम्, भवत्येव, नद्यैवा।

[उ ऊ + उ ऊ]

२१। ह्रस्व उकार या दीर्घ ऊकारसे परे ह्रस्व उ या दीर्घ ऊ रहनेसे, दोनो मिलके दीर्घ ऊ होता है, दीर्घ ऊ पूर्ववर्णमें युक्त होता है, †यथा—

उ + उ = ऊ—विधु + उदय = विधूदय।

उ + ऊ = ऊ—लघु + ऊर्मि = लघूर्मिः।

ऊ + उ = ऊ—वधू + उत्सव = वधूत्सव।

ऊ + ऊ = ऊ—तनू + ऊर्द्ध्वम् = तनूर्द्ध्वम्।

सन्धि करो—कटु + उक्ति, स्वयम्भू + उदय, स्वादु + उदकम्।

विश्लेष करो—मूर्द्ध्वम, गुरूह, साधूक्तम्, उरूदवा।

[उ ऊ + असमान स्वरवर्ण]

२२। उ ऊ भिन्न स्वरवर्ण परे रहनेसे, ह्रस्व उ और दीर्घ

---

* इको यणचि—न च परो लोप्य। (इकः यण् आगच्छति, असवर्णे परे।)

† समान सवर्णे दीर्घो भवति, परश्च लोपम्।

ऊ के स्थानमे 'व्' होता है, 'व्' पूर्ववर्णमे युक्त होता है,* यथा—

उ+ए=व्+ए—अनु+एषणम्=अन्वेषणम्।

ऊ+आ=व्+आ—वधू+आगमनम्=वध्वागमनम्।

सन्धि करो—साधु+इदम्, ऋतु+अर्थं, सु+आगतम्, अनु+अय।

विश्लेष करो—वस्त्वाघात, गुर्वागमनम्, तन्वङ्गी, वध्वौदार्य्यम्।

[ऋ+ऋ]

२३। ऋकारसे परे ऋकार रहनेसे, दोनो मिलके दीर्घ ॠ होता है, दीर्घ ॠ पूर्ववर्णमे युक्त होता है,† यथा—

ऋ+ऋ=ॠ—पितृ+ऋणम्=पितॄणम्।

सन्धि करो—भ्रातृ+ऋत्विजौ।

विश्लेष करो—मातॄद्धि।

[ऋ+असमान स्वरवर्ण]

२४। ऋ भिन्न स्वरवर्ण परे रहनेसे, ऋ के स्थानमे 'र' होता है, 'र्' पूर्ववर्णमे युक्त होता है,‡ यथा—

ऋ+आ=र्+आ—पितृ+आसनम्=पित्रासनम्।

सन्धि करो—मातृ+अनुमति, सवितृ+उदय, मातृ+इच्छा।

विश्लेष करो—जामात्रर्थम्, दुहित्रोहितम्, पित्रैश्वर्य्यम्।

---

* वमुवर्ण। (उवर्णो वम् आपद्यते, असवर्णे परे—न च परो लोप्यः।)

† समान सवर्णे दीर्घो भवति, परश्च लोपम्।

‡ रमृवर्ण। (ऋवर्णो रम् आपद्यतेऽसवर्णे—न च परो लोप्य।)

[ए + स्वरवर्ण]

२५ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, एकारके स्थानमें 'अय्' होता है, अकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है, और 'य्' परस्वरमे युक्त होता है, *यथा–

ए+अ = अय्+अ–ने+अनम् = नयनम् ।

सन्धि करो—शे + इतम, ने + अपि, ने + ए, अग्ने + आताम् ।

विश्लेष करो—जयति, अशयिष्ट, सञ्चय, शयनम्, लय ।

[ऐ+स्वरवर्ण]

२६ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, ऐकारके स्थानमे 'आय्' होता है, आकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है, और 'य्' परस्वरमे युक्त होता है, †यथा—

ऐ+अ = आय्+अ—नै+अक = नायक ।

सन्धि करो—गै + अ, परिचै + अक ।

विश्लेष करो—सहायक, राय ।

[ओ+स्वरवर्ण]

२७ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, ओकारके स्थानमे 'अव्' होता है, अकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है, और 'व्' परस्वरमे युक्त होता है, ‡यथा—

ओ+अ = अव्+अ–भो+अनम् = भवनम् ।

---

* ए–अय् । (एकार अय् भवति–न च परो लोप्य ।)

† ऐ–आय् । (ऐकार आय् भवति–न च परो लोप्य ।)

‡ ओ–अव् । (ओकार अव् भवति–न च परो लोप्य ।)

सन्धि करो—गो + इच्छति, ग्लो + अनम्, गो + ए ।

विश्लेष करो—स्वन, पवित्रम्, प्रभवितुम्, श्रवणम् ।

[औ + स्वरवर्ण]

२८ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, औकारके स्थानमें 'आव्' होता है, आकार पूर्ववर्णमें युक्त होता है, और 'व्' परस्वरमें युक्त होता है,* यथा-

औ + अ = आव् + अ—पौ + अक = पावक ।

सन्धि करो—नौ + आ, गौ + अ, श्रौ + अक ।

विश्लेष करो—भाविनी, भावुक, नावौ, श्रावक ।

[पदान्त ए ओ + अ]

२९ । पदके अन्तमें स्थित एकार या ओकारसे परे अकार रहनेसे, अकारका लोप होता है, लोप होनेसे, लुप्त अकारका चिह्न(ऽ)‡ रहता है, §यथा—

सखे + अर्पय = सखेऽर्पय । प्रभो + अत्र = प्रभोऽत्र ।

---

* औ-आव् । (औकार आव् भवति-न च परो लोप्य ।)

† प्रकृति और विभक्तिके मिलनेसे जो होता है, उसे 'पद' कहते हैं, यथा-तद् + जस्=ते-यह पद है (तद्-प्रकृति, जस्-विभक्ति)।

समासमें विभक्तिका लोप होनेसे, पूर्ववर्त्ती शब्दभी पदमें गिना जाता है, यथा-जगताम् ईश -जगत् + ईश, इस स्थानमें 'जगत्'-यह पद है ।

‡ लुप्त अकारके (ऽ) चिह्नको संस्कृतमें 'अवग्रह चिह्न' कहते हैं ।

§ एदोत्पर पदान्ते लोपमकार । (एदोद्भ्या परोऽकार पदान्ते वर्त्तमानो लोपमापद्यते ।)

सन्धि करो—चिरन्ने + अन्यस्मिन्, विभो + अनुजानीहि ।

विश्लेष करो—नेऽत्र, कोऽपेहि, गुरोऽनुमन्यस्व ।

[पदान्त ए + 'अ'-भिन्न स्वरवर्ण]

३० । अकार-भिन्न स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित एकारके स्थानमे 'अ' वा 'अय्' होता है, 'अ' पूर्ववर्णमे युक्त होता है, 'य्' परस्वरमे युक्त होता है, 'अ' होनेसे, फिर सन्धि नहीं होती, यथा—

ए + इ = अ + इ—ते + इव = त इव ।

ए + इ = अय् + इ—ते + इव—तयिव ।

सन्धि करो—विद्ये + एव, वने + उच्यताम्, सखे + एहि ।

विश्लेष करो—गृहयागच्छ, नयनयेहि ।

[पदान्त ओ + 'अ'-भिन्नस्वरवर्ण]

३१ । अकार-भिन्न स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित ओकारके स्थानमे 'अ' वा 'अव्' होता है, 'अ' पूर्ववर्णमे युक्त होता है, 'व्' परस्वरमे युक्त होता है, 'अ' होनेसे, फिर सन्धि नहीं होती, यथा—

ओ + इ = अ + इ—विभो + इह = विभ इह ।

ओ + इ = अव् + इ—विभो + इह = विभविह ।

सन्धि करो—भानो + एहि, गुरो + उच्यताम्, प्रभो + इच्छति ।

विश्लेष करो—प्रभ इह, प्रभवेहि, प्रभ ईशे ।

[पदान्त ऐ + स्वरवर्ण]

३२ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित ऐकारके

स्थानमे 'आ' वा 'आय्' होता है, 'आ' पूर्ववर्णमे युक्त होता है, 'य्' परस्वरमे युक्त होता है, 'आ' होनेसे फिर सन्धि नहीं होती, यथा--

ऐ + अ = आ + अ—काल्यै + अर्पय = काल्या अर्पय ।

ऐ + अ = आय् + अ--काल्यै + अर्पय = काल्यायर्पय ।

सन्धि करो—देव्यै + इदम्, सख्यै + उत्कण्ठा ।

विश्लेष करो—विद्याया आग्रह, स्त्रियायुन्नति, मायायायिह ।

[पदान्त औ + स्वरवर्ण]

३३ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित औकारके स्थानमे 'आ' वा 'आव्' होता है, 'आ' पूर्ववर्णमे युक्त होता है, 'व्' परस्वरमे युक्त होता है, 'आ' होनेसे, फिर सन्धि नहीं होती, *यथा—

औ + अ = आ + अ-रवौ + अस्तङ्गते = रवा अस्तङ्गते ।

औ + अ = आव् + अ-रवौ + अस्तङ्गते = रवावस्तङ्गते ।

सन्धि करो—विधौ + उदिते, तौ + ईश्वरौ, गुरौ + अर्पणम्, गुरौ + आगते ।

विश्लेष करो—गतावित्तौ, रवावुदिते, सता ऐक्यम् ।

* * * *

३४ । तृतीयान्तपूर्वस्थ समासमे अकार वा आकारके परस्थित 'ऋत'

---

* लयादीना य व-लोप पदान्ते, न वा—लोपे ॥ प्रकृति । (अय् इत्येवमादीनां पदान्ते वर्तमानानां यवयोर्लोपो भवति, न वा । लोपे तु प्रकृति स्वभावो भवति ।)–३० से ३३ सूत्र ।

शब्दके 'ऋ'के स्थानमें 'आर्' होता है, यथा–शीत + ऋत = शीतार्त, दुःख + ऋत = दुःखार्त, क्षुधा + ऋत = क्षुधार्त ।

३५। 'स्व' शब्दके परस्थित 'ईर' और 'ईरिन्' शब्दके ईकारके स्थानमें ऐकार होता है, यथा–स्व + ईरम् = स्वैरम्, स्व + ईरिन् = स्वैरी, स्व + ईरिणी = स्वैरिणी ।

३६। 'प्र'-शब्दके परवर्ती 'ऊढ' और 'ऊढि' शब्दके ऊकारके स्थानमें औकार होता है, यथा—प्र + ऊढ = प्रौढ, प्र + ऊढि = प्रौढि।

३७। 'अक्ष' शब्दके परवर्ती 'ऊहिनी'-शब्दके ऊकारके स्थानमें औकार होता है, यथा—अक्ष + ऊहिनी = अक्षौहिणी।

३८। धातुका एकार या ओकार परे रहनेसे, उपसर्गके अवर्णका* लोप होता है, यथा—प्र + एषयति = प्रेषयति, परा + ओखति = परोखति।

(क) इण् और एध् धातुका एकार परे रहनेसे, पूर्ववर्ती उपसर्गके अवर्णका लोप नहीं होता, यथा—प्र + एधते = प्रैधते, अव + एति = अवैति, आ + एति = ऐति।

३९। 'प्र' शब्दसे परे 'एष' और 'एष्य' शब्द रहनेसे अकारका विकल्पसे† लोप होता है, यथा—प्र + एष = प्रेष, प्रैष, प्र + एष्य = प्रेष्य, प्रैष्य ।

४०। 'आङ्' (आ) उपसर्गके योगसे उत्पन्न एकार या ओकार परे रहनेसे, अवर्णका लोप होता है, यथा—(आ + इहि = एहि) अत्र +

---

* अवर्णान्त उपसर्ग—प्र, परा, अप, उप, अव, आ।

† एक बार होने और एक बार न होनेको 'विकल्प' कहते हैं।

एहि = अवेहि; (आ + उतम् = ओतम्) सूत्र + ओतम् = सूत्रोतम् ।

४१ । उपसर्गके अवर्णके परवर्ती धातुके ऋकारके स्थानमें 'आर' होता है, यथा—अप + ऋच्छति = अपार्च्छति, परा + ऋषति = परार्षति ।

४२ । समासमें अवर्णान्त शब्दसे परे 'ओष्ठ' वा 'ओतु' शब्द रहनेसे, अवर्णका विकल्पसे लोप होता है, यथा—बिम्ब + ओष्ठ = बिम्बोष्ठ, बिम्बौष्ठ, उमा + ओष्ठ = उमोष्ठ, उमौष्ठ, स्थूल + ओतु = स्थूलोतु, स्थूलौतु ।

४३ । पदान्तस्थित 'गो'-शब्दके ओकारसे परे अकार रहनेसे, अकारका लोप होता है, वा ओकारके स्थानमें 'अव' होता है, अथवा सन्धि नहीं होती, यथा—गो + अग्रम् = गोऽग्रम्, गवाग्रम्, गो-अग्रम् ।

(क) वातायन (झरोखा) अर्थमें—गो + अक्ष = गवाक्ष नित्य होता है ।

(ख) अकार भिन्न स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदान्तस्थित 'गो'-शब्दके ओकारके स्थानमें 'अव' वा 'अव्' होता है, यथा—गो + ईश = गवेश, गवीश । गो + इन्द्र = गवेन्द्र नित्य होता है ।

सन्धि-निषेध ।

४४ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, ओकारान्त अव्यय और एकस्वरमात्र अव्ययकी सन्धि नहीं होती, *यथा—अहो ईशान उ उत्तिष्ठ ।

किन्तु सीमा, व्याप्ति वा ईषदर्थ समझानेसे, अथवा क्रियाके साथ योग होनेसे, आङ् (आ) अव्ययकी सन्धि होती है, यथा—(सीमा)

---

* ओदन्ता अ इ उ आ निपाताः स्वरे प्रकृत्या । (ओदन्ता निपात अ इ उ आङ्‌च केवला स्वरे परे प्रकृत्या तिष्ठन्ति ।)

आ + अध्ययनात् = आध्ययनात् (अध्ययनपर्य्यन्त), (व्याप्ति) आ + एकदेशात् = ऐकदेशात् (एकदेश व्यापकर), (ईषदर्थ) आ + आलोचितम् = आलोचितम् (ईषत् अर्थात् अल्पमात्र विचार किया हुआ), (क्रियायोग) आ + इहि = एहि ।

४५ । स्वरवर्ण परे रहनेमे, द्विवचन-निष्पन्न ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त पदकी सन्धि नहीं होती, *यथा—गिरी इमौ, साधू आगतौ, लते एते । पचेते एतौ, एधेते इमौ ।

४६ । स्वरवर्ण परे रहनेमे, 'अदस्'-शब्दनिष्पन्न 'अमी'-पदकी सन्धि नहीं होती, †यथा—अमी अश्वा ।

४७ । ऋवर्ण परे रहनेसे, अवर्ग, इवर्ण और उवर्गकी विकल्पसे सन्धि होती है, और सन्धि न होनेसे विकल्पसे ह्रस्व होता है, यथा—ब्रह्मा + ऋषि = ब्रह्मा ऋषि, ब्रह्म ऋषि, ब्रह्मर्षि ।

व्यञ्जन-सन्धि (Conjunction of consonants) ।

(व्यञ्जन और व्यञ्जनमे)

[१ म वर्ण + ३ य, ४ र्थ वर्ण, य, र, ल, व, ह]

४८ । वर्गका तृतीय वा चतुर्थ वर्ण, अथवा य र ल व ह परे रहनेमे, पदके अन्तमे स्थित वर्गके प्रथमवर्णके स्थानमे

---

* द्विवचनमनौ । (द्विवचन यत् अनौमूलम् औकाररूप परित्यज्य रूपान्तर प्राप्तमित्यर्थं, तत् स्वरे परे प्रकृत्या तिष्ठति ।)

† बहुवचनममी । (बहुवचन यत् 'अमी'-रूपम्, तत् स्वरे परे प्रकृत्या तिष्ठति ।)

स्व स्व वर्गका तृतीय वर्ण होता है

क्+व=ग्व—वाक्+विभव=वाग्विभवः।

ट्+व=ड्व—षट्+विद्वांस=षड्विद्वांस।

त्+भ=द्भ—तत्+भवनम्=तद्भवनम्।

प्+भ=ब्भ—अप्+भाण्डम्=अब्भाण्डम्।

सन्धि करो—दिक्+गज, चित्+घनगर्जितम्, जगत्+भारः, अप्+माजनम्, परिव्राट्+याति।

विश्लेष करो—वागीश, विद्व्यवहार, षड्दैनेन्द्राय, तद्विवाह।

शुद्ध करो—जगत्पन्तु, अट्टक्लाए, वाड्मय।

[१ म वर्ण + ५ म वर्ण]

४६। पञ्चम वर्ण (ङ, ञ, ण, न, म) परे रहनेसे पदके अन्तमे स्थित प्रथम वर्णके स्थानमे पञ्चम वा तृतीय वर्ण होता है,† यथा—

क्+न=ङ्न वा ग्न—दिक्+नाग=दिङ्नागः, दिग्नागः।

ट्+म=ण्म वा ड्म—षट्+मासाः=षण्मासाः, षड्मासाः।‡

---

* वर्गप्रथमा पदान्ता स्वरघोषवत्सु तृतीयान्। (आपद्यन्ते इति शेष)।

† प्रत्ययका पञ्चमवर्ण परे रहनेसे, नित्य पञ्चमवर्ण होता है, यथा—तत्+मात्रम्=तन्मात्रम्, जगत्+मय=जगन्मय।

‡ पञ्चमे पञ्चमास्तृतीयान् वा। (वर्गप्रथमा पदान्ता पञ्चमे परे पञ्चमानापद्यन्ते, तृतीयान् वा।)

सन्धि करो—जगत्+निमातम्, वाक्+निपुण, अप्+मय।

विश्लेष करो—दिङ्मुखम्, सन्मुखम्, जगन्मयम्, प्राङ्मुख।

[१म वर्ण+श]

५०। पदके अन्तमें स्थित वर्गके प्रथम वर्णोंसे परे तालव्य श रहनेसे, 'श' के स्थानमें विकल्पसे 'छ' होता है, और 'त' के स्थानमें 'च्' होता है*, यथा—

क्+श=क्छ—वाक्+शूर=वाक्छूर, वाक्शूरः।

प्+श=प्छ—त्रिष्टुप्+श्रूयते=त्रिष्टुप्छ्रूयते, त्रिष्टुप्श्रूयते।

त्+श=च्छ वा च्श—जगत्+शरण्यम्=जगच्छरण्यम्, जगच्शरण्यम्।

द्+श=च्छ वा च्श—आपद्+शान्तिः=आपच्छान्तिः, आपच्शान्तिः†‡।

---

* शकार—स्वरवर्ण और य व र भिन्न अन्य वर्णसे मिलित रहनेसे, 'छ' नहीं होता, यथा—तद्+श्मशानम्=तच्श्मशानम्।

† पदके अन्तमें स्थित वर्गीय वर्णके स्थानमें अपने अपने वर्गका प्रथम वर्ण होता है–इस नियमके अनुसार 'आपद्'-शब्दके स्थानमें पहले 'आपत्' होकर पीछे सन्धि हुई।

‡ वर्गप्रथमेभ्यः शकारः स्वर-य-व-र-परश्छकारं, न वा। (वर्गप्रथमेभ्यः पदान्तेभ्यः परः शकारः स्वर-य-व-र-परश्छकारमापद्यते, न वा।)

चं शे। (तकारः पदान्तः शे परे चम् आपद्यते, यथा—तच्श्मशानम्; तच्छ्मशानम्। असम्मतमेव वचनमिदम्।)

सन्धि करो—अच् + नेपम्, पद् + श्यामा, महत् + शरटम्, ए-तद् + शकाब्दीयम् ।

विश्लेष करो—तच्छरीरम्, बृहच्छयनम् ।

[च्, ज् + न]

५१ । पदके मध्यमे स्थित चकार वा जकारसे परे दन्त्य नकार रहनेसे, 'न' के स्थानमे 'ञ' होता है, यथा—

च् + न = च्ञ—याच् + ना = याच्ञा ।

ज् + न = ज्ञ—यज् + न = यज्ञ ।

सन्धि करो—राज् + ना, जज् + ञाते ।

विश्लेष करो—राज्ञी, जज्ञे ।

[त्, द् + च छ ज झ, ट ठ ड ढ]

५२ । च छ, ज झ, ट ठ, ड ढ परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित त् वा द् के स्थानमे यथाक्रमसे च्, ज्, ट्, ड् होते हैं, अर्थात् च छ परे रहनेसे 'च्', ज झ परे रहनेसे 'ज्', ट ठ परे रहनेसे 'ट्', और ड ढ परे रहनेसे 'ड्' होता है,* यथा—

त् + च = च्च—महत् + चित्रम् = महच्चित्रम् ।

द् + छ = च्छ—शरद् + छटा = शरच्छटा ।

त् + ज = ज्ज—जगत् + जीवनम् = जगज्जीवनम् ।

त् + झ = ज्झ—बृहत् + झटिका = बृहज्झटिका ।

सन्धि करो—तद् + टीका, एतद् + ठक्कुर, जगत् + डङ्का, उत् +

---

* पररूपं तकारो ल-चटवर्गेषु । (तकार पदान्तो ल-चटवर्गेषु परत पररूपमापद्यते ।)-५२ और ५३ सूत्र ।

डीनेन, तत् + टङ्कनम् ।

विश्लेष करो—उड्डीयमानम्, महच्छत्रम्, उच्चारणम्, तज्जयः, भवड्डमरः, तड्डिन्न ।

शुद्ध करो—विपद्जालम्, बृहद्पक्कार, तद्टङ्का ।

[त्, द्+ल]

५३ । पदके अन्तमें स्थित तकार या दकारसे परे 'ल' रहनेसे, 'त्' या 'द्' स्थानमें 'ल्' होता है, यथा—

त् + ल = ल्ल—तत् + लवणम् = तल्लवणम् ।

द् + ल = ल्ल—एतद् + लीला = एतल्लीला ।

सन्धि करो—महत् + लावण्यम्, बृहत् + ललाटम्, तत् + लीलायितम् ।

विश्लेष करो—तल्लय, उल्लेख, समिल्लता, जगल्लक्ष्मी, एतल्लीलोद्यानम् ।

[त्, द्+ह]

५४ । पदके अन्तमें स्थित त् या दकारसे परे 'ह' रहनेसे, 'त्' या 'द्' के स्थानमें 'द्', और 'ह' के स्थानमें विकल्पसे 'ध' होता है,* यथा—

त् + ह = द्ध या द्ह—ईषत् + हसितम् = ईषद्धसितम्, ईषद्हसितम् ।

द् + ह = द्ध या द्ह—तद् + हेयम् = तद्धेयम्, तद्हेयम् ।

---

* वर्गप्रथमेभ्यो हकारः पूर्वचतुर्थं, न वा । (वर्गप्रथमेभ्यः पदान्तेभ्यः परो हकारः पूर्वचतुर्थमापद्यते, न वा, यथा—वाग्घीन, वाग्हीन ।)

सन्धि करो—जगत्+हितम्, विपद्+इतु ।

विश्लेष करो—उद्धत, उद्धरणम् ।

[न्+च छ]

५५। च वा छ परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित नकारके स्थानमे अनुस्वार और तालव्य श् होते हैं, 'श' परवर्णमे युक्त होता है,* यथा—

न्+च = ंश्च—भास्वान्+चन्द्र: = भास्वांश्चन्द्र: ।

न्+छ = ंश्छ—गायन्+छात्र = गायंश्छात्र ।

सन्धि करो—गच्छन्+चकोर, धावन्+छाग ।

विश्लेष करो—महांश्छेद, हसंश्चरति ।

[न्+ट ठ]

५६। ट वा ठ परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'न्' के स्थानमे अनुस्वार और मूर्द्धन्य ष् होते हैं, 'ष' परवर्णमे युक्त होता है,† यथा—

न्+ट = ंष्ट—उद्यन्+टङ्कार = उद्यंष्टङ्कार ।

न्+ठ = ंष्ठ—महान्+ठक्कुर = महांष्ठक्कुर: ।

सन्धि करो—महान्+टीकाकार, जानन्+ठक्कुर ।

विश्लेष करो—चरंष्टिट्टिभ ।

---

* नोऽन्तश्च-छयोः शकारमनुस्वारपूर्वम् । (नकार पदान्त च-छयो परयो शकारमापद्यतेऽनुस्वारपूर्वम् ।)

† टठयो षकारम् । (नकार पदान्त टठयो परयो षकारमापद्यतेऽनुस्वारपूर्वम् ।)

[न्+त थ]

५७। त वा थ परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'न्' के स्थानमे अनुस्वार और दन्त्य स् होते हैं, 'स्' परवर्णमे युक्त होता है,* यथा—

न्+त्=ंस्त—महान्+तरु=महांस्तरु।

न्+थ=ंस्थ—क्षिपन्+थुत्कारम्=क्षिपंस्थुत्कारम्।

सन्धि करो—शाम्यन्+ताप, उत्पतन्+तन्द्र, महान्+थकार।

विश्लेष करो—चलंस्तमवादी, रिपूंस्तरन्, महांस्तडाग।

[न्+ज झ]

५८। ज वा झ परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'न्' के स्थानमे 'ञ्' होता है, 'ञ्' परवर्णमे युक्त होता है।† यथा—

न्+ज=ञ्ज—राजन्+जागृहि=राजञ्जागृहि।

न्+झ=ञ्झ—उद्यन्+झङ्कारः=उद्यञ्झङ्कार।

सन्धि करो—गच्छन्+झटिति, विद्वान्+जयति।

विश्लेष करो—बुद्धिमाञ्जीवन्।

[न्+ड ढ]

५९। ड वा ढ परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'न्' के

---

* त-थयो सकारम्। (नकारः पदान्तः त-थयोः परयोः सकारमापद्यतेऽनुस्वारपूर्वम्।)

† ज-झ-ञ-शकारेषु ञकारम्। (नकारः पदान्तो ज-झ-ञ-शकारेषु परतो ञकारमापद्यते।)

स्थानमे 'ए' होता है,* यथा—

न् + ड = एड—महान् + डमरः = महाएडमरु ।

न् + ढ = एढ–राजन् + ढौकसे = राजएढौकसे ।

सन्धि करो—स्वन् + डिण्डिम, स्फुरन् + डिम्ब ।

विश्लेष करो—भवाण्डुण्डति, महाण्डोल ।

न् + ल

६० । 'ल' परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'न्' के स्थानमे सानुनासिक 'ल्' (चन्द्रबिन्दुयुक्त ल्—ँल्) होता है,† यथा—

न् + ल = ँल्ल—महान् + लाभ = महाँल्लाभ ।

सन्धि करो—भवान् + लभते ।

विश्लेष करो—विद्वाँल्लिखति ।

न् + श

६१ । पदके अन्तमे स्थित नकारसे परे तालव्य श रहनेसे, 'न्' के स्थानमे 'ञ्', और 'श' के स्थानमे 'छ' होता है ‡ यथा—

न + श = ञ्छ—महान् + शब्द = महाञ्छब्द § ।

---

* ड-ढ-ण-परस्तु णकारम् । (ड-ढ-णा परेऽस्मादिति ड-ढ-ण-पर । ड-ढ-ण-परो नकारो णमापद्यते ।)

† ले ल्म् । (नकार पदान्तो ले परे लमापद्यतेऽनुस्वारहीनम् । कार-र्हीनत्वादनुनासिकम् ।)

‡ शि ञौ वा । (नकार पदान्त शि परे ञौ वा प्राप्नोति, नकारं वा ।)

§ अथवा केवल 'न्' के स्थानमे 'ञ्' वा 'ञ्च्' होता है, यथा—महाञ्शब्द, महाञ्छन्द ।

सन्धि करो—गच्छन् + शशक ।

विश्लेष करो—चलञ्छशी, निन्दञ्छट ।

[म् + व्यञ्जनवर्ण]

६२। स्पर्शवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'म्' के स्थानमे अनुस्वार होता है, अथवा जिस वर्गका वर्ण परे रहता है, उसी वर्गका पञ्चम वर्ण होता है, और अन्तःस्थ या ऊष्मवर्ण परे रहनेसे, केवल अनुस्वारही होता है, *यथा—

म् + क = ंक या ङ्क—किम् + करोषि = किं करोषि, किङ्करोषि।

म् + द = ंद, न्द-धनम् + ददाति = धनं ददाति, धनन्ददाति ।

म् + व = ंव—हरिम् + वन्दे = हरिं वन्दे।

म् + ह = ंह—मधुरम् + हसति = मधुरं हसति ।

सन्धि करो—धर्मम् + चर, नदीम् + तर, गृहम् + गच्छ ।

विश्लेष करो—किं कर्त्तव्यम्, स्तनन्धयति, गुरुं नमसि ।

शुद्ध करो—वशम्वद, किम्वदन्ती, सम्वाद, स्वयम्वर, सम्वत्सर किम्वा, पुरञ्जिय ।

सन्धि करो—अविचलम् + रमते, ज्ञानम् + लभते ।

विश्लेष करो—सत्यं वदति, [illegible] ।

---

* मोऽनुस्वार व्यञ्जने। (मकार पुनरन्तो व्यञ्जने परेऽनुस्वारमापद्यते वर्गे तद्वर्गपञ्चमं वा। (अन्तोऽनुस्वारो वर्गे परे तद्वर्गपञ्चमं वाऽऽपद्यते।

६३। धुट् वर्ण* परे रहनेसे, पदके मध्यमे स्थित 'म्' और 'न्' के स्थानमे अनुस्वार होता है, यथा—

म् + स्य = ंस्य—रम् + स्यते = रंस्यते।

न् + स = ंस—दन् + सनम् = दंसनम्।

न् + ह = ंह—बृन् + हितम् = बृंहितम्।

सन्धि करो—अन् + सते, जिघान् + सति।

विश्लेष करो—रंसन्ति, दंसने, बृंहन्ति।

६४। जिस वर्गका वर्ण परे रहता है, पदके मध्यमे स्थित अनुस्वारके स्थानमे उस वर्गका पञ्चम वर्ण होता है, यथा—

ं + क = ङ्क—आशं + कते = आशङ्कते।

ं + छ = ञ्छ—वां + छति = वाञ्छति।

सन्धि करो— + दयति, उत्कं + ठते।

विश्लेष करो—शान्तयम्, कुन्तयम्, भ्रान्ति।

[ष् + त, थ]

६५। मूर्द्धन्य षकारसे परे 'त' या 'थ' रहनेसे, 'त' के स्थानमे 'ट', और 'थ' के स्थानमे 'ठ' होता है, यथा—

ष् + त = ष्ट—उत्कृष् + तम् = उत्कृष्टम्।

ष् + थ = ष्ठ—षष् + थः = षष्ठः।

सन्धि करो—प्राहृष् + तम्।

विश्लेष करो—स्रष्टा, सृष्टि।

---

* य र ल व, ङ ञ ण न म भिन्न व्यञ्जनवर्णको 'धुट्-वर्ण' कहते हैं।—धुड्व्यञ्जनमन्त्यस्थानुनासिकम्।

(व्यञ्जन और स्वरमें)

[१ म वर्ण + स्वरवर्ण]

६६। स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमें स्थित वर्गके प्रथम वर्णके* स्थानमें तृतीय वर्ण होता है, यथा—

क् + ई = गी—वाक् + ईश = वागीश।

च् + अ = ज—अच् + अन्त = अजन्त।

ट् + आ = डा—षट् + आनन = षडानन।

त् + ई = दी—जगत् + ईश्वर = जगदीश्वर।

प् + अ = ब—ईप् + अन्त = ईबन्त।

सन्धि करो—भवत् + उदकम्, स्वर् + इन्द्रियम्, विभ्राट् + अमी।

विच्छेद करो—जगदिन्द्र, प्रागेव, परिव्राडुवाच।

[न् + स्वरवर्ण]

६७। स्वरवर्ण परे रहनेसे, ह्रस्व स्वरके परस्थित पदान्त नकारका द्वित्व होता है,† यथा—

न् + आ = न्ना—गायन् + आयाति = गायन्नायाति।‡

---

* वर्गप्रथमाः पदान्ताः स्वर-घोषवत्सु तृतीयान्।

† 'ङ्' और 'ण्' का भी द्वित्व होता है, यथा—प्रत्यङ् + आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण् + ईश = सुगण्णीश। समासमें नहीं होता, यथा—निर् + अन्त = निरन्त, सन् + अन्त = सनन्त।

‡ ङमन्ता ह्रस्वोपधा स्वरे द्विः। (ङमन्ताः पदान्ता ह्रस्वोपधाः स्वरे परे द्विर्भवन्ति।—अन्त्यात् पूर्व उपधा।)

सन्धि करो—चिन्तयन् + आह, स्मरन् + उवाच, गच्छन् + एव ।

विश्लेष करो—इयन्नागत, दीव्यन्नमर ।

शुद्ध करो—महान्नानन्द, भगवान्नधर्वीत् ।

६८ । स्वरवर्णके परवर्ती 'छ' के स्थानमे 'च्छ' होता है,* यथा—

इ + छ = इच्छ—परि + छदः = परिच्छद ।

सन्धि करो—तरु + छाया, आ + छन्नम् ।

विश्लेष करो—विच्छेद, आच्छादम् ।

* * * *

६९ । क ख, त थ, प फ और स परे रहनेसे, 'द' के स्थानमे,—और व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'ध' के स्थानमे 'त' होता है, यथा—द् = त्—तद् + काल = तत्काल, तद् + प्रकाशम् = तत्प्रकाशम् ।

सन्धि करो—विपद् + तारणम्, क्षुध् + पिपासा ।

विश्लेष करो—तत्स्वतनम्, विपत्पात ।

७० । 'उत्' उपसर्गके परस्थित स्था और स्तम्भ धातुके सकारका लोप होता है, यथा—उत् + स्थानम् = उत्थानम्, उत् + स्तम्भ = उत्तम्भ ।

७१ । 'कृ' धातुके पद परे रहनेसे, सम्—समस्, और परि—परिष् होता है, यथा—सम् + कृतम् = संस्कृतम्, परि + कार = परिष्कार ।

७२ । व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'वस्' भागान्त शब्दके 'स' के स्थानमे

---

* द्विर्भावं स्वरपरछकार । (स्वरात् परश्छकारो द्विर्भावमापद्यते ।)

'त्',* और 'दिव्' के स्थानमें 'द्यु' होता है, यथा—विद्वस्+जन = विद्वज्जन, दिव्+लोक = द्युलोक ।

विसर्ग-सन्धि ।

विसर्ग (:) दो प्रकार—(१) 'र्' जात विसर्ग और (२) 'स्'-जात विसर्ग।

७३। विराममें अर्थात् कोई वर्ण परे न रहनेसे, अथवा व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, रेफ (र्) और 'स्' के स्थानमें विसर्ग होता है† । 'र्' के स्थानमें जो विसर्ग होता है, उसे 'र्'-जात विसर्ग,‡ और स्' के स्थानमें जो विसर्ग होता है, उसे 'स्'-जात विसर्ग कहते हैं, यथा—

('र्' जात) दुर् = दुः, निर् = निः, अन्तर् = अन्तः, प्रातर् = प्रातः, स्वर् = स्वः, गीर् = गीः, धूर् = धूः, पुनर् = पुनः ।

('स्'-जात) रामस् = रामः, हविस् = हविः, पयस् = पयः, मुनिस् = मुनिः, उच्चैस् = उच्चैः, नीचैस् = नीचैः ।

---

* 'त्' पदान्तस्थ होकर ५२ सूत्रानुसार सन्धिकार्य्य प्राप्त होता है ।

† 'अहन्'-शब्दके 'न्' के स्थानमें पहले 'र्', पीछे विसर्ग होता है, यथा—अहन्=अहः, अहन्+सु ('सुप्' विभक्ति)=अहः सु ।

‡ भ्रातृ-पितृ प्रभृति ऋकारान्त शब्दके सम्बोधनके एकवचनके पदमें स्थित विसर्गभी 'र्'-जात ।

:+ठ=ष्ठ—सुन्दरः+ठकुरः=सुन्दरष्ठकुरः। (ठकुरः—देवप्रतिमा)।

सन्धि करो—भीत +स्खलति, उड्डीन +ष्टिट्टिभ, कः+टीकते।

विश्लेष करो—रुष्टकार, स्थिराष्टकुर।

[+त थ]

७७। त थ परे रहनेसे, विसर्गके स्थानमें दन्त्य 'स्' होता है, 'स्' परवर्णमें युक्त होता है,* यथा—

:+त=स्त—नतः+ततः=ततस्ततः।

:+थ=स्थ—लिप्तः+थुत्कारः=लिप्तस्थुत्कारः।

सन्धि करो—नि +तार, मर +तीरम्, उन्नत +तर।

विश्लेष करो—विशेषस्तु, मनस्तावम्, सुवस्तल्पम्।

[+श ष स]

७८। तालव्य श परे रहनेसे, विसर्गके स्थानमें विकल्पसे तालव्य श् होता है, मूर्द्धन्य ष परे रहनेसे, विकल्पसे मूर्द्धन्य ष् होता है, और दन्त्य स परे रहनेसे, विकल्पसे दन्त्य स् होता है,† यथा—

:+श=श्श—शिशुः+शेते=शिशुश्शेते, शिशुः शेते।

:+ष=ष्ष—मत्तः+षट्पदः=मत्तष्षट्पदः।

:+स=स्स—मनः+सुखम्=मनस्सुखम्।

---

* ते थे वा सम्। (विसर्जनीयस्ते वा थे वा परे सम् आपद्यते।)

† शे षे से वा पररूपम्। (विसर्जनीयः शे वा षे वा से वा परे पररूपमापद्यते, न वा।)

सन्धि करो—अग्ने + शिखा, माधो + सङ्क, मधुर + पङ्ज ।

विश्लेष करो—गौनश्शब्दायते, प्रथमस्सर्ग, द्वात्पट् ।

(क) वर्गके प्रथम और द्वितीय वर्ण-युक्त श ष स परे रहनेसे, विसर्गका विकल्पसे लोप होता है, यथा—नि + स्पन्द = निस्पन्द, निस्स्पन्द, नि स्पन्द, मन + स्थ = मनस्थ, मनस्स्थ, मन स्थ, दु + स्थ = दुस्थ, दुस्स्थ, दु स्थ, द्वा. + स्थ = द्वास्थ, द्वास्स्थ, द्वा स्थ ।

[अः + ३ य, ४ र्थ, ५ म वर्ण, य र ल व ह]

७६। अकारके परस्थित विसर्गसे परे घोषवद्वर्ण (९ सू०) रहनेसे, अकार और विसर्ग—दोनो मिलके ओकार होता है; ओकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है,* यथा—

अः + ग = ओ + ग—नरः + गच्छति = नरो गच्छति ।

सन्धि करो—अश्व + धावति, हव + यन्त्र, मन + हर, नूतनः + घट, शिव + बन्ध, निर्वाण + दीप ।

विश्लेष करो—शीतो वात, मनोगतम्, मधुरो झङ्कार, पयोबिन्दु, सद्योजात, शान्तो रोष ।

[सः, एष + व्यञ्जनवर्ण]

८०। व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'सः' और 'एष'—इन दोनो पदोंके अन्तमे स्थित विसर्गका लोप होता है,† यथा—

---

* [उम्] अ-घोषवतोश्च । (अकार घोषवतोर्मध्ये विसर्जनीय उम् आपद्यते ।)

† एष-स-परो व्यञ्जने लोप्य. । (एष-साभ्या परो विसर्जनीय. लोप्यो भवति, व्यञ्जने परे ।)

सः+गच्छति=स गच्छति, एषः+बन्धुः=एष बन्धुः।

विश्लेष करो—स याति, एष बाहु, एष हसति।

शुद्ध करो—एषो महाशय, सो मे पिता, एषो शेते।

[अः+३ य, ४ र्थ, ५ म वर्ण, य र ल व ह]

८१। घोषवद्वर्ण परे रहनेसे, आकारके परस्थित विसर्गका लोप होता है, *यथा—

आः+ग=आ ग—दिवसाः+गताः=दिवसा गताः।

सन्धि करो—मधुराः+शब्दाः, भीताः+नराः, छात्राः+पठन्ते।

विश्लेष करो—मानवा रमन्ते, प्रदीपा निवान्ति।

शुद्ध करो—गावा पुत्रा, नरा क्षत्रिया।

(क) घोषवद्वर्ण परे रहनेसे, 'भोः' शब्दके अन्तस्थित विसर्गका लोप होता है. यथा—

भोः+द=भो द—भोः+देवराज=भो देवराज।

सन्धि करो—भोः+भो। विश्लेष करो—भो राजन्।

[इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औः+३ य, ४ र्थ,

५ म वर्ण, य र ल व ह]

८२। घोषवद्वर्ण परे रहनेसे, अ आ भिन्न स्वरवर्णके परस्थित विसर्गके स्थानमे 'र्' होता है, †'र्' परवर्णके मस्त-

---

* घोषवति लोपम्। (आकार-भोशब्दाभ्यां परो विसर्जनीयो लोपमापद्यते, घोषवति परे।)

† [नामिपरो] घोषवत्-स्वर परो [रम्]। (नामिन परो विसर्ज-

क्रमे जाता है, *यथा—

इः+भ=इर्भ—निः+भय=निर्भयः।

उः+नी=उर्नी—दुः+नीति=दुर्नीति।

सन्धि करो—हरे+दया, गुरु+जयति, मुहु+मुहु, गो+दुग्धम्, हवि+घ्राणम्, मातु+वदति।

विश्लेष करो—गोर्याति, तर्दोर्वहि, रवेर्दर्शनम्, वहिर्योग।

शुद्ध करो—रामर्गच्छति, शिशोर्क्रीडा, गुरुर्पातु।

['र्'-जात +३ य, ४ थँ, ५ म वर्ण, य र ल व ह

८३। घोषवद्वर्ण परे रहनेसे, अकारके परस्थित 'र्'-जात विसर्गके स्थानमे 'र्' होता है, 'र्' परवर्णके मस्तकमे

नीयो घोषवत्-स्वर-परो रम् आपद्यते।—स्वरोऽवर्णवर्जे नामी—अवर्णवर्जस्वरो 'नामि'-सञ्ज्ञो भवति।)

* द्वित्वविधि—(ॅ) रेफयुक्त व्यञ्जनवर्णका विकल्पमे द्वित्व होता है। किन्तु द्वित्व होनेसे आदिमे स्थित वर्गके द्वितीयवर्णके स्थानमे प्रथमवर्ण, और चतुर्थवर्णके स्थानमे तृतीयवर्ण होता है, यथा-मूर्च्छा, मूर्छा, मूर्द्धा, मूर्धा, कर्म्म, कर्म। ऊष्मवर्णका द्वित्व नही होता, यथा-दर्शनम्, मर्षणम्, अर्हणा।

जिस वर्णके आदिमे ह्रस्वस्वर, और अन्तमे व्यञ्जनवर्ण रहता है, उसकाभी विकल्पसे द्वित्व होता है, यथा-य्+अ+त्+र=यत्र, यत्त्र, प्+उ+त्+र=पुत्र, पुत्त्र इत्यादि। अर्थविशेषमे पदकाभी द्वित्व होता है; यथा-एह्येहि, गच्छ गच्छ, भो भो पान्था इत्यादि।

जाता है, *यथा—

अः+ग=र्ग—अन्तः+गमनम्=अन्तर्गमनम्।

सन्धि करो—जामातः+वद, दुहितः+याहि, मातः+देहि, अन्तः+दाह, स्वः+गत, अन्तः+घचे।

विश्लेष करो—स्वर्नदी, भ्रातर्दयस्व।

शुद्ध करो—प्रातःकाल, अन्तःपुरम्।

८४। 'र' परे रहनेसे, विसर्गके स्थानमें जो 'र्' होता है,† उसका लोप होता है, और पूर्वस्वर दीर्घ होता है, ‡यथा—

अः+रा=आरा—स्वः+राज्यम्=स्वाराज्यम्।

सन्धि करो—भ्रातः+रघुनाथ, निः+रोग, पितः+रक्ष मातुः+रोदनम्।

विश्लेष करो—नीरस, पितृ रक्षणम्।

शुद्ध करो—महर्षिदेव, नीरुज।

८५। 'अहन्' शब्दके विसर्गके स्थानमें 'र्' होता है, किन्तु रात्र, रूप और रथन्तर शब्द परे रहनेसे, अथवा 'क' और विभक्ति परे रहनेसे, 'र्' नहीं होता, यथा—अहः+पतिः=अहर्पति §। अहः+रूपम्=

---

* 'र'-प्रकृतिरनामिपरो [घोषवत्-स्वर-परो रम्]। ('र'-प्रकृतिर्विसर्जनीयोऽनामिन परो घोषवत्-स्वर-परो रम् आपद्यते।)

† ८२ और ८३ सूत्रोंके अनुसार जो 'र्' होता है।

‡ रो रे लोपम्—स्वरश्च पूर्वो दीर्घः। (रो रे परे लोपमापद्यते—स्वरश्च पूर्वो दीर्घो भवति।)

§ अहस्पति, अहःपति—ऐसेभी होते हैं।

अहोरूपम् , ('क' परे) अहः + कर = अहस्कर , (विभक्ति परे) अहः + भि = अहोभि ।

सन्धि करो—अहः + रथन्तरम्, अह + भ्य ।

विच्छेद करो—अहोरात्रम् ।

शुद्ध करो—अहोगण', अहर्म्याम् ।

* * * *

८६ । समासमे—कृ और कम् धातु निष्पन्न पद (कार, कर, काम, कान्त), और कुम्भ तथा पात्र शब्द परे रहनेसे, अव्यय भिन्न अकारके परस्थित विसर्गके स्थानमे दन्त्य स् होता है, यथा—अय + कार. = अयस्कार , श्रेय + कर = श्रेयस्कर , मन + काम = मनस्काम , अय. + कान्त. = अयस्कान्त , पय + कुम्भ = पयस्कुम्भ , पय + पात्रम् = पयस्पात्रम् ।

८७ । क ख, प फ परे रहनेसे, 'नम' और 'पुर' शब्दके विसर्गके स्थानमे दन्त्य स् होता है , यथा —नम + कार = नमस्कार , पुर + कार' = पुरस्कार , पुर + करोति = पुरस्करोति ।

८८ । क ख, प फ परे रहनेसे, 'तिर'-शब्दके विसर्गके स्थानमे विकल्पसे दन्त्य स् होता है , यथा—तिर + करोति = तिरस्करोति, तिर करोति ।

८९ । पाश, कल्प, क और काम्य प्रत्यय परे रहनेसे, विसर्गके स्थानमे दन्त्य स् होता है; यथा—अयस्पाशम्, यशस्कल्पम्, यशस्कम्, यशस्काम्यति । किन्तु अव्ययके विसर्गके स्थानमे 'स्' नहीं होता, यथा—प्रात कल्पम् ।

१०। पाशादि परे रहनेसे, इवर्ण और उवर्णके परस्थित विसर्गके स्थानमें मूर्द्धन्य ष् होता है, यथा सर्पिष्पाशम्, सर्पिष्काम्यति।

११। क ख, प फ परे रहनेसे, इकार और उकारोपध अव्यय* शब्दके विसर्गके स्थानमें मूर्द्धन्य ष् होता है, यथा—निः + प्रत्यूहम् = निष्प्रत्यूहम्, आविः + कृतम् = आविष्कृतम्, बहिः + करणम् = बहिष्करणम्, दुः + कृतम् = दुष्कृतम्।

१२। क ख, प फ परे रहनेसे, 'इस्' और 'उस्'-भागान्त शब्दके विसर्गके स्थानमें विकल्पसे मूर्द्धन्य ष् होता है, यथा—सर्पिः + करोति = सर्पिष्करोति, सर्पिः करोति, धनुष्करोति, धनुः करोति।

१३। समासमें—क ख, प फ परे रहनेसे, 'इस्' और 'उस्' भागान्त शब्दके विसर्गके स्थानमें नित्य मूर्द्धन्य ष् होता है, यथा—हविः + कुण्डम् = हविष्कुण्डम्, धनुः + खण्डम् = धनुष्खण्डम्, धनुष्पाणि।

(विसर्ग और स्वरमें)

[अः + अ]

१४। अकार परे रहनेसे, अकारके परस्थित विसर्ग पूर्ववर्त्ती अकारके साथ मिलके 'ओ' होता है, और परवर्त्ती अकारका लोप होता है, लुप्त अकारका चिह्न (ऽ) रहता है,† यथा—

अः + अ = ओऽ—नरः + अयम् = नरोऽयम्।

सन्धि करो—सः + अनुजः, देवः + अयम्, वेदः + अधीतः।

---

* इकार और उकारोपध अव्यय—निः, आविः, बहिः, दुः, प्रादुः।

† उभयत्रोयोर्मध्ये। (इयोरकारयोर्मध्ये विसर्जनीय उत्पद्यते।)

विश्लेष करो—तीक्ष्णोऽङ्कुश, ज्वलितोऽङ्गार ।

[अ + 'अ' भिन्न स्वरवर्ण]

९५ । अकार भिन्न स्वरवर्ण परे रहनेसे, अकारके परस्थित विसर्गका लोप होता है, लोप होनेसे फिर सन्धि नहीं होती,* यथा—

अः + आ = अ आ—कुतः + आगतः = कुत आगतः ।

सन्धि करो—नरः + इव, राज्ञः + औदार्य्यम् ।

[आः + स्वरवर्ण]

९६ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, आकारके परस्थित विसर्गका लोप होता है, लोप होनेसे फिर सन्धि नहीं होती,† यथा—

आः + अ = आ अ—देवाः + अत्र = देवा अत्र ।

सन्धि करो—छात्राः + आगताः, आगताः + ऋषयः ।

विश्लेष करो—अश्वा उद्धता, गजा इमे, तारा उदिता ।

शुद्ध करो—मासातीता, बालकेमे ।

[इः ई उ ऊः ऋः एः ऐः ओः औः + स्वरवर्ण]

९७ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, अ आ भिन्न स्वरवर्णके पर-

---

* 'अः'-परो लोप्योऽन्यस्वरे । (अकारात् परो विसर्जनीयो लोप्यो भवति, उकारादन्यस्वरे ।) न विसर्जनीयलोपे पुनः सन्धिः ।

† आ-भोभ्यामेवमेव स्वरे । (आकार-भो-शब्दाभ्यां परो विसर्जनीय एवमेव भवति, स्वरे परे ।)

स्थित विसर्गके स्थानमें 'र्' होता है, *यथा—

ि + अ = इर् + अ—हरिः + अयम् = हरिरयम् ।

सन्धि करो—गति + इयम्, धनु + आनीताम्, सखी + एष ।

विश्लेष करो—हविरिदम्, रश्मीरेषा ।

शुद्ध करो—धी एषा ।

'र्'-जात ः + स्वरवर्ण

६८ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'र्' जात विसर्गके स्थानमें 'र्' होता है † यथा

ः + आ = रा—स्वः + आलयः = स्वरालयः ।

सन्धि करो—पुनः + अपि, अन्तः + अङ्गम्, प्रातः + एव ।

विश्लेष करो—निरन्तरम्, दुराचार, पुनरेति ।

शुद्ध करो—भ्रातो याहि, पितोऽनुयातोहि ।

* * * *

६९ । निपातन सन्धि ।—मनीषा-प्रभृति शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं,‡ यथा—

मन + ईषा = मनीषा, कुल + अटा = कुलटा, सीम + अन्तः = सीमन्त (केशवीथी); सार + अङ्ग = सारङ्ग; पतत् + अञ्जलिः = पतञ्जलिः; गो + यूतिः = गव्यूति (दो कोस), आ + चर्यम् =

---

* नामिपरो घोषवत्-स्वर-परो रम् ।

† 'र'-प्रकृतिर्घोषवत्-स्वर-परो रम् ।

‡ जो शब्द प्रयोगमें आते हैं, पर च उनके साधनके सूत्र नहीं हैं, उन्हें 'निपातन-सिद्ध' कहते हैं ।

आश्चर्य्यम् , हरि + चन्द्र = हरिश्चन्द्र , आ + पदम् = आस्पदम् , गो + पदम् = गोष्पदम् , वन + पति = वनस्पति , वृहत् + पति = वृहस्पति , तत् + कर = तस्कर , प्राय + चित्तम् = प्रायश्चित्तम् , अन्य + अन्यम् = अन्योन्यम् , पर + परम् = परस्परम् , पर + शतम् = पर शतम् , पर + सहस्रम् = पर सहस्रम्* ; भुव + लोक = भुवर्लोक , पश्चात् + अर्द्धम् = पश्चार्द्धम् , षट् + दश = षोडश , पर + परा = परम्परा , मध्य + दिनम् = मध्यन्दिनम् , रात्रि + दिवम् = रात्रिन्दिवम् , पुर + धर = पुरन्धर इत्यादि ।

सन्धि-निर्घएट ।

अ, आ + अ, आ = आ (१३ सूत्र) ।

अ, आ + इ, ई = ए (१४ सू) ।

अ, आ + उ, ऊ = ओ (१५ सू) ।

अ, आ + ऋ = अर् (१६ सू) ।

अ, आ + ए, ऐ = ऐ (१७ सू) ।

अ, आ + ओ, औ = औ (१८ सू) ।

इ, ई + इ, ई = ई (१९ सू) ।

इ, ई + इ ई भिन्न स्वरवर्ण = इ ई के स्थानमें य् (२० सू) ।

---

* 'आश्चर्य्य'-प्रभृति पदोंमें सुट् (स्) आगम होता है ।

उ, ऊ + उ, ऊ = ऊ (२१ सू)।

उ, ऊ + उ ऊ भिन्न स्वरवर्ण = उ ऊ के स्थानमे व् (२२ सू)।

ऋ + ऋ = ॠ (२३ सू)।

ऋ + ऋ भिन्न स्वरवर्ण = ऋ के स्थानमे र् (२४ सू)।

ए + स्वरवर्ण = ए के स्थानमे अय् (२५ सू)।

ऐ + स्वरवर्ण = ऐ के स्थानमे आय् (२६ सू)।

ओ + स्वरवर्ण = ओ के स्थानमे अव् (२७ सू)।

औ + स्वरवर्ण = औ के स्थानमे आव् (२८ सू)।

[ए ओ पदान्त + अ = अकारका लोप, लुप्तअकारका चिह्न (२९सू)।]

ए पदान्त + 'अ' भिन्न स्वरवर्ण = 'अय्'के यकारका विकल्पसे लोप (३० सू)।

ऐ पदान्त + स्वरवर्ण = 'आय्'के यकारका विकल्पसे लोप (३२ सू)।

ओ पदान्त + 'अ' भिन्न स्वरवर्ण = 'अव्'के वकारका विकल्पसे लोप (३१ सू)।

औ पदान्त + स्वरवर्ण = 'आव्'के वकारका विकल्पसे लोप (३३सू)।

स्वरवर्ण + छ = छ के स्थानमे च्छ (६८ सू)।

क् + स्वरवर्ण = क् के स्थानमे ग् (६६ सू)।

क् + ३य, ४र्थ वर्ण, य र ल व ह = क् के स्थानमे ग् (८८ सू)।

क् + ५म वर्ण = क् के स्थानमे ग् या ङ् (८९ सू)।

क्+श=क्श वा क्छ (५० सू)।

च्, ज्+न=न के स्थानमे ञ (५१ सू)।

ट्+स्वरवर्ण=ट् के स्थानमे ड् (६६ सू)।
ट्+३य, ४र्थ वर्ण, य र ल व ह=ट् के स्थानमे ड (४८ सू)।
ट्+५म वर्ण=ट् के स्थानमे ड् वा ण् (४९ सू)।

त्+स्वरवर्ण=त् के स्थानमे द् (६६ सू)।
त्+ग, घ=त् के स्थानमे द् (४८ सू)।
त्+च, छ=त् के स्थानमे च् (५२ सू)।
त्+ज, झ=त् के स्थानमे ज् (५२ सू)।
त्+ट, ठ=त् के स्थानमे ट् (५२ सू)।
त्+ड, ढ=त् के स्थानमे ड् (५२ सू)।
त्+द, ध=त् के स्थानमे द् (४८ सू)।
त्+न=त के स्थानमे द् वा न् (४९ सू)।
त्+ब, भ=त् के स्थानमे द् (४८ सू)।
त्+म=त् के स्थानमे द् वा न् (४९ सू)।
त्+य, र=त् के स्थानमे द् (४८ सू)।
त्+ल=त् के स्थानमे ल् (५३ सू)।
त्+व=त् के स्थानमे द् (४८ सू)।
त्+श=च्श वा च्छ (५० सू)।

द्+ह=द्ध वा द्ह (४४ सू)।

न्+स्वरवर्ण=नकारका द्वित्व (५७ सू)।

न्+च=ंश्च (५५ सू)।

न्+छ=ंश्छ (५५ सू)।

न्+ज=ञ्ज (५८ सू)।

न्+झ=ञ्झ (५८ सू)।

न्+ट=ंष्ट (५५ सू)।

न्+ठ=ंष्ठ (५५ सू)।

न्+ड=ण्ड (५९ सू)।

न्+ढ=ण्ढ (५९ सू)।

न्+त=ंस्त (५७ सू)।

न्+थ=ंस्थ (५७ सू)।

न्+ल=ँल्ल (६० सू)।

न्+श=ञ्छ (६१ सू)।

प्+स्वरवर्ण=प् के स्थानमें ब् (४६ सू)।

प्+३ य, ४ र्थ वर्ग, य र ल व ह=प् के स्थानमें ब् (४८ सू)

प्+५म वर्ण=प् के स्थानमें ब् वा म् (४९ सू)।

म्+वर्गीयवर्ण=म् के स्थानमें अनुस्वार वा पञ्चम वर्ण (६२ सू)।

म्+अन्तःस्थ, ऊष्मवर्ण=म् के स्थानमें अनुस्वार (६३ सू)।

ष्+त=ष्ट (६६ सू)।

ष्+थ=ष्ठ (६६ सू)।

ः+क=स्क (७४ सू)।

ः+ख=स्ख (७४ सू)।

ः+च=श्च (७५ सू)।

ः+छ=श्छ (७५ सू)।

ः+ट=ष्ट (७६ सू)।

ः+ठ=ष्ठ (७६ सू)।

ः+त=स्त (७७ सू)।

ः+थ=स्थ (७७ सू)।

अः+अ=ओऽ (९४ सू)।

अः+अकार भिन्न स्वरवर्ण=विसर्गका लोप (९५ सू)।

अः+३य, ४र्थ, ५म वर्ण, य र ल व ह=अः के स्थानमे ओ (७९ सू)।

सः, एषः+अ=सोऽ, एषोऽ (९४ सू)।

सः, एषः+अकार-भिन्न स्वरवर्ण=विसर्गका लोप (९५ सू)।

सः, एषः+व्यञ्जनवर्ण=विसर्गका लोप (८० सू)।

आः+स्वरवर्ण=विसर्गका लोप (९६ सू)।

आः+३य, ४र्थ, ५म वर्ण, य र ल व ह=विसर्गका लोप (८१ सू)।

इः, ईः, उः, ऊः, ऋः, एः, ऐः, ओः, औः+स्वरवर्ण=विसर्गके

स्थानमें र् (९० सू) ।

इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ + ३य, ४र्थ, ५म वर्ग य ल व ह = विसर्गके स्थानमें र् (८२ सू) ।

इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ + र = विसर्गके स्थानमें र, रकारका लोप और पूर्वस्वर दीर्घ (८३, ८४ सू) ।

'र्' जात विसर्ग + स्वरवर्ण = विसर्गके स्थानमें र् (९८ सू) ।

" + ३य, ४र्थ, ५म वर्ण, य ल व ह = विसर्गके स्थानमें र् (८३ सू) ।

" + च = श्च (७५ सू) ।

" + छ = श्छ (७५ सू) ।

" + ट = ष्ट (७६ सू) ।

" + ठ = ष्ठ (७६ सू) ।

" + त = स्त (७७ सू) ।

" + थ = स्थ (७७ सू) ।

" + र = विसर्गके स्थानमें र्, रकारका लोप और पूर्वस्वर दीर्घ (८३, ८४ सू) ।

सन्धि-प्रश्नमाला ।

क । (१) अकारसे परे अकार रहनेसे क्या होता है ? (२) अकारसे परे उकार रहनेसे क्या होता है ? (३) अकारसे परे एकार रहनेसे क्या होता है ? (४) अकारसे परे औकार रहनेसे क्या होता है ? (५) इकारसे

परे इकार रहनेसे क्या होता है ? (६) उकारसे परे उकार रहनेसे क्या होता है ? (७) उकारसे पर ऋकार रहनेसे क्या होता है ? (८) ऋकारसे परे ऋकार रहनेसे क्या होता है ? (९) ऋकारसे पर ओकार रहनेसे क्या होता है ? (१०) एकारसे परे एकार रहनेसे क्या होता है ? (११) एकारसे परे अकार रहनेसे क्या होता है ? (१२) ऐकारसे पर एकार रहनेसे क्या होता है ? (१३) ऐकारसे परे अकार रहनेसे क्या होता है ? (१४) ओकारसे परे ओकार रहनेसे क्या होता है ? (१५) ओकारसे परे उकार रहनेसे क्या होता है ? (१६) औकारसे परे औकार रहनेसे क्या होता है ?

ख। सन्धि करो—विद्या + पुत्र, ते + आहु, बन्धु + आदर, सुन्दर + उद्यानम्, मुनि + ऋषी, कौ + एतौ, सर्वे + उपरि, लो + इत्रम्, एहि + एहि, सा + इयम्, मुनि + ईश्वर, गिरि + अग्रे, सा + एव, पितृ + उक्ति, मातृ + आज्ञा, नौ + उपरि, चारु + अङ्कम्, बहु + आरम्भ ।

ग। (१) 'क्'से परे 'ग' रहनेसे क्या होता है? (२) 'क्'से परे 'म' रहनेसे क्या होता है ? (३) 'त्'से परे 'न' रहनेसे क्या होता है ? (४) 'त्'से परे 'च' रहनेसे क्या होता है ? (५) 'त्'से परे 'श' रहनेसे क्या होता है ? (६) 'त्'से परे 'ल' रहनेसे क्या होता है ? (७) 'त्'से परे 'ह' रहनेसे क्या होता है ? (८) 'न्'से परे 'त' रहनेसे क्या होता है ? (९) 'न्'से परे 'ल' रहनेसे क्या होता है ? (१०) विसर्गसे ( ) परे 'च' रहनेसे क्या होता है ? (११) 'अः'से परे 'अ' रहनेसे क्या होता है ? (१२) 'इः'से परे 'र' रहनेसे क्या होता है ?

घ। सन्धि करो—धिक् + ऋणकारिणम्, प्राक् + घनोदय, स + अयम्, महान् + अथ, तत् + एव, स + गति, पुन + रमते, गृह +

छिद्रम्, त्रिउ+सज्जते, तद्+आलि, भास्वान्+हसति, मुनि+ऋषि, तद्+याति, महान्+शत्रुगुरु, म+स, विलसन्+उदेति, तद्+नामन्।

६। सन्धि विच्छेद करो—कन्द्राकौं, उच्छ्वसितम्, छित्यम्मल्लुब्धो-भाति, सर्व एव, तद्वीक्षितम्, तन्नाम्, तच्छ्यामलम्, सामांशवृत्ति, गा रव, वल्मिस्तुष्टे, शिवेव, वाङ्मये, भविन्नत्र, यन्मूर्द्धि, पायाद्वायाच्चिद्व।

णत्व-विधान।

१००। ऋ ॠ र् ष्—इन चार वर्णोंके परस्थित दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य 'ण' होता है, यथा—

ऋ+न=ऋण—नृ+नम्=नृणम्।

ॠ+न=ॠण—पितृ+नाम्=पितॄणाम्।

र्+न=र्ण—पूर्+नम्=पूर्णम्।

ष्+न=ष्ण—कृष्+न=कृष्णः।

(क) स्वरवर्ण, कवर्ग, पवर्ग, य व ह और अनुस्वारका व्यवधान* रहनेसेभी दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य 'ण' होता है†, यथा—

* पहले ऋ ॠ र् वा ष्, पीछे 'न', और इनके बीचमें स्वरवर्ण-प्रभृति रहनेको 'व्यवधान' कहते हैं।

† इनको छोड़ अन्य वर्णका व्यवधान रहनेसे दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—किर्+(इ+ट+ए)+न=किरिटेन, आर्तेन, विरलेन, सर्पेन।

मूर्+(ख्+ए)+न=मूर्खेण।

दर्+(प्+ए)+न=दर्पेण।

र्+(अ+घ्+ए)+न=रघेण।

गर्+(व्+ए)+न=गर्वेण।

बृ+(ं+ह्+अ)+णम्=बृंहणम्।

(ख) पदके अन्तमें स्थित (व्यञ्जनान्त) 'न्' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—नर्+(आ)+न्=नरान्, पितृ+न्=पितॄन्; वृक्ष्+(आ)+न्=वृक्षान्*।

(ग) त थ द ध प और भ-युक्त दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—कृ+(न्त)+नम्=कृन्तनम्। तृ+(प्नो)+ति=तृप्नोति। ग्र+(न्थ)+नम्=ग्रन्थनम्। क्षु+(भ्ना)+ति=क्षुभ्नाति। क्र+(न्द)+नम्=क्रन्दनम्। र+(न्ध)+नम्=रन्धनम्।

(घ) एक पदमें ऋ ॠ र् ष्, और अन्य पदमें 'न' रहनेसे, मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—नृ+यानम्=नृयानम्, त्रि+नेत्र=त्रिनेत्र, सर्व+नाम=सर्वनाम, क्षुद्रा+अङ्गनम्+क्षुद्राङ्गनम्, नर+नाथ=नरनाथ, चारु+नेत्रा=चारुनेत्रा, भृङ्ग+नाद=भृङ्गनाद†।

(ङ) किन्तु परपदमें यदि समासके पश्चात् विभक्तिके स्थानमें जात

---

* जिनके उत्तर 'मात्र' और 'मयट्' प्रत्यय होते हैं, वे पदमें गण्य, इसलिये 'सुहृन्मात्र', 'मृन्मय' इत्यादिस्थलोंमें मूर्द्धन्य 'ण्' नहीं होगा।

† रषुवर्णेभ्यो नो णमनन्त्य-स्वर-ह-य-व-कवर्ग-पवर्गान्तरोऽपि [समानपदे]। (रेफ-षकार-ऋवर्णेभ्य परोऽनन्त्यो नकारो णमापद्यते, स्वर-ह-य-व-कवर्ग-पवर्गैर्व्यवहितोऽपि।)

'न', अथवा विभक्तियुक्त वा 'ईप्' प्रत्ययसे मिलित नकारान्त शब्दका 'न' रहे, तो विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है, यथा—(विभक्तिके स्थानमें जात 'न') प्र + भाव + (टा = इन) = प्रभावेण, प्रभावेन, (विभक्तियुक्त 'न') हरि + भाविन्* + (टा = आ) = हरिभाविणा, हरिभाविना, ('ईप्'-प्रत्ययमिलित 'न') हरि + भाविन् + ई = हरिभाविणी, हरिभाविनी† ।

(ख) परपदका उस प्रकार 'न' यदि एकस्वरविशिष्ट अथवा कवर्ग-युक्त शब्दके उत्तर रहे तो निश्चयही मूर्द्धन्य होता है, यथा—(एकस्वर) प्र + भु + ना = प्रभुणा (कवर्ग) श्री + कान + इन = श्रीकानेण, नगर + गामिन् + ई = नगरगामिणी ।

(ग) परन्तु पक्व, युवन् और अहन् शब्दका नहीं होता; यथा—परिपक्वेन, क्षत्रिययूना, दीर्घाह्ना ।

* * * * *

१०१ । टवर्गके पूर्वस्थित 'न'—ऋ, र् और ष्, इनके परस्थित न होनेसेभी मूर्द्धन्य होता है, यथा—कण्टक, कण्ठ, दण्ड, तुण्डि ।

१०२ । दो या तीन स्वरवाले वृक्षवाचक और ओषधिवाचक‡ शब्द-

---

* हरिं भावयति य = हरिभाविन् ।

† हरिं भावयति या सा हरिभाविनी ॥ 'स्वर्गगामिन—स्वर्गगामिन'—इस स्थलमें समाससे पहलेही 'न' विभक्तियुक्त होनेसे, मूर्द्धन्य नहीं हुआ । 'हरे कामिनी—हरिकामिनी'—इस स्थलमभी समाससे पूर्वही 'न' ईप्-प्रत्ययमें मिलनेसे, मूर्द्धन्य नहीं हुआ ।

‡ फल पक जानेसे जिन वृक्षादिकोंका नाश हो जाता है, उन्हें 'ओषधि' कहते हैं ।—ओषध्य फलपाकान्ता ।"

के परवर्ती 'वन'-शब्दका दन्त्य 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है । यथा—(द्विस्वर) लोध्रवणम्, लोध्रवनम् । (त्रि-स्वर) मन्दारवणम्, मन्दारवनम्; बदरीवणम्, बदरीवनम् । (ओषधि) रम्भावणम्, रम्भावनम्; नीवारवणम्, नीवारवनम् इत्यादि ।

किन्तु अग्रे, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र और खदिर शब्दके परवर्ती, तथा प्र, निर् और अन्तर्—इन अव्ययोंके परवर्ती 'वन' शब्दका दन्त्य 'न' नित्य मूर्द्धन्य होता है, यथा—अग्रेवणम्, शरवणम्, इक्षुवणम्, प्लक्षवणम्, आम्रवणम्, खदिरवणम्, प्रवणम्, निर्वणम्, अन्तर्वणम् ।

१०३ । अन्यपदस्थित 'र'-प्रभृतिके परवर्ती 'पान'-शब्दका दन्त्य 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है, यथा—क्षीरपाणम्, क्षीरपानम्, विषपाणम्, विषपानम् ।

(क) पूर्वपदके अन्तमें मूर्द्धन्य 'ष' रहनेसे, परपदवर्त्ती दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—निष्पानम्, दुष्पानम्, हविष्पानम्, निष्कामेन, निष्कामानाम्, आयुष्कामेन ।

१०४ । प्र, पूर्व, अपर प्रभृति शब्दोंके परवर्ती 'अह्न'-शब्दका,—पर, पार, उत्तर, राम, चान्द्र और नार शब्दके परवर्ती 'अयन'-शब्दका,—तथा अग्र और ग्राम शब्दके परवर्ती 'नी'-शब्दका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है; यथा-(अह्न) प्राह्ण, पूर्वाह्ण, अपराह्ण, (अयन) परायणम्, पारायणम्, उत्तरायणम्, रामायणम्, चान्द्रायणम्, नारायण, (नी) अग्रणी॰, ग्रामणी॰ ।

१०५ । वयस् (उम्र) अर्थ समझानेसे त्रि और चतुर् शब्दके परवर्त्ती 'हायन'-शब्दका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है; यथा—त्रिहायणो वत्स,

चतुर्हायणी गौ ।

१०६। 'शूर्प'-शब्दके परवर्ती 'नखा'-शब्दका,—तथा प्र, दुर्, खर और वार्ध्री शब्दके परवर्ती 'नस' शब्दका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है, यथा—शूर्पणखा, प्रणस, दुर्णस, खरणस, वार्ध्रीणस ।

१०७। गिरिनदी-प्रभृतिका दन्त्य 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है। यथा—गिरिणदी, गिरिनदी, स्वर्णदी, स्वर्नदी, गिरिणितम्ब, गिरिनितम्ब, गिरिणद्धम्, गिरिनद्धम् ।

स्वाभाविक णत्व ।

कङ्कण किङ्किणी कोण कणिका काकिणी कण ।
कल्याण कुणप काण कफोणिर्निक्वण रिङ्कण ॥
निक्वाणो निक्वण क्वाणो लावण्य गणिका गण ।
मत्कुण शोणित शोण पण्य पुण्य पणो मणि ॥
वाणिज्य विपणि शाणो वणिगापण उल्वण ।
वाणो वीणा गुणो वेणुस्तूण स्थाणु फणा फणी ॥
पणवो लवणो गोणी चणकोऽप्युल्वण घुणि ।
माणिक्य पक्वणो वेणी पाणिरेणस्तथैव च ॥
भाणो वाणी—स्वतो ह्येते शब्दा णत्व प्रपेदिरे ॥

प्रश्नमाला ।

(१) किस किस वर्णसे दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य 'ण' होता है? (२) 'रचना'—इस पदमें दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य क्यों नहीं हुआ? और 'दोषेण'—यहाँ मूर्द्धन्य 'ण' क्यों हुआ? (३) सूत्रनिर्देश पूर्वक शुद्धाशुद्धि निर्णय करो—अर्चेना, मर्द्दन, रोदण, दुर्नेन, अर्थेण, रसेन, सूरेण, कारणम्, करि-

ना । (४) 'भ्रान्ति'—इस स्थानमें मूर्द्धन्य 'ण' क्यों नहीं हुआ ? (५) 'विपरायिणी' और 'प्रमावानाम्'—ये दोनो पद शुद्ध हैं, या नहीं ? शुद्ध होनेसे, क्यों शुद्ध,—बतलाओ । (६) सूत्रनिर्देशपूर्वक पदोंकी शुद्धाशुद्धि निर्णय करो—गृह्णाण, क्रियमन, वृत्रघ्नी, दोषभागिनी, दुर्गमेन, अन्तर्भावेन, तृपाण् ।

षत्व-विधान ।

१०८ । अ आ भिन्न स्वरवर्ण, क और र्-इनके परस्थित प्रत्ययका* दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य 'ष' होता है, यथा—

इ+सु=इ+षु—मुनि+सु=मुनिषु ।

र्+सु=र्षु—चतुर्+सु=चतुर्षु ।

क्+सु=क्षु—वाक्+सु=वाक्षु ।

(क) अनुस्वार और विसर्गका व्यवधान रहनेसेभी, दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—

ऊ+(ं)+सि=ऊंषि-धनू+(ं)+सि=धनूंषि ।

उ+(ः)+सु=उःषु-आयु+(ः)+सु=आयुःषु† ।

---

* प्रश्न । 'पुंसु'-इस पदमें मूर्द्धन्य 'ष' क्यों नहीं हुआ ? (५८ पृष्ठ देखो)

* प्रत्ययसे आदेश और आगमकाभी ग्रहण करना चाहिये ।

† नामि-क-र-पर प्रत्ययविकारागमस्थ सि ष नु-विसर्जनीय-षान्तरोऽपि ।-(नामि-क-रेभ्य पर प्रत्ययविकारागमस्थोऽनन्त्य सि षत्वमापद्यते, नु-विसर्जनीय-षान्तर, 'अपि'-शब्दादनन्तरोऽपि ।)

किन्तु क्लीवलिङ्ग शब्दकी प्रथमा और द्वितीयाके बहुवचनका अनुस्वार छोडकर अन्य अनुस्वारके व्यवधानसे नहीं होता, यथा-पुंस, पुंसा ।

([redacted]) 'सात्' प्रत्ययका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—अक्रिसात्, नदीसात् ।

* * * *

१०९ । टवर्गके पूर्वस्थित दन्त्य 'स' प्राय मूर्द्धन्य होता है ; यथा-कष्टम्, दुष्ट ।

११० । सु, वि, निर् और दुर् उपसर्गके परवर्ती 'सम' शब्दका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—सुषम, विषम, निःषम, दुःषम. ।

१११ । समासमें—अम्ब, गो, भूमि, अङ्गु, दिवि, द्वि, त्रि और अग्नि शब्दके परवर्ती 'स्थ' शब्दका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—अम्बष्ठ, गोष्ठम्, भूमिष्ठ, अङ्गुष्ठ, दिविष्ठ, द्विष्ठ, त्रिष्ठ, अग्निष्ठ ।

११२ । समासमें—मातृ और पितृ शब्दके परवर्ती 'स्वसृ'-शब्दका प्रथम दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—मातृष्वसा, पितृष्वसा। विभक्ति रहनेसे विकल्पसे, यथा—मातुः ष्वसा, मातुः स्वसा, पितुः-ष्वसा, पितुः स्वसा । समास न होनेसे नहीं होता, यथा—मातुः स्वसा, पितुः स्वसा ।

११३ । 'युधि' शब्दके परवर्ती 'स्थिर' शब्दका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—युधिष्ठिर ।

प्रश्न । कारणनिर्देश-पूर्वक शुद्धाशुद्ध निर्णय करो-नेसु, अह षु, अनैषीत्, पतिषात्, नौषु, दिक्षु, भातृषु, हवींषि, नदीषु ।

११४ । समासमें—'अङ्गुलि'-शब्दके परवर्ती 'सङ्ग'-शब्दका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—अङ्गुलिषङ्ग (यवागू)।

स्वाभाविक षत्व ।

ईषत् कोष इषुर्योषिद्भूषण विषमौषधि ।
उत्कर्षो वर्षण हर्ष, षोडश षण्ड ऊषरम् ॥
अमर्षो दूषण श्लेषो दोषो द्वेष षडानन ।
षत्व पुरुष श्लेष्मा पुष्प भीष्मो विशेषणम् ॥
विषयो मूषिको मेषो महिषो घोषणा वृष ।
वर्षा विश्लेष्य भाषोष्मा पौष आषाढ औषधम् ॥
प्रदोष सर्षप प्रेष्यस्तोषण पोषण भिषक् ।
भीषणं शोषणं शेष, कषाय कलुष तुष ॥
अभिलाष ऋषिर्मीष्मो निमेषो निकषाऽऽमिषम् ।
वर्षा तुषार पाषाण काषायश्च तत परम् ॥
गण्डूष कल्मष शष्प—स्वत षत्वमिमे गता ।

साधारण-संज्ञा ।

---

११५ । शब्द—एक वा उससे अधिक वर्ण लेकर एक एक शब्द घटित होता है । यथा—(एकवर्ण) अ (विष्णु)। (अधिक वर्ण) ह्+अ+र्+इ=हरि, र्+आ+म्+अ=राम ।

धातु और प्रत्यय* भिन्न अर्थयुक्त (वस्तुवाचक अथवा विशेषणवाचक) जो शब्द, उसे 'प्रातिपदिक वा नाम' कहते हैं, यथा—(वस्तुवाचक) घट, पट, तरु, लता , (विशेषण वाचक) उत्तम, अधम, सुन्दर ।

(क) समासनिष्पन्न, कृत्प्रत्ययान्त, तद्धितप्रत्ययान्त और स्त्री-प्रत्ययान्त होनेसे प्रातिपदिक वा शब्द होता है ।

Parts of Speech

११६ । पद—विभक्तियुक्त शब्द (प्रातिपदिक) और धातुको—अर्थात् शब्दरूप और धातुरूपको—'पद' कहते हैं , यथा—राम + सु = रामः , भू + ति = भवति ,—ये दोनो पद हैं ।

पद दो-प्रकार—(१)सुबन्त और (२) तिङन्त । पद न होनेसे भाषामें प्रयोग नहीं होता ।

Noun

११७ । विशेष्य—जिससे वस्तु, व्यक्ति, जाति, गुण या

---

* भू (होना), स्था (रहना) प्रभृति क्रियावाचकोंको 'धातु' कहते हैं । शब्द और धातुको 'प्रकृति' कहते हैं । प्रकृतिके उत्तर अर्थविशेषमें जो होता है, उसका नाम 'प्रत्यय' । प्रत्यय पाँच-प्रकार—(१) सुप्, (२) तिङ्, (३) कृत्, (४) तद्धित और (५) स्त्रीप्रत्यय । इनके बावमें सुप् और तिङ्-प्रत्ययको 'विभक्ति' कहते हैं ।

शब्द और धातुके उत्तर कई प्रत्यय होनेसे, समुदायमें धातु होता है , उन प्रत्ययोंको 'धात्ववयव' कहते हैं । (प्रत्ययान्त धातु द्रष्टव्य) ।

क्रियाका बोध होता है, उसे 'विशेष्य' कहते हैं । विशेष्य पाँच-प्रकार, यथा—

(१) वस्तुवाचक (Material)—जलम्, प्रस्तरः, घटः, मठः ।

(२) व्यक्तिवाचक (Proper)—राम, हिमालय, गङ्गा, भारतवर्षम् ।

(३) जातिवाचक (Common)—मनुष्यः, पशु, पक्षी, कीटः ।

(४) गुणवाचक (Abstract)—मनुजता, साधुता, मृदुता, धैर्य्यम् ।

(५) क्रियावाचक (Verbal)—गमनम्, भोजनम्, दर्शनम्, श्रवणम् ।

Adjective

११८। विशेषण—जिससे अन्य पदके गुण या दोष, सङ्ख्या और अवस्थादि प्रकाशित होते हैं, उसे 'विशेषण' कहते हैं ।

विशेषण तीन प्रकार-(१) विशेष्यका विशेषण, (२) विशेषणका विशेषण और (३) क्रियाका विशेषण ।

(१) जिस पदसे विशेष्यके गुण, अवस्था, आकार, वर्ण, सङ्ख्यादि प्रकाशित होते हैं, उसे 'विशेष्यका विशेषण' कहते हैं ; यथा—(गुण) सुन्दरः बालक, दुष्ट मनुष्य, (अवस्था) सन्निहित देहः, (आकार) विशालः तरुः, (वर्ण) नीलं

नभः, शुक्ल वसनम्, (सङ्ख्या) एकं फलम्, पञ्चमः पाठः ।

(क) विशेष्य और विशेषणके लिङ्ग, विभक्ति और वचन समान होते हैं,* यथा—सुन्दरः बालकः, सुन्दरौ बालकौ, सुन्दराः बालकाः, सुन्दरम् बालकम् इत्यादि, सुन्दरी बालिका, सुन्दर्यौ बालिके, सुन्दर्यः बालिकाः, सुन्दरीम् बालिकाम् इत्यादि, सुन्दरम् पुष्पम्, सुन्दरे पुष्पे, सुन्दराणि पुष्पाणि ।

(ख) जो शब्द नियतलिङ्ग वा अजहल्लिङ्ग (अर्थात् नित्यपुंलिङ्ग नित्य स्त्रीलिङ्ग वा नित्यक्लीबलिङ्ग), व विशेषण होनेसे लिङ्गका परिवर्त्तन नहीं होता, यथा—आदि कृत्यम्, वाल्मीके कृति रामायणम्, जगत कारण विभु ।

(२) जिस पदसे विशेषणके अर्थको वर्द्धित अथवा सङ्कोचित किया जाता है (बढ़ाया वा घटाया जाता है), उसे 'विशेषणका विशेषण' (Adverb) कहते हैं, यथा—अति सुन्दरः, अति मन्दः, अत्यन्तं कोमलम्, नितान्तं क्षुद्रम्, अतिशय महत् ।

(३) जिस पदसे क्रियाके गुण, अवस्थादि प्रकाशित होते हैं, उसे 'क्रियाका विशेषण' (Adverb) कहते हैं, यथा-मधुरं हसति, सत्वर धाव, शीघ्र देहि ।

Pronoun.

११९। सर्वनाम—जो सब नाम अर्थात् विशेष्यके बदले

* विशेष्येषु हि यल्लिङ्ग, विभक्ति-वचने च ये ।
तानि सर्वाणि योज्यानि विशेषणपदेष्वपि ॥

व्यवहृत होता है, ऐसे 'सर्व' प्रभृति शब्दको 'सर्वनाम' कहते हैं ।

रूपके वैलक्षण्यानुसार सर्वनाम शब्द पाँच भागोमे विभक्त, यथा—

(१) सर्वादि—सर्व, विश्व, उभ, उभय, एक, एकतर, सम, सिम, नेम ।

(२) अन्यादि—अन्य, अन्यतर, इतर, कतर, कतम, यतर, यतम, ततर, ततम, एकतम ।

(३) पूर्वादि—पूर्व, पर, अपर, अवर, अधर, दक्षिण, उत्तर, अन्तर, स्व ।

(४) यदादि—यद्, तद्, त्यद्,* एतद्, किम् ।

(५) इदमादि—इदम्, अदस्, युष्मद्, अस्मद् ।

Indeclinable or Particle.

१२० । अव्यय—जिन पदोंका किसी भी अवस्थामे रूपान्तर नहीं होता, उन्हें 'अव्यय' कहते हैं, यथा—च, वा, तु, हि, यदि, एवम् इत्यादि ।

Gender

१२१ । लिङ्ग—शब्दोंका लिङ्ग है । लिङ्ग तीन प्रकार—(१) पुलिङ्ग (Masculine), (२) स्त्रीलिङ्ग (Feminine) और (३) क्लीवलिङ्ग वा नपुंसकलिङ्ग (Neuter) । संस्कृतभाषामे बहुतेरे स्थलोंमे ही लिङ्ग शब्दगत होता है । यथा—

* तद् और त्यद् शब्द एकार्थक ।

आत्र, स्मृति और गृह—ये तीन शब्द एकार्थबोधक होनेपरभी, प्रथम शब्द पुलिङ्ग, द्वितीय स्त्रीलिङ्ग, और तृतीय क्लीवलिङ्ग । दार और कलत्र शब्द स्त्रीवाचक होनेपरभी, दार शब्द पुलिङ्ग, और कलत्र क्लीवलिङ्ग । सन्तान, सन्तति और अपत्य शब्द—पुत्र और कन्या, इन दोनोंके वाचक होनेपरभी, प्रथम शब्द पुलिङ्ग, द्वितीय स्त्रीलिङ्ग, और तृतीय क्लीवलिङ्ग ।

Number

१२२ । वचन—वचन तीन-प्रकार—(१) एकवचन (Singular), (२) द्विवचन (Dual) और (३) बहुवचन (Plural) । एकवचनमें एक, द्विवचनमें दो, और बहुवचनमें तीन या तदधिक सङ्ख्याका बोध होता है, यथा—त्वम्-तू एक आदमी, युवाम्-तुम दोनों, यूयम्-तुम तीन वा तदधिक । यहाँ हिन्दीसे संस्कृतका इतना भेद, कि हिन्दीमें द्विवचन-का व्यवहार नहीं है ।

Verb

१२३ । क्रिया—जिससे कर्मका (अर्थात् गमन, भोजन, शयन प्रभृति किसीप्रकार कार्य्यका) बोध होता है, उसे 'क्रिया' कहते हैं, यथा—गमन (जाना), गत (गया है, ऐसा), गच्छति (जाता है), गत्वा (जाकर)—ये चारही क्रिया । (क्रियाका नामान्तर भाव, धात्वर्थ) ।

'मृदु गमनम्'—यहाँ 'गमनम्' क्रियावाचक विशेष्य, 'गत दिनम्'—यहा 'गतम्' क्रियावाचक विशेषण, 'स गच्छति' (वह जाता है) कहने-में वाक्य समाप्त होता है, अर्थात् श्रोताकी आकाङ्क्षा-निवृत्ति करती है,

इसलिये 'गच्छति' समापिका क्रिया (Finite), 'स गत्वा' (उसने जाकर) कहनेसे 'गत्वा' क्रिया वाक्यको समाप्त नहीं कर सकती (अर्थात् "उसने जाकर—क्या किया ?" इस प्रकार श्रोताको एक आकाङ्क्षा रह जाती है), इसलिये यह असमापिका क्रिया (Infinite) ।*

Tense

१२३। काल—क्रियाके समयको 'काल' कहते हैं। काल तीन प्रकार—(१) भूत, (२) भविष्यत् और (३) वर्त्तमान। जो क्रिया पूर्वमें हो चुकी, उसके कालको 'भूत वा अतीत काल' (Past) कहते हैं। जो क्रिया पश्चात् होगी, उसके कालको 'भविष्यत् काल' (Future) कहते हैं। और जो क्रिया हो रही है, उसके कालको 'वर्त्तमान काल' (Pre

* सब तिङन्तपद समापिका क्रिया। स्थानविशेषमें क्त, क्तवतु, तव्य, अनीय, य प्रभृति कृदन्तपदभी समापिका क्रिया होते हैं ; यथा—स गतः (वह गया), तेन गन्तव्यम् (वह जायेगा)। तुम्, क्त्वा, ल्यप् और णमुल्-प्रत्ययान्त पद असमापिका क्रिया। जिसका विशेषण रहता है, वह विशेष्य होगाही, सुतरां विशेषण रहनेसे समापिका और असमापिका क्रियाभी विशेष्य होती है, यथा—द्रुत गच्छति (शीघ्र जाता है), यहाँ 'गच्छति' विशेष्य, मन्द मन्द गत्वा (धीरे धीरे जाकर), यहाँ 'गत्वा' विशेष्य ; 'सुख स्थातुम्' (सुखसे रहनेके लिये), यहाँ 'स्थातुम्' विशेष्य, क्योंकि "कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते" अर्थात् भाववाच्यमें कृत्प्रत्ययनिष्पन्न शब्द द्रव्यके नामबोधक शब्दके तुल्य गण्य होता है ('कृ'-धातु + भाववाच्ये तुम्=कर्त्तुम्)।

sent) कहते हैं।

Case.

१२५। कारक—क्रियाके साथ जिसका अन्वय अर्थात् सम्बन्ध रहता है, उसको 'कारक' कहते हैं।*

कारक छ प्रकार—(१) कर्त्ता, (२) कर्म, (३) करण, (४) सम्प्रदान, (५) अपादान और (६) अधिकरण।

(१) कर्त्ता (Nominative)—जो क्रिया निष्पादन करता है, उसको 'कर्त्ता' कहते हैं,† यथा—(राम करता है) रामः करोति, (लड़का रोता है) बालः रोदिति,—यहाँ 'रामः' और 'बालः' कर्तृकारक।

(२) कर्म (Objective or Accusative)—जो किया जाता है, उसको 'कर्मकारक' कहते हैं,‡ यथा—(काम करता है) कार्य्यं करोति, (जल पीता है) जलं पिबति, (रोटी खाता है) रोटिकां भुङ्क्ते,—यहाँ 'कार्य्यम्', 'जलम्' और 'रोटिकाम्' कर्मकारक।

(३) करण (Instrumental)—जिससे क्रिया सम्पादित की जाती है, अर्थात् जो क्रियानिष्पत्तिका सर्वप्रधान उपाय, उसको 'करणकारक' कहते हैं,§ यथा—(आँखसे दे-

* क्रियान्वयि कारकम्।

† यः करोति, स कर्त्ता।

‡ यत् क्रियते, तत् कर्म।

§ येन क्रियते, तत् करणम्।

खता है) चक्षुषा पश्यति, (हाथसे लेता है) हस्तेन गृह्णाति,—यहाँ 'चक्षुषा' और 'हस्तेन' करणकारक।

(४) सम्प्रदान (Dative)—जिसको कोई वस्तु दी जाती है, उसे 'सम्प्रदान' कहते हैं,* यथा—(दरिद्रको धन देता है) दरिद्राय धनं ददाति, (भिक्षुकको भिक्षा देता है) भिक्षवे भिक्षां ददाति,—यहाँ 'दरिद्राय' और 'भिक्षवे' सम्प्रदानकारक।

(५) अपादान (Ablative)—जिससे कोई पदार्थ वियुक्त (अलग) होता है, उसे 'अपादान' कहते हैं,† यथा—(पेड़से फल गिरता है) वृक्षात् फलं पतति, (गाँवसे आता है) ग्रामात् आयाति,—यहाँ 'वृक्षात्' और 'ग्रामात्' अपादानकारक।

(६) अधिकरण (Locative)—कर्त्ता वा कर्मका जो आधार, उसे 'अधिकरण' कहते हैं,‡ यथा—(शिवदत्त घरमें सोता है) शिवदत्त' गृहे शेते, (मा बच्चेको बिछौनेमे सुलाती है) जननी शय्यायां शिशुं शाययति,—यहाँ 'गृहे' और 'शय्यायाम्' अधिकरणकारक।

Possessive or Genitive

२२६। सम्बन्ध—जो पद और किसी पदके साथ सम्बन्ध

---

* यस्मै दानं सम्प्रदानम्।

† यतो विश्लेषोऽपादानम्।

‡ आधारोऽधिकरणम्।

प्रकाश करता है, उसे 'सम्बन्ध' कहते हैं, यथा—(वृक्षकी शाखा) वृक्षस्य शाखाः (उसकी पुस्तक) तस्य पुस्तकम् ,—यहाँ 'वृक्षस्य' और 'तस्य' सम्बन्धपद ।

Inflectional termination.

१२७। विभक्ति—शब्दके उत्तर 'सु' औ, अस्' प्रभृति, और धातुके उत्तर 'तिप्, तस्, अन्ति' प्रभृति जो प्रत्यय होते हैं, उनको 'विभक्ति' कहते हैं। 'सु, औ, अस्' प्रभृतिको 'सुप्-विभक्ति', और 'तिप्, तस्, अन्ति' प्रभृतिको 'तिङ् विभक्ति' कहते हैं।

सुबन्त-प्रकरण ।

१२८। प्रयोगकालमें शब्दके उत्तर सुप्-विभक्ति होती है। सुप्-विभक्ति सात प्रकार—प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी। प्रत्येक विभक्तिके तीन तीन वचन* ।

सुप्-विभक्तिकी आकृति (Inflectional termination)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	(सु)(:)	औ	जस् (अ)
द्वितीया	अम्	औट् (औ)	शस् (अ)
तृतीया	टा (आ)	भ्याम्	भिस् (भि)

* अत सुप्-विभक्तिकी सङ्ख्या २१ ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस् (भ्य)
पञ्चमी	ङसि (अ)	भ्याम्	भ्यस् (भ्य)
षष्ठी	ङस् (अ)	ओस् (ओ)	आम्
सप्तमी	ङि (इ)	ओस् (ओ)	सुप् (सु)

आद्य अक्षर 'सु' और अन्त्य अक्षर 'प्' को लेकर इन विभक्तियोंका नाम 'सुप्' रखा गया। इनको शब्दके अन्तमें जोड़नेसे जो पद बनता है, उसे 'सुबन्त-पद' कहते हैं। स्मरण रहे, कि बन्धनीके मध्यस्थित आकार (रूप) ही कार्य्यकालमें अवशिष्ट रहते हैं।

रूपभेदसे शब्द चार भागोंमें विभक्त—(१) साधारण शब्द, (२) सर्वनाम शब्द, (३) सङ्ख्यावाचक शब्द और (४) अव्यय शब्द।

साधारण शब्द फिर छ भागोंमें विभक्त—(१) स्वरान्त पुलिङ्ग, (२) स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग, (३) स्वरान्त क्लीवलिङ्ग; (४) व्यञ्जनान्त पुलिङ्ग, (५) व्यञ्जनान्त स्त्रीलिङ्ग, (६) व्यञ्जनान्त क्लीवलिङ्ग।

पुंलिङ्ग-निर्णय।

१२९। (क) पुरुषवाचक शब्द प्राय पुलिङ्ग।

(ख) चन्द्र, सूर्य्य, अग्नि, वायु, प्रस्तर, पर्वत, समुद्र और वृक्ष-पर्य्याय शब्द* पुलिङ्ग। किन्तु प्रस्तर-पर्य्यायके बीचमें शिला और दृषद्—स्त्रीलिङ्ग।

(ग) स्वर्ग-पर्य्याय शब्द पुलिङ्ग। किन्तु द्यो, दिव्—स्त्री०,

* एक अर्थमें जितने शब्द प्रयुक्त होते हैं, उन सबको 'पर्य्याय-शब्द' कहते हैं।

-त्रिविष्टप—क्ली०, स्वर्—अव्यय।

(घ) मेघ पर्य्याय शब्द पुंलिङ्ग। किन्तु अभ्र शब्द—क्ली०।

(ङ) सप्ताह, मास, रक्तादि वर्ण, रस, काल और कल्प वाचक शब्द पुंलिङ्ग।

(च) ऋतु-वाचक शब्द पुंलिङ्ग। किन्तु शरद् और वर्षा स्त्री०।

(छ) वत्सर वाचक शब्द पुंलिङ्ग। किन्तु शरद्, समा—स्त्री०, हायन—पु०, क्ली०।

(ज) शङ्ख, गर्व, हस्त, गण्ड, ओष्ठ, कण्ठ, केश, नख, दन्त और स्तन-वाचक शब्द पुंलिङ्ग।

(झ) तरङ्ग-वाचक शब्द पुंलिङ्ग। किन्तु ऊर्मि और वीचि शब्द स्त्रीलिङ्गभी होते हैं।

(ञ) खड्ग, बाण, मनुष्य, शत्रु, सर्प, मत्स्य, कच्छप, भेक, कुम्भीर-वाचक शब्द और किरण वाचक शब्द* पुंलिङ्ग।

(ट) दार, प्राण, असु, अक्षत, लाज और रिन्दु शब्द पुंलिङ्ग।

(ठ) तुषार, नीहार, और अवश्याय शब्द पुंलिङ्ग।

(ड) 'मन्'-भागान्त शब्द पुंलिङ्ग, यथा—राजन्, मज्जन् -इत्यादि। किन्तु द्विस्वर 'मन्'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीवलिङ्ग, यथा—कर्मन् वर्मन् इत्यादि।

(ढ) 'तु'-अन्त और 'रु'-अन्त शब्द पुंलिङ्ग; यथा—(तु) हेतु, सेतु, केतु, (रु) मेरु, तरु। किन्तु (तु) जतु और वस्तु—क्ली०, (रु) जत्रु, दारु—क्ली०, कशेरु—पुं०, क्ली०।

---

* किन्तु मरीचि शब्द-पु०, स्त्री०, दीधिति शब्द-स्त्री०।

(प) 'घञ्' प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग , यथा—त्याग , भाग', पाक इत्यादि ।

(व) 'अच्'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग , यथा—लय , जय , चयः इत्यादि । किन्तु भय, वर्ष, लिङ्ग, पद और सुख शब्द—क्ली० ।

(थ) 'अप्' प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग ; यथा—रव , स्तव , भव इत्यादि ।

(द) 'न' प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग , यथा—न्याय इत्यादि ।

(ध) 'नङ् (न)-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग , यथा—यत्न , स्वप्न , प्रश्न इत्यादि । केवल याच्ञा शब्द—स्त्री० ।

(न) 'अथु'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग ; यथा—वेपथु , श्वयथु , इत्यादि ।

(प) 'इमन्'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग ; यथा—कविमन् , गरिमन् इत्यादि । किन्तु प्रेमन् शब्द—पु०, क्ली० ।

(फ) 'कि'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग ; यथा—विधि , जलधि' इत्यादि । किन्तु इषुधि शब्द—पुं०, स्त्री० ।

(ब) समासनिष्पन्न 'रात्र'-भागान्त शब्द पुलिङ्ग ; यथा—सर्वरात्र', पुण्यरात्र । किन्तु सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्वमें रहनेसे क्लीवलिङ्ग होता है ; यथा—द्विरात्रम्, त्रिरात्रम् इत्यादि ।

(भ) समासनिष्पन्न 'अह'-भागान्त शब्द पुलिङ्ग , यथा—परमाह' । किन्तु पुण्याह शब्द—क्ली० ।

(म) समासनिष्पन्न 'अह्न'-भागान्त शब्द पुलिङ्ग , यथा—सर्वाह्न, पूर्वाह्न ।

स्वरान्त पुलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१३० । अकारान्त, इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'अम्' के स्थानमे 'म्' होता है, यथा—देव + अम् = देव + म् = देवम्, विधि + अम् = विधिम्, साधु + अम् = साधुम् ।

१३१ । ह्रस्वस्वरान्त शब्दके 'शस्' के स्थानमे 'न्' होता है, और वह 'न्' परे रहनेसे, पूर्वस्वर दीर्घ होता है, यथा—देव + शस् = देव + न् = देवान्; विधि + शस् = विधि + न् = विधीन्, साधु + शस् = साधून्; दातृ + शस् = दातॄन् ।

१३२ । अकारान्त शब्दके परस्थित 'टा' के स्थानमें 'इन', 'भिस्' के स्थानमें 'ऐस्', 'ङे' के स्थानमे 'अय', 'ङसि' के स्थानमे 'आत्', 'ङस्' के स्थानमे 'स्य', और 'ओस्' के स्थानमे 'योस्' होता है, यथा—देव + टा = देव + इन = देवेन, देव + भिस् = देव + ऐस् = देवै, देव + ङे = देव + अय = देवाय, देव + ङसि = देव + आत् = देवात्; देव + ङस् = देव + स्य = देवस्य, देव + ओस् = देव + योस् = देवयोः ।

१३३ । 'भ्याम्' परे रहनेसे अकारके स्थानमे आकार, और 'भ्यस्' तथा 'सुप्' परे रहनेसे एकार होता है, यथा—देव + भ्याम् = देवाभ्याम्, देव + भ्यस् = देवेभ्य, देव + सुप् = देवेषु (१०८ सू) ।

१३४ । ह्रस्वस्वरान्त शब्दके 'आम्' के स्थानमे 'नाम्' होता है; वह 'नाम्' परे रहनेसे, पूर्वस्वर दीर्घ होता है, यथा—देव + आम् = देव + नाम् = देवानाम्, विधि + आम् = विधि + नाम् = विधीनाम्, साधु + आम् = साधूनाम्, दातृ + आम् = दातॄणाम् (१०० सू) ।

१३५ । ह्रस्वस्वरान्त शब्दके सम्बोधनमें 'सु' का लोप होता है;

यथा—देव + स = देव ।

१३६ । 'शस्'-प्रभृतिका स्वरवर्ण परे रहनेसे, धातु-निष्पन्न आकारान्त शब्दके आकारका लोप होता है, यथा—विश्वपा + शस् = विश्वपा + अ = विश्वप् + अ = विश्वप. ।

१३७ । इकारान्त शब्दके 'औ' के स्थानमे 'ई', और उकारान्त शब्दके 'औ' के स्थानमे 'ऊ' होता है, यथा—विधि + औ = विधि + ई = विधी, साधु + औ = साधु + ऊ = साधू ।

१३८ । 'जस्', 'ङे', 'ङसि', 'ङस्' और सम्बोधनके एकवचनमे इकारान्त शब्दके 'इ' के स्थानमे 'ए', और उकारान्त शब्दके 'उ' के स्थानमे 'ओ' होता है, यथा—विधि + जस् = विधि + अ = विधे + अ = विधय (२९ सू), विधि + ङे = विधि + ए = विधे + ए = विधये, साधु + जस् = साधु + अ = साधो + अ = साधव (२७ सू), साधु + ङे = साधु + ए = साधो + ए = साधवे, विधि + स (सम्बोधन) = विधे (१३९ सू), साधु + स (सम्बो०) साधो (१३९ सू) ।

१३९ । एकार वा ओकारसे परे 'ङसि' और 'ङस्' के अकारका लोप होता है, यथा—विधि + ङसि = विधि + अ = विधे + अ (१३८ सू) = विधे + = विधे, साधु + ङसि = साधु + अ = साधो + अ. (१३८ सू) = साधो + . = साधो ।

१४० । इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'टा' के स्थानमे 'ना' होता है, यथा—विधि + टा = विधि + ना = विधिना, साधु + टा = साधुना ।

१४१ । इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'ङि' के स्थानमे 'औ'

होता है, और अन्त्यस्वरका लोप होता है, यथा—विधि + ङि = विधि + औ = विध् + औ = विधौ, साधु + ङि = साधु + औ = साध् + औ = साधौ।

१४२। स्वरवर्ण परे रहनेसे, धातुनिष्पन्न ईकारान्त शब्दके 'ई' के स्थानमें प्राय 'इय्', और ऊकारान्त शब्दके 'ऊ' के स्थानमें 'उव्' होता है, यथा—सुधी + औ = सुध् + इय् + औ = सुधियौ, प्रतिभू + औ = प्रतिभ् + उव् + औ = प्रतिभुवौ, प्रतिभू + जस् = प्रतिभू + अ = प्रतिभ् + उव् + अ = प्रतिभुव।

१४३। ऋकारान्त शब्दके 'सु' का लोप, और 'ऋ' के स्थानमें 'आ' होता है; यथा—दातृ + सु = दाता।

१४४। 'जस्', 'औ' और 'अम्' परे रहनेसे, ऋकारान्त शब्दके 'ऋ' के स्थानमें 'आर्' होता है, किन्तु 'पितृ'-प्रभृति शब्दके 'ऋ' के स्थानमें 'अर्' होता है, यथा—दातृ + जस् = दात् + आर् + अ = दातार; दातृ + औ = दात् + आर् + औ = दातारौ, दातृ + अम् = दात् + आर् + अम् = दातारम्। पितृ + औ = पित् + अर् + औ = पितरौ।

१४५। ऋकारान्त शब्दके 'ङसि' और 'ङस्' के स्थानमें 'उ' होता है; 'उ' परे रहनेसे, ऋकारका लोप होता है; यथा—दातृ + ङसि = दातृ + उ = दात् + उ = दातु, पितृ + ङसि = पितृ + उ = पित् + उ = पितु।

१४६। सम्बोधनका 'सु', अथवा 'ङि' परे रहनेसे, ऋकारान्त शब्दके 'ऋ' के स्थानमें 'अर्' होता है, यथा—पितृ + सु = पित् + अर् = पित् + अ = पित, दातृ + ङि = दात् + अर् + इ = दातरि।

१४७ । 'सु', 'जस्' अथवा 'औ' परे रहनेसे, ओकारान्त शब्दके 'ओ' के स्थानमे 'औ' होता है , और 'अम्' तथा 'शस्' परे रहनेसे, 'आ' होता है ; यथा—गो + सु = ग् + औ + = गौ , गो + औ = ग् + औ + औ = गौ + औ = गावौ (२८ सू), गो + जस् = गौ + अ = गाव , गो + अम् = ग् + आ + अम् = गाम् , गो + शस् = ग् + आ + अ = गा ।

सर्वनाम पुंलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१४८ । अकारान्त सर्वनाम शब्दके 'जस्' के स्थानमे 'इ', 'ङे' के स्थानमे 'स्मै', 'ङसि' के स्थानमे 'स्मात्', 'ङि' के स्थानमे 'स्मिन्', और 'आम्' के स्थानमे 'साम्' होता है , वह 'साम्' परे रहनेसे, अकारके स्थानमे एकार होता है ; यथा—सर्व + जस् = सर्व + इ = सर्वे , [redacted] + ङे = सर्व + स्मै = सर्वस्मै , सर्व + ङसि = सर्व + स्मात् = सर्वस्मात् ; सर्व + आम् = सर्व + साम् = सर्व् + ए + साम् = सर्वे + साम् = सर्वेषाम् (१०८ सू) , सर्व + ङि = सर्व + स्मिन् = सर्वस्मिन् ।

१४९ । 'पूर्वादि'-शब्दके 'जस्' के स्थानमे 'इ', 'ङसि' के स्थानमे 'स्मात्', और 'ङि' के स्थानमे 'स्मिन्' विकल्पसे होता है ।

१५० । विभक्ति परे रहनेसे,—'तद्' के स्थानमे 'त', 'एतद्' के स्थानमे 'एत', 'यद्' के स्थानमे 'य', और 'किम्' के स्थानमे 'क' होता है ; किन्तु क्लीवलिङ्गकी प्रथमा और द्वितीयाके एकवचनमे नहीं होता ।

ये शब्द तीनो लिङ्गोमेही 'सर्व'-शब्दके तुल्य, केवल 'सु' परे रहनेसे,—'तद्' और 'एतद्' शब्दके पुंलिङ्गमे 'स' और 'एष', तथा स्त्रीलिङ्गमे 'सा' और 'एषा' होते हैं ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
सम्बोधन	सर्व	सर्वौ	सर्वे

विश्व (सकल), उभ, उभय* (दोनों), एक† (एक One, कोई कोई, मुख्य; केवल); एकतर (दोनोंके बीचसे एक); सम (सब); सिम (सकल), नेम (आधा);—इन शब्दोंके और अन्यादि शब्दके रूप 'सर्व' शब्दके तुल्य। केवल 'नेम'-शब्दके प्रथमाके बहुवचनमें 'नेमे नेमाः'—ये दो पद होते हैं।

पूर्व शब्द (दिक्, देश और कालका विशेषण Eastern, ancient)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः
द्वितीया	पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्

* 'उभ'-शब्द नित्य द्विवचनान्त। 'उभय'-शब्द एकवचन और बहुवचनमेंही प्रयुक्त होता है।

† 'एक'-शब्द एकसंख्यामात्र अर्थमें एकवचन, अर्थान्तरमें—एक-वचन, द्विवचन, बहुवचन।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृतीया	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
चतुर्थी	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
पञ्चमी	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
षष्ठी	पूर्वस्य	पूर्वयो	पूर्वेषाम्
सप्तमी	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु
सम्बोधन	पूर्व	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः

पूर्वादि शब्दके रूप 'पूर्व'-शब्दके तुल्य ।

※ कर्मने द्वितीया विभक्ति होती है, यथा—(गोपाल चन्द्रको देखता है) गोपाल चन्द्र पश्यति ।

हिन्दीमें 'चन्द्रको देखता है' इसके सिवा 'देखता है चन्द्रको' ऐसा व्यवहार नहीं होता, किन्तु संस्कृतमें 'चन्द्र पश्यति' अथवा 'पश्यति चन्द्रम्'—ये दोनोंही हो सकते ।

अनुवाद करो—लड़के चन्द्र देखते है (पश्यन्ति)। सूर्यका प्रखर ताप सह (सोढुम्) नहीं सकता हू (न शक्नोमि)। राम, श्याम—दोनो इस दिशामें (अनया दिशा) आते हैं (आगच्छत)। भेड़ा घास खाता है (खादति)। सब देश अवलोकन करो (अवलोकय)। अच्छा आदमीही दूसरेका (द्वितीया) आदर करता है (आद्रियते)। सब लोग मत्स्य नहीं खाते (खादन्ति)। पुरोहित शङ्ख बजाता है (वादयति)। अभिलाष सबको अभिभूत करता है (अभिभवति)। लोभ का (द्वितीया) परिहार करो (छोड़ो—परिहर)। मयूर नाचते हैं (नृत्यन्ति)। सब खेलते हैं (खेलन्ति)। पवन बहता है (वहति)। सब समयमेंही स-

कुम्भकार शोभा पाता है (शोभते) (हां—एव) । धर्म धार्मिक (द्वितीया) रक्षा करता है (रक्षति)। जहाँ (यत्र) धर्म, वह (तत्र) जय।

शुद्ध करो—सर्वः मत्स्या, पश्चिम देश, अमरं वृक्षः, सुन्दरं देव।

यदादि।

यद् शब्द (जो Who, which)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यः	यौ	ये
द्वितीया	यम्	यौ	यान्
तृतीया	येन	याभ्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पञ्चमी	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु*

तद् शब्द (वह He)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सः	तौ	ते
द्वितीया	तम्	तौ	तान्
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पञ्चमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः

* यदादि शब्दका सम्बोधनमें प्रयोग नहीं है।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
षष्ठी	तस्य	तयो	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयो॰	तेषु

एतद् शब्द (यह This)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एष.	एतौ	एते
द्वितीया	एतम्	एतौ	एतान्
तृतीया	एतेन	एताभ्याम्	एतै॰
चतुर्थी	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पञ्चमी	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
षष्ठी	एतस्य	एतयो॰	एतेषाम्
सप्तमी	एतस्मिन्	एतयो	एतेषु

※ सर्वनामकी सहायता लेनेसे, विशेष्यका वारवार उल्लेख नहीं करना पड़ता, और विशेष्यकी अनुपस्थितिमे सर्वादि सब सर्वनामोका विशेष्यके तुल्य प्रयोग होता है, यथा—(राम शिष्ट वालक, सब उसकी प्रशसा करते हैं) राम शिष्टो बालक, सर्वे 'त' प्रशसन्ति—यहा 'राम 'के स्थानमे 'त' बैठा है, और 'लोका ' इस विशेष्यपदकी अनुपस्थितिमे 'सर्वे' यह पद विशेष्यके तुल्य व्यवहृत हुआ है।

※ यद् और तद्—ये दो शब्द नित्यसम्बन्धविशिष्ट, अर्थात् 'यद्'-शब्दका प्रयोग करनेसेही इसके पश्चात् 'तद्'-शब्दका प्रयोग करना होगा, यथा—(जो गुरुभक्त, वही शिष्य) यो गुरुभक्त, स एव शिष्य —यहाँ 'य.' (जो) इस शब्दके पश्चात् 'स ' (वह),

इस शब्दका प्रयोग न करनेसे अर्थकी सम्यक् उपलब्धि अथवा आकाङ्क्षाकी निवृत्ति नहीं होती।

अनुवाद करो—सुरेन्द्र, नरेन्द्र, गणेश—सब अपना अपना (स्व स्व) पाठ पढ़ते हैं (पठन्ति)। रमेशने उसे नहीं देखा (न अपश्यत्)। जो आश्रित जनकी (द्वितीया) रक्षा नहीं करता, परमेश्वर उसका (द्वितीया) त्राण नहीं करते (न त्रायते)। बछड़े (वत्स) विचरते हैं (विचरन्ति)। दीप जलता है (ज्वलति)। वह जाय (यातु)। वह आदमी वहाँ (तत्र) जायेगा (यास्यति)। घोड़े रथ ले जाते हैं (वहन्ति)। वे पुत्रको दुलार करते हैं (लालयन्ति)।

किम् शब्द (कौन, क्या Who, what)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कः	कौ	के
द्वितीया	कम्	कौ	कान्
तृतीया	केन	काभ्याम्	कैः
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पञ्चमी	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन्	कयोः	केषु

☞ जहाँ किसी अपरिज्ञात वस्तु, व्यक्ति वा गुणके जाननेकी इच्छासे प्रश्नार्थमें 'क्या' 'कौन' इत्यादि शब्दका व्यवहार होता है, वहाँ संस्कृतमें 'किम्'-शब्दका प्रयोग करना चाहिये, यथा—(धर्म क्या ?) कः धर्मः ?, (कौन जाता है ?) कः याति ?, (किसको

मारता है) क प्रहरति ?

अनुवाद करो—कौन मनुष्य ? किसको सिंह कहते हैं (वदन्ति) ? क्या उपकार ? कौन हाथ ? कौन किसको पूजता है ? कौन शिक्षक जाता है (गच्छति) ? कौन कहते हैं (कथयन्ति) । कौन जागता है (जागर्त्ति) ? कौन लाभ ? किसका हाथ ? कौन बालक हसता है (हसति) ? किसकी (द्वितीया) निन्दा करता है (निन्दति) ? राम किसको देखता है (पश्यति) ?

इदमादि ।

इदम् शब्द (यह This) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अयम्	इमौ	इमे
द्वितीया	इमम्	इमौ	इमान्
तृतीया	अनेन	आभ्याम्	एभि.
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्य.
पञ्चमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्य
षष्ठी	अस्य	अनयो	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयो	एषु

अदस् शब्द (वह That)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	असौ	अमू	अमी
द्वितीया	अमुम्	अमू	अमून्
तृतीया	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभि.

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पञ्चमी	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
षष्ठी	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
सप्तमी	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु*

※ हिन्दीमें जहाँ विशेष्यसे पूर्व अथवा विशेष्यके स्थानमें 'यह' रहता है, संस्कृतमें वहाँ 'इदम्' या 'एतद्' शब्दका व्यवहार किया जाता है, और जहाँ 'वह' रहता है, वहाँ 'अदस्'-शब्दका प्रयोग करना होता है। यथा—(यह वृक्ष) अयं वृक्षः, (वह मनुष्य) असौ मनुष्यः। विशेष्यके स्थानमें, यथा—(यह जाता है) अयं याति।

अनुवाद करो—यह मतार। यह श्मशान। यह मैं (अहम्) हूं (अस्मि)। वह आता है (आगच्छति)। यह ताम्बूल दिखता है (कथ्यते)। वह इस ग्रन्थको पढ़ता है (पठति)। जिससे (येन) सुना जाता है (श्रूयते), उसे कर्ण कहते हैं (कथयन्ति)। निठुर व्याध उसका (तस्य) हाथ बांधता है (बध्नाति)।

---

* इदमः प्रत्यक्षगतं, समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टं, तदिति परोक्षे विजानीयात्॥

अर्थात् 'इदम्'-शब्दके रूप—प्रत्यक्षवस्तुविषयमें, 'एतद्'-शब्दके रूप—अत्यन्तसमीपस्थवस्तुविषयमें, 'अदस्'-शब्दके रूप—दूरस्थितवस्तुविषयमें, और 'तद्'-शब्दके परोक्षवस्तुविषयमें जानना।

युष्मद् शब्द (तू, तुम You—मध्यमपुरुष Second person)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, व
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभि
चतुर्थी	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम्, व·
पञ्चमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
षष्ठी	तव, ते	युवयो, वाम्	युष्माकम्, व॰
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

अस्मद् शब्द (मैं, हम I—उत्तमपुरुष First person)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, न॰
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभि
चतुर्थी	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, न॰
पञ्चमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	मम, मे	आवयो., नौ	अस्माकम्, नः
सप्तमी	मयि	आवयो.	अस्मासु

सब लिङ्गोंमेंही 'युष्मद्' और 'अस्मद्' शब्दके रूप एक प्रकार।

※ कोई पद पूर्वमे रहनेसे, युष्मद् और अस्मद्-शब्द निष्पन्न त्वा, मा, ते, मे, वाम्, नौ, व, न—ये पद विकल्पसे व्यवहृत होते हैं, यथा—(ईश्वर तेरी रक्षा करे) ईश्वर त्वा अथवा त्वा पातु,

(राजा तुझे अर्घ देगा) भूप ते अथवा तुभ्यम् अर्घं दास्यति, (हमारे मनोरथ पूर्ण हुए) पूर्णा न मनोरथा, (वह हम दोनोको उपहार देगा) स नौ अथवा आवाभ्याम् उपहार दास्यति; (परमेश्वर हमारी रक्षा करेगा) परमेश्वर न अथवा अस्मान् रक्षिष्यति।

च, वा, एव—इन अव्ययशब्दोंके योगसे त्वा, मा, ते, मे, वाम्, नौ, व, न—इन पदोंका व्यवहार नहीं होता यथा—(शिक्षक तुझे और मुझे उपदेश देता है) शिक्षक त्वा मा च उपदिशति, (ईश्वर तेरा और मेरा मङ्गल कर) ईश्वर तव मम च मङ्गलं विदधातु, (वह तुम दोनो और हम दोनोको धन देगा) स युवाभ्याम् आवाभ्या च धन दास्यति, (वह तुम्हारा और हमारा गुरु) स युष्माकम् अस्माकं च गुरु। 'वा' और 'एव' शब्दके योगसेभी ऐसा होगा।

वाक्यके आरम्भमे और श्लोकके चरणके आदिमे त्वा, मा इत्यादि पदोंका व्यवहार नहीं होता। यथा—वाक्यके आदिमे—(मेरी पुस्तक दो) मम पुस्तक देहि,—यहाँ 'मम' के स्थानमे 'मे' नहीं होगा। चरण के आदिमे—

त्वा स रक्षति यत्नेन, मा स द्वेष्टि निरन्तरम्।
ते दोष एव, नैवात्र मे दोषो विद्यते सत्ये॥

ऐसा प्रयोग नहीं होता।

त्वा स रक्षति यत्नेन, मां स द्वेष्टि निरन्तरम्।
तवैव दोषो, नैवात्र मम दोषोऽस्ति कश्चन॥

ऐसा प्रयोग होता है।

शुद्ध करो—माता ते मे च मङ्गल प्रार्थयते । त विना वां नौ च उपायो नास्ति । स ते मे च उपकार करिष्यति । श्याम न एव आलाप श्रणोति । न. धन देहि ।

※ धिक्, प्रति, यावत्, अनु, अन्तरेण, अन्तरा और निकषा शब्दके योगसे द्वितीया विभक्ति होती है, यथा—(दरिद्रके प्रति सदय हो) दरिद्र प्रति सदयो भव, (जो दरिद्रके प्रति सदय नहीं होता, उस निष्ठुरको धिक्कार) यो हि दरिद्र प्रति सदयो न भवति, धिक् अस्तु त निष्ठुरम्, (मृत्युतक आचार्यके अधीन हो) प्राणात्यय यावत् आचार्याधीनो भव, (शिक्षकके पीछे जा) शिक्षकम् अनुयाहि, (श्रम विना विद्यालाभ नहीं होता) श्रमम् अन्तरेण विद्यालाभो न भवति, (आचार विना धर्म नहीं होता) आचारम् अन्तरेण धर्मो न भवति, (तेरे और मेरे बीचमे वह बैठे) त्वा मा च अन्तरा स उपविशतु, (शिवजीके पास अन्नपूर्णा) शिव निकषा अन्नपूर्णा।

अनुवाद करो—तुम दरिद्रोंके प्रति सद्व्यवहार करो (कुरुत)। हम तुम्हें छोड़े (विना) रहनेको (स्थातुम्) असमर्थ । बहुत कालसे (यावत्) तुझे देखता हूँ (पश्यामि) । राम अत्यन्त धार्मिक, तू उनका (द्वितीया) अनुवर्तन कर (अनुवर्त्तस्व) । सूर्य्यके पास अँधेरा नहीं रहता (न तिष्ठति) । तू और मैं कभी (कदाऽपि) सदालाप छोड़ असदालाप नहीं करेंगे (न करिष्याव) । तू अब (अधुना) पाठके प्रति मनोनिवेश कर (कुरु), मैं भी (अपि) अपना काम (स्वकार्य्यम्) करूँ (अनुतिष्ठामि)।

द्वितीय और तृतीय शब्द।

'द्वितीय' और 'तृतीय' शब्दके रूप 'देव'-शब्दके तुल्य, केवल चतुर्थी, पञ्चमी और सप्तमीके एकवचनमें विकल्पसे 'सर्व'-शब्दके तुल्य, यथा-

	चतुर्थी	पञ्चमी	सप्तमी
द्वितीय	द्वितीयस्मै द्वितीयाय	द्वितीयस्मात् द्वितीयात्	द्वितीयस्मिन् द्वितीये
तृतीय	तृतीयस्मै तृतीयाय	तृतीयस्मात् तृतीयात्	तृतीयस्मिन् तृतीये

* * *

आकारान्त।

हाहा शब्द (गन्धर्व-विशेष* Name of a Gandharva) ।

प्रथमा—हाहा, हाहौ, हाहाः, द्वितीया—हाहाम्, हाहौ, हाहान्, तृतीया—हाहा, हाहाभ्याम्, हाहाभिः, चतुर्थी—हाहै, हाहाभ्याम्, हाहाभ्यः, पञ्चमी—हाहाः, हाहाभ्याम्, हाहाभ्यः, षष्ठी—हाहाः, हाहौः, हाहाम्; सप्तमी—हाहे, हाहौः, हाहासु, सम्बोधन—हाहाः!

विश्वपा शब्द (विश्वरक्षक; सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि Protector of all, sun ; moon, fire)

प्रथमा—विश्वपा, विश्वपौ, विश्वपाः, द्वितीया—विश्वपाम्, विश्वपौ, विश्वपः, तृतीया—विश्वपा, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभिः, चतुर्थी—विश्वपे, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभ्यः पञ्चमी—विश्वपः, विश्वपाभ्याम्,

---

* 'हूहू'-शब्दभी इसी अर्थमें होता है।

विश्वपाभ्य , षष्ठी—विश्वप:, विश्वपो:, विश्वपाम्; सप्तमी—विश्वपि, विश्वपो , विश्वपासु, सम्बोधन—विश्वपा: ।

सब धातुनिष्पन्न (क्विप् प्रत्ययान्त) आकारान्त शब्दके (यथा—गोपा, गोदा, अन्तस्था इत्यादि) रूप 'विश्वपा'-शब्दके तुल्य । पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमें समान ।

इकारान्त ।

मुनि शब्द (तपस्वी An ascetic) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मुनिः	मुनी	मुनय:
द्वितीया	मुनिम्	मुनी	मुनीन्
तृतीया	मुनिना	मुनिभ्याम्	मुनिभिः
चतुर्थी	मुनये	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः
पञ्चमी	मुनेः	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः
षष्ठी	मुने:	मुन्योः	मुनीनाम्
सप्तमी	मुनौ	मुन्योः	मुनिषु
सम्बोधन	मुने	मुनी	मुनय:

प्राय सब इकारान्त पुंलिङ्ग शब्दके रूप 'मुनि'-शब्दके तुल्य । यथा—

विधि (ब्रह्मा, विधान, प्रकार, नियम इत्यादि), ऋषि (मन्त्रद्रष्टा मुनि), हरि (विष्णु), पयोधि, वारिधि (सागर, समुद्र), अग्नि, वह्नि (अनल, आग), निधि (रत्न), गिरि (पर्वत), रवि (सूर्य्य); कपि (वानर), कवि (काव्यकर्त्ता और पण्डित), यति (सन्न्यासी); नरपति (राजा) ।

☞ हिन्दीमे करणविहित 'से' 'द्वारा' विभक्ति-घटित पदके अनुवादमे [करणे] तृतीया विभक्तिका व्यवहार होता है, यथा—(पाँवोसे जाता है) पादाभ्या याति, (यत्नसे निधि मिलती है) यत्नेन निधि प्राप्यते, (परिश्रमसे कार्य्य सिद्ध होता है) परिश्रमेण कार्य्य सिध्यति ।

अनुवाद करो—मनोयोगसे पाठ चिन्ता करो (चिन्तय) । अग्निद्वारा पाक करता है (पचति) । वानर हाथसे वृक्ष उत्पाटन करते हैं (उत्पाटयन्ति) । राजा नियमसे शासन करता है (शास्ति) । मुनि लोग सर्वदा ईश्वरका (द्वितीया) ध्यान करते हैं (ध्यायन्ति) । अगस्त्य ऋषिने सागर पान किया था (पपौ) । देख (पश्य), वह एक गिरि । मंने उस नृपतिको देखा है (दृष्टवान्) । हरिका (द्वितीया) स्मरण कर (स्मर) ।

पति शब्द (स्वामी, नायक Master, husband)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पति॰	पती	पतय॰
द्वितीया	पतिम्	पती	पतीन्
तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभि॰
चतुर्थी	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पञ्चमी	पत्यु॰	पतिभ्याम्	पतिभ्य॰
षष्ठी	पत्युः	पत्यो॰	पतीनाम
सप्तमी	पत्यौ	पत्यो	पतिषु
सम्बोधन	पते	पती	पतय॰

श्रीपति, नृपति, भूपति प्रभृति समासनिष्पन्न 'पति'-भागान्त शब्दके रूप पुलिङ्गमे 'मुनि'-शब्दके तुल्य ।

सखि शब्द (मित्र, सहचर Friend, Companion) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पञ्चमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखिषु
सम्बोधन	सखे	सखायौ	सखायः

कति, यति और तति शब्द ।

कति (कितना), यति (जितना), तति (तितना),—ये शब्द निम्य बहुवचनान्त, इनके रूप तीनो लिङ्गोंमेही इस प्रकार—कति, कति, कतिभिः, कतिभ्यः, कतिभ्यः, कतीनाम्, कतिषु । इत्यादि ।

शुद्ध करो—कतय लोकाः ? यतिः विधि वर्त्तन्ते, सर्वे मनुष्य न पालयन्ति । सखि पश्य । नरपत्यु अपकार मा कुरु । अहं पते समीपं यास्यामि ।

✂ हिन्दीमे जहाँ 'साथ' 'सहित' वा 'सङ्ग' शब्दके योगसे षष्ठी विभक्ति रहती है, संस्कृतमे वहाँ उन्हीं सहार्थबोधक 'सह'

प्रश्न । हरि, भानु और नरपति शब्दके रूप लिखो ।

'सार्द्धम्' 'साकम्' समम्' प्रभृति शब्दोंके योगसे अथवा 'सह' अर्थमें तृतीया-विभक्तिका प्रयोग करना चाहिये, यथा—(रामके साथ लक्ष्मण गया था) रामेण सह लक्ष्मण जगाम, अथवा रामेण लक्ष्मण जगाम।

अनुवाद करो—रामके साथ श्याम जाता है (गच्छति)। पतिके साथ विवाद न करना (न कुर्य्यात्)। ज्ञातिके सङ्ग कलह करना नहीं चाहिये (न कुर्य्यात्)। तुम्हारे साथ मैं नहीं जाऊँगा (न यास्यामि)। बालकोंके साथ सद्व्यवहार करना (कुर्य्यात्)। सत्यके साथ सद्भाव रहता है (तिष्ठति)। नरपतिके साथ विरोध नहीं करना। लड़के शिक्षकके साथ घूमनेको (भ्रमितुम्) जाते हैं (गच्छन्ति)।

द्वि शब्द (दो Two)। द्विवचनान्त।

१मा	२या	३या	४र्थी	५मी	६ष्ठी	७मी
द्वौ	द्वौ	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वयो	द्वयोः

त्रिशब्द (तीन Three)। बहुवचनान्त।

त्रय. त्रीन् त्रिभि त्रिभ्य. त्रिभ्य. त्रिभ्यः त्रयाणाम् त्रिषु।

☞ 'एक' 'दो' 'तीन' शब्दके संस्कृत अनुवादमें यथाक्रम 'एक' 'द्वि' 'त्रि' शब्दका व्यवहार होता है, यथा—(एक ब्राह्मण) एक ब्राह्मण, (दो हाथ) द्वौ हस्तौ, (तीन आदमी) त्रय लोका', (एक साँप जाता है) एक सर्पो याति, (दो हरिण दौड़ते हैं) द्वौ हरिणौ धावत ; (यहाँ तीन छात्र हैं) अत्र त्रय छात्रा सन्ति।

अनुवाद करो—एक हरिण। दो पाँव। तीन मुनि। दो बालक

हसते हैं (हसत)। एक ऋषि जाता है (गच्छति)। ये तीन आदमी यहां रहें (तिष्ठन्तु)। दो सहोदर खाते हैं (खादत.)। मनुष्य दो पावोंसे गमन करते हैं (गच्छन्ति)। एक चन्द्र समस्त संसारको उजाला करता है (प्रकाशयति)।

ईकारान्त ।

सुधी शब्द (पण्डित Wise, learned)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
द्वितीया	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
तृतीया	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
चतुर्थी	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
पञ्चमी	सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
षष्ठी	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
सप्तमी	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु
सम्बोधन	सुधीः	सुधियौ	सुधियः

श्री (शोभान्वित, खूबसूरत), निर्भी (भयहीन), शुद्धधी (पवित्रबुद्धिसम्पन्न); मन्दधी (अल्पबुद्धि); हतधी (बुद्धिहीन); अपह्री (निर्लज्ज),—इस प्रकार क्विबन्त (क्विप् प्रत्ययान्त) ईकारान्त पुलिङ्ग शब्दके रूप 'सुधी' शब्दके तुल्य ।

* * * *

सेनानी शब्द (सेनाध्यक्ष, कार्त्तिकेय Leader of an army)

प्रथमा—सेनानीः, सेनान्यौ, सेनान्यः, द्वितीया—सेनान्यम्, सेना-

न्यौ, सेनान्य, तृतीया—सेनान्या, सेनानीभ्याम्, सेनानीभि, चतुर्थी—सेनान्ये, सेनानीभ्याम्, सेनानीभ्य, पञ्चमी—सेनान्य, सेनानीभ्याम्, सेनानीभ्य, षष्ठी—सेनान्य, सेनान्यो, सेनान्याम्, सप्तमी—सेनान्याम्, सेनान्यो, सेनानीषु, सम्बोधन—सेनानी ।

अग्रणी (अग्रगण्य), ग्रामणी (ग्रामका प्रधान, नाई)। अग्रणी प्रभृति 'नी' धातु निष्पन्न शब्दोंके रूप 'सेनानी' शब्दके तुल्य ।

'प्रधी'-शब्दके रूप 'सेनानी' शब्दके तुल्य, केवल सप्तमीके एकवचनमे 'प्रध्यि' होता है। 'वातप्रमी' (वायुवत् वेगगामी मृग)-शब्दके रूप 'सेनानी' शब्दके तुल्य, केवल द्वितीयाके एकवचन और बहुवचनमे यथाक्रम 'वातप्रमीम्' और 'वातप्रमीन्', तथा सप्तमीके एकवचनमे 'वातप्रमी' होता है ।

उकारान्त ।

साधु (सत् A noble and virtuous man) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	साधु.	साधू	साधव.
द्वितीया	साधुम्	साधू	साधून्
तृतीया	साधुना	साधुभ्याम्	साधुभि.
चतुर्थी	साधवे	साधुभ्याम्	साधुभ्यः
पञ्चमी	साधोः	साधुभ्याम्	साधुभ्यः
षष्ठी	साधो	साध्वो	साधूनाम्
सप्तमी	साधौ	साध्वो.	साधुषु
सम्बोधन	साधो	साधू	साधव.

सब उकारान्त पुलिङ्ग शब्दके रूप 'साधु'-शब्दके तुल्य* । यथा—

प्रभु, विभु (स्वामी), शिशु (बच्चा), विधु (चन्द्र), रिपु, शत्रु (विरक्त), वटु (बालक, ब्रह्मचारी), वायु (हवा), भानु (सूर्य्य और किरण)।

शुद्ध करो—सुशील पुरुषा । साधु मानवा । साधवो ऋषि । उज्ज्वल भानव । पटु मनुष्या ।

ऊकारान्त।

प्रतिभू शब्द (तत्स्थानीय, ज़ामिन Bail, surety)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्रतिभूः	प्रतिभुवौ	प्रतिभुवः
द्वितीया	प्रतिभुवम्	प्रतिभुवौ	प्रतिभुवः
तृतीया	प्रतिभुवा	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभिः
चतुर्थी	प्रतिभुवे	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभ्यः
*पञ्चमी	प्रतिभुवः	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभ्यः

* क्रोष्टु(शृगाल)-शब्दके रूप—१मा—क्रोष्टा, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः, २या—क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ, क्रोष्टून्, ३या—क्रोष्ट्रा क्रोष्टुना, क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टुभिः, ४र्थी—क्रोष्ट्रे क्रोष्टवे, क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टुभ्यः, ५मी—क्रोष्टुः क्रोष्टोः, क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टुभ्यः, ६ष्ठी—क्रोष्टुः क्रोष्टोः, क्रोष्ट्रोः क्रोष्ट्वोः, क्रोष्टूनाम्; ७मी—क्रोष्टरि क्रोष्टौ, क्रोष्ट्रोः क्रोष्ट्वोः, क्रोष्टुषु, सम्बोधन—क्रोष्टो, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः।

प्रश्न। (१) 'विभौ'—यह पद सप्तमीके एकवचनमें किस किस शब्दसे निष्पन्न हो सकता है? (२) सुश्री और स्वयम्भू शब्दके रूप लिखो।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
षष्ठी	प्रतिभुवः	प्रतिभुवोः	प्रतिभुवाम्
सप्तमी	प्रतिभुवि	प्रतिभुवोः	प्रतिभूषु
सम्बोधन	प्रतिभूः	प्रतिभुवौ	प्रतिभुवः

मनोभू (कन्दर्प, काम), अग्निभू (कार्त्तिकेय), स्वभू, स्वयम्भू (ब्रह्मा, विष्णु, शिव), अधिभू (प्रभु);—ऐसे क्विबन्त ऊकारान्त शब्दके रूप 'प्रतिभू-शब्दके तुल्य'*।

अनुवाद करो—साधुलोग सब स्थानोंमें (सर्वत्र) विचरन करते हैं (विचरन्ति)। साधु द्वारा यह संसार पवित्र। भानु प्रखर किरण वितरण करता है (वितरति)। पशु जो आहार पाते हैं (प्राप्नुवन्ति), वही खाते हैं (भक्षयन्ति)। सुधी व्यक्तिका (द्विजोंका) सबलोग सम्मान करते हैं (सम्मानयन्ति)। उन सभी शिशुको अवलोकन करो (अवलोकय)। अग्नि शुष्क तरुको दग्ध करती है (दहति)। ऋषिलोग वेद पढ़ते हैं (पठन्ति)। वे तुम्हे जानित मानते हैं (मन्यन्ते)। स्वयम्भूको प्रणाम करो (प्रणम)।

* * * *

सुलू शब्द (उत्तम छेदनकारी A good cutter)।

प्रथमा—सुलूः, सुल्वौ, सुल्वः, द्वितीया—सुल्वम्, सुल्वौ, सुल्वः; तृतीया—सुल्वा, सुलूभ्याम्, सुलूभिः, चतुर्थी—सुल्वे, सुलूभ्याम्, सुलूभ्यः, पञ्चमी—सुल्वः, सुलूभ्याम्, सुलूभ्यः, षष्ठी—सुल्वः, सुल्वोः, सुल्वाम्, सप्तमी—सुल्वि, सुल्वोः, सुलूषु, सम्बोधन—सुलूः।

---

* 'प्रभू'-शब्दभी इसप्रकार।

खलट् (फरंन, झाड़दार), वर्षाभू (भेक), करभू (नख) दृन्भू (सर्प, सूर्य्य चक्र, वज्र)—इन शब्दोंके रूप 'खल्पू'-शब्दके तुल्य । 'हूहू'-शब्दके रूप 'खल्पू'-शब्दके तुल्य, केवल द्वितीयाके एकव-चनमें 'हूहूम्' और बहुवचनमें 'हूहून्' होता है ।

ऋकारान्त ।

दातृ शब्द (जो दान करता है A giver) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दाता	दातारौ	दातार
द्वितीया	दातारम्	दातारौ	दातॄन्
तृतीया	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभि
चतुर्थी	दात्रे	दातृभ्याम्	दातृभ्य॰
पञ्चमी	दातुः	दातृभ्याम्	दातृभ्य॰
षष्ठी	दातु॰	दात्रो॰	दातॄणाम्
सप्तमी	दातरि	दात्रो॰	दातृषु
सम्बोधन	दात॰	दातारौ	दातार॰

'पितृ'-प्रभृति*-भिन्न सब ऋकारान्त पुलिङ्ग शब्दके रूप 'दातृ' शब्दके तुल्य । यथा—

कर्त्तृ (जो करता है), धातृ, विधातृ (जो विधान करता है); द्रष्टृ (दर्शनकारी), श्रोतृ (श्रवणकारी); ज्ञातृ (जो जानता है, बोद्धा), सवितृ (सूर्य्य), जेतृ (जयकारी), हन्तृ (हननकारी), क्रेतृ (जो

---

* पिता माता ननन्दा ना सव्येष्ठृ-भ्रातृ-यातर ।
जामाता दुहिता देवा न तृणन्ता इमे दश ॥

कर करता है), स्रष्टृ (सृष्टिकर्त्ता) ।

पितृ शब्द (जनक, बाप Father)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पिता	पितरौ	पितरः
द्वितीया	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृतीया	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
चतुर्थी	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
पञ्चमी	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
षष्ठी	पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
सप्तमी	पितरि	पित्रोः	पितृषु
सम्बोधन	पितः	पितरौ	पितरः

भ्रातृ (भाई), जामातृ (दामाद), देवृ (देवर) सव्येष्टृ (सारथि), नृ (नर) ,—इन शब्दोंके रूप 'पितृ'-शब्दके तुल्य ; केवल 'नृ'-शब्दकी षष्ठीके बहुवचनमें 'नृणाम् , नॄणाम्'—ये दो पद होते हैं ।

※ हिन्दीमें जहाँ 'दो, देता है, देता हूँ' इत्यादि दानार्थक धातु की क्रियाके साथमें 'को' विभक्तिका प्रयोग रहता है, संस्कृतमें वहाँ [सम्प्रदाने] चतुर्थी विभक्ति होती है , यथा—(दाता दरिद्रको धन देता है) दाता दरिद्राय धनं ददाति , (तू वस्त्रहीनको वस्त्र दे) त्वं वस्त्रहीनाय वस्त्रं देहि ।

अनुवाद करो—शिक्षकको उपहार दो (देहि) । अध्यापक छात्रोंको आहार देते हैं (ददति) । विधाताको पुष्पाञ्जलि दो । हे

प्रश्न । 'पितृ' और 'दातृ' शब्दके बीचमें रूपका क्या वैषम्य है ?

विश्वात । तुझे क्या दूगा (किं दास्यामि) ? कन्यादाता दामादको उपहार देता है (यच्छति) । पिताको प्रणाम कर (प्रणम) । सारथि योद्धाको (योद्‌) (द्वितीया) रक्षा करता है (रक्षति) । हन्तापर विश्वास न करो (मा विश्वसिहि) । सूर्य्यको अर्घ दो । दुष्टको आश्रय नहीं देना (-दयात्) । मुझे दो । शरणागतको अभय दो ।

ऐकारान्त–'रै' (धनवाचक)-शब्दके रूप सन्धि-द्वारा साध्य , केवल विभक्तिका व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'रै'-शब्दके स्थानमे 'रा' होता है , यथा—रा , रायौ, राय , राभ्याम् इत्यादि ।

ओकारान्त ।

गो शब्द (बैल Bull) ।*

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गौः	गावौ	गावः
द्वितीया	गाम्	गावौ	गा
तृतीया	गवा	गोभ्याम्	गोभि
चतुर्थी	गवे	गोभ्याम्	गोभ्य·
पञ्चमी	गो	गोभ्याम्	गोभ्य·
षष्ठी	गो.	गवो	गवाम्
सप्तमी	गवि	गवोः	गोषु
सम्बोधन	गौ·	गावौ	गावः

औकारान्त–ग्लौ शब्द (चन्द्र , कर्पूर Moon , camphor) ।

प्रथमा ग्लौ , ग्लावौ, ग्लाव , द्वितीया–ग्लावम् , ग्लावौ, ग्लाव ;

---

* 'गाय' अर्थमे 'गो'-शब्द स्त्रीलिङ्ग होता है । रूप इसीप्रकार ।

तृतीया-ग्लावा, ग्लौभ्याम्, ग्लौभि, चतुर्थी-ग्लावे, ग्लौभ्याम्, ग्लौभ्य, पञ्चमी-ग्लाव, ग्लौभ्याम्, ग्लाभ्य, षष्ठी-ग्लाव, ग्लावो, ग्लावाम्, सप्तमी-ग्लावि, ग्लावो, ग्लौषु, सम्बोधन-ग्लौ !

अनुवाद करो-काली गौ। यति गायको घास देता है (ददाति)। गृहपति गायोंको बांधता है (बध्नाति)। चञ्चल बालक गायके साथ दौड़ते हैं (धावन्ति)। मेघ वायुके साथ यातायात करता है (गतागत करोति)।



स्त्रीलिङ्ग-निर्णय।

१६१। (क) आकारान्त शब्द प्राय स्त्रीलिङ्ग, यथा-माला, शाखा, बाला, कन्या इत्यादि।

(ख) स्त्रीजातीय प्राणिवाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग*, यथा-हस्ती, कुमारी।

(ग) एकस्वर ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग ; यथा—धी, भू।

(घ) भूमि, विद्युत्, नदी, लता, रात्रि, दिक्, श्रेणि, बुद्धि, वार्ता, शोभा, सम्पत् और विपत्-पर्याय शब्द स्त्रीलिङ्ग।

(ङ) 'प्रतिपद्'-प्रभृति तिथिवाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग।

(च) 'ऊनविंशति' से 'नवनवति' तक सङ्ख्यावाचक शब्दभी स्त्रीलिङ्ग।

(छ) अप्, अप्सरस्, ओकस्, (पुष्पार्थे) सुमनस्, और सिकता शब्द स्त्रीलिङ्ग।

(ज) समूहार्थ और भावार्थमें विहित 'तल्'-प्रत्ययान्त शब्द स्त्री-

* किन्तु 'दार'-शब्द पुंलिङ्ग, 'कलत्र'-शब्द क्लीबलिङ्ग।

लिङ्ग, यथा—जनता (जनसमूह), लघुता, गुरुता, मूर्खता ।

(ङ) क्ति, अ, अङ्, क्यप्, श और अनि प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग, यथा-(क्ति) मति, (अ) प्रशंसा, (अङ्) भीषा, (क्यप्) विद्या, (श) क्रिया, (अनि) तरणि —किन्तु 'अशनि' शब्द पु०, स्त्री०।

स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१६२ । आकारान्त और ईकारान्त शब्दके 'स' का लोप होता है, यथा-लता + स = लता, नदी + स = नदी ।*

१६३ । आकारान्त और इकारान्त शब्दके 'औ' के स्थानमें 'ई', और उकारान्त शब्दके 'औ' के स्थानमें 'ऊ' होता है, यथा—लता + औ = लता + ई = लते, मति + औ = मति + ई = मती, धेनु + औ = धेनु + ऊ = धेनू ।

१६४ । 'टा' और 'ओस्' परे रहनेसे, आकारके स्थानमें 'अय्' होता है, यथा—लता + टा = लत् + अय् + आ = लतया, लता + ओस् = लत् + अय् + ओः = लतयोः ।

१६५ । 'ङे', 'ङसि', 'ङस्' और 'ङि' परे रहनेसे, आकारके पश्चात् अकारान्त 'य' होता है, और 'ङि' के स्थानमें 'आम्' होता है, यथा-लता + ङे = लता + य + ए = लतायै, लता + ङसि = लता + य + अ = लतायाः; लता + ङस् = लता + य + अ = लतायाः, लता + ङि = लता + य + आम् = लतायाम् ।

१६६ । आकारान्त शब्दके 'आम्' के स्थानमें 'नाम्' होता है;

---

* लक्ष्मी, तरी, तन्त्री, श्री, ह्री, धी प्रभृतिके नहीं होता ।

यथा—लता + आम् = लता + नाम् = लतानाम्।

१५७। आकारान्त शब्दके सम्बोधनमें 'सि' का लोप, और आकारके स्थानमें एकार होता है; यथा—लता + सि = लत् + ए = लते।

१५८। इकारान्त, उकारान्त और बहुस्वरविशिष्ट-भिन्न ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दके 'अम्' और 'शस्' के अकारका लोप होता है; यथा—मति + अम् = मति + म् = मतिम्, धेनु + अम् = धेनु + म् = धेनुम्; नदी + अम् = नदी + म् = नदीम्; नदी + शस् = नदी + स = नदी + : = नदीः।

१५९। 'शस्' परे रहनेसे, पूर्वस्वर दीर्घ होता है; यथा—मति + शस् = मती + अः = मती + : = मतीः; धेनु + शस् = धेनू + अः = धेनू + : = धेनूः।

१६०। इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'ङे' के स्थानमें 'ऐ', और 'ङसि' तथा 'ङस्'के स्थानमें 'आः' होता है—विकल्पसे। विकल्पपक्षमें—इकारके स्थानमें एकार, और उकारके स्थानमें ओकार होता है; पश्चात् 'ङसि' और 'ङस्' के अकारका लोप होता है। यथा—मति + ङे = मति + ऐ = मत्यै, पक्षे—मति + ङे = मत् + ए + ए = मते + ए = मतये। धेनु + ङसि = धेनु + आः = धेन्वाः; पक्षे—धेनु + ङसि = धेन् + ओ + ङसि = धेनो + अः = धेनो + : = धेनोः।

१६१। इकारान्त, उकारान्त और ऋकारान्त शब्दके 'आम्' के स्थानमें 'नाम्' होता है, और पूर्वस्वर दीर्घ होता है; यथा—मति + आम् = मति + नाम् = मती + नाम् = मतीनाम्; धेनु + आम् = धेनु + नाम् = धेनूनाम्; स्वसृ + आम् = स्वसृ + नाम् = स्वसॄ + नाम् = स्वसॄणाम्

(सू० १००) ।

१६२ । इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'ङि' के स्थानमें 'आम्' और 'औ' होते हैं , औकार परे रहनेसे, इकार और उकारका लोप होता है। यथा—मति + ङि = मति + आम् = मत्याम् , पक्षे—मति + ङि = मति + औ = मत् + औ = मतौ । धेनु + ङि = धेनु + आम् = धेन्वाम् , पक्षे—धेनु + ङि = धेनु + औ = धेन् + औ = धेनौ ।

१६३ । इकारान्त और उकारान्त शब्दके सम्बोधनके एकवचनमें 'इ' के स्थानमें 'ए', और 'उ' के स्थानमें 'ओ' होता है , यथा-मति + सु = मते (१३९ सू०) , धेनु + सु = धेनो ।

१६४ । ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दके 'ङे'के स्थानमें 'ऐ', 'ङसि' तथा 'ङस्'के स्थानमें 'आ', और 'ङि' के स्थानमें 'आम्' होता है, धातुनिष्पन्न होनेसे विकल्पसे होता है । यथा—नदी + ङे = नदी + ऐ = नद्यै , वधू + ङसि = वधू + आ = वध्वा , वधू + ङि = वधू + आम् = वध्वाम् । (धातुनिष्पन्न) श्री + ङे = श्री + ऐ = श् + इय् + ऐ = श्रियै (१४२ सू०) , पक्षे—श्री + ङे = श्री + ए = श्रिये (१४२ सू०) , श्री + ङसि = श्री + आ = श् + इय् + आ = श्रिया (१४२ सू०) , भू + ङि = भू + आम् = भ् + उव् + आम् = भुवाम् (१४२ सू०), पक्षे—भू + ङि = भू + इ = भ् + उव् + इ = भुवि (१४२ सू०) ।

१६५ । ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दके 'आम्' के स्थानमें 'नाम्' होता है , यथा—नदी + आम् = नदीनाम् , वधू + आम् = वधूनाम् ; स्त्री + आम् = स्त्री + नाम् = स्त्रीणाम् (१०० सू०), भू + आम् = भूनाम् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	एताम्	एते	एताः
तृतीया	एतया	एताभ्याम्	एताभि
चतुर्थी	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्य
पञ्चमी	एतस्या	एताभ्याम्	एताभ्य
षष्ठी	एतस्या	एतयो.	एतासाम्
सप्तमी	एतस्याम्	एतयो॰	एतासु

किम् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	का	के	का.
द्वितीया	काम्	के	काः
तृतीया	कया	काभ्याम्	काभि'
चतुर्थी	कस्यै	काभ्याम्	काभ्य
पञ्चमी	कस्याः	काभ्याम्	काभ्य
षष्ठी	कस्या	कयो	कासाम्
सप्तमी	कस्याम्	कयो	कासु

अनुवाद करो—सब देवता पूजासे सन्तुष्ट होते हैं (सन्तुष्यन्ति)। किस देवताको पुष्पाञ्जलि दूंगा (दास्यामि)? ममता क्या? श्याम क्या वृत्तान्त (वार्त्ता) कहता है (कथयति)? इसके लिये दया। पिपासासे आकुल होता है (आकुलीभवति) जरासे मनुष्य दुर्बल होता है (भवति)।

शुद्ध करो—तेन बालिकश उपकारान् भवन्ति। तस्मै बालिकाय

उपहारान् ददाति। एता एव देवीन् वेत्ति। या जन एव देवताम् उपास्ते (उपासना करता है), अत तस्मै स्वस्ति ददाति।

इदम् शब्द।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इयम्	इमे	इमाः
द्वितीया	इमाम्	इमे	इमाः
तृतीया	अनया	आभ्याम्	आभिः
चतुर्थी	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
पञ्चमी	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
षष्ठी	अस्याः	अनयोः	आसाम्
सप्तमी	अस्याम्	अनयोः	आसु

अदस् शब्द।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	असौ	अमू	अमूः
द्वितीया	अमूम्	अमू	अमूः
तृतीया	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
चतुर्थी	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
पञ्चमी	अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
षष्ठी	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
सप्तमी	अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु

प्रश्न। 'पन्थ' और 'तनुपे'-इन दोनों पदोंमें पुल्लिङ्गके रूपसे साथ क्या पार्थक्य है?

अनुवाद करो—कौन वह बालिका? वह लड़की उस चिन्तासे विह्वल होती है (भवति)। उस आतुरा वृद्धाको (द्वितीया) घृणा न करो (न कदर्थय)। इस लज्जासे मेरे प्राण जाते हैं (प्रयान्ति)। वे गोपकन्यायें छलसे (छलेन अथवा छलात्) नृत्य करती हैं (नृत्यन्ति)। उनको उपहार दो (देहि)। इस दुर्दशासे पीड़ित होकर (सन्) अनेक यातनायें अनुभव करता हूँ (अनुभवामि)। विविध उपचारोंसे इस देवताको (द्वितीया) पूजा करो (पूजय)। यह देवता ही (एव) मङ्गल (स्वस्ति) विधान करेगा (विधास्यति)।

इकारान्त।

मति शब्द (बुद्धि Intellect)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मतिः	मती	मतयः
द्वितीया	मतिम्	मती	मतीः
तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
चतुर्थी	मत्यै, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
पञ्चमी	मत्याः, मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
षष्ठी	मत्याः, मतेः	मत्योः	मतीनाम्
सप्तमी	मत्याम्, मतौ	मत्योः	मतिषु
सम्बोधन	मते	मती	मतयः

सब इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'मति'-शब्दके तुल्य। यथा—क्षिति (पृथिवी), बुद्धि (ज्ञान), गति (गमन; उपाय), सन्तति ([illegible]), धूलि (धूल); कान्ति (सौन्दर्य्य), भ्रान्ति (भ्रम),

श्रान्ति (श्रम), आलि, श्रेणि, पङ्क्ति (कतार), स्मृति (स्मरण, धर्मशास्त्र); प्रणति (प्रणाम)।

द्वि शब्द—द्वा । द्विवचनान्त ।

१मा	२या	३या	४र्थी	५मी	६ष्ठी	७मी
द्वे	द्वे	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वयोः	द्वयोः

त्रिशब्द । बहुवचनान्त ।

१मा	२या	३या	४र्थी	५मी	६ष्ठी	७मी
तिस्रः	तिस्रः	तिसृभिः	तिसृभ्यः	तिसृभ्यः	तिसृणाम्	तिसृषु

अनुवाद करो—श्रमशील मानव शान्ति पाता है (प्राप्नोति)। भक्ति मुक्ति देती है (ददाति)। एकमात्र (केवल) बुद्धिसे उसने यह सम्पत्ति पायी (अलभत)। दो ब्रततियाँ एक तरुको वेष्टन करती हैं (वेष्टेते)। भ्रान्ति बुद्धिको लुप्त करती है (लुम्पति)। वृक्षश्रेणिके बीचमें (अन्तराले) भानुकी रश्मि प्रविष्ट होती है (प्रविशति)। हमने मिताक्षराके साथ याज्ञवल्क्यकी स्मृति पढ़ी थी (पठितवन्तः)। धूलिसे दर्पण मलिन होता है (मलिनयते)।

ईकारान्त ।

नदी शब्द (River)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वितीया	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृतीया	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
चतुर्थी	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः

तर स्त्रिय ।

उकारान्त ।

धेनु शब्द (गाय Cow) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वितीया	धेनुम्	धेनू	धेनूः
तृतीया	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
चतुर्थी	धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
पञ्चमी	धेन्वाः, धेनोः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
षष्ठी	धेन्वाः, धेनोः	धेन्वोः	धेनूनाम्
सप्तमी	धेन्वाम्, धेनौ	धेन्वोः	धेनुषु
सम्बोधन	धेनो	धेनू	धेनवः

सब उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'धेनु'-शब्दके तुल्य । यथा—चञ्चु (चोंच), रज्जु (रस्सी), तनु (शरीर) ; रेणु (धूलि) ; काकु (विकृतकण्ठध्वनि) ।

ऊकारान्त ।

वधू शब्द (बहू Bride, wife) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वधूः	वध्वौ	वध्वः
द्वितीया	वधूम्	वध्वौ	वधूः
तृतीया	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
चतुर्थी	वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
षष्ठी	वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्
सप्तमी	वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु
सम्बोधन	वधु	वध्वौ	वध्वः

प्रायः सब ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'वधू'-शब्दके तुल्य। यथा—

चञ्चू (चोंच), चमू (सेना), श्वश्रू (सास), तनू (शरीर)।

※ हिन्दीमें जहाँ 'से' चिह्न रहता है, संस्कृतमें वहाँ [अपादाने] पञ्चमी विभक्ति होती है, यथा—(विद्यालयसे छात्र आता है) विद्यालयात् छात्रः आगच्छति, (आदमी व्याघ्रसे डरता है) नरः व्याघ्रात् बिभेति, (लोहेसे बाण उत्पन्न होता है) लोहात् बाणः उत्पद्यते।

अनुवाद करो—मेघसे वृष्टि होती है (भवति)। शिक्षकसे विद्या सीखता है (शिक्षते)। असाधु धर्मसे नहीं डरता (न बिभेति)। चिड़ियायें (विहग) चोंचसे आहार ग्रहण करती हैं (गृह्णन्ति)। लड़के धूलसे खेलते हैं (क्रीडन्ति)। रस्सीसे गायको बांधता है (बध्नाति)। हरि स्त्रीके साथ बात कर रहा है (आलपति)। यतिलोग सर्वदा सब स्त्रियोंको (द्वितीया) माताके समान (मातृवत्) आदर करते हैं (आद्रियन्ते)। पण्डितलोग बुद्धिसे (धी) सब मार्ग समझते हैं (बुध्यन्ते)। ससुर बहूको उपदेश देता है (उपदिशति)।

भू शब्द (पृथिवी ; स्थान Earth ; place) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भूः	भुवौ	भुवः
द्वितीया	भुवम्	भुवौ	भुवः
तृतीया	भुवा	भूभ्याम्	भूभिः
चतुर्थी	भुवै, भुवे	भूभ्याम्	भूभ्यः
पञ्चमी	भुवाः, भुवः	भूभ्याम्	भूभ्यः
षष्ठी	भुवाः , भुवः	भुवोः	भूनाम्, भुवाम्
सप्तमी	भुवाम्, भुवि	भुवोः	भूषु
सम्बोधन	भूः	भुवौ	भुवः

भ्रू (नेत्रके ऊर्द्धस्थ रोमराजि), सुभ्रू (सुन्दरभ्रूयुक्त) ;— इनके रूप 'भू' शब्दके तुल्य , केवल 'सुभ्रू' शब्दके सम्बोधनके एकवचनमें 'सुभ्रु' होता है । (पाणिनि मते—सुभ्रू) । "विनामना सुभ्रु ! कुत पितुर्गृहे ?" कु ५ ४३ ।

ऋकारान्त ।

स्वसृ शब्द (भगिनी, बहिन Sister) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः
द्वितीया	स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसॄः
तृतीया	स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः
चतुर्थी	स्वस्रे	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
पञ्चमी	स्वसुः	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
षष्ठी	स्वसुः	स्वस्रोः	स्वसॄणाम्
सप्तमी	स्वसरि	स्वस्रोः	स्वसृषु
सम्बोधन	स्वसः	स्वसारौ	स्वसारः

मातृ शब्द (मा Mother)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	माता	मातरौ	मातरः
द्वितीया	मातरम्	मातरौ	मातॄः
तृतीया	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
चतुर्थी	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
पञ्चमी	मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
षष्ठी	मातुः	मात्रोः	मातॄणाम्
सप्तमी	मातरि	मात्रोः	मातृषु
सम्बोधन	मातः	मातरौ	मातरः

दुहितृ (कन्या), यातृ (पतिकी भ्रातृपत्नी), ननन्दृ वा ननान्दृ (भर्तृभगिनी);—इनके रूप 'मातृ' शब्दके तुल्य।

ओकारान्त—गो और द्यो शब्द पुंलिङ्ग 'गो'-शब्दके तुल्य, यथा—द्यौः, द्यावौ, द्यावः इत्यादि।

औकारान्त—'नौ' शब्द पुंलिङ्ग 'ग्लौ'-शब्दके तुल्य।

शुद्ध करो—रघु ननान्द्रा सह कलहं करोति। पिता चिराय श्रोतॄन् दुहितॄन् ददाति। जलेनाहं मातॄन् तर्पयामि (तर्पण करता हूँ)। विन-जना विधवा स्वसा बिभ्रति (पोषण करते हैं)। ये भ्राता स्वसॄन्

क्लीवलिङ्ग होता है, यथा—एकरात्रम्, द्विरात्रम्।

(ग) समाहारद्विगुसमासनिष्पन्न पात्रादि शब्द क्लीवलिङ्ग, यथा—पञ्चपात्रम्, त्रिभुवनम् इत्यादि। पात्रादि-भिन्न—त्रिलोकी—स्त्रीलिङ्ग।

(घ) संख्या और अव्यय पूर्वक कृत-समासान्त 'पथ'-शब्द क्लीवलिङ्ग, यथा—त्रिपथम्, चतुष्पथम्, विपथम् इत्यादि।

(ङ) 'पुण्य' और 'सुदिन' शब्द पूर्वक 'अह' भागान्त शब्द क्लीवलिङ्ग, यथा—पुण्याहम्, सुदिनाहम्।

(च) क्रियाका विशेषण और अव्यय शब्दका विशेषण क्लीवलिङ्ग होता है, यथा—स्तोकं पचति, शोभनं स्वः।

स्वरान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र।

१७१। अकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके 'सु' और 'अम्' के स्थानमें 'म्' होता है, यथा—फल+सु=फल+म्=फलम्, फल+अम्=फल+म्=फलम्।

१७२। क्लीवलिङ्ग शब्दके 'औ' के स्थानमें 'ई', और 'जस्' तथा 'शस्' के स्थानमें 'नि' होता है, 'नि' और 'आम्' पर पूर्वस्वर दीर्घ होता है, यथा—फल+औ=फल+ई=फले, वन+जस=वन+नि=वना+नि=वनानि, वारि+आम्=वारि+नाम् (१६१ सू)=वारी+नाम्=वारी+णाम्=वारीणाम्।

१७३। सम्बोधनमें क्लीवलिङ्ग शब्दके 'सु' का लोप होता है, यथा—फल+सु=फल।

१७४। इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'सु' और 'अम्' का लोप

होता है, और स्वरवर्ण पर रहनेसे 'न्' होता है, यथा—वारि — ए = वारि; मधु + सु = मधु, वारि + औ = वारि + न + ई = वारिणी ।

१७८ । सम्बोधनके एकवचनमें 'इ' के स्थानमें 'ए', और 'उ' के स्थानमें 'ओ' होता है—विकल्पमें, यथा—वारि + सु = वार (१३६सू), पक्षे—वारि, अम्बु + सु = अम्बो, पक्षे—अम्बु ।

स्वरान्त क्लीबलिङ्ग शब्द ।

अकारान्त ।

फल शब्द (Fruit) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	फलम्	फले	फलानि
द्वितीया	फलम्	फले	फलानि
सम्बोधन	फल	फले	फलानि

अवशिष्ट विभक्तियोंमें पुंलिङ्ग 'देव' शब्दके तुल्य ।

प्रायः सब अकारान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके रूप 'फल' शब्दके तुल्य । यथा—

शास्त्र (ऋषिप्रणीत ग्रन्थ), वन, कानन, अरण्य (वन), पुष्प, कुसुम (फूल), तृण (घास), शष्प (नया घास), मुख, आनन, आस्य, वदन (मुख), नयन, लोचन, नेत्र (आँख), उदक (जल), चित्त (मन)।

※ 'पृथक्' और 'विना' शब्दके योगमें द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—(रामसे श्याम पृथक्) रामं

श्याम पृथक्, (मैं तुमसे पृथक् नहीं) नाहं त्वया पृथक्, (सुवर्णसे रौप्य पृथक्) सुवर्णात् रौप्य पृथक् । (ज्ञान विना सुख नहीं होता) ज्ञान विना सुख न भवति, (उद्योग विना कार्य्य सिद्ध नहीं होता) उद्योगेन विना कार्य्यं न सिध्यति, (अधर्म विना दुःख कहाँ ?) अधर्मात् विना दुःख कुत ? ।

अनुवाद करो—धन विना मान नहीं होता (न भवति) । जल विना पिपासा नहीं जाती (न उपशाम्यति) । गुरुके उपदेश विना शिक्षा नहीं होती । पशुसे मधु पृथक् । पुष्प विना देवार्चना नहीं होती । पिपासातुर जल पीता है (पिबति) । आगसे वन दग्ध होता है (भवति) । प्रातःकाल (प्रातः) मुख धोना चाहिये (प्रक्षालयेत्) । जलसे तृष्णा दूर होती है (दूरीभवति) । सब शास्त्र पढ़े गये (अधीतानि) । मेरा हृदय अत्यन्त आकुल होता है (आकुलीभवति) । तृणसे समस्त स्थान आच्छादित । वृश्चिकसे भू अङ्कित करता है (अङ्कयति) । जो भूमिपर (सप्तमी विभक्ति) विचरण करते हैं (विचरन्ति), उनको 'भूचर' कहते हैं (वदन्ति) । विनोद उसकी भगिनीका (द्वितीया) आदर करता है (आद्रियते) । ममली (मध्यमा) बहू अपनी (षष्ठीया) ननदको (द्वितीया) अवज्ञा करती है (अवजानाति) । वह उत्तम पात्रके लिये (सम्प्रदाने चतुर्थी) दुहिताका (द्वितीया) अर्पण करता है (अर्पयति) ।

* * * *

हृदय शब्द (वक्षःस्थल , मन Heart, mind) ।

प्रथमा—हृदयम्, हृदये, हृदयानि, द्वितीया—हृदयम्, हृदये, हृदयानि

हृन्दि, तृतीया—हृदयेन हृदा, हृदयाभ्याम् हृद्भ्याम्, हृदयै हृद्भिः, चतुर्थी—हृदयाय हृदे, हृदयाभ्याम् हृद्भ्याम्, हृदयेभ्य हृद्भ्य, पञ्चमी—हृदयात् हृद, हृदयाभ्याम् हृद्भ्याम्, हृदयेभ्य हृद्भ्य, षष्ठी—हृदयस्य हृद, हृदययोः हृदो, हृदयानाम् हृदाम्, सप्तमी—हृदय हृदि, हृदययो हृदो, हृदयेषु हृत्सु, सम्बोधन—हृदय ।

अजर शब्द ।

प्रथमा—अजरम्, अजरे अजरसी, अजराणि अजरांसि, द्वितीया विभक्तिमे प्रथमाके तुल्य, अन्यान्य विभक्तियोंमे पुलिङ्ग 'निर्जर'-शब्दके तुल्य, सम्बोधन—अजर ।

सर्वनाम क्लीवलिङ्ग ।

सर्व शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वितीया	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
सम्बोधन	सर्व	सर्वे	सर्वाणि

अन्यान्य विभक्तियोमे पुलिङ्ग 'सर्व'-शब्दके तुल्य ।

सर्वादि, पूर्वादि और अन्यादि समस्त सर्वनाम शब्दके रूप 'सर्व'-शब्दके तुल्य; केवल प्रथमा, द्वितीया और सम्बोधनके एकवचनमे अन्यादि श[ब्द]के अन्तमे 'द्' होता है, यथा—अन्यत्, अन्यतरत् इत्यादि ।

यद् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	[य]त्	ये	यानि
द्वितीय	[य]त्	ये	यानि

तद् शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१ मा	तत्	ते	तानि
२ या	तत्	ते	तानि

एतद् शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एतत्	एते	एतानि
द्वितीया	एतत्	एते	एतानि

किम् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	किम्	के	कानि
द्वितीया	किम्	के	कानि

इदम् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इदम्	इमे	इमानि
द्वितीया	इदम्	इमे	इमानि

अदस् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अद	अमू	[illegible]नि
द्वितीया	अद	अमू	[illegible]

अन्यान्य विभक्तियोंके [illegible] [illegible] ।

[illegible] होना या अधिक निर्धारित [illegible] अर्थात्

जिसमें दूसरेका अपकर्ष अथवा उत्कर्ष अवधारित होता है, उसके उत्तर पञ्चमी विभक्ति होती है, यथा—(रामसे श्याम कुत्सित) रामात् श्यामः कुत्सितः, (तुमसे मैं बड़ा हूं) त्वत् अहं ज्यायान् ।

अनुवाद करो—इस फलमें यह फल प्रयोजनीय । ग्रामसे नगर बड़ा (महत्) । जननीसे गुरु नहीं (नास्ति) । भाईसे बन्धु नहीं । हाथसे पांव बड़ा (दीर्घतर) । नदीसे जल आता है (आयाति) । छत्र-द्वारा आतप निवारण करता है (निवारयति) । इस वनसे व्याघ्र स्थानान्तर-को (स्थानान्तरम्) गया (अगच्छत्) । इस वृक्षसे मीठा फल गिरता है (पतति) । जो होनेका (भाव्यम्), सो होगा (भविष्यति) ।

इकारान्त ।

वारि शब्द (जल Water) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वितीया	वारि	वारिणी	वारीणि
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पञ्चमी	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	वारिणोः	वारिषु
सम्बोधन	वारे, वारि	वारिणी	वारीणि

प्रायः सब इकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'वारि'-शब्दके तुल्य ।

दधि शब्द (दही Curd)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दधि	दधिनी	दधीनि
द्वितीया	दधि	दधिनी	दधीनि
तृतीया	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
चतुर्थी	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
पञ्चमी	दध्नः	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
षष्ठी	दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्
सप्तमी	दध्नि, दधनि	दध्नोः	दधिषु
सम्बोधन	दधे, दधि	दधिनी	दधीनि

अस्थि (हड्डी), अक्षि (चक्षु), सक्थि (ऊरु);—इनके रूप 'दधि' शब्दके तुल्य।

शुद्ध करो—विप्राः वारि पिबति। दधिना भक्षान् खादति। मम अक्षि पश्यसि? एकेन अक्षिणा हीन। के फलं? असौ वनम्। इमानि वृक्षाः। एष काननम्। तानि पुष्पे। इदं माया। सर्वान् तृणान्। अन्यं सुखम्। इमे सुखानि। यानि दुःखम्। इमानि पुस्तका। एष शय्या। असौ फलम्। अयं वन।

द्वि शब्द।

१मा	२या	३या	४र्थी	५मी	६ष्ठी	७मी
द्वे	द्वे	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वयोः	द्वयोः

त्रि शब्द।

१मा	२या	३या	४र्थी	५मी	६ष्ठी	७मी
त्रीणि	त्रीणि	त्रिभिः	त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	त्रयाणाम्	त्रिषु

अनुवाद करो—दो मुख। तीन नेत्र। एक नक्षत्र। दो तारायें। तीन ब्राह्मण। तीन नदियां यहां (अत्र) मिली हैं (मिलितवत्य)। यह वानर किस वनसे आया है (आगच्छत्)? किस पुष्करिणीसे इन पद्मोंको लाया (आनीतवान्)? माता कौन द्रव्य देती है (ददाति)? मैं तीन दुहिताओंका (द्वितीया) पालन करता हूँ (पालयामि)। दुष्ट बालकके साथ मत खेल (मा क्रीड)। शिक्षक बालकोंका देखता। जो हित शासन करता है (शास्ति), वही शास्त्र।

* * * *

टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, ङि और ओस् विभक्तिमें उक्तपुंस्क* अर्थात् विशेषण इकारान्त, उकारान्त और ऋकारान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके रूप विकल्पसे पुलिङ्गके तुल्य होते हैं, यथा—शुचिने शुचये, स्वादुने स्वादवे, पातृणा पात्रा इत्यादि।

※ हेतु अर्थमें तृतीया और पञ्चमी विभक्ति होती हैं, यथा—(दुःखहेतु—दुःखमें—रोता है) दुःखेन रोदिति, (हर्षहेतु—हर्षसे—नाचता है) हर्षात् नृत्यति।

अनुवाद करो—गर्वके कारण किसीसे (केनचित्) बोलता नहीं (न भाषते)। उसलिये सब व्यवहार अविद्यामूलक। जिसलिये यह पाठ सुना न सका (श्रावयितुं न अपारयत्), तिसलिये मैं उसे दण्ड

---

* जो शब्द पुलिङ्ग और क्लीवलिङ्गमें एकही आकारमें एकही अर्थ प्रकाश करता है, उसको 'उक्तपुंस्क (भाषितपुंस्क) क्लीवलिङ्ग शब्द' कहते हैं, यथा—शुचि (पवित्र) ब्राह्मण, शुचि (पवित्र) जल।

दंगा (दण्डयिष्यामि) ।

उकारान्त ।

मधु शब्द (Honey) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वितीया	मधु	मधुनी	मधूनि:
तृतीया	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
चतुर्थी	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्य·
पञ्चमी	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्य·
षष्ठी	मधुन·	मधुनो.	मधूनाम्
सप्तमी	मधुनि	मधुनो	मधुषु
सम्बोधन	मधो, मधु	मधुनी	मधूनि

• सब उकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'मधु'-शब्दके तुल्य ।

ऋकारान्त—धातृ शब्द—(१मा, २या) धातृ, धातृणी, धातृणि, (सम्बोधन) धातृ धात, धातृणी, धातृणि । *अवशिष्ट 'दातृ'-शब्दके तुल्य ।

☞ हिन्दीमे जहाँ 'का, के, की' अथवा स्थलविशेषमे 'रा, रे, री' रहता है, वहाँ संस्कृतमे [सम्बन्धे] षष्ठी-विभक्तिका प्रयोग करना चाहिये, यथा-(उसका वस्त्र) तस्य वस्त्रम्, (मेरा घर)

---

* -याम्, भिस्, भ्यस् और सुप्-भिन्न विभक्तियोंमे 'न्' होता है; यथा—(टा) धातृणा, (ङे) धातृणे; (ङसि) धातृण ; (ङस्) धातृण , (ओस्) धातृणो , (ङि) धातृणि ।

मम गृहम् ।

अनुवाद करो—हमारा गुरु । तेरी पुस्तक । शत्रुकी छतरी (छत्र) । जिसको (षष्ठी) विद्या है (वर्त्तते), वह सर्वत्र सम्मान पाता है (लभते) । परशुरामने पिताकी आज्ञासे माताका शिरश्छेदन किया था (चकार) । उसका पुत्र मेरा दामाद । साधुशब्दोंके परिज्ञानके लिये व्याकरणशास्त्र उपयुक्त है (उपयुज्यते) । वेगवती नदीके जलसे स्वास्थ्य बढ़ता है (वर्द्धते) । आर्य्य (Sir) । चन्द्रकुमार मेरे हाथसे पुस्तक छीन लेता है (आच्छिनत्ति) ।

व्यञ्जनान्त पुंलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१७६ । व्यञ्जनान्त शब्दके 'सु' का लोप होता है, यथा-विश्वजित् + सु = विश्वजित् ।

१७७ । 'सु' और और 'सुप्' परे रहनेसे चकारान्त और जकारान्त शब्दके 'च्' तथा 'ज्' के स्थानमे 'क्', और 'भ' परे रहनेसे 'ग्' होता है; यथा—जल्मुच् + सु = जल्मुक्, जल्मुच् + भ्याम् = जल्मुग् + भ्याम् = जल्मुग्भ्याम्; जल्मुच् + सुप् = जल्मुक् + सु = जल्मुक् + षु (१०८ सू) = जल्मुक्षु ।

१७८ । 'सु' और 'सुप्' परे रहनेसे 'राज्' और 'सृज्'-भागान्त शब्दके 'ज्' के स्थानमे 'ट्', और 'भ' परे रहनेसे 'ड्' होता है, यथा—देवराज् + सु = देवराट्; विश्वसृज् + भ्याम् = विश्वसृड्भ्याम्, विश्वसृज् + सुप् = विश्वसृट् + सु = विश्वसृट्सु ।

१७९ । 'सु', 'औ', 'जस्' और 'अम्' परे रहनेसे, ऋकार-इत्

(शतृ और स्यतृ) प्रत्ययान्त शब्दके, और उकार-इत् (क्वसु, ईयसु और मतुप्)-प्रत्ययान्त शब्दके अन्त्यस्वरके पश्चात् 'न्' होता है; किन्तु अभ्यस्त शब्दके* नहीं होता।

१८०। 'स' परे रहनेसे, 'न्त्' और 'न्स्'-भागके अन्त्यवर्णका लोप होता है; यथा—पा (धातु)+शतृ (प्रत्यय)=पिबत् (शब्द)+स=पिबन्त्+स=पिबन्, या (धातु)+स्यतृ (प्रत्यय)=यास्यत् (शब्द)+स=यास्यन्त्+स=यास्यन्, विद् (धातु)+क्वसु (प्रत्यय)=विद्वस् (शब्द)+स=विद्वन्स्+स=विद्वान् (१८२सू)।

१८१। 'स' परे,—'मत्', 'वत्', 'अस्', 'इन्' और 'विन्'-प्रत्ययान्त शब्दतथा 'हन्' भागान्त शब्दका अन्त्यस्वर दीर्घ होता है, किन्तु सम्बोधनके एकवचनमें नहीं होता, यथा—धीमत्+स=धीमन्त्+स (१७९ सू)=धीमन्+स (१८० सू)=धीमान्, विद्यावत्+स=विद्यावन्त्+स=विद्यावन्+स=विद्यावान्; वेधस्+स=वेध +स=वेधा; धनिन्+स=धनी (१८३ सू); मेधाविन्+स=मेधावी (१८३ सू); वृत्रहन्+स=वृत्रहा (१८३ सू)। (सम्बोधनके एकवचनमें) धीमत्+स=धीमन्त्+स=धीमन्।

१८२। 'स', 'औ', 'जस्' और 'अम्' परे रहनेसे, 'अन्' और 'वन्'-भागान्त शब्दके अकारके स्थानमें आकार होता है; यथा-राजन्+स=राजा (१८३ सू), राजन्+औ=राजानौ, राजन्+जस=राजान्+अ=राजान , राजन्+अम्=राजानम्, विद्वस्+स=विद्वन्स्+

---

* जक्षत्, शासत्, चकासत् प्रभृति शब्द, यङ्लुगन्त और ह्वादिगणीय-धातुनिष्पन्न 'अत्' भागान्त शब्द 'अभ्यस्त'।

स=विद्वान्; विद्वस्+औ=विद्वन्स्+औ=विद्वांसौ (६३ सू): विद्वस्+जस्=विद्वन्स्+जस्=विद्वान्स्+अ =विद्वांस · विद्वस्+अम्=विद्वन्स्+अम=विद्वांसम् ।

१८३ । 'स', 'भ' और 'सुप्' परे रहनेसे, नकारान्त शब्दके नकारका लोप होता है, किन्तु सम्बोधनके एकवचनमें नहीं होता, यथा—धनिन्+स=धनी (१८१ सू), मेधाविन्+स=मेधावी (१८१ सू); वृत्रहन्+स=वृत्रहा (१८१ सू), राजन्+स=राजा (१८२ सू); राजन्+भि =राजभि ; राजन्+सुप्=राजसु, राजन्+स (सम्बोधने)=राजन् ।

१८४ । 'सुप्' परे, 'न्' के स्थानमें 'त्' होता है, यथा—सुहृद्+सुप्=सुहृत्सु ।

१८५ । 'शस्'-प्रभृति स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'हन्' के स्थानमें 'घ्' होता है; किन्तु 'ङि' परे विकल्पसे होता है; इस 'घ्' का 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा-वृत्रहन्+शस्=वृत्रहन्+अ =वृत्रघ्न्+अ =वृत्रघ्न ; वृत्रहन्+ङि=वृत्रघ्न्+इ=वृत्रघ्नि, (पक्षे) वृत्रहन्+ङि=वृत्रहन्+इ=वृत्रहणि (१०० (क) सू) ।

१८६ । 'शस्' प्रभृति स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'म' और 'व'-संयुक्त-भिन्न 'अन्'-भागान्त शब्दके अकारका लोप होता है, किन्तु 'ङि' परे विकल्पसे होता है; यथा—राजन्+शस्=राज्न्+अ =राज्ञ (९१ सू); राजन्+ङि=राज्न्+इ=राज्ञि, (पक्षे) राजन्+ङि=राजन्+इ=राजनि । ('म', 'व' संयुक्त) ब्रह्मन्+शस्=ब्रह्मन्+अ =ब्रह्मण ; यज्वन्+शस्=यज्वन्+अ =यज्वन ।

१८७। 'दृश्'-भागान्त शब्दके 'श' के स्थानमें 'स' तथा 'सुप्' परे 'क्', और 'भ' परे 'ग्' होता है; यथा—ईदृश्+स=ईदृक्; ईदृश्+भ्याम्=ईदृग्+भ्याम्=ईदृग्भ्याम्; ईदृश्+सुप्=ईदृक्+सु=ईदृक्षु (१०८ सू)।

१८८। 'शस्' प्रभृति स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'वस्'-भागान्त शब्दके 'व' के स्थानमें 'उ' होता है, 'उ' होनेसे 'वस्' के पूर्वस्थित 'इ' का लोप होता है; यथा—विद्वस्+शस्=विदुस्+अ=विदुष (१०८ सू); तस्थिवस्+शस्=तस्थुस्+अ=तस्थुष*।

१८९। 'वस्'-भागान्त शब्दके 'स्' के स्थानमें—'भ' परे 'द्', और 'सुप्' परे 'त्' होता है; यथा—विद्वस्+भ्याम्=विद्वद्भ्याम्; विद्वस्+सुप्=विद्वत्सु।

१९०। हकारान्त शब्दके 'ह्' के स्थानमें—'स' तथा 'सुप्' परे 'ट्', और 'भ' परे 'ड्' होता है; यथा—मधुलिह्+स=मधुलिट्; मधुलिह्+भ्याम्=मधुलिड्भ्याम्।

१९१। हकारान्त शब्दके पूर्वमें 'द' रहनेसे, 'ह्' के स्थानमें—'स' तथा 'सुप्' परे 'क्', और 'भ' परे 'ग्' होता है; और 'द्' के स्थानमें 'ध्' होता है; यथा—दुह्+स=धुक्; दुह्+भ्याम्=धुग्भ्याम्; दुह्+सु=धुक्षु (१०८ सू)।

---

* शुश्रुवस्, सुषुवस्, तुष्टुवस्, दुद्रुवस्—इनके 'व' के स्थानमें 'उ' होनेसे तत्पूर्ववर्त्ती 'उ' के स्थानमें 'उव्' होता है; यथा—शुश्रुवुष, शुश्रुवुषा इत्यादि।

व्यञ्जनान्त पुंलिङ्ग शब्द।

चकारान्त।

जलमुच् शब्द (मेघ Cloud)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	जलमुक्	जलमुचौ	जलमुचः
द्वितीया	जलमुचम्	जलमुचौ	जलमुचः
तृतीया	जलमुचा	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भिः
चतुर्थी	जलमुचे	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्यः
पञ्चमी	जलमुचः	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्यः
षष्ठी	जलमुचः	जलमुचोः	जलमुचाम्
सप्तमी	जलमुचि	जलमुचोः	जलमुक्षु
सम्बोधन	जलमुक्	जलमुचौ	जलमुचः

प्रायः सब चकारान्त शब्दके रूप 'जलमुच्' शब्दके तुल्य। यथा—वारिमुच्, पयोमुच् (मेघ) इत्यादि।

* * * *

प्राच् शब्द (पूर्वकाल ; पूर्वदेश Prior, eastern)।

प्रथमा—प्राङ्, प्राञ्चौ, प्राञ्चः, द्वितीया—प्राञ्चम्, प्राञ्चौ, प्राचः ; सम्बोधनमें—प्रथमाके तुल्य, अन्यान्य विभक्तियोंमें 'जलमुच्' शब्दके तुल्य।

पराच् (पराङ्मुख) और अवाच् (अधोमुख) शब्दभी 'प्राच्'-शब्दके तुल्य।

जकारान्त ।

वणिज् शब्द (व्यवसायी, बनिया Merchant) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वणिक्	वणिजौ	वणिजः
द्वितीया	वणिजम्	वणिजौ	वणिजः
तृतीया	वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भिः
चतुर्थी	वणिजे	वणिग्भ्याम्	वणिग्भ्यः
पञ्चमी	वणिजः	वणिग्भ्याम्	वणिग्भ्यः
षष्ठी	वणिजः	वणिजोः	वणिजाम्
सप्तमी	वणिजि	वणिजोः	वणिक्षु
सम्बोधन	वणिक्	वणिजौ	वणिजः

प्राय सब जकारान्त शब्दके रूप 'वणिज्' शब्दके तुल्य । यथा—
भिषज् (वैद्य), बलिभुज् (काक), हुतभुज् (अग्नि), ऋत्विज् (पुरोहित), भृतिभुज् (भृत्य), भूभुज् (राजा) ।

परिव्राज् शब्द (भिक्षु Ascetic, religious mendicant) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	परिव्राट्	परिव्राजौ	परिव्राजः
द्वितीया	परिव्राजम्	परिव्राजौ	परिव्राजः
तृतीया	परिव्राजा	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भिः
चतुर्थी	परिव्राजे	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भ्यः
पञ्चमी	परिव्राजः	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भ्यः
षष्ठी	परिव्राजः	परिव्राजोः	परिव्राजाम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
सप्तमी	परिव्राजि	परिव्राजो॰	परिव्राट्सु
सम्बोधन	परिव्राट्	परिव्राजौ	परिव्राज॰

भ्राज्, राज्, भ्राज्, इज्, सृज्, और सृज्-भागान्त शब्दके रूप 'परिव्राज्' शब्दके तुल्य *। यथा—

सम्राज् (राजाधिराज), देवराज् (इन्द्र), विराज् (क्षत्रिय। सर्वव्यापी पुरुष—परमेश्वर); विभ्राज्, परिमृज् इत्यादि।

तकारान्त।

भूभृत् शब्द (राजा, पर्वत King, mountain)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृत॰

* 'विश्वसृज्'-शब्द विकल्पसे 'वणिज्'-शब्दके तुल्य, यथा—विश्वसृक् विश्वसृट् इत्यादि। 'विश्वराज्'-शब्दके 'ज्' के स्थानमे 'ट्' होनेसे अकारके स्थानमे आकार होता है, यथा—विश्वाराट्, विश्वराजो, विश्वराज इत्यादि।

प्रश्न। निम्नलिखित पदोंसे एक एक वाक्य रचना करो—

तिर्यञ्च —तिष्ठन्ति। मनोयोगेन—पठन्ति।—आकाश—पश्यन्ति। प्रतीचि—वियते। वृक्षात्—पतति।—गुरो —पालयति।—शिष्याय—ददाति।

उत्तर। तिर्यंच कुलाये तिष्ठन्ति। मनोयोगेन बालका पुस्तक पठन्ति। सर्वे आकाशे मेघान्ठन पश्यन्ति। प्रतीचि देशे चन्द्रशेखरो वियते। वृक्षात् पत्र पतति। शिष्य गुरो वाक्य पालयति। गुरु शिष्याय विद्यां ददाति।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृतः
तृतीया	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः
चतुर्थी	भूभृते	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
पञ्चमी	भूभृतः	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
षष्ठी	भूभृतः	भूभृतोः	भूभृताम्
सप्तमी	भूभृति	भूभृतोः	भूभृत्सु
सम्बोधन	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः

प्रायः सब तकारान्त शब्दके रूप 'भूभृत्' शब्दके तुल्य। यथा—

महीभृत् (पर्वत), शशभृत् (चन्द्र) परभृत् (काक), महीक्षित् (राजा), दिनकृत् (सूर्य्य), विपश्चित् (पण्डित)।

धावत् शब्द (दौड़ता हुआ Running)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धावन्	धावन्तौ	धावन्तः
द्वितीया	धावन्तम्	धावन्तौ	धावतः
सम्बोधन	धावन्	धावन्तौ	धावन्तः

अवशिष्ट विभक्तियोंमें 'भूभृत्' शब्दके तुल्य।

भवत्, कुर्वत्, तुदत्, जानत्, करिष्यत्, गमिष्यत् प्रभृति सब 'शतृ' (अत्) और 'स्यतृ' (स्यत्)-प्रत्ययान्त तकारान्त शब्द, और पृषत् तथा 'बृहत्' शब्दके रूप 'धावत्'-शब्दके तुल्य, किन्तु जक्षत्, जाग्रत्, चकासत्, शासत्, दरिद्रत्, ददत्, दधत्, बिभ्रत्, बिभ्यत्,

जहत्, लेलिहत् प्रभृति शब्दके रूप 'भूभृत्' शब्दके तुल्य।*

※ समुदायसे एकदेशके पृथक् करनेको 'निर्द्धारण' कहते हैं। 'निर्द्धारण'-अर्थमें समुदायवाचक शब्दके उत्तर षष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है, यथा—(कवियोंके बीचमें कालिदास श्रेष्ठ) कविषु कालिदासः श्रेष्ठ, (वर्णोंमें ब्राह्मण गुरु) वर्णानां ब्राह्मणो गुरु।

अनुवाद करो—देवताओंके बीचमें इन्द्र श्रेष्ठ। पक्षियोंमें (खग) काक धूर्त्त। सबके बीचमें क्षत्रिय बलवान्। हमलोगोंमें रमेश पण्डित। उमेश और सुरेशके बीचमें उमेश बुद्धिमान्। पर्वतोंमें हिमालय श्रेष्ठ।

धीमत् शब्द (बुद्धिमान् Wise, intelligent)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धीमान्	धीमन्तौ	धीमन्तः
द्वितीया	धीमन्तम्	धीमन्तौ	धीमतः
सम्बोधन	धीमन्	धीमन्तौ	धीमन्तः

अवशिष्ट विभक्तियोंमें 'भूभृत्'-शब्दके तुल्य।

---

* 'ददत्'-प्रभृति शब्द ह्वादिगणीय धातुके उत्तर 'शतृ'-प्रत्ययान्त, और 'लेलिहत्' प्रभृति शब्द यङ्लुगन्त धातुके उत्तर 'शतृ'-प्रत्ययान्त।

प्रश्न। निम्नलिखित शून्यस्थानसमूह पूर्ण करो—

सम्राट्—पालयति (पालन करता है)।—विक्रीणीते (बेचता है)। भिषक्—चिकित्सति (चिकित्सा करता है)।—ऋत्विज्—सन्तोषयति (सन्तुष्ट करता है।) मृतिभुक्—शुश्रूषते (सेवा करता है)। मुमुक्षु—गृह्णाति (लेता है)। धीमान्—बुध्यते (समझता है)।

मतुप्, वतुप् और क्तवतु (तवत्)-प्रत्ययान्त सब शब्दोंके रूप 'धीमत्'-शब्दके तुल्य। यथा—

(मतुप्)—श्रीमत् (शोभासम्पन्न)। सानुमत् (पर्वत); अंशुमत् (सूर्य्य); नभस्वत् (वायु); ज्ञानवत् (ज्ञानी)। (वतुप्)—यावत् (जितना); तावत् (उतना); एतावत् (इतना); कियत् (कितना); इयत् (इतना)। (क्तवतु)—गतवत् (गया था)।

युष्मदर्थे 'भवत्' (भा+डवतु—सर्वनाम) शब्द भी 'धीमत्'-शब्दके तुल्य।*

शुद्ध करो—बालकं मतम्तु न विद्यते। तस्य बहूनि स्वताः। विचार्य गच्छ। आकाशे पयोमुचान् पश्य। प्राप्ति काले उदय देशात् बहूनि विहग आगताः। सर्वदा सत्यस्य आधिपत्यम् अस्ति। भूभृतानां बड़ सैन्यम्। श्रीमानस्य भोजनकार्य आयात।

महत् शब्द (बड़ा; प्रबल Great; strong; intense)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वितीया	महान्तम्	महान्तौ	महतः
सम्बोधन	महन्	महान्तौ	महान्तः

अवशिष्ट विभक्तियोंमें 'भूभृत्-शब्दके तुल्य।

* भवत्, भगवत् और अघवत् शब्दके सम्बोधनके एकवचनमें यथाक्रम भो, भगो और अघो होते हैं—विकल्पसे।

दकारान्त ।

सुहृद् शब्द (बन्धु Friend) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुहृत्*	सुहृदौ	सुहृदः
द्वितीया	सुहृदम्	सुहृदौ	सुहृदः
तृतीया	सुहृदा	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भिः
चतुर्थी	सुहृदे	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
पञ्चमी	सुहृदः	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
षष्ठी	सुहृदः	सुहृदोः	सुहृदाम्
सप्तमी	सुहृदि	सुहृदोः	सुहृत्सु
सम्बोधन	सुहृत्	सुहृदौ	सुहृदः

प्राय सब दकारान्त शब्दके रूप 'सुहृद्'-शब्दके तुल्य †। यथा—सभासद् (सभ्य), दिविषद् (देवता), उद्भिद् (तरु लता-प्रभृति), निरापद् (आपद् शून्य)।

अनुवाद करो—भाई, सूर्य्यको प्रणाम करो (प्रणम)। ज्ञानवान् पुरुष कौशलसे सब कार्य्य सम्पन्न करता है (सम्पादयति)। जितने आदमी, उतनी पत्तल करो (रचय)। इतना अत्याचार कौन सह सकता

---

*'सु' और 'सुप्' परे, दकारान्त शब्दके 'द्' के स्थानमें 'त्' होता है।

† द्विपाद्, त्रिपाद्, चतुष्पाद् प्रभृति 'पाद्'-भागान्त शब्दके 'पाद्'-के स्थानमें टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि और ओस् विभक्तिमें 'पद्' होता है; यथा—द्विपदा, द्विपाद्भ्याम्, द्विपाद्भिः; द्विपदे इत्यादि।

मतुप्, वतुप् और क्तवतु (तवत्)-प्रत्ययान्त सब शब्दोंके रूप 'धीमत्'-शब्दके तुल्य। यथा—

(मतुप्)—श्रीमत् (शोभासम्पन्न), सानुमत् (पर्वत) अंशुमत् (सूर्य्य); नभस्वत् (वायु), ज्ञानवत् (ज्ञानी)। (वतुप्)—यावत् (जितना), तावत् (तितना), एतावत् (इतना); कियत् (कितना); इयत् (इतना)। (क्तवतु)—गतवत् (गया था)।

युष्मदर्थ 'भवत्' (भा+डवतु—सर्वनाम) शब्दभी 'धीमत्' शब्दके तुल्य।*

<u>शुद्ध करो—बालकं नदन्तु</u> न भिनत्ति। तस्य मृदूनि स्वताः। विशाले प्रगम। आकाशे पयोमुचान् पश्य। प्रावृट्‌काले उदन्त्रं दृष्टा बहूनि विरम आगता। सर्वदा सज्जनस्य आधिरस्वन् भस्ति। मृगतानां वर्द सैन्यम्। धीमानस्य भोजनकार्यं आयात।

महत् शब्द (बड़ा, प्रबल Great, strong; intense)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वितीया	महान्तम्	महान्तौ	महतः
सम्बोधन	महन्	महान्तौ	महान्तः

अवशिष्ट विभक्तियोंमें 'धीमत्' शब्दके तुल्य।

---

* भवत्, भगवत् और अघवत् शब्दके सम्बोधनके एकवचनमें यथाक्रम से, भोः और अघोः होते हैं—विकल्पसे।

दकारान्त।

सुहृद् शब्द (बन्धु Friend)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुहृत्*	सुहृदौ	सुहृदः
द्वितीया	सुहृदम्	सुहृदौ	सुहृदः
तृतीया	सुहृदा	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भिः
चतुर्थी	सुहृदे	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
पञ्चमी	सुहृदः	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
षष्ठी	सुहृदः	सुहृदोः	सुहृदाम्
सप्तमी	सुहृदि	सुहृदोः	सुहृत्सु
सम्बोधन	सुहृत्	सुहृदौ	सुहृदः

प्राय सब दकारान्त शब्दके रूप 'सुहृद्'-शब्दके तुल्य हैं†। यथा—सभासद् (सभ्य); दिविषद् (देवता); उद्भिद् (तरु-लता-प्रभृति); निरापद् (आपद् शून्य)।

अनुवाद करो—भाई, सूर्य्यको प्रणाम करो (प्रणम)। ज्ञानवान् पुरुष कौशलसे सब कार्य्य सम्पन्न करता है (सम्पादयति)। जितने आदमी, उतनी पत्तल करो (रचय)। इतना अत्याचार कौन सह सकता

* 'सु' और 'सुप्' परे, दकारान्त शब्दके 'द्' के स्थानमें 'त्' होता है।

† द्विपाद्, त्रिपाद्, चतुष्पाद् प्रभृति 'पाद्'-भागान्त शब्दके 'पाद्'-के स्थानमें टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि और ओस् विभक्तिमें 'पद्' होता है; यथा—द्विपदा, द्विपाद्भ्याम्, द्विपाद्भिः; द्विपदे इत्यादि।

है (सोढुं शक्नोति) ? इतने दिवस गये (गत), तोभी (तथाऽपि) वह नहीं आया (आयात)। राम पिताके वाक्यसे वनमें (द्वितीया) गया था । यह पुस्तक श्रीमान् योगेन्द्रनाथको दो (देहि)। आपके आश्रममें (द्वितीया) जाऊंगा (यास्यामि)।

नकारान्त ।

'अन्'-भागान्त—महिमन् शब्द (माहात्म्य Greatness)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	महिमा	महिमानौ	महिमानः
द्वितीया	महिमानम्	महिमानौ	महिम्नः
तृतीया	महिम्ना	महिमभ्याम्	महिमभिः
चतुर्थी	महिम्ने	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
पञ्चमी	महिम्नः	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
षष्ठी	महिम्नः	महिम्नोः	महिम्नाम्
सप्तमी	महिम्नि	महिम्नोः	महिमसु
सम्बोधन	महिमन्	महिमानौ	महिमानः

प्राय सब 'अन्'-भागान्त शब्दके रूप 'महिमन्'-शब्दके तुल्य। यथा—

लघिमन् (लघुता); गरिमन् (गुरुता), द्रढिमन् (दृढता); म्रदिमन् (मृदुता); प्रेमन् (स्नेह, प्रणय); मूर्द्धन् (मस्तक)।

राजन् शब्द (नृपति King)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राजा	राजानौ	राजानः
द्वितीया	राजानम्	राजानौ	राज्ञः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृतीया	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
चतुर्थी	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
पञ्चमी	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
षष्ठी	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
सप्तमी	राज्ञि, राजनि	राज्ञोः	राजसु
सम्बोधन	राजन्	राजानौ	राजानः

शून्यस्थान पूर्ण करो।—तिष्ठति। राजभि—नास्ति। सहस्र—शृणोति (सुनता है)।—ददाति।—राज—तिष्ठति।

वृत्रहन् शब्द (इन्द्र)।

(१मा) वृत्रहा, वृत्रहणौ, वृत्रहणः, (२या) वृत्रहणम्, वृत्रहणौ, वृत्रघ्नः; (३या) वृत्रघ्ना, वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभिः, (४र्थी) वृत्रघ्ने, वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभ्यः, (५मी) वृत्रघ्नः, वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभ्यः, (६ष्ठी) वृत्रघ्नः, वृत्रघ्नोः, वृत्रघ्नाम्; (७मी) वृत्रघ्नि वृत्रहणि, वृत्रघ्नोः, वृत्रहसु, (सम्बो) वृत्रहन्।

सब 'हन्'-भागान्त शब्दके रूप 'वृत्रहन्' शब्दके तुल्य।

अर्य्यमन् शब्द (सूर्य्य Sun)।

प्रथमा और द्वितीयाके एकवचन और द्विवचनमें इसके रूप 'वृत्रहन्'-शब्दके तुल्य; और और विभक्तियोंमें 'महिमन्'-शब्दके सदृश। यथा—अर्य्यमा, अर्य्यमणौ, अर्य्यमणः; अर्य्यमणम्, अर्य्यमणौ, अर्य्यम्णः इत्यादि।

पूषन् शब्द (सूर्य्य)।

इसके रूप 'अर्य्यमन्'-शब्दके तुल्य, केवल सप्तमीके एकवचनमें 'पूष्णि, पूषणि, पूषणि'—ये तीन रूप होते हैं। यथा—पूषा, पूषणौ, पूषणः; पूषणम्, पूषणौ, पूष्णः इत्यादि।

आत्मन् शब्द (स्वयम्, अपना, मन, जीव; परमात्मा Oneself, mind, individual and supreme soul)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
द्वितीया	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः
तृतीया	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः
चतुर्थी	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
पञ्चमी	आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
षष्ठी	आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्
सप्तमी	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु
सम्बोधन	आत्मन्	आत्मानौ	आत्मानः

जिन 'अन्'-भागान्त शब्दोंका अकार 'म'-संयुक्त वा 'व'-संयुक्त वर्णमें मिलित रहता है, उनके रूप प्राय 'आत्मन्' शब्दके तुल्य। यथा—

अश्मन् (प्रस्तर); यक्ष्मन् (क्षयरोग); ब्रह्मन् (विधाता); द्विजन्मन् (ब्राह्मण); यज्वन् (यागकर्त्ता)।

श्वन् शब्द (कुत्ता Dog)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	श्वा	श्वानौ	श्वानः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	श्वानम्	श्वानौ	शुन
तृतीया	शुना	श्वभ्याम्	श्वभि
चतुर्थी	शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
पञ्चमी	शुन॰	श्वभ्याम्	श्वभ्य॰
षष्ठी	शुन	शुनो	शुनाम्
सप्तमी	शुनि	शुनो.	श्वसु
सम्बोधन	श्वन्	श्वानौ	श्वानः

युवन् शब्द (तरुण Young)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	युवा	युवानौ	युवान.
द्वितीया	युवानम्	युवानौ	यून
तृतीया	यूना	युवभ्याम्	युवभि
चतुर्थी	यूने	युवभ्याम्	युवभ्य
पञ्चमी	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्य
षष्ठी	यून.	यूनो.	यूनाम्
सप्तमी	यूनि	यूनो॰	युवसु
सम्बोधन	युवन्	युवानौ	युवान.

अनुवाद करो—तेरे मस्तकपर केश नहीं। उसका विश्वास अति दृढ़ समझता हूँ (मन्ये)। धर्मशील राजालोग प्राणपणसे प्रजाओंकी (द्वितीया) रक्षा करते हैं (रक्षन्ति)। वह भगवान्‌के प्रेमसे आकुल। वह अपने (आत्मन्) गुणकी गरिमासे पृथ्वीपर पाँव नहीं

रखता (न निदधाति)। यागकर्त्ता यज्ञ करता है (यजते)। मैं यक्ष्मासे अत्यन्त (अतीव) कातर। उन स्त्रियोंके करुण वाक्यसे पाषाण (अश्मन्) भी (अपि) गल जाता है (द्रवति)। सब देवता इन्द्रका (द्वितीया) सम्मान करते हैं (सम्मन्यन्ते)।

*   *   *   *

मघवन् शब्द (इन्द्र)।

(१मा) मघवा, मघवानौ मघवन्तौ, मघवानः मघवन्तः ; (२या) मघवानम् मघवन्तम्, मघवानौ मघवन्तौ, मघोनः मघवतः, (३या) मघोना मघवता, मघवभ्याम् मघवद्भ्याम्, मघवभिः मघवद्भिः ; (४र्थी) मघोने मघवते, मघवभ्याम् मघवद्भ्याम्, मघवभ्यः मघवद्भ्यः ; (५मी) मघोनः मघवतः, मघवभ्याम् मघवद्भ्याम्, मघवभ्यः मघवद्भ्यः ; (६ष्ठी) मघोनः मघवतः, मघोनोः मघवतोः, मघोनाम् मघवताम् ; (७मी) मघोनि मघवति, मघोनोः मघवतोः, मघवसु मघवत्सु ; (सम्बो) मघवन् !

अर्वन् शब्द (घोड़ा Horse)।

(१मा) अर्वा, अर्वन्तौ, अर्वन्तः ; (२या) अर्वन्तम्, अर्वन्तौ, अर्वतः, (३या) अर्वता, अर्वद्भ्याम्, अर्वद्भिः, (४र्थी) अर्वते, अर्वद्भ्याम्, अर्वद्भ्यः ; (५मी) अर्वतः, अर्वद्भ्याम्, अर्वद्भ्यः ; (६ष्ठी) अर्वतः, अर्वतोः, अर्वताम् ; (७मी) अर्वति, अर्वतोः, अर्वत्सु ; (सम्बो) अर्वन् !

'इन्'-भागान्त—धनिन् शब्द (धनवान् Rich)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धनी	धनिनौ	धनिन
द्वितीया	धनिनम्	धनिनौ	धनिन॰
तृतीया	धनिना	धनिभ्याम्	धनिभि॰
चतुर्थी	धनिने	धनिभ्याम्	धनिभ्य॰
पञ्चमी	धनिनः	धनिभ्याम्	धनिभ्यः
षष्ठी	धनिनः	धनिनो	धनिनाम्
सप्तमी	धनिनि	धनिनो	धनिषु
सम्बोधन	धनिन्	धनिनौ	धनिनः

प्राय सब 'इन्'-भागान्त शब्दके रूप 'धनिन्' शब्दके तुल्य। यथा—

गुणिन् (गुणवान्); बलिन् (बलवान्), ज्ञानिन् (ज्ञानवान्); मेधाविन् (मेधाविशिष्ट), मनोहारिन् (मनोहर); एकाकिन् (अकेला), हस्तिन, करिन् (हाथी), पक्षिन् (चिड़िया); अर्थिन् (याचक); मन्त्रिन् (अमात्य), वाजिन् (घोड़ा); विपयिन् (संसारी), स्वामिन् (अधिपति)।

शुद्ध करो—अस्य संसारे यो मनुष्या हृद्दत्य वाक्यान् न पालयति, स कदाऽपि माता पितामपि न साधु मन्यते। ये युवा आत्मां व्ययपन्ति, तस्य मङ्गलो न भवति। युवाया कार्य्यान् बाल कर्त्तुं न शक्नोति। गुनोऽपि गुणीं प्रभुं सेवन्ते। मन्त्रिस्य वाक्य पालय। व्याघ पक्षी मारयति। धनवानस्य सर्वत्र आदर। साध्वी स्त्री स्वामीं शुश्रूषते। इन्द्रजित वृत्रःन पराबभूव (हराया था)।

✻ क्रियाविशेषण सर्वदा क्लीवलिङ्ग, उसमें द्वितीया-विभक्तिका एकवचन होता है, यथा—(शून्यपात्र अधिक शब्द करता है) शून्यपात्रम् अधिक शब्दायते, (चोर तुरत भागता है) तस्कर- द्रुत पलायते।

अनुवाद करो—वह चुपचाप (नीरव) अपना काम कर रहा है (करोति)। चित्तकी एकाग्रतासे तू शास्त्रका गूढ अर्थ सत्वर समझ सकेगा (अवगन्तुं शक्ष्यसि)। मन्द मन्द वायु बहती है (वहति)। बच्चेको मधुर हसते (हसन्तम्) देखकर (दृष्ट्वा) माता आनन्दमें मग्न होती है (निमज्जति)। राजा दशरथने रामके दु खसे सातिशय क्रन्दन किया था (रोद)।

पथिन् शब्द (पथ Way, road)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पन्था	पन्थानौ	पन्थानः
द्वितीया	पन्थानम्	पन्थानौ	पथ.
तृतीया	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
चतुर्थी	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्य॰
पञ्चमी	पथ	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
षष्ठी	पथ	पथो	पथाम्
सप्तमी	पथि	पथोः	पथिषु
सम्बोधन	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः

'मथिन्' (मन्थनदण्ड)-शब्दके रूप 'पथिन्'-शब्दके तुल्य।

ऋभुक्षिन् (इन्द्र) शब्द—(१मा) ऋभुक्षा, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षाण, (२या) ऋभुक्षाणम्, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्ष इत्यादि 'पथिन्'-शब्दके तुल्य ।

शकारान्त ।

विश् शब्द (वैश्य ; मनुष्य A man of the third caste, a man in general) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विट्*	विशौ	विश
द्वितीया	विशम्	विशौ	विश
तृतीया	विशा	विड्भ्याम्	विड्भि
चतुर्थी	विशे	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
पञ्चमी	विश	विड्भ्याम्	विड्भ्य
षष्ठी	विशः	विशो	विशाम्
सप्तमी	विशि	विशो	विट्सु
सम्बोधन	विट्	विशौ	विश

प्राय सब शकारान्त शब्दके रूप 'विश्' शब्दके तुल्य ।

तादृश् शब्द (तैसा, उसके सदृश Like that, like him &c) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	तादृक्	तादृशौ	तादृश
द्वितीया	तादृशम्	तादृशौ	तादृश
तृतीया	तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भि
चतुर्थी	तादृशे	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः

* शकारान्त और षकारान्त शब्दकी प्रक्रिया हकारान्त शब्दके तुल्य ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	तादृश	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
षष्ठी	तादृशः	तादृशोः	तादृशाम्
सप्तमी	तादृशि	तादृशोः	तादृक्षु

सब 'दृश्'-भागान्त और 'स्पृश्'-भागान्त शब्दके रूप 'तादृश्'-शब्दके तुल्य। यथा—

यादृश् (जैसा), कीदृश् (कैसा), ईदृश्, एतादृश् (ऐसा), त्वादृश् (तेरे सदृश), भवादृश् (आपके सदृश), युष्मादृश् (तुम्हारे सदृश), मादृश् (मेरे सदृश), अस्मादृश् (हमारे सदृश), मर्म स्पृश् (हृदयस्पर्शी)।

अनुवाद करो—उसके समान दुष्ट नहीं। आपके सदृश पुरुषोंका यह कर्त्तव्य नहीं (न कर्त्तव्यम्)। वह मर्मस्पर्शी शब्द व्यवहार करता है (व्यवहरति)। हमजैसे आदमियोंका ऐसा व्यवहार समीचीन नहीं। शत्रुके साथ सन्धि करो (सन्धेहि)। विषयीलोग विषयोंमें मत्त। राजालोग मन्त्रीके साथ मन्त्रणा करते हैं (मन्त्रयन्ते)। इस पथसे जा (याहि)।

षकारान्त।

द्विष् शब्द (शत्रु Enemy)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्विट्	द्विषौ	द्विषः
द्वितीया	द्विषम्	द्विषौ	द्विषः
तृतीया	द्विषा	द्विड्भ्याम्	द्विड्भिः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	द्विपे	द्विड्भ्याम्	द्विड्भ्यः
पञ्चमी	द्विप	द्विड्भ्याम्	द्विड्भ्यः
षष्ठी	द्विपः	द्विपोः	द्विपाम्
सप्तमी	द्विपि	द्विपोः	द्विट्सु
सम्बोधन	द्विट्	द्विपौ	द्विप

प्राय सब पकारान्त शब्दके रूप 'द्विप्'-शब्दके तुल्य ।

सकारान्त ।

'अस्'-भागान्त—वेधस् शब्द (विधाता Creator) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वेधाः	वेधसौ	वेधस.
द्वितीया	वेधसम्	वेधसौ	वेधस·
तृतीया	वेधसा	वेधोभ्याम्	वेधोभि·
चतुर्थी	वेधसे	वेधोभ्याम्	वेधोभ्य·
पञ्चमी	वेधसः	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
षष्ठी	वेधस	वेधसो.	वेधसाम्
सप्तमी	वेधसि	वेधसो·	वेध सु
सम्बोधन	वेध	वेधसौ	वेधसः

प्राय सब 'अस्'-भागान्त शब्दके रूप 'वेधस्' शब्दके तुल्य। यथा—

चन्द्रमस् (चन्द्र); दिवौकस् (देवता), विहायस् (आकाश); प्रचेतस् (वरुण), विमनस्, दुर्मनस् (उद्विग्न, व्याकुल, दु खित), अनेहस् (काल), उशनस् (शुक्राचार्य्य)। किन्तु 'अनेहस्'-शब्दकी

प्रथमाके एकवचनमे 'अनेहा' होता है, और 'उशनस्'-शब्दको प्रथमाके एकवचनमे 'उशना', तथा सम्बोधनके एकवचनमे 'उशनन्' उशन, उशन '— ये तीन पद होते हैं ।

शून्य स्थान पूर्ण करो ।—राम —अनेन—गतवान् । कण्टका — विद्यन्ते ।—पृथिवीं—प्रकाशयति । पक्षिण —विचरन्ति । सर्वे—प्रणमन्ति ।

विद्वस् शब्द (ज्ञानी, पण्डित Wise, learned) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांस
द्वितीया	विद्वांसम्	विद्वांसौ	विदुष
तृतीया	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भि
चतुर्थी	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्य
पञ्चमी	विदुष	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्य
षष्ठी	विदुष	विदुषो	विदुषाम्
सप्तमी	विदुषि	विदुषो	विद्वत्सु
सम्बोधन	विद्वन्	विद्वांसौ	विद्वांस

तस्थिवस् शब्द (स्थित Stayed) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	तस्थिवान्	तस्थिवांसौ	तस्थिवांस
द्वितीया	तस्थिवांसम्	तस्थिवांसौ	तस्थुष
तृतीया	तस्थुषा	तस्थिवद्भ्याम्	तस्थिवद्भि
चतुर्थी	तस्थुषे	तस्थिवद्भ्याम्	तस्थिवद्भ्य
पञ्चमी	तस्थुष	तस्थिवद्भ्याम्	तस्थिवद्भ्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
षष्ठी	तस्थुषः	तस्थुषो॰	तस्थुषाम्
सप्तमी	तस्थुषि	तस्थुषो	तस्थिवत्सु
सम्बोधन	तस्थिवन्	तस्थिवांसौ	तस्थिवांस.

समस्त क्वसु (वस्)-प्रत्ययान्त शब्दके रूप 'तस्थिवस्' शब्दके तुल्य । यथा—

निषेदिवस् (निषण्ण, उपविष्ट), जग्मिवस् (जो गया), उपेयिवस् (प्राप्त), पेचिवस् (जिसने पाक किया) ।

शुद्ध करो—अस्या पथे व्याघ्र अस्ति । दिवौकसस्य पथम् अनुसरामि । सङ्कटे वेधाम् अर्थयन्ति । इद वेधसात् उत्पन्न । चन्द्रमां दृष्ट्वा रचित॰ सहर्षं भवति । विद्वामस्य उपदेशानि गृहाण । तत्र तस्थिवसौ जनाना इमानि पुस्तका । कवीनाम् उशना कवि । धनीना नास्ति निर्वृति । दधिना भोजन॰ सुष्ठु सम्पद्यते ।

गरीयस् शब्द (अतिगुरु Heavier, more important) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गरीयान्	गरीयांसौ	गरीयास
द्वितीया	गरीयांसम्	गरीयांसौ	गरीयस
तृतीया	गरीयसा	गरीयोभ्याम्	गरीयोभि
चतुर्थी	गरीयसे	गरीयोभ्याम्	गरीयोभ्यः
पञ्चमी	गरीयस॰	गरीयोभ्याम्	गरीयोभ्य॰
षष्ठी	गरीयस	गरीयसो॰	गरीयसाम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
सप्तमी	गरीयसि	गरीयसोः	गरीयःसु
सम्बोधन	गरीयन्	गरीयांसौ	गरीयांसः

सब ईयस (ईयस्)-प्रत्ययान्त शब्दके रूप 'गरीयस्'-शब्दके तुल्य। यथा—

लघीयस् (अतिलघु), द्रढीयस् (अतिदृढ़), स्थेयस् (अतिस्थिर), श्रेयस् (अतिप्रशस्त), प्रेयस् (अतिप्रिय), ज्यायस् (ज्येष्ठ), कनीयस्, यवीयस् (कनिष्ठ)।

'उस्'-भागान्त—दीर्घायुस् शब्द (दीर्घजीवी Long-lived)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दीर्घायुः	दीर्घायुषौ	दीर्घायुषः
द्वितीया	दीर्घायुषम्	दीर्घायुषौ	दीर्घायुषः
तृतीया	दीर्घायुषा	दीर्घायुर्भ्याम्	दीर्घायुर्भिः
चतुर्थी	दीर्घायुषे	दीर्घायुर्भ्याम्	दीर्घायुर्भ्यः
पञ्चमी	दीर्घायुषः	दीर्घायुर्भ्याम्	दीर्घायुर्भ्यः
षष्ठी	दीर्घायुषः	दीर्घायुषोः	दीर्घायुषाम्
सप्तमी	दीर्घायुषि	दीर्घायुषोः	दीर्घायुःषु
सम्बोधन	दीर्घायुः	दीर्घायुषौ	दीर्घायुषः

सब 'उस्'-भागान्त शब्दके रूप 'दीर्घायुस्'-शब्दके तुल्य।

पुम्स् शब्द (पुरुष A male; man)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	पुमांसम्	पुमांसौ	पुंस
तृतीया	पुंसा	पुम्भ्याम्*	पुम्भि॰
चतुर्थी	पुंसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्य
पञ्चमी	पुंसः	पुम्भ्याम्	पुम्भ्य॰
षष्ठी	पुंस॰	पुंसो॰	पुंसाम्
सप्तमी	पुंसि	पुंसो॰	पुंसु
सम्बोधन	पुमन्	पुमांसौ	पुमांस

अनुवाद करो—विद्वान्लोग इसे जानते हैं (विदन्ति)। विद्वान्से सभीको (एव) श्रद्धा रहती है (तिष्ठति)। अतिप्रिय चन्द्रको देख (पश्य)। पर्वत अत्यन्त दृढ। अतिस्थिर पुरुष कार्य्यदक्ष होता है (भवति)। मूर्ख अतिगुरु विषयको (द्वितीया) भी उपेक्षा करता है (उपेक्षते)। यही (एतत् एव) पुरुषका काम। विद्वान्के वाक्योंको (द्वितीया) अवज्ञा न करो (न अवधीरय)। उत्कृष्ट पथका अनुसन्धान करो (अनुसन्धेहि)। मूर्खलोग विद्वानोंको नहीं मानते (न सम्मन्यन्ते)।

* * *

दोस् शब्द (बाहु Arm)।

(१मा) दो, दोषौ, दोष, (२या) दोषम्, दोषौ, दोष दोष्ण, (३ या) दोषा दोष्णा, दोर्भ्याम् दोषभ्याम्, दोर्भि दोषभि, (४र्थी) दोषे दोष्णे, दोर्भ्याम् दोषभ्याम्, दोर्भ्य दोषभ्य, (५मी)

---

* पुम्भ्याम्, पुम्भि, पुंभ्य —ऐसाभी होता है।

दोष दोष्न, दोर्भ्याम् दोषभ्याम्, दोर्भ्य दोषभ्य ; (६ ष्ठी) दोष दोष्न, दोषो दोष्णो, दोषाम् दोष्णाम्, (७मी) दोषि दोष्णि, दोषो दोष्णो, दोःषु दोषसु; (सम्बो) दो !

हकारान्त ।

मधुलिह् शब्द (भ्रमर Bee)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मधुलिट्	मधुलिहौ	मधुलिहः
द्वितीया	मधुलिहम्	मधुलिहौ	मधुलिहः
तृतीया	मधुलिहा	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भिः
चतुर्थी	मधुलिहे	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
पञ्चमी	मधुलिहः	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
षष्ठी	मधुलिहः	मधुलिहोः	मधुलिहाम्
सप्तमी	मधुलिहि	मधुलिहोः	मधुलिट्सु
सम्बोधन	मधुलिट्	मधुलिहौ	मधुलिहः

प्राय सब हकारान्त शब्दके रूप 'मधुलिह्'-शब्दके तुल्य ।*

अनडुह् शब्द (वृष Ox, bull)।

(१मा) अनड्वान्, अनड्वाहौ, अनड्वाहः, (२या) अनड्वाहम्, अनड्वाहौ, अनडुहः ; (३या) अनडुहा, अनडुद्भ्याम्, अनडुद्भिः ; (४र्थी) अनडुहे, अनडुद्भ्याम्, अनडुद्भ्यः ; (५मी) अनडुहः, अनडुद्भ्याम्, अनडुद्भ्यः ; (६ष्ठी) अनडुहः, अनडुहोः, अनडुहाम्; (७मी)

---

* 'तुरासाह्' (इन्द्र)-शब्दके रूपभी मधुलिह् शब्दके तुल्य ; केवल 'साट्' का दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—तुराषाट् तुराषाड्भ्याम् इत्यादि।

अनडुहि, अनडुहो, अनडुत्सु, (सम्बो) अनड्वन् ।

गोदुह् शब्द (गोप, ग्वाला Cow-milker, cowherd) ।

(१मा) गोधुक्, गोदुहौ, गोदुहः, (२या) गोदुहम्, गोदुहौ, गोदुहः, (३या) गोदुहा, गोधुग्भ्याम्, गोधुग्भिः, (४र्थी) गोदुहे, गोधुग्भ्याम्, गोधुग्भ्यः, (५मी) गोदुहः, गोधुग्भ्याम्, गोधुग्भ्यः; (६ष्ठी) गोदुहः, गोदुहोः, गोदुहाम्, (७मी) गोदुहि, गोदुहोः, गोधुक्षु; (सम्बो) गोधुक् ।*

सब दकारादि हकारान्त शब्दके रूप 'गोदुह्'-शब्दके तुल्य ।

व्यञ्जनान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१९१ । 'स', 'सुप्' और 'भ' परे रहनेसे, धातुनिष्पन्न रकारान्त शब्दके पूर्ववर्ती इकार और उकार दीर्घ होते हैं, यथा—गिर्+स= गीः; पुर्+भ्याम्=पूर्भ्याम्, पुर्+सुप्=पूर्+सु=पूर्+षु=पूर्षु

१९२ । षकारान्त शब्दके 'ष्' के स्थानमें—'स' और 'सुप्' परे 'ट्', और 'भ' परे 'ड्' होता है, यथा—त्विष्+स=त्विट्, त्विष्+भ्याम्=त्विड्भ्याम्; त्विष्+सुप्=त्विट्सु ।

---

* पदके अन्तमें, और विभक्तिका व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, दह्, दिह्, दुह्, और द्रुह् शब्दके 'द्' के स्थानमें 'ध्', और 'ह्' के स्थानमें 'क्' होता है; यथा—(दह्) धक्, दहौ, दहः; दहम्, दहौ, दहः; दहा, धग्भ्याम्, धग्भिः इत्यादि । 'द्रुह्' शब्दके 'ह्' के स्थानमें विकल्पसे 'ट्' होता है; यथा—ध्रुक् ध्रुट्, ध्रुग्भ्याम् ध्रुड्भ्याम् इत्यादि ।

व्यञ्जनान्त स्त्रीलिंग शब्द।



चकारान्त।

सब चकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप 'जलमुच्' शब्दके तुल्य। यथा—वाच् (वाक्य), त्वच् (चर्म, वल्कल), रुच् (शोभा, दीप्ति, स्पृहा), ऋच् (वेदमन्त्र)।

जकारान्त।

सब जकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'वणिज्' शब्दके तुल्य। यथा—स्रज् (माला), रुज् (रोग)।

तकारान्त।

सब तकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'भूभृत्'-शब्दके तुल्य। यथा— योषित् (नारी), सरित् (नदी), तडित्, विद्युत् (सौदामनी, बिजली)।

दकारान्त।

सब दकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'सुहृद्'-शब्दके तुल्य। यथा— आपद्, विपद् (अमङ्गल), सम्पद् (सम्पत्ति); संसद्, परिषद् (सभा), दृषद् (प्रस्तर); संविद् (ज्ञान), उपनिषद् (वेदान्त), शरद् (ऋतुविशेष)।

धकारान्त।

क्षुध् शब्द (क्षुधा Hunger)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	क्षुत्	क्षुधौ	क्षुधः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	क्षुधम्	क्षुधौ	क्षुधः
तृतीया	क्षुधा	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भिः
चतुर्थी	क्षुधे	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भ्यः
पञ्चमी	क्षुधः	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भ्यः
षष्ठी	क्षुधः	क्षुधोः	क्षुधाम्
सप्तमी	क्षुधि	क्षुधोः	क्षुत्सु
सम्बोधन	क्षुत्	क्षुधौ	क्षुधः *

सब धकारान्त शब्दके रूप 'क्षुध्' शब्दके तुल्य।† यथा—
वीरुध् (लता), युध् (युद्ध), समिध् (यज्ञकाष्ठ)।

नकारान्त।

सीमन् (सीमा, अवधि), पामन् (खुजली) प्रभृति नकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'महिमन्'-शब्दके तुल्य।

पकारान्त।

अप् शब्द (जल Water)। नित्य बहुवचनान्त।

१मा	२या	३या	४र्थी
आपः	अपः	अद्भिः	अद्भ्यः

---

* धकारान्त शब्दके 'ध्'के स्थानमें—'सु' और 'सुप्' परे 'त्', और 'भ' परे 'द्' होता है।

† पदके अन्तमें, और विभक्तिका व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'बुध्'-शब्दके 'ब'के स्थानमें 'भ' होता है, यथा—भुत्, बुधौ, बुधः ; बुधम्, बुधौ, बुधः , बुधा, भुद्भ्याम्, भुद्भिः इत्यादि।

५मी	६ष्ठी	७मी	सम्बो
अद्भ्य	अपाम्	अप्सु	आप·

शुद्ध करो—अन्ध पथ न पश्यति । बालक पये कलह· करोति । हरेन्द्र चन्द्रमा पश्यति । राजा दुर्जन धनात् ददाति । विद्वानम्य सर्वत्र सम्मानम् । अहं यत् वाचं वदामि, तस्मिन् किं दोष अस्ति ? अहं त्वचे (चर्ममे) वेदना अनुभवामि । राम एकं शाक ब्राह्मणे ददाति । विद्युता इतस्ततो यान्ति । अह सम्पदेन येष्ट । निर्मलम् आप पिब ।

भकारान्त ।

ककुभ् शब्द (दिक् Direction) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ककुप् *	ककुभौ	ककुभ
द्वितीया	ककुभम्	ककुभौ	ककुभ
तृतीया	ककुभा	ककुब्भ्याम्	ककुब्भि
चतुर्थी	ककुभे	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्य·
पञ्चमी	ककुभः	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्य·
षष्ठी	ककुभः	ककुभो·	ककुभाम्
सप्तमी	ककुभि	ककुभो·	ककुप्सु
सम्बोधन	ककुप्	ककुभौ	ककुभ·

सब भकारान्त शब्दके रूप 'ककुभ्-शब्दके' तुल्य । यथा—अनुष्टुभ्, त्रिष्टुभ् (छन्दोविशेष) ।

---

* भकारान्त शब्दके 'भ्' के स्थानमें—'स' और 'सुप्' परे 'प्',और 'भ' परे 'ब्' होता है।

रकारान्त।

द्वार् शब्द (दरवाजा ; उपाय Door , means)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्वाः	द्वारौ	द्वारः
द्वितीया	द्वारम्	द्वारौ	द्वारः
तृतीया	द्वारा	द्वार्भ्याम्	द्वार्भिः
चतुर्थी	द्वारे	द्वार्भ्याम्	द्वार्भ्यः
पञ्चमी	द्वारः	द्वार्भ्याम्	द्वार्भ्यः
षष्ठी	द्वारः	द्वारोः	द्वाराम्
सप्तमी	द्वारि	द्वारोः	द्वार्षु
सम्बोधन	द्वाः	द्वारौ	द्वारः

सब 'आर्'-भागान्त शब्दके रूप 'द्वार्'-शब्दके तुल्य।

गिर् शब्द (वाक्य Speech)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गीः	गिरौ	गिरः
द्वितीया	गिरम्	गिरौ	गिरः
तृतीया	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
चतुर्थी	गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
पञ्चमी	गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
षष्ठी	गिरः	गिरोः	गिराम्
सप्तमी	गिरि	गिरोः	गीर्षु
सम्बोधन	गीः	गिरौ	गिरः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	भास.	भाभ्याम्	भाभ्य.
षष्ठी	भास	भासो	भासाम्
सप्तमी	भासि	भासोः	भाःसु।
सम्बोधन	भाः	भासौ	भास.

'इस्'-भागान्त—अर्चिस् शब्द* (शिखा, ज्वाला Flame)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अर्चि.	अर्चिषौ	अर्चिष.
द्वितीया	अर्चिषम्	अर्चिषौ	अर्चिष.
तृतीया	अर्चिषा	अर्चिर्भ्याम्	अर्चिर्भि.
चतुर्थी	अर्चिषे	अर्चिर्भ्याम्	अर्चिर्भ्य.
पञ्चमी	अर्चिष.	अर्चिर्भ्याम्	अर्चिर्भ्य.
षष्ठी	अर्चिष.	अर्चिषो.	अर्चिषाम्
सप्तमी	अर्चिषि	अर्चिषो	अर्चिःषु
सम्बोधन	अर्चि.	अर्चिषौ	अर्चिष.

सब 'इस्' भागान्त शब्दके रूप 'अर्चिस्'-शब्दके तुल्य।

आशिस् शब्द (शुभाकाङ्क्षा, अभिलाष Benediction, desire)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	आशी	आशिषौ	आशिष
द्वितीया	आशिषम्	आशिषौ	आशिष.

* 'अर्चिस्'-शब्द क्लीवलिङ्गभी होता है।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृतीया	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः
चतुर्थी	आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
पञ्चमी	आशिषः	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
षष्ठी	आशिषः	आशिषोः	आशिषाम्
सप्तमी	आशिषि	आशिषोः	आशीःषु
सम्बोधन	आशीः	आशिषौ	आशिषः

शुद्ध करो—पूर्वस्मिन् दिशि निशाकरो राजते । उत्तरस्मिन् दिशि हिमालयर्वर्त्तते । सर्वे देवता मयि शुभ आशीं कुर्वन्ति । तेन आशिना अहं सुस्थं भवामि । पश्चिमस्या दिशि चन्द्रमाम् अस्तमितां पश्यामि । ग्रीष्मे काका वाप्या अपं पिबन्ति । य सत्य गिरं वदति, स सर्वदा दिवे वसति । तव आशिषस्य अपूर्वं शक्ति ।

हकारान्त।

उपानह् शब्द (जूता Sandal, shoe)।

(१मा) उपानत्, उपानहौ, उपानहः, (२या) उपानहम्, उपानहौ, उपानहः, (३या) उपानहा, उपानद्भ्याम्, उपानद्भिः, (४र्थी) उपानहे, उपानद्भ्याम्, उपानद्भ्यः, (५मी) उपानहः, उपानद्भ्याम्, उपानद्भ्यः, (६ष्ठी) उपानहः, उपानहोः, उपानहाम्, (७मी) उपानहि, उपानहोः, उपानत्सु, (सम्बो) उपानत्।



व्यञ्जनान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र।

१९४। 'स', 'अम्' और सम्बोधनके 'स' का लोप होता है,

यथा—जगत्+सु=जगत्, जगत्+अम्=जगत्।

१९५। 'औ' के स्थानमें 'ई', और 'जस्' तथा 'शस्' के स्थानमें 'इ' होता है, यथा—जगत्+औ=जगत्+ई=जगती, ददत्+जस्=ददत्+इ=ददति।

१९६। 'जस्' और 'शस्' परे चकारान्त शब्दके 'च्' के स्थानमें 'ञ्', और जकारान्त शब्दके 'ज्' के स्थानमें 'ञ्' होता है; यथा—प्राच्+जस्=प्राञ्+इ (१९५ सू)=प्राञ्चि, असृज्+जस्=असृञ्+इ=असृञ्जि।

१९७। 'जस्' और 'शस्' परे अन्त्यस्वरके पश्चात् 'न्' होता है; दान्त शब्दमें नहीं होता, यथा—जगत्+जस्=जगन्त्+इ=जगन्ति।

१९८। 'जस्' और 'शस्' परे रहनेसे, अभ्यस्त शब्दके 'त्' के स्थानमें विकल्पसे 'न्त्' होता है; यथा—जाग्रत्+जस्=जाग्रन्त्+इ=जाग्रन्ति, पक्षे—जाग्रत्+जस्=जाग्रत्+इ=जाग्रति।

१९९। 'जस्' और 'शस्' परे नकारान्त और 'न्स्' भागान्त शब्दका अन्त्यस्वर दीर्घ होता है, यथा—नामन्+जस्=नामान्+इ=नामानि; हविस्+जस्=हविन्स् (१९७ सू)+जस्=हवीन्स्+इ=हवींस् (६३ सू)+इ=हवींषि (१०८ (क) सू)।

२००। 'सु' परे नकारका लोप होता है, सम्बोधनके 'सु' में विकल्पसे होता है; यथा—नामन्+सु (सम्बोधन)=नाम, (पक्षे) नामन्।

२०१। 'ई' परे 'अन्'-भागान्त शब्दके अकारका विकल्पसे लोप

होता है, यथा—नामन् + औ = नामन् + ई = नाम्न् + ई = नाम्नी, (पक्षे) नामन् + औ = नामन् + ई = नामनी।



व्यञ्जनान्त क्लीवलिङ्ग शब्द।

☞ व्यञ्जनान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप प्रथमा, द्वितीया और सम्बोधनमें समान, और तृतीयासे सप्तमीतक पुल्लिङ्गके तुल्य। इसलिये इनकी केवल प्रथमा विभक्तिके रूपही यहां लिखे जाते हैं।

चकारान्त—प्राच् शब्द—प्राक्, प्राची, प्राञ्चि। प्राय सब चकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'प्राच्'-शब्दके तुल्य। प्रत्यच् शब्द—प्रत्यक्, प्रतीची, प्रत्यञ्चि। उदच् शब्द—उदक्, उदीची, उदञ्चि। अन्वच् शब्द—अन्वक्, अनूची, अन्वञ्चि। तिर्य्यच् शब्द—तिर्य्यक्, तिरश्ची, तिर्य्यञ्चि।

जकारान्त।

असृज् शब्द (शोणित, रक्त Blood)।

असृक्	असृजी	असृञ्जि।

अवशिष्ट 'वणिज्'-शब्दके तुल्य।

प्राय सब जकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'असृज्'-शब्दके तुल्य।

तकारान्त।

जगत् शब्द (विश्व World)।

जगत्	जगती	जगन्ति।

अवशिष्ट 'भूभृत्'-शब्दके तुल्य।

प्रायः सब तकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'जगत्'-शब्दके तुल्य।

गच्छत् शब्द—गच्छत्, गच्छन्ती, गच्छन्ति।—भ्वादि, दिवादि, चुरादि और णिजन्त प्रभृति धातुके उत्तर 'शतृ'-प्रत्ययान्त सब क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'गच्छत्' शब्दके तुल्य।

इच्छत् शब्द—इच्छत्, इच्छती इच्छन्ती, इच्छन्ति।—तुदादि गणीय धातुके उत्तर 'शतृ'-प्रत्ययान्त सब क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'इच्छत्'-शब्दके तुल्य।

यात् शब्द—यात्, याती यान्ती, यान्ति।—आकारान्त अदादि-गणीय धातुके उत्तर 'शतृ' प्रत्ययान्त सब क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'यात्'-शब्दके तुल्य।

दरिद्रत् शब्द—दरिद्रत्, दरिद्रती, दरिद्रति दरिद्रन्ति।

जाग्रत् शब्द—जाग्रत्, जाग्रती, जाग्रति जाग्रन्ति।—जक्षत्, च-कासत् प्रभृति (१४२ पृ० २० पं०) शब्दके रूप क्लीवलिङ्गमें 'जाग्रत्'-शब्दके तुल्य।

भविष्यत् शब्द—भविष्यत्, भविष्यती भविष्यन्ती, भविष्यन्ति।—सब 'स्यतृ'-प्रत्ययान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'भविष्यत्'-शब्दके तुल्य।

महत् शब्द।

महत्	महती	महान्ति।

दकारान्त।

हृद् शब्द (वक्ष स्थल, छाती; मन Chest; mind)।

हृत्	हृदी	हृन्दि।

अवशिष्ट 'सुहृद्'-शब्दके तुल्य।

सब दकारान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'हृद्' शब्दके तुल्य*।

नकारान्त।

'अन्'-भागान्त—नामन् शब्द (आख्या Name)।

नाम नाम्नी, नामनी नामानि।

अवशिष्ट 'महिमन्'-शब्दके तुल्य†।

प्राय सब 'अन्'-भागान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'नामन्' शब्दके तुल्य। यथा—

धामन् (गृह); व्योमन् (आकाश), दामन् (रस्सी), प्रेमन् (प्रणय), वेमन् (तांत), सामन् (वेदविशेष)।

अनुवाद करो—शरीरसे रुधिर निकलता है (निःसरति)। वृक्षके पत्र श्रीयुक्त। ग्रीष्ममें आकाश निर्मल रहता है (तिष्ठति)। व्रजधाममें गोपियाँ वास करती हैं (वसन्ति)। प्रातःकालमें ऋषिगण साम गान करते हैं (गायन्ति)। जो वेद जानता है (वेत्ति), उसे 'वेदिक' कहते हैं (वदन्ति)। लड़के गायकी रस्सी खींचते हैं (आकर्षन्ति)। इस संसारमें सभी प्रेमसे आबद्ध। तांतसे कपड़ा बुनता है (वयति)।

जन्मन् शब्द (उत्पत्ति Birth)।

जन्म जन्मनी जन्मानि।

---

* द्विपाद् शब्द—द्विपात्, द्विपदी, द्विपान्दि। सब 'पाद्'-भागान्त शब्द इसी प्रकार।

† सम्बोधनके एकवचनमें—नाम, नामन्—ये दो पद होते हैं।

अवशिष्ट 'आत्मन्'-शब्दके तुल्य*।

'म' और 'व'-संयुक्त सब 'अन्'-भागान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'जन्मन्' शब्दके तुल्य। यथा—

चर्मन् (चमड़ा); वर्मन् (कवच), शर्मन् (सुख; कल्याण); कर्मन् (काम); नर्मन् (परिहास), सद्मन् (गृह), भस्मन् (राख), लक्ष्मन् (चिह्न), वर्त्मन् (पथ), पर्वन् (ग्रन्थि; उत्सव)।

अहन् शब्द (दिन Day)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
द्वितीया	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
तृतीया	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
चतुर्थी	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
पञ्चमी	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
षष्ठी	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
सप्तमी	अह्नि, अहनि	अह्नोः	अहःसु
सम्बोधन	अहः	अह्नी अहनी	अहानि

'इन्'-भागान्त—स्थायिन् शब्द (स्थितिशील, स्थिर Staying, lasting)।

स्थायि स्थायिनी स्थायीनि

अवशिष्ट 'धनिन्' शब्दके तुल्य।

सब 'इन्'-भागान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'स्थायिन्' शब्दके तुल्य।

---

* सम्बोधनके एकवचनमें—जन्म, जन्मन्—ये दो पद होते हैं।

रकारान्त ।

वार् शब्द (जल Water) ।

वा वारी वारि

अवशिष्ट 'द्वार्'-शब्दके तुल्य ।

शकारान्त ।

तादृश् शब्द ।

तादृक् तादृशी तादृशि ।

सकारान्त ।

'अस्-भागान्त—पयस् शब्द (दुग्ध , जल Milk , water

पयः पयसी पयांसि

अवशिष्ट 'वेधस्'-शब्दके तुल्य ।

सब 'अस्' भागान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'पयस्' शब्दके तुल्य । यथा—

अम्भस् (जल), रजस् (धूलि); तमस् (अन्धकार), वचस् (वाक्य), चेतस्, मनस् (चित्त), आगस् (अपराध), यशस् (कीर्त्ति), उरस्, वक्षस् (छाती), अयस् (लौह), वासस् (वस्त्र); वयस् (जीवितकालका परिमाण, पक्षी), छन्दस् (पद्य-बन्ध) ।

क्वसु (वसु) प्रत्ययान्त—विद्वस् शब्द—विद्वत्, विदुषी, विद्वांसि । शुश्रुवस् शब्द—शुश्रुवत्, शुश्रुवुषी, शुश्रुवांसि । तस्थि-वस् शब्द—तस्थिवत्, तस्थुषी, तस्थिवांसि ।

शुद्ध करो—महान् दुःखम् । पतन् फलानि गृहाण । एष असक् दुष्टानि जाता. । श्रीमन्तं फलम् अवलोकय । श्यामस्य धामं गच्छामि । काशाधामे शिवो विद्यते । ऊर्द्ध्वं भस्म मा क्षिप । चर्मात् पादुका जायते । नृपः दाम छिनत्ति । कर्मेण फल स्यात् । कर्मेभ्य सुखदुःखा जायन्ते । जन्मे जन्मे विष्णुभक्तर्भवेयम् । हित मनोहारी च दुर्लभो वच ।

※ व्याप्ति-अर्थमें कालवाचक और मार्गके परिमाण-वाचक शब्दके उत्तर द्वितीया विभक्ति होती है, यथा—(एक महीनाभर पढता हूँ, तबभी कुछ हुआ नहीं) मासम् एकं पठामि, तथाऽपि न किमपि अभवत्, (एक कोस व्यापकर यह जनपद है) क्रोशम् एकं जनपदोऽयं तिष्ठति ।

※ प्रयोजन सिद्ध होनेसे, उक्त कालवाचक और मार्गके परिमाण-वाचक शब्दके उत्तर तृतीया विभक्ति होती है, यथा—(यह पुस्तक एक महीनेमे पढा है) मासेन एकेन पुस्तकम् एतत् पठितवान्, (कोसभरमे सूर्य्यस्तव पढा गया) क्रोशेन एकेन सूर्य्यस्तोत्र पठितम्,—यहाँ पुस्तकका पढना एक महीनेमे, और सूर्य्यका स्तव-पाठ एक कोसमे समाप्त हुआ है ।

अनुवाद करो—दीर्घकाल गुरुके समीपमे (अन्तिक) वास करना चाहिये (वसेत्) । पाँच कोस व्यापकर काशीनगरी । साधक उपासनाके लिये सारी रात जागता है (जागर्त्ति) । वह सारा दिन उपनिषदोंका अध्ययन करता है (कुरुते) । तू एकदिनमेही इस ग्रन्थको पढ सकेगा (पठितु शक्ष्यसि) । क्षणकाल प्रतीक्षा कर (प्रतीक्षस्व), तेरा मनोरथ सिद्ध होगा (सेत्स्यति) ।

'इस्'-भागान्त—हविस् शब्द (घृत Clarified butter)।

हविः हविषी हवींषि

अवशिष्ट 'अर्चिस्' शब्दके तुल्य।

सब 'इस्'-भागान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'हविस्' शब्दके तुल्य। यथा—

ज्योतिस् (तेज, नक्षत्र); रोचिस्, शोचिस् (दीप्ति), बर्हिस् (कुश), सर्पिस् (घृत)।

'उस्'-भागान्त—धनुस् शब्द (धनुक Bow)।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धनुः	धनुषी	धनूंषि
द्वितीया	धनुः	धनुषी	धनूंषि
तृतीया	धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
चतुर्थी	धनुषे	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
पञ्चमी	धनुषः	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
षष्ठी	धनुषः	धनुषोः	धनुषाम्
सप्तमी	धनुषि	धनुषोः	धनुःषु
सम्बोधन	धनुः	धनुषी	धनूंषि

सब 'उस्' भागान्त क्लीवलिङ्ग शब्दके रूप 'धनुस्'-शब्दके तुल्य। यथा—

आयुस् (जीवितकाल); चक्षुस् (नेत्र), वपुस् (शरीर); यजुस् (वेदविशेष)।

अनुवाद करो—निष्काम कर्मसे चित्त शुद्ध होता है (भवति)।

चन्देका जूता । चन्द्रमें जो मलिन चिह्न है (अस्ति), उसीको कवि-लोग 'मृग' कहते हैं (वदन्ति)। पूर्वजन्मकी सुकृतिसे मनुष्योंको धर्ममें प्रवृत्ति होती है (जायते)। दो दिनमें यह काम होगा (भविष्यति)। लोहसे मद्य उत्पन्न होता है (उत्पद्यते)। धार्मिक राजाका यश सब देशोंमें सब कोई गाते हैं (गायन्ति) । मेरा अपराध क्षमा कीजिये (क्षमस्व)। मनमें कुचिन्ता नहीं करना (न कुर्य्यात्)। पढ़नेमें मन लगाओ (नियोजय)। गोवत्स दुग्ध पान करता है (पिबति) । प्रज्ज्वलनसे तेज बढ़ता है (वर्द्धते)। घृतसे (हविस्) होम करता है (जुहोति)। सूर्य्यकी दीप्तिसे जगत् प्रकाशित होता है (प्रकाशते)। तिवर्गोंमें तीन वसु। अनाचारसे आयुका क्षय होता है। लुब्धक धनुषमें बाण योजना करता है (योजयति)।

सर्वनाम-व्यवहार ।

सर्वादि समस्त सर्वनामोंके रूप यथाक्रम पुंलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और क्लीवलिङ्ग शब्द-रूपके बीचमें दिखलाये गये।

सर्व, विश्व और सम शब्द—'सकल' यह अर्थ समझानेसेही सर्वनाम होते हैं ; अन्य अर्थमें उनके रूप साधारण शब्दके तुल्य ; यथा—

सर्व { (सकल) सबको नमस्कार—सर्वस्मै नमः ।
(शिव) शिवको नमस्कार—सर्वाय नमः ।

विश्व
(सकल) सबमे विश्वास युक्त नहीं—विश्वस्मिन् विश्वासो न युज्यते।
(जगत्) जगत्मे सभी नश्वर—विश्वे सर्वं हि नश्वरम्।

सम
(सकल) सभीकाही गुरु पिता—समेषां हि गुरु पिता।
(तुल्य) पशुओंके तुल्य मूर्खोंका सङ्ग छोड़ना चाहिये—पशुभि समानां मूर्खाणां सङ्ग परिहरेत्।

दिक्, देश वा काल समझानेमेंही 'पूर्व' प्रभृति सात शब्द सर्वनाम होते हैं, अन्य अर्थमे साधारण शब्दके तुल्य, यथा—

पर
(काल) यतियोंका पर दिनके लिये सङ्ग्रह निषिद्ध—यतीनां परस्मै दिनाय सङ्ग्रहो निषिद्ध।
(श्रेष्ठ) परम पुरुषको नमस्कार—पराय पुरुषाय नम।

दक्षिण
(दिक्) दक्षिण दिशाका अधिपति यम—दक्षिणस्या दिशा अधिपति कृतान्त।
(निपुण) ब्रह्मविचारमे कुशल गार्गीका याज्ञवल्क्यके साथ सवाद हुआ था—ब्रह्मविचारे दक्षिणाया गार्ग्या याज्ञवल्क्येन समं संवाद समभवत्।

उत्तर
(देश) वह तपस्याके लिये उत्तर देशको गया—स तपसे उत्तरस्मै देशाय प्रातिष्ठत।
(प्रतिवचन) तेरे पत्रके उत्तरके लिये व्यग्र हूँ—तव पत्रस्य उत्तराय व्यग्रोऽस्मि।

आत्मा (स्वयम्) और आत्मीय (स्वकीय) अर्थमेही 'स्व'-शब्द सर्वनाम होता है, अन्य अर्थमें सामान्य अकारान्तके तुल्य, यथा—

स्व —
(आत्मा) ज्ञानी अपनेमे रमण करता है—ज्ञानी स्वस्मिन् रमते ।
(आत्मीय) सब कोई स्वकीय पुत्रमे स्नेह करता है—सर्व स्वस्मिन् पुत्रे स्निह्यति ।
(धन) दूसरेके धनमे स्पृहा न करना—परस्य स्वाय न स्पृहयेत् ।
(ज्ञाति) ज्ञातिको विद्या दान करना—स्वाय विद्यां दद्यात्*

'एक'-शब्द†—एक, अन्य, केवल, श्रेष्ठ प्रभृति सभी अर्थमे सर्वनाम होता है, यथा—(एक आदमीमे पक्षपात नहीं करना) एकस्मिन् पक्षपातं न कुर्यात्, (अन्यलोग कहते हैं) एके वदन्ति, (कोई कोई आत्माको निर्गुण नहीं मानते) एके आत्मानं निर्गुणं न मन्यन्ते; (केवल नारायणको नमस्कार) एकस्मै नारायणाय नमः; (श्रेष्ठ ज्ञानी वसिष्ठसे रामचन्द्रने तत्त्वज्ञान पाया) एकस्मात् ज्ञानिनः वसिष्ठात् रामचन्द्र तत्त्वज्ञानम् अवाप ।

इदम् और एतद्—एन ।

पुनरुक्तिविषयमे, अर्थात् उल्लिखितका पुनरुल्लेख होनेसे, द्वितीयाके एकवचन, द्विवचन, बहुवचन, तृतीयाका एकवचन, और षष्ठी तथा सप्तमीके द्विवचनमे 'इदम्' और 'एतद्' शब्दके स्थानमे 'एन' आदेश होता है, यथा—(पु०) एनम्, एनौ, एनान्, एनेन, एनयोः; (स्त्री०)

---

* 'स्व'-शब्द—'धन'-अर्थमे पु०, क्ली०, और 'ज्ञाति'-अर्थमे—पु० ।

† एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा ।
साधारणे समानेऽपि सङ्ख्यायाञ्च प्रयुज्यते ॥

एनाम्, एने, एना, एनया, एनयो ; (क्लीव०) एनत्, एने, एनानि, एनेन, एनयो। उदाहरण—(इस छात्रकी परीक्षा करो, पीछे इसको योग्य श्रेणीमें भरती कर लो) इमम् अथवा एतं छात्रं परीक्षस्व ; ततः एनं योग्य-श्रेण्यां प्रवेशय।

उभ (Both)।

'उभ' शब्द केवल द्विवचनमें व्यवहृत होता है, यथा—(पुंलिङ्ग)—(राम लक्ष्मण दोनों जाते हैं) उभौ रामलक्ष्मणौ यातः, (स्त्रीलिङ्ग)—(सारदा ज्ञानदा दोनों हँसती हैं) उभे सारदाज्ञानदे हसतः, (क्लीव लिङ्ग)—(एकसमय फल पत्र दोनों गिरते हैं) युगपत् उभे फलपत्रे पततः। समासमें 'उभ' शब्दके स्थानमें 'उभय' होता है ; यथा—उभौ पार्श्वौ—उभयपार्श्वौ।

उभय (Both)।

'उभय'-शब्द द्विवचनमें व्यवहृत नहीं होता ; केवल एकवचन और बहुवचनमें व्यवहृत होता है ; यथा—(देवगण असुरगण दोनोंने समुद्र मन्थन किया था) उभये देवासुरगणाः समुद्रं ममन्थुः, (देवता मनुष्य दोनों नृत्य करते हैं) उभये देवमनुष्या नृत्यन्ति।

भवत् (आप Your honour)।

सभ्य वचनप्रयोगमें (as a courteous form of expression) 'भवत्'-शब्दका व्यवहार होता है, किन्तु इसका सम्मान अर्थ नियत नहीं। सम्मान अर्थमें 'भवत्'-शब्दके पूर्वमें 'अत्र' और 'तत्र' वा 'स' संयुक्त किये जाते हैं ; यथा—अत्रभवत् ; तत्रभवत्* वा सभवत्।

---

* "पूज्ये तत्रभवानत्रभवांश्च भगवानपि"।

इनमेंसे 'अत्रभवत्'-शब्द वक्ताके निकटस्थ व्यक्तिके सम्बन्धमें, और 'तत्रभवत्' वा 'तभवत्' शब्द दूरस्थ अथवा अनुपस्थित व्यक्तिके सम्बन्धमें प्रयुक्त होता है । उदाहरण—(आपको निवेदन करता हूँ) अत्रभवन्तं निवेदयामि, (अरे हट जा, आप प्रकृतिस्थ हुए हैं) "अपेहि रे, अत्रभवान् प्रकृतिम् आपन्नः" शकु० १. (पूज्यपाद काश्यपने आदिष्ट हुआ हूँ) "आदिष्टोऽस्मि तत्रभवता काश्यपेन" शकु० ४; (वे कर्तव्य-विषयमें मुझे नियुक्त करते हैं) "मां विधेयविषये भगवान् (His Honour) नियुङ्क्ते" मालती० १ १२ ।

परस्पर, अन्योन्य, इतरेतर (Each other, one another) ।

परस्पर, अन्योन्य और इतरेतर शब्दका एकही अर्थ । ये क्लीबलिङ्ग-के एकवचनमेंही व्यवहृत होते हैं, यथा—दुःशीला छात्रा परस्परं विवदन्ते (विवाद करते हैं), ये परस्परम् आद्रियन्ते, ते हि सुशीला । क्वचित् बहुवचनमेंभी प्रयोग दृष्ट होता है; यथा—"अन्योन्येषां पुष्करै-रामृशन्त" माघ० १८. ३२ ।

६५. सर्वनाम शब्दके उत्तर सम्बन्धार्थमें 'ईय'-प्रभृति प्रत्यय करनेमें कई विशेषणपद उत्पन्न होते हैं; (ये सर्वनाम नहीं) । यथा—मदीय, मामक, मामकीन (मेरा), अस्मदीय, आस्माक, आस्माकीन (हमारा); त्वदीय, तावक, तावकीन (तेरा); युष्मदीय, यौष्माक, यौष्माकीन (तुम्हारा), भवदीय, भावत्क (आपका), तदीय (उसका, उनका), अन्यदीय (अन्योंका, अन्यका); परकीय (दूसरेका, दूसरोंका); स्वीय, स्वकीय (अपना) ।* यथा—(हमारा घर) अस्मदीयं गृहम्;

---

* तावक, मामक, यौष्माक और आस्माक शब्दके स्त्रीलिङ्गमें—तावकी,

(तेरी पुस्तक) त्वदीय पुस्तकम् ।

अनुवाद करो—दूसरेके धनमें लोभ मत कर (मा लुभ्य) । श्याम सब बालकोंमें श्रेष्ठ । ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों परस्पर सौहार्दसे रहे (तिष्ठेताम्) । राम श्याम दोनों गये (गतौ) । मूर्ख परस्परका (द्वितीया) उपहास करते हैं (उपहसन्ति) । बालक अन्योन्यका वस्त्र आकर्षण करते हैं (आकर्षन्ति) । हमलोग परस्परमें अनुरक्त ।

सङ्ख्यावाचक शब्द (Numerals) ।

एक, द्वि, त्रि, चतुर्, पञ्चन्, षष्, सप्तन्, अष्टन्, नवन्, दशन्, एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्, चतुर्दशन्, पञ्चदशन्, षोडशन्, सप्तदशन्, अष्टादशन्, ऊनविंशति,* विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, नियुत, कोटि, अर्बुद, वृन्द, खर्व, निखर्व, शङ्ख, पद्म, सागर, अन्त्य, मध्य, परार्द्ध †—

मामकी, यौष्माकी और आस्माकी होते हैं। तद्भिन्न शब्द स्त्रीलिङ्गमें आकारान्त होते हैं।

* अथवा-एकोनविंशति, एकान्नविंशति, एकाद्नविंशति ।

† विंशति और त्रिंशत् शब्द परे रहनेसे—'द्वि' शब्दके स्थानमें 'द्वा', 'त्रि' शब्दके स्थानमें 'त्रय', और 'अष्टन्' शब्दके स्थानमें 'अष्टा' होता है; यथा—द्वाविंशति, त्रयोविंशति, अष्टाविंशति, द्वात्रिंशत्, त्रयस्त्रिंशत्, अष्टात्रिंशत् ।

चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति और नवति शब्द परे रहनेसे

ये सङ्ख्यावाचक शब्द* ।

एक शब्द (One)—एकवचनान्त ।

इसके रूप पुलिङ्ग और क्लीवलिङ्गमे 'सर्व'-शब्दके तुल्य, स्त्रीलिङ्गमे 'सर्वा'-शब्दके तुल्य ।

द्वि शब्द (दो Two)—द्विवचनान्त ।

त्रि शब्द (तीन Three)—बहुवचनान्त ।

विकल्पसे होता है , यथा—द्विचत्वारिंशत् द्वाचत्वारिंशत्, त्रिचत्वारिंशत् त्रयश्चत्वारिंशत्, अष्टचत्वारिंशत् अष्टाचत्वारिंशत् ।

'अशीति'-शब्द परे रहनेसे नहीं होता , यथा—द्व्यशीति, त्र्यशीति, अष्टाशीति ।

९९=नवनवति अथवा एकोनशतम् ।

समाससूत्रानुसार 'षष्' शब्दके स्थानमे 'षट्' आदेश, और पञ्चन्, सप्तन् प्रभृति नकारान्त शब्दके नकारका लोप होता है ; यथा—षड्विंशति, पञ्चविंशति इत्यादि ।

१०१, १०२, १०३, १०४, १०५ इत्यादि=एकोत्तरशत अथवा एकाधिकशत, द्व्युत्तरशत अथवा द्व्यधिकशत, त्र्युत्तरशत वा त्र्यधिकशत, चतुरुत्तरशत वा चतुरधिकशत, पञ्चोत्तरशत वा पञ्चाधिकशत इत्यादि ।

२००, ३०० इत्यादि=द्विशत, त्रिशत इत्यादि ।

* एक दश शतञ्चैव सहस्रमयुतं तथा ।
लक्षञ्च नियुतञ्चैव कोटिरर्बुदमेव च ॥
वृन्दः खर्वो निखर्वश्च शङ्ख-पद्मौ च सागरः ।
अन्त्यं मध्यं परार्द्धञ्च दशवृद्ध्या यथोत्तरम् ॥

इनके रूप समस्त लिङ्गोंमेंही दिखलाये गये।

'त्रि' से 'अष्टादशन्' पर्य्यन्त शब्द बहुवचनान्त।

चतुर् शब्द (चार Four)।

	पुलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	क्लीवलिङ्ग
१मा	चत्वारः	चतस्रः	चत्वारि
२या	चतुरः	चतस्रः	चत्वारि
३या	चतुर्भिः	चतसृभिः	चतुर्भिः
४र्थी	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्भ्यः
५मी	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्भ्यः
६ष्ठी	चतुर्णाम्	चतसृणाम्	चतुर्णाम्
७मी	चतुर्षु	चतसृषु	चतुर्षु
सम्बो	चत्वारः	चतस्रः	चत्वारि

शुद्ध करो—एक मुद्रा। द्वे ब्राह्मणौ गच्छत। द्वौ फले पश्यामि। द्वौ वस्त्रम्। तिसृभ्य मुनिभ्य देहि। चत्वार पुष्पमाला। अत्र चत्वारि माला तिष्ठन्ति। चतस्र मनुष्या हसन्ति। चतुर्षु दिक्षु। चत्वारि गृहा विद्यन्ते। तिसृभि बालकै सह नद्या गतवान्।

	पञ्चन् शब्द (पाँच Five)	षष् शब्द (छः Six)।
१मा	पञ्च	षट्
२या	पञ्च	षट्
३या	पञ्चभिः	षड्भिः
४र्थी	पञ्चभ्यः	षड्भ्यः
५मी	पञ्चभ्यः	षड्भ्यः

६ष्ठी	पञ्चानाम्	षण्णाम्
७मी	पञ्चसु	षट्सु

तीनो लिङ्गोमेही समान।

अष्टन् शब्द (आठ Eight)।

१मा	अष्ट, अष्टौ
२या	अष्ट, अष्टौ
३या	अष्टभि , अष्टाभिः
४र्थी	अष्टभ्य , अष्टाभ्य
५मी	अष्टभ्य., अष्टाभ्य
६ष्ठी	अष्टानाम्
७मी	अष्टसु, अष्टासु
सम्बो	अष्ट, अष्टौ

तीनो लिङ्गोमेही समान।

'पञ्चन्' से 'अष्टादशन्' पर्य्यन्त शब्दोंके रूप तीनो लिङ्गोंमेही एक-प्रकार यथा—पञ्च वृक्षा , पञ्च स्त्रिय , पञ्च फलानि।

सप्तन्, नवन्, दशन् प्रभृति नकारान्त शब्दके रूप—'पञ्चन्'-शब्दके तुल्य।

'ऊनविंशति', 'विंशति' प्रभृति इकारान्त शब्दके रूप—'मति'-शब्दके तुल्य।

'त्रिंशत्' प्रभृति तकारान्त शब्दके रूप—'भूभृत्'-शब्दके तुल्य।

'शत'-प्रभृति अकारान्त शब्दके रूप—'फल' शब्द के तुल्य। किन्तु वृन्द, अर्बुद, निखर्व, शङ्ख, पद्म और सागर शब्दके रूप—'देव'-शब्दके

तुल्य ।

अनुवाद करो—एक वृक्ष । दो मनुष्य जाते हैं (गच्छत) । इस दिशा में (तृतीया) तीन बालिकायें आती हैं (आगच्छन्ति) । चार गायें इधर उधर (इतस्तत) घूमती हैं (भ्रमन्ति) । कान्यकुब्जसे पाँच ब्राह्मण बङ्गदेशको गये थे (गतवन्त) । छ रिपु सबको आक्रमण करते हैं (आक्रामन्ति) । वे सात भाई । आठ प्रहरोंमें (तृतीया) एक दिन । नौ बालक । दश दिक् । ग्यारह रुद्र । बारह आदित्य । तेरह आदमी इस घरमें रहते हैं (वसन्ति) । चौदह भुवन । पन्द्रह तिथि । सोलह भाग । उसने मुझे अठारह रुपये (रौप्यमुद्रा, रूप्यकम्) दिये थे ।

'ऊनविंशति' से 'परार्द्ध' पर्य्यन्त समस्त सङ्ख्यावाचक शब्द नित्य एकवचनान्त ।

किन्तु उनकी आवृत्ति होनेसे, अर्थात् 'द्वि', 'त्रि' प्रभृति सङ्ख्यावाचक शब्द उनका विशेषण रहनेसे, अथवा उनको बहुत्व विवक्षा होनेसे यथासम्भव द्विवचनान्त और बहुवचनान्त होते हैं, यथा—द्वे विंशती, तिस्रो विंशतय इत्यादि ।

सङ्ख्यावाचक शब्द विशेष्य और विशेषण दोनो होते हैं । जब स ङ्ख्याको समझाते हैं, तब 'विशेष्य', और जब सङ्ख्याविशिष्ट पदार्थको समझाते हैं, तब 'विशेषण' । ये जब विशेष्य होते हैं, तब जिसकी स ङ्ख्या कही जाय, उसमें षष्ठीका बहुवचन होता है ।*

---

* 'एक'से 'अष्टादशन्' पर्य्यन्त शब्द तीनो लिङ्गोंमेंही व्यवहृत होते हैं । किन्तु सङ्ख्या समझानेसे अर्थात् विशेष्य होनेसे क्लीवलिङ्ग होते हैं ।

(उदाहरण)

विशेषण	विशेष्य
एक ब्राह्मण—एक ब्राह्मण	ब्राह्मणानाम् एकम् ।
बीस फल—विंशति फलानि	फलानां विंशति ।
बाईस लड़कियां—द्वाविंशति बालिका	बालिकानां द्वाविंशति ।
पचास फल दो—पञ्चाशत फलानि देहि	फलानां पञ्चाशतं देहि ।
सौ घोड़े—शतम् अश्वा	अश्वानां शतम् ।
सहस्र हाथी—सहस्रं हस्तिन	हस्तिनां सहस्रम् ।
कोटि मनुष्य—कोटि मनुष्या	मनुष्याणां कोटि ।
सहस्र दरिद्रको धन दो { सहस्राय दरिद्रेभ्यो धनं देहि	{ दरिद्राणां सहस्राय धनं देहि ।
दो कोड़ी मनुष्य द्वे विंशती मनुष्या	मनुष्याणां द्वे विंशती ।
दो सौ अश्व द्वे शते अश्वा	अश्वानां द्वे शते ।
तीन सौ वृक्ष त्रीणि शतानि वृक्षा	वृक्षाणां त्रीणि शतानि ।
कोड़ीमें कोड़ीमें मनुष्य } विंशतय मानुषा	मानुषाणां विंशतय ।
शत शत अश्व शतानि अश्वा	अश्वानां शतानि (वा शतश.* अश्वा)।
सहस्र सहस्र पदाति सहस्राणि पदातय	पदातीनां सहस्राणि ।

अनुवाद करो—मनुष्यके दो हाथ, बीस अङ्गुलियां । तीन दिनमें (तृतीया) एक महीना । बारह महीनेमें एक वर्ष । पन्द्रह बालक खेलते

* 'शस्'-प्रत्ययान्त 'शतशस्'-शब्द—अव्यय ।

हैं (क्रीडन्ति)। यह सौ छात्रका शिक्षक। रावणके दस पुत्र थे (आसन्)। इस ग्राममें चार सौ आदमी रहते हैं (निवसन्ति)। दो कोड़ी फल दो।

पूरणवाचक शब्द (Ordinals)।

द्वि, त्रि प्रभृति सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'तीय'-प्रभृति प्रत्यय करनेसे, द्वितीय तृतीय प्रभृति पूरणवाचक शब्द निष्पन्न होते हैं। वे सङ्ख्यावाचक नहीं। पूरण-अर्थमें द्वि और त्रि शब्दके उत्तर 'तीय',* चतुर् और षष् शब्दके उत्तर 'थट्' (थ), पञ्चन्, सप्तन्, अष्टन्, नवन्, दशन् शब्दके उत्तर 'मट्' (म), सङ्ख्यापूर्व दशन् शब्दके उत्तर 'डट्' (अ), विंशति त्रिंशत् चत्वारिंशत् और पञ्चाशत् शब्दके उत्तर 'डट्' और 'तमट्', और षष्टि प्रभृति समस्त सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'तमट्' होता है,† किन्तु सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्वमें रहनेसे, षष्टि सप्तति अशीति और नवति शब्दके उत्तर विकल्पसे 'डट्' होता है‡, यथा—द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, ..दशम, एकादश,.. ऊनविंश वा ऊनविंशतितम, विंश वा विंशतितम, एकविंश वा एकविंशतितम, ..ऊनत्रिंश वा ऊनत्रिंशत्तम, ..

---

* 'त्रि'के स्थानमें 'तृ' होता है।

† 'डट्' प्रत्यय होनेसे,—दशन् शब्दको 'अन्', विंशति शब्दको 'अति', 'त्रिंशत् प्रभृति शब्दको 'अत्', और षष्टि प्रभृति शब्दके इकारका लोप होता है।

‡ 'एक'-सङ्ख्याद्वारा किसीका पूरण नहीं होता। इसलिये उसमें कोई पूरणवाचक शब्द उत्पन्न नहीं हो सकता। 'प्रथम'-शब्द पूरणवाचक नहीं। प्रथ् (धातु)+अम=प्रथम ; स्त्रीलिङ्गमें—'प्रथमा'।

ऊनचत्वारिंश वा ऊनचत्वारिंशत्तम, .. ऊनपञ्चाश वा ऊनपञ्चाशत्तम,... ऊनषष्टितम,* षष्टितम, एकषष्ट वा एकषष्टितम, ..ऊनसप्ततितम, सप्ततितम, एकसप्तत वा एकसप्ततितम, .. ऊनाशीतितम, अशीतितम, एकाशीत वा एकाशीतितम, ऊननवतितम, नवतितम, एकनवत वा एकनवतितम,...नवनवत वा नवनवतितम, शततम एकाधिकशततम,...सहस्रतम, अयुततम, लक्षतम इत्यादि ।

द्वितीय और तृतीय शब्द स्त्रीलिङ्गमें आकारान्त, और तद्भिन्न समस्त पूरणवाचक शब्दही स्त्रीलिङ्गमें ईकारान्त होते हैं ; यथा—द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी इत्यादि ।

वचन-निर्णय ।

एकवचनान्त शब्द ।

१०२ । (क) जातिवाचक शब्द, समूहार्थ शब्द और समष्टिबोधक शब्द (Collective noun) एकवचनान्त ; यथा—वर्णानां ब्राह्मणो गुरु ; छात्रगण ; सेना ।†

---

* 'ऊन'-शब्द सङ्ख्यावाचक नहीं । 'ऊन'-शब्दका अर्थ—हीन, कम । एक-कम षष्टि=एकोनषष्टि वा ऊनषष्टि (एकेन ऊना एकोना, एकोना षष्टिः एकोनषष्टि ; ऊना चासौ षष्टिश्चेति ऊनषष्टि ('एकेन' पद ऊह्य रहता है)।

† जातिवाचक शब्दका व्यक्तिगत विभिन्नतासे द्वित्व और बहुत्व समझानेसे द्विवचन और बहुवचनमें रूप होता है ; यथा—ब्राह्मणौ, ब्राह्मणाः । समूहार्थ और समष्टिबोधक शब्दका द्वित्व और बहुत्व समझानेसे द्विवचन और बहुवचनमें रूप होता है ; यथा—छात्रगणाः ; द्वे सेने ।

(ख) समाहार-द्वन्द्व और समाहार द्विगु समास निष्पन्न शब्द एकवचनान्त, यथा—(द्वन्द्व) पाणिपादम्, (द्विगु) त्रिभुवनम् इत्यादि।

द्विवचनान्त शब्द।

(ग) अश्विनीकुमारके नाम (अश्विनीकुमार, अश्विन्, आश्विनेय, नासत्य, दस्र), दम्पति और जम्पति शब्द द्विवचनान्त।

बहुवचनान्त शब्द।

(घ) दार (पत्नी) अक्षत, लाज और असु तथा प्राण (जीवन) शब्द पुंलिङ्ग और नित्य बहुवचनान्त।

(ङ) अप्, वर्षा, सिकता और 'वस्त्रान्त'-वाचक दशा शब्द नित्य बहुवचनान्त।

(च) अप्सरस्, सुमनस् (पुष्प), जलौकस् और समा शब्द विकल्पसे बहुवचनान्त।

(छ) 'गृह' शब्द क्लीवलिङ्गमें तीनों वचनही होता है, किन्तु पुंलिङ्गमें नित्य बहुवचनान्त।

(ज) गौरव समझानेसे, सभी शब्द विकल्पसे बहुवचनान्त होते हैं, यथा—'मम गुरुः' के स्थानमें 'मम गुरवः'।

गौरवार्थमें चरण-पर्य्यायक शब्दभी बहुवचनमें प्रयुक्त होता है; यथा—पितुः श्रीचरणेषु निवेदनम्; देवपादाः समादिशन्ति।

(झ) विशेषणरहित 'अस्मद्' शब्द विकल्पसे बहुवचनान्त होता है, यथा—'अहं ब्रवीमि, आवां ब्रूवः' के स्थानमें 'वयं ब्रूमः'। विशेषण* रहनेसे—दीनोऽहं ब्रवीमि, दीनौ आवां ब्रूवः।

---

* 'विशेषण'-शब्दसे यहाँ 'उद्देश्य विशेषण' विवक्षित है।

(ञ) जनपदका नाम (मुल्क या जिलाका नाम) बहुवचनान्त , यथा—वङ्गाः, कलिङ्गाः * ।

(ट) दल, परिवार प्रभृति अर्थ समझानेसे, व्यक्तिके नामके पश्चात् प्रत्यय-लोप करके बहुवचन प्रयुक्त होता है , यथा—"रघूणामन्वयं वक्ष्ये" र० १ ९; "जनकानां पुरोहितः" ।

शुद्ध करो—स मा समर्तां मुद्रा दत्तवान् । स पृथु त्रिभुवनेषु सर्वस्याधिपतिर्भवति । अश्विनीकुमार सराणा भिषक् । दारं नृणं त्रिवर्गस्य लोके प्राणमिव प्रिय । वर्षासु अप् वर्द्धन्ते । इन्द्रसभायाम् अप्सरसी नृत्यन्ति । बालका लाज भक्षयन्ति ।



अव्यय और उनका व्यवहार

(Indeclinables and their use) ।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति, तदव्ययम् ॥

किसी लिङ्गमें, किसी विभक्तिमें, अथवा किसी वचनमें जिन शब्दोंका रूपान्तर नहीं होता, उन्हें 'अव्यय' कहते हैं; यथा—च, वा, तु, हि इत्यादि ।

अव्यय शब्दोंके बीचमें कई विशेष्य और कई विशेषण । स्वर्, अन्तर्, प्रातर्, दिवा, सायम्, नक्तम्, अद्य, ह्यस्, श्वस्, यदा, यत्र,

* जनपद-पर्य्यायक शब्द एकवचनान्त; यथा—वङ्गदेशः, कलिङ्ग विषय ।

तदा, तत्र, इदानीम्, अधुना इत्यादि द्रव्यवाचक अव्यय-शब्द विशेष्य*। उच्चैस्, नीचैस्, शनैस्, मृषा, मिथ्या, वृथा, नाना इत्यादि गुणवाचक अव्यय-शब्द विशेषण। च, वा, तु, हि प्रभृति कई अव्यय विशेष्यभी नहीं, विशेषणभी नहीं, केवल 'अव्यय'के नामसे परिचित।

१ च (और, व And—Copulative conjunction)।†

हिन्दी वा अङ्गरेजीमे जिस पदके पूर्वमे 'और' अर्थका पद वैठता है, संस्कृतमे उसी पदके पश्चात् 'च' व्यवहृत होता है; यथा—(राम और लक्ष्मण) रामो लक्ष्मणश्च, (राम, सीता और लक्ष्मण) राम सीता लक्ष्मणश्च, (तू और मे) त्वम् अहञ्च।

२ अपि (भी Also, too, even)।

(मै जाऊगा, वह-भी जायेगा) अह यास्यामि, सोऽपि यास्यति। (धातुओंमे विद्वान्लोग-भी चूकते हैं) धातुपु विद्वांसोऽपि भ्राम्यन्ति।

३ वा (अथवा, या Or—Alternative or disjunctive conjunction)।

हिन्दी या अङ्गरेजीमे जिस पदके पूर्वमे 'वा' अर्थका पद वैठता

* 'प्रातर्'-से 'अधुना'-पर्यन्त तेरह शब्द अधिकरणकारकमेही प्रयुक्त होते हैं।

† प्रत्येक पदका प्राधान्य अथवा प्रत्येक क्रियाकी समकालता समझानेके लिये प्रत्येक पदके पीछे 'च' बैठाया जा सकता है, यथा—रामश्च लक्ष्मणश्च; पपात च ममार च।

है, संस्कृतमे उसी पदके पश्चात् 'वा' प्रयुक्त होता है* । यथा—(मैं या तू) अहं त्वं वा, (अन्न या व्यञ्जन) अन्नं व्यञ्जनं वा ।

वितर्कस्थलमेभी 'वा' व्यवहृत होता है, यथा—(यह जानकर वह [शायद्—सम्भवत] क्रुद्ध हो सकता है) एतद् विदित्वा स वा कुपितो भवेत् ।

प्रश्नार्थक सर्वनामके साथभी सम्भावना-अर्थमे 'वा'-शब्दका व्यवहार होता है, यथा—"कस्य वा अन्यस्य वचसि मया स्थातव्यम् ?" काद० (और किसका वाक्य मैं पालन करूंगा ?), "परिवर्त्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ?" पञ्च० १,२८, (परिवर्त्तनशील संसारमे मरकर कौन जनमता नहीं ?) । 'लोप्त्रेण गृहीतस्य कुम्भीलकस्यास्ति वा प्रतिवचनम् ?' विक्रमो० २ ।

हिन्दीमे 'नहीं तो', और अङ्गरेजीमे either—or, whether—or के अनुवादमे 'वा'-शब्दका प्रयोग प्रत्येक पदके अन्तमे करना चाहिये; यथा—(वह नहीं तो मैं जाऊंगा) स वा अहं वा यास्यामि ।

५ तु (परन्तु, लेकिन But, on the contrary—Adversative particle) ।

'तु'-शब्द वाक्यके आदिमे नहीं बैठता, किसी पदके पश्चात् इसका प्रयोग होता है†, यथा—(वह जाय, परन्तु मैं नहीं जा-

---

* अथवा, किंवा, यद्वा, यदिवा—ये शब्द उस पदके पूर्वमेही बैठते हैं ।

† किन्तु, परन्तु—इनका प्रयोग वाक्यके आदिमेही होता है ।

ऊंगा) स यातु, अहन्तु न यास्यामि। "स सर्वेषा सुखाना प्राय अन्त ययौ, एकन्तु सुतमुखदर्शनसुख न लेभे" काद०। (ययौ—गया, प्राप्त हुआ, लेभे—लाभ किया)।

5 हि (ही—निश्चय Indeed, surely, only, alone—to emphasize an idea)।

'हि'-शब्द वाक्यके आदिमे नहीं बैठता, यथा—"सकरुणा हि गुरवो गर्भरूपेषु" उत्तर० (गुरुजन शिशुओंमे सकरुणही होते हैं), "मूढो हि मदनेन आयास्यते" काद० (मूर्खकोही काम सताता है)। हेतु-अर्थमेभी 'हि' होता है।

6 एव (ही—अवधारण Only, alone)।

(हसही जलसे दूधको निकालता है) हस एव जलाद्दुग्धम् उद्धरति।

7 न, नो, मा* (नहीं Not)।

ये प्रायश क्रियापदके पूर्वमे ही बैठते हैं, यथा—

(ऐसा प्रयोग युक्त नहीं) ईदृक् प्रयोगो न युज्यते, (अथवा) न युक्त।

(नहीं जाऊंगा) नो गमिष्यामि।

(मत कर) मा कुरु।

☞ प्रश्नार्थक 'या नहीं' और 'क्या'—इनका अनुवाद 'न वा' और 'किम्' 'अपि' द्वारा करना होता है, इनमेसे 'अपि' का प्रयोग

* मा—निवारणार्थक (A particle of prohibition), न—अस्वीकारार्थक, वा अभावार्थक (A particle of negation)।

वाक्यके प्रारम्भमेंही होता है, यथा—(तेरा पुत्र है या नहीं?) तव पुत्रोऽस्ति न वा?, आपके पिता जीते हैं क्या?) भवत पिता जीवति किम्? (अथवा) अपि जीवति ते पिता?; (आप अच्छे हैं तो?) अपि कुशली भवान्? (अथवा) अपि कुशलं भवत?

८- इव।

उपमाद्योतक 'तुल्य' 'सदृश' (Like) और उत्प्रेक्षाव्यञ्जक 'जैसा' 'सा' 'मानो'—इनकी सत्त्व 'इव'-शब्द-द्वारा की जाती है, यथा—(वह सिंहके तुल्य देखता है) स सिंह इव अवलोकयति, (वज्रके निनादमें पृथ्वी कम्पितसी होती थी) वज्रस्य निनादेन पृथिवी कम्पितेव बभूव।

नीचे हिन्दी-अङ्गरेज़ी-अर्थ और दृष्टान्त-सनेत प्रचलित अव्यय-शब्द लिखे जाते हैं; यथा—

अब, इस समय, आजकल Now, now-a-days	अधुना, इदानीम्, एतर्हि, सम्प्रति, साम्प्रतम्।

(अब क्या करना चाहिये?) अधुना किं विधेयम्? (आजकल ब्राह्मणलोग वेद नहीं पढ़ते) साम्प्रतं ब्राह्मणा वेदं न अधीयते।

अभी Even now—अधुनाऽपि, इदानीमपि।

(अबभी है) अधुनाऽपि तिष्ठति।

अभी Just now—इदानीमेव, अधुनैव।

(अभी जा) इदानीमेव गच्छ।

कब, किस समय When—कदा, कर्हि।

(वह कब आया ?) कदा स आयात ?

कभी, किसी समय At some time—कदाचित्, कर्हिचित्, कदाचन, जातु, कदापि।

(कभी यह वृत्तान्त प्रकाशित होगा) कदाचिद्य वृत्तान्तो व्यक्तो भविष्यति, (कभी मिथ्या नहीं बोलना चाहिए) न कदापि अनृत वक्तव्यम्। "न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति" मनु० २ ९४ (भोग्यपदार्थोंके उपभोगसे कभी कामना शान्त नहीं होती)।

जब, जिस समय When—यदा, यर्हि
तब, उस समय Then—तदा, तदानीम्, तर्हि

(जब वह पढ़ता है, तब किसीके साथ बात नहीं करता) यदा स पठति, तदा केनापि सार्द्धं न आलपति। (वह उस समय ध्यानस्थ था) स तदानीं ध्यानस्थ आसीत्।

जबही Just when—यदैव।

(जबही—जभी—होता है, तबही—तभी—मरता है) यदैव भवति, तदैव म्रियते।

जब-तक As long as—यावत्
तब-तक ——— तावत्

(जब-तक वह नहीं आवे, तब तक पढ़ो) यावत् स नायाति, तावत् पठ।

उसी समय Instantly, immediately—सद्य, तत्क्षणात्, तत्क्षणम्, तत्कालम्, सपदि।

(भक्ति और एकाग्रताके साथ ईश्वरका स्मरण मनुष्यको उसी समय शुद्ध करता है) भक्त्या ऐकाग्र्येण च ईश्वरस्य स्मरणं मानवं सद्य पुनाति।

शीघ्र Soon—अचिरात्, अह्नाय, द्राक्, द्रुतम्, मङ्क्षु, झटिति, आशु, अञ्जसा।

(वह शीघ्र आयेगा) स अचिरात् आगमिष्यति। (यह चिकित्सा शीघ्र की जाय) क्रियतामेतत् चिकित्सितं द्राक्।

अचानक Suddenly, all at once—अकस्मात्, सहसा, एकपदे, अकाण्डे।

(अचानक काम नहीं करना) "सहसा विदधीत न क्रियाम्" भा० २ ३०, (मुझे अचानक छोड़ जाते हो?) माम् एकपदे विहाय गच्छसि?

सबसमय Always—सदा, सर्वदा, अभीक्ष्णम्, शश्वत्, अजस्रम्, अनिशम्, निरन्तरम्।

(उत्तम छात्र सबसमय पढ़ता है) शश्वत् पठति सच्छात्रः, (सब-समय सत्य कहना) सदा सत्यं ब्रूयात्।

एकसमय Once upon a time—एकदा।

(एकसमय नारद आत्मज्ञानके लिये सनत्कुमारके पास गया) एकदा नारद आत्मज्ञानाय सनत्कुमारम् उपससाद।

अन्यसमय At another time—अन्यदा।

एकसाथ Simultaneously—युगपत्, एकदा, समम्।

(एकसाथ सब हसते हैं) युगपत् सर्वे हसन्ति। "एकदा न विगृह्णीयाद्बहून् राजा विवादिनः" हितो० ४ ९६ (राजा एकसाथ बहुतेरे विवादकारियोंके साथ कलह न करे)।

बहुधा, अकसर Mostly, generally, very often—

प्रायश, प्राय, प्रायेण।

(शुभ कर्ममें अकसर बहुत विघ्न होते हैं) शुभे कर्मणि प्रायश. बहव अन्तराया भवन्ति।

प्राचीन समयमें In former times—पुरा।

(पूर्वकालमें ऋषिलोग तपोवनोंमें निवास करते थे) पुरा ऋषय तपोवनेषु न्यवसन्।

आज To-day—अद्य।

(आज मेरा जीवन सफल) अद्य मे सफलं जीवितम्।

आजभी To this day, even now—अद्यापि।

(आजभी दग्धप्राण नहीं निकलते।) नाद्यापि दग्धप्राणा प्रयान्ति (निर्यान्ति वा)।

आजही This very day—अद्यैव।

(आजही वह जायेगा) अद्यैव स यास्यति।

कल (गत), पूर्वदिन Yesterday—ह्य, पूर्वेद्यु।

(कल उसकी चिट्ठी पायी) ह्य तस्य लिपि प्राप्ता।

कल (आगामी), परदिन To-morrow—श्व, परेद्यु, परेद्यवि।

(कल मैं विद्यालयको नहीं जाऊंगा) श्व अहं विद्यालयं न यास्यामि।

परसों Day after to-morrow—परश्व वा पर श्व।

(परसों हमारी परीक्षा होगी) परश्व अस्माकं परीक्षा भविष्यति।

उभय दिन On both days—उभयेद्यु वा उभयद्यु।

(दोनो दिन वर्षा है) उभयेद्यु वर्षा विद्यते।

इस वर्षमें In the present year—ऐषम।

(इस वर्षमे प्रचुर शस्य उत्पन्न हुआ है) ऐषम प्रभूत शस्यम् उत्पन्नम् ।

गतवर्षमे Last year—परुत् ।

(गतवर्ष यह परीक्षोत्तीर्ण हुआ) परुत् स परीक्षोत्तीर्ण अभूत ।

गतवर्षके पूर्ववर्षमे The year before last—परारि ।

(गतवर्षके पूर्ववर्षमे दुर्भिक्ष हुआ था) परारि दुर्भिक्ष सञ्जातम् ।

दिनमे In the day-time—दिवा ।

"मा दिवा स्वाप्सी" (दिनमे मत सो) ।

प्रात कालमे In the morning—प्रात , प्रगे ।

(प्रात कालमे स्नान करके सन्ध्याकी उपासना करो) प्रात स्नात्वा सन्ध्याम् उपास्स्व ।

सायाह्नमे, शामको In the evening—सायम् ।

(सायकालमे भोजन, शयन और अध्ययन नहीं करना चाहिये) सायं भोजन शयनम् अध्ययनञ्च न कर्त्तव्यम् ।

रात्रिमे At night—दोषा, नक्तम् ।

(रातमे अधिक नहीं जागना) नक्त नाधिक जागृयात् ।

पहले, पूर्वमे Before, at first—पूर्वम् , प्राक् ।

(एक मास पहले यह घटना हुई थी) मासात् पूर्वं वृत्तम् इदं मद्घटितम् (मदा पञ्चमीके साथ), (ज्ञानदाताको पहले अभिवादन करना चाहिये) ज्ञानदातार पूर्वम् अभिवादयेत ।

पीछे Afterwards—पश्चात् , परस्तात् , अनु ।

(पीछे यह जाना गया) परस्तात इदम् अवगतम् । (सब विद्यार्थी

अध्यापकसे पीछे बैठे)अध्यापकम् अनु उपविविशु सर्वे विद्यार्थिन ।

पीछे, पृष्ठभागमें Behind—पश्चात् , पृष्ठत , अन्वक्, अनुपदम्।

(तेरे पीछे पुस्तक है) तव पश्चात् पुस्तक वर्त्तते । "(वृद्धान्) गच्छत पृष्ठतोऽन्वियात" मनु० ४ १५४ (जाते हुए वृद्धोंका पृष्ठदेशमें अनुगमन करना चाहिये) । "ताम् अन्वग्ययौ मध्यमलोकपाल" र० २ १६ (द्वितीयाके साथ) ।

आगे, सामने Ahead, before, in front—पुर , पुरत , पुरस्तात् , अग्रत ।

(सामने चन्द्रमा चमक रहा है) पुरतो भाति चन्द्रमा ।

अनन्तर Then—अथ, अथो।

(अनन्तर उसने कहा) अथ सोऽब्रवीत ।

कुछ पहले A little before—अनतिपूर्वम् , किञ्चित् पूर्वम् ।

(थोड़ा आगे वर्षा हुई) अनतिपूर्वं वृष्टिरभवत ।

इससे पीछे After it—अत परम् ।

(इससे पीछे मेरा कहना निरर्थक है) अत पर मम भाषण निरर्थकम् (व्यर्थ वा) ।

उससे पीछे After that—तत परम् , तत्परम् ।

(उससे पीछे वह चला गया) तत पर स प्रस्थित ।

जिससे पीछे After which—यत परम् , यत्परम् ।

(शिक्षकने उस छात्रको दण्ड दिया था, जिससे पीछे उसने दुष्टता छोड दी) शिक्षकस्तं छात्रम् अदण्डयत्, यत पर स दुर्वृत्तता परिहृतवान्।

दीर्घकाल Long—चिरम् , चिरेण, चिराय, चिरात् , चिरस्य ।

(जो कर्त्तव्य पालन नहीं करता, वह दीर्घकाल दु[illegible] पाता है) य कर्त्तव्य न पालयति, स चिरं दुःख भजते । (बच्चा, तेरे ऊपर मैं प्रसन्न हूँ ; बहुत दिन जीता रह) "प्रीतास्मि ते तात ! चिराय जीव" ।

कहाँ Where—कुत्र, कुह, क्व ।

(कहाँ तेरी दया ?) कुत्र ते दया ?

"ईदृग्विनोदः कुतः ?" नाट० [illegible] (ऐसा आनन्द कहाँ ?) ।

(कहाँ जाता है ?) क्व गम्यते ?

कहाँसे Whence—कुतः ।

"कस्य त्वं वा कुत आयातः ?" (तू किसका है, और कहाँसे आया ?)

कहीं Anywhere—कुत्रापि, कुत्रचित्, कुत्रचन, क्वचित्, क्वचन ।

(ऐसी पुस्तक और कहीं नहीं है) एतादृक् पुस्तकं नान्यत्र कुत्रापि वर्त्तते ।

जहाँ, जिसमें Where—यत्र
वहाँ, तिसमें There—तत्र

(जहाँ विद्वान् नहीं, वहाँ वास नहीं करना) यत्र विद्वान् नास्ति, तत्र न वसेत ।

वहाँसे Thence—ततः ।

जहाँ कहीं Anywhere—यत्र कुत्रचित् ।

(जहाँ कहीं रहने दो) यत्र कुत्रचित् तिष्ठतु ।

यहाँ, इसमें Here—अत्र, इह, इतः ।

(इसमें दोष नहीं देखता हूँ) अत्र दोषं न पश्यामि । (यहाँ बैठ)

इतो निषेद।

दक्षिणदिशामें, दहिनी ओर To the south, on the right side of—दक्षिणेन (द्वितीया और षष्ठीके साथ)।

(घरके दक्षिणमें पुष्पोद्यान है) गृहं दक्षिणेन पुष्पोद्यानं विद्यते। "दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम् आलाप इव श्रूयते" शकु० १ (बागीचेके दक्षिणमें बातचीतसी सुनी जाती है)।

(गाँवके दक्षिणमें) ग्रामस्य दक्षिणेन।

उत्तरदिशामें Northward, on the north side of—उत्तरेण (द्वितीया और षष्ठीके साथ)।

(घरके उत्तरमें जलाशय) गृहम् उत्तरेण जलाशयः।

(निषधदेशके उत्तरमें) निषधस्योत्तरेण।

सब दिशाओंमें, चारों ओर In all directions, on all sides—सर्वतः, समन्ततः, समन्तात्, परितः, अभितः।

(सब दिशाओंमें वायु चलती है) सर्वतो वायुर्वहति। (सूर्यकी चारों ओर कहाँ अन्धकार ?) सूर्यम् अभितः कुतोऽन्धकारः ? (२याके साथ)। (जिसके चतुष्पार्श्वमें) "यस्याभितः" इति षष्ठी उत्तर० ६. ३६

ऊपर Above, over, upon—उपरि, उपरिष्टात्।

(अब मस्तकके ऊपर सूर्य्य है) इदानीं मस्तकस्योपरि भास्करो वर्त्तते। (वृक्षके ऊपर कबूतर था) वृक्षस्योपरि कपोत आसीत्। "इदम् उपरिष्टात् व्याख्यातम्" (पश्चात् इसकी व्याख्या की गयी)।

नीचे Below, beneath, under—अधः, अधस्तात्।

(पथिक वटवृक्षके नीचे श्रम दूर करता है) वटविटपिन अधस्तात् श्रम शमयति पान्थ ।

ऊँचा, उन्नत High, loudly—उच्चै, उच्चके ।

(अपना उच्च कुल विचारकर नीचकर्ममें प्रवृत्त मत हो) आत्मन उच्चै कुल विचार्य नीचकर्मणि मा प्रवर्तस्व । (उसने ऊँचा हँसकर कहा) स उच्चैर्विहस्य अवदत ।

'अत्यन्त'-अर्थमेंभी 'उच्चै'-शब्द प्रयुक्त होता है, यथा—"विदधति भयमुच्चैर्वीक्ष्यमाणा वनान्ता" ऋतु० १ २२ (वनप्रदेश दृश्यमान होकर अत्यन्त भय उत्पादन करते हैं) ।

नीचा, निम्न Low, in a low tone—नीचै ।

"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" मेघ० १०९ (चक्रके प्रान्तभागकी रीतिसे मनुष्यकी अवस्था कभी नीचे कभी ऊपर जाती है) ।

"नीचै शस" (धीरे बोल) ।

भीतर Inside—अन्त ।

बाहर Outside—बहि ।

(घरके भीतर) अन्तर्वेश्मनि (सप्तमीके साथ) ।

(प्राणियोंके भीतर और बाहर) "बहिरन्तश्च भूतानाम्" गीता-१३ १८ (षष्ठीके साथ) ।

(नगरसे बाहर) पुराद्बहि (पञ्चमीके साथ) । (बाहर जा) बहिर्गच्छ ।

बीचमें Between, in the middle—अन्तरा ।

(राम और श्यामके बीचमें वह है) रामं श्यामञ्चान्तरा सोऽस्ति। "मनमन्तरा प्रतिबध्नीत" शकु० ६ (इसको बीचमें मन रोको)।

पास Near, by—समया, निकषा। आरात्।

(मेरे पास रह) मां निकषा तिष्ठ।

दूर Far—आरात्।

एकस्थानमें Together—एकत्र।

(वे एकस्थानमें रहते हैं) एकत्र ते तिष्ठन्ति।

प्रत्यक्षमें In the presence of—साक्षात्।

(प्रत्यक्षमें कहूंगा) साक्षाद् वदिष्यामि।

"साक्षाद्रूपम" (मूर्त्तिमान् इत्यर्थ)।

छिपेछिपे, निर्जनमें Secretly, in private—रहः, उपांशु, मिथः।

(वे छिपेछिपे बात करते हैं) ते रहः आलपन्ति। (छिपकर रहो) उपांशु वस।

(उसने उसे निर्जनमें कहना आरम्भ किया) स तं मिथो वक्तुं प्राक्रमत।

इधर उधर Here and there—इतस्ततः, इतश्चेतश्च।

(बन्दर इधर उधर दौड़ते हैं) शाखामृगा इतस्ततो धावन्ति। "क्व सुखं धनलुब्धानाम् इतश्चेतश्च धावताम्?" (इधर उधर दौड़ते हुए अर्थलोभियोंको सुख कहां?)।

ओर Towards—प्रति (द्वितीयाके साथ)।

(वह शिशु सुन्दर पक्षीकी ओर देखता है) असौ शिशुः सुन्दरं

पश्चिम प्रति दृष्टिं निक्षिपति।

परलोकमे In after life—प्रेत्य, अमुत्र, परत्र।

"यावज्जीवं च तत् कुर्य्याद्‌येनामुत्र सुखं वसेत्" (सारा जीवन वह काम करना चाहिये, जिससे परलोकमें सुखसे रहे)। "सन्तति शुद्ध वंश्या हि परत्रेह च शर्मणे" र० १ ६९ (शुद्धवंशोत्पन्न सन्तान इहलोक और परलोकमें सुखके लिये होती है)।

कैसा, किस प्रकार How—कथम्, कथङ्कारम्।

(मैं कैसे तुमपर विश्वास करूँ?) कथम् अहं त्वयि विश्वासं कुर्य्याम्? (यह कैसे सम्भव है?) कथङ्कारम् इदं सम्भवति?

क्यों Why—कथम्, किम्, कुत।

(तू क्यों हसता है?) कथं हससि?

(क्यों उत्तर नहीं देता?) किं मौनमवलम्बसि?

(क्यों नहीं पढ़ता है?) कुतो न पठ्यते?

जैसा, जिस प्रकार As—यथा
वैसा, तिस प्रकार So—तथा

(जैसा वृक्ष, तैसा फल) यथा वृक्षस्तथा फलम्,

(जैसा बीज, तैसा अङ्कुर) यथा बीजं तथाऽङ्कुर।

ऐसा, इस प्रकार Thus—इत्थम्, एवम्।

(वह ऐसा कहता है) स इत्थं वदति।

किसी प्रकारसे, कष्टसे Somehow, with great difficulty—कथमपि, कथञ्चित्, कथञ्चन।

(दरिद्र किसी प्रकारसे जीवन यापन करता है) दीनः कथमपि

जीवनं यापयति।

जिस किसी प्रकारसे Anyhow, in whatever way—यथाकथञ्चित्, यथाकथमपि, यथातथा।

(जिस किसी प्रकारसे विद्या उपार्जन करना) यथाकथञ्चित् विद्याम् उपार्जयेत्।

अच्छे प्रकारसे, बहुत अच्छा Well, very nice—सुष्ठु, सम्यक्, साधु।

(उसने इस कार्य्यको अच्छी तौरसे किया) स कृत्यमिदं सुष्ठु सम्पादितवान्। (बहुत अच्छा गाया) साधु गीतम्। (वा-वा।—वाह वाह।) साधु साधु।

यथार्थरूपसे, ठीक, यथायोग्य Really, truly, rightly—यथार्थत, यथायथम्, यथातथम्, यथास्वम्, वस्तुत, अद्धा, अञ्जसा।

(सभाओंमें विद्वान् यथार्थरूपसे कहता है) यथातथ वक्ति सभासु विद्वान्। "यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद" मनु० ८ १०१ (जैसा सुना है, जैसा देखा है, सभी ठीक कहो)। [वस्तुत्यन्—सच पूछो तो]।

सब प्रकारसे In every way, by all means सर्वथा।

(जिसे कालमें जो करना चाहिये, सब प्रकारसे उसेही करना) सर्वथा कालोचितमेव कर्त्तव्यम्।

नहीं तो; अन्य प्रकार Or else, otherwise—अन्यथा।

(तू जा, नहीं तो वह नहीं जायेगा) त्वं याहि, अन्यथा स न

यास्यति।

"स्वभावो नोपदेशेन शक्यते कर्त्तुमन्यथा" पञ्च० (उपदेशसे स्वभाव अन्यप्रकार नहीं किया जा सकता)।

तीन प्रकार In three ways, or in three parts—त्रिधा।

(तीन प्रकार उपाय) त्रिधा गति। "एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा" कु० ७ ४४ (वह एकही मूर्त्ति तीन प्रकारसे विभक्त हुई)।

चार प्रकार In four ways—चतुर्द्धा।

(इसको चार भाग करके रखो) इम चतुर्द्धा विभज्य स्थापय।

धीरे Slowly—शनैः।

(धीरे चल) शनैर्व्रज।

धीरे धीरे Slowly—शनैः शनैः।

(कछुवा धीरे धीरे गया था) कूर्मः शनैः शनैरगच्छत्।

बलपूर्वक, जबरन Forcibly—प्रसह्य।

(पुलिस चोरको बलपूर्वक पकडके अदालतमें ले आती हैं) रक्षापुरुषा मलिम्लुचं प्रसह्य धृत्वा अधिकरणं प्रापयन्ति।

एकवार Once—सकृत्।

(एकबार देखो) सकृत् अवलोकय।

दोबार Twice—द्विः।

(इस वाक्यको दोबार पढो) वाक्यमेतत् द्विः पठ।

तीनवार Thrice—त्रिः।

(तीनवार आचमन करो) त्रिः आचाम।

चारबार Four times—चतुः।

(इस औषधको बारबार पिलाना) औषधमिद चतु पायय ।

फिर Again—पुन , भूय ।

(फिर ऐसा मत कहो) एवं भूयो मा वोच ।

बारबार Again and again, repeatedly—पुन पुन , भूयोभूय , असकृत्, अभीक्ष्णम्, मुहु , मुहुर्मुहु ।

(अधीतविषयोंका बार-बार आलोचन करना चाहिये) अधीतविषयाणां मुहुरालोचनं विधेयम् ।

भाग्यवशात् Fortunately, (an exclamation of joy or gratification)—दिष्ट्या* ।

"दिष्ट्या प्रतिहतं दुर्जातम्" मालती० ४ (भाग्यवशात् सङ्कट मिटा) । "दिष्ट्या सोऽयं महाबाहुरञ्जनानन्दवर्द्धन " उत्तर० १ ३२ ।

लिये For, on account of—अर्थं, कृते (षष्ठीके साथ अथवा समासमे) ।

"आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्" (अपने लिये पृथिवी छोड़ना) ।

(किसके लिये अर्थ सञ्चय करते हो ?) कस्य कृते वित्त सञ्चिनोषि ?

"काव्य यशसेऽर्थकृते" (काव्य यश और अर्थके लिये) काव्यप्रकाश १ ।

इसलिये Hence, for this reason—इत ।

जिस कारण Since—यत , यत्, हि
तिस कारण Therefore—तत , तत्

(जिस कारण मैं केवल उसीकी चिन्ता करता हूँ, तिस कारण वैसा स्वप्न दीख पडा) यतोऽह केवल तदेव चिन्तयामि, ततो दृष्टस्तथा-

---

* 'दिष्ट्या' इति आनन्देऽव्ययम् ।

विध स्वप्न ।

निश्चित Surely—नूनम्, अवश्यम्, ध्रुवम्, खलु, किल, एव।

(यह निश्चित परीक्षामें उत्तीर्ण होगा) नूनम् अनेन परीक्षोत्तीर्णेन भाव्यम् ।

यदि If—चेत्, यदि ।

(यदि वह आवे) स चेत् आयाति ।

['चेत्' वाक्यके आरम्भमें नहीं बैठता । 'यदि'के पश्चात् 'तदा' 'तर्हि' और कहीं कहीं 'तत' 'तत्' अथवा 'अत्र' व्यवहृत होता है ।]

या (वितर्क, संशय) Whether—or (doubt)—आहो, आहोस्विन्, उत, उताहो, किमु, किमुत, नु ।

(देव या गन्धर्व ?) देव आहो गन्धर्व ? (यह रस्सी या सांप ?) रज्जुरियम्, उत सर्प ? "किमु विषविसर्पः किमु मदः ?" उत्तर० १. ३९ । "स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु ?" शकु० ६ ०. ।

क्या (प्रश्नमें) Interrogation—किम्, किमु, कच्चित्, अपि, किंस्वित् (वितर्कें) ।

(वह आयेगा क्या ?) स किम् आगमिष्यति ? "कच्चिन्मृगीणाम-नघा प्रसूतिः ?" र० ५ ७ (हरिणियोंकी सन्तान अच्छी है तो ?) ।

[कच्चित "कामप्रवेदने"—इष्टार्थप्रश्ने, स्वाभिलाषणापनार्थं कृते प्रश्ने] ।

हाँ Yes—बाढम्, अथ किम्, ओम्, एवम्, परमम् ।

"चाणक्य—चन्दनदास ! एष ते निश्चय ?

चन्दन—बाढम्, एष मे स्थिरो निश्चय ।" मुद्रा० १. ।

"अपि वृषलम् अनुरक्ता प्रकृतय ?

अथ किम् ?" मुद्रा० १ (वृषलम्—चन्द्रगुप्तम्) ।

"सीता—अहो ! जाने, तस्मिन्नेव काले वर्त्ते ।

राम —एवम् ।" उत्तर० १ (जाने—जानता हूँ , वर्त्ते—हूँ) ।

"तत परममित्युक्त्वा प्रतस्थे मुनिमण्डलम्" कु० ६ ३५ (ओम् इत्युक्त्वा—अनुमन्य इत्यर्थः) , (उक्त्वा—कहकर , प्रतस्थे—प्रस्थान किया ; परमम्—अच्छा) । [अच्छा—बाढम्] ।

(हाँ, स्मरण हुआ) आं ज्ञातम् ।

अत्यन्त Very, very much—अति, अतीव, अत्यन्तम् , नितराम् , सुतराम् , बलवत् , निकामम् , प्रकामम् , परम् , परमम् ।

(उसकी साधुता देखकर मेरा चित्त अत्यन्त प्रसन्न होता है) तस्य साधुता वीक्ष्य नितरां प्रसीदति मे चेत । "इतरा दयालु " र० ९ ६२ । "बलवत् दूयमान हृदयम्" शाकु० ६ ३१ (दूयमानम्—परितप्तम् , खेदयुक्तम्) । "प्रकाममप्रीयत यज्वना प्रिय (हरि)" माघ० १ १७ (अप्रीयत—प्रीत हुआ) ।

कुछ, थोडा Somewhat, a little—किञ्चित् , किञ्चन, ईषत् , मनाक् ।

"(स सिंह) किञ्चिद्विहस्यार्थपति बभाषे" र० २ ४६. (उस सिंहने थोडा हसकर राजाको कहा) । " रे पान्थ ! विह्वलमना न मनागपि स्या " भामिनी० १ ३६. (रे पथिक, कुछभी व्याकुलहृदय मत हो) ।

कुछ अच्छा, किसीकी अपेक्षा उत्कृष्ट Better than—वरम् ।

(घरसे वन अच्छा) गृहात् वनं वरम् ।

"वर मौन कार्य्यं, न च वचनमुक्तं यदनृतम् "

"वर भिक्षाशित्वं, न च परधनास्वादनसुखम्"

"वर प्राणत्यागो, न पुनरधमानामुपगमः " हितो० १ ।

चुप Quiet, silently—तूष्णीम् , जोषम् ।

(चुप रह, जब तक मैं आऊँ) तूष्णीं भव—जोषम् आस्स्व—यावत् अहम् आगमिष्यामि । (आप क्यों चुप हो रहे ?) किं भवांस्तूष्णीमास्ते?

निष्प्रयोजन No need of, (having a prohibitive force)—अलम् (तृतीया अथवा 'क्त्वा'-प्रत्ययान्त पदके साथ) । कृतम् (३याके साथ) ।

(विवादसे प्रयोजन नहीं) विवादेनालम् । "अलम् अन्यथा गृहीत्वा" मा०विक्रा० १ २० (अन्यप्रकार मत समझो) । "कृतं सन्देहेन" शकु० १ (सन्देह नहीं करना) ।

समर्थ Able, competent—अलम् (चतुर्थी अथवा तुमन्त पदके साथ) ।

(यह विचारमें समर्थ) अल विचाराय ।

"मा स्म भ्रमदिदं, यथो्र्धं न शक्तस्ताहरम् ।

यथाऽपि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः ॥" माघ० २ ४० ।

"लोकान् अलं दग्धुं हि तत्तपः " कु० २ ५६ (इसकी तपस्या लोकोंको जलानेमें समर्थ) ।

[पर्य्याप्त, काफी—अलम्] ।

निरर्थक In vain—वृथा, मुधा ।

(निरर्थक समय नष्ट मत करो) वृथा अनेहसं मा क्षपय ।
"वृथा श्रम" ।

युक्त, उचित Rightly, properly, justly—स्थाने, साम्प्रतम् ।
"स्थाने त्वां स्थावरात्मानं विष्णुमाहु" कु० ६ ६७ (तुम्हें—हिमालयको—जो स्थावररूपी विष्णु कहते हैं, सो ठीक ही है)।
"सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदु" मुद्रा० ३ १४ ।

टेढ़ा Crookedly, obliquely—साचि, तिरः, तिर्यक् ।
(वह मुझे तिरछा देखता है) स मां साचि विलोकयति ।

झूठ Falsely—मिथ्या, मृषा ।
(झूठ मूठ किसीके ऊपर दोष नहीं लगाना) न कस्मिन्नपि मृषा दोषम् आरोपय ।"यदुवाच न तन्मिथ्या" र० १७ ४२ (वह जो वचन कहता, सो झूठ नहीं होता) ।

आप, खुद Oneself—स्वयम् ।
(अपना काम आपही करना चाहिये) स्वकीयं कर्म स्वयमेव सम्पादयम् ।

प्रकाश In sight—प्रादुः, आविः ।
भू, कृ और अस् धातुके साथ व्यवहृत होते हैं, यथा—प्रादुर्भवति, प्रादुरस्ति, आविर्भवति, आविरस्ति (प्रकाशित होता है)। प्रादुष्करोति, आविष्करोति (प्रकाशित करता है)।
(दिवाकर प्रादुर्भूत हुआ) प्रादुरासीद्दिवाकरः ।

अदर्शन—अस्तम् ।
गम्, या, इ और आप् धातुके साथ व्यवहृत होता है, यथा—

अस्त गच्छति, अस्तं याति, अस्तम् एति, अस्त प्राप्नोति ।

(सूर्य छिपता है—अदृश्य होता है) रवि अस्तमेति ।

हाय (खेद) Alas ! ah !—हन्त, बत, अहह, अहो, अहोबत, हा, कष्टम् ।

(हाय ! मर्मभेदि वाक्य सुना) अहह ! अरुन्तुद यव श्रुतम् ।

"हा धिक् कष्टम्" ।

कोप, स्पर्द्धा , वेदना Anger, pain—आ ।

"आ पापे, तिष्ठ तिष्ठ" मालती० ८ । "आ शीतम् !"

छि छि (तिरस्कार) Fie, shame—धिक् ।

"धिगिमां देहभृतामसारताम्" र० ८ ५० (देहधारियोंकी इस असारताको धिक्कार) ।

विना, सिवा Without, except—विना, अन्तरेण, ऋते, अन्तरा ।

"यथा तान विना रागो, यथा मानं विना नृप ।

यथा दानं विना हस्ती, तथा ज्ञान विना यति ॥" भामिनी० १-११६ ।

"पद्मैर्विना सरो भाति, सद्‍ खल्जनैर्विना ।

कटुवर्णैर्विना काव्यं, मानसं विषयैर्विना ॥" भामिनी० १-११३ ।

"भार्गिर को मरन्दानामन्तरेण मधुव्रतम् ?" भामिनी० १-११४ ।

(भौंरेको छोड़ पुष्पमधुओंका मर्म कौन जानता है ?) ।

"रत्नाकराद् ऋते कुतश्चन्द्रलेखाया प्रसूति ?" नागानन्दम् ।

" न च प्रयोजनमन्तरा चाणक्य स्वप्नेऽपि चेष्टते" मुद्रा० ३ ।

साथ With—साकम्, सार्द्धम् , समम् , सह ।

(उससे साथ जा) तेन साक व्रज ।

से From, ever since, beginning with—प्रभृति, आरभ्य (पञ्चमीके साथ) । v. 2ndp

(शैशवसे धर्मपरायण हो) शैशवात् प्रभृति धार्मिको भव ।

(तबसे) तत प्रभृति, तदाप्रभृति, (अबसे) अत प्रभृति; (आजसे) अद्य प्रभृति ।

सम्बोधन Vocative particle, oh !—अङ्ग, अयि, अये, हे, भो ।

"अङ्ग ! कच्चित् कुशली तात ?" काद०, "अयि भो महर्षिपुत्र !" शाकु० ७, "क कोऽत्र भो !" शाकु० २ ।

नीच सम्बोधन—रे, अरे, अरेरे ।

(नीचाशय ! गर्व मत कर) रे नीचाशय ! गर्वं मा कुरु ।

परस्पर Each other, one another—मिथ ।

(वे परस्पर सौहार्दसे रहते हैं) ते मिथ सौहार्देन वसन्ति ।

नमस्कार Salutation—नम (चतुर्थीके साथ) । v. 4th

(देवताओंको नमस्कार) नमो देवेभ्य. ।

मन्त्रार्थमें—स्वाहा, स्वधा, वषट् ।

इन्द्राय स्वाहा, पितृभ्य स्वधा, पूष्णे वषट् ।

मङ्गल May it be well with (one)—स्वस्ति ।

(सर्वजनोका मङ्गल हो) स्वस्त्यस्तु सर्वजनेभ्य ।

प्रश्नमाला ।

निम्नलिखित शब्दोंके रूप कहो—

नर, गज, विधि, हरि, पति, सखि, भूपति, हतधी, अग्रणी, सुधी, विभु, बन्धु, ऊरु, स्वयम्भू, धातृ, भ्रातृ, नृ, गो । देवता, दण्डधा, अम्बा, जगदम्बा, जरा, गति, बुद्धि, लक्ष्मी, स्त्री, श्री, तनु, रज्जु, भ्रू, स्वसृ, मातृ, दुहितृ, गो, द्यो, नौ । वन, वारि, दधि, राशि, अस्थि ।

पयोमुच्, भूभुज्, सम्राज्, विपश्चित्, परीक्षित्, उदन्वत्, सानुमत्, जाग्रत्, बृहत्, महत्, ज्योतिर्विद्, द्विजन्मन्, अध्वन्, लघिमन्, अश्वत्थामन्, राजन्, श्वन्, युवन्, पक्षिन्, पथिन्, द्विप्, कल्प्तनम्, उशनस्, अनेहस्, दोस्, पुम्स्, विद्वस्, शुश्रुवस्, उपेयिवस्, मधुलिह्, तुरासाह् । स्वच्, विद्युत्, शरद्, सुहृद्, विपद्, क्षुध्, अप्, द्वार्, गिर्, पुर्, दिव्, प्रावृष्, भास्, आशिस् । भवत् (शतृ प्रत्ययान्त), भवत् (युष्मदर्थ) । प्राच् (पुलिङ्ग और क्लीवलिङ्गमें), धामन्, कर्मन्, अहन्, मनस्, आयुस्, चक्षुस् ।

सर्व, उभ, अन्य, पूर्व, स्व, तद्, एतद्, इदम्, किम्, युष्मद्, अस्मद्, अदस्, त्रि, चतुर्, सप्तन्, पञ्चाशत्, सहस्र, मिथ्या ।



तिङन्त-प्रकरण।

२०३। प्रयोगकालमे धातुके उत्तर तिङ्* विभक्ति होती है। 'तिङ्' विभक्तिके योगसे जो पद निष्पन्न होता है, उसको 'तिङन्त पद' कहते हैं।

२०४। 'तिङ्-विभक्ति दश-प्रकार—लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्, लृट्, लिट्, लुङ्, लुट्, लृङ् और आशीर्लिङ्। 'लट्'-प्रभृतिको 'लकार' कहते हैं†। प्रत्येक लकार दो पदोंमे विभक्त—परस्मैपद और आत्मनेपद। प्रत्येक पदके तीन तीन पुरुष हैं—प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष। और प्रत्येक पुरुषके तीन तीन वचन हैं—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन‡।

---

* प्रथम विभक्ति 'तिप्'-का आद्य अक्षर 'ति', और शेष विभक्ति 'महिङ्'-का अन्य अक्षर 'ङ्' लेकर धातुविभक्तियोंका नाम 'तिङ्' रखा गया।

† 'दशलकार' कहनेसे लट्, लोट् प्रभृति दशोंकोही समझना, और 'चतुर्लकार' कहनेसे लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्—इन चार प्रथम लकारोंको समझना।

‡ अत 'तिङ्'-विभक्तिकी सङ्ख्या १८०।

तिङ्-विभक्तिकी आकृति

(Inflectional termination) ।

लट् (वर्त्तमाना) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ति	तस्	अन्ति
मध्यमपुरुष	सि	थस्	थ
उत्तमपुरुष	मि	वस्	मस्

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ते	आते	अन्ते
मध्यमपुरुष	से	आथे	ध्वे
उत्तमपुरुष	ए	वहे	महे

लोट् (पञ्चमी) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तु	ताम्	अन्तु
मध्यमपुरुष	हि	तम्	त
उत्तमपुरुष	आनि	आव	आम

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ताम्	आताम्	अन्ताम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	स्व	आथाम्	ध्वम्
उत्तमपुरुष	ऐ	आवहै	आमहै

लङ् और लुङ् (ह्यस्तनी और अद्यतनी)।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	द्	ताम्	अन्
मध्यमपुरुष	स्	तम्	त
उत्तमपुरुष	अम्	व	म

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	त	आताम्	अन्त
मध्यमपुरुष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तमपुरुष	इ	वहि	महि

विधिलिङ् (सप्तमी)।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	यात्	याताम्	युस्
मध्यमपुरुष	यास्	यातम्	यात
उत्तमपुरुष	याम्	याव	याम

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ईत	ईयाताम्	ईरन्
मध्यमपुरुष	ईथास्	ईयाथाम्	ईध्वम्
उत्तमपुरुष	ईय	ईवहि	ईमहि

लृट् (भविष्यन्ती) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यति	स्यतस्	स्यन्ति
मध्यमपुरुष	स्यसि	स्यथस्	स्यथ
उत्तमपुरुष	स्यामि	स्यावस्	स्यामस्

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यते	स्येते	स्यन्ते
मध्यमपुरुष	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
उत्तमपुरुष	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

लिट् (परोक्षा) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अ	अतुस्	उस्
मध्यमपुरुष	थ	अथुस्	अ
उत्तमपुरुष	अ	व	म

आत्मनेपद।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ए	आते	इरे
मध्यमपुरुष	से	आथे	ध्वे
उत्तमपुरुष	ए	वहे	महे

लुट् (श्वस्तनी)।

परस्मैपद।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ता	तारौ	तारस्
मध्यमपुरुष	तासि	तास्थस्	तास्थ
उत्तमपुरुष	तास्मि	तास्वस्	तास्मस्

आत्मनेपद।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ता	तारौ	तारस्
मध्यमपुरुष	तासे	तासाथे	ताध्वे
उत्तमपुरुष	ताहे	तास्वहे	तास्महे

लृङ् (क्रियातिपत्ति*)।

परस्मैपद।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यत्	स्यताम्	स्यन्
मध्यमपुरुष	स्यस्	स्यतम्	स्यत
उत्तमपुरुष	स्यम्	स्याव	स्याम

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
मध्यमपुरुष	स्यथास्	स्येथाम्	स्यध्वम्
उत्तमपुरुष	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

आशीर्लिङ् (आशी॰) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	यात्	यास्ताम्	यासुस्
मध्यमपुरुष	यास्	यास्तम्	यास्त
उत्तमपुरुष	यासम्	यास्व	यास्म

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्
मध्यमपुरुष	सीष्ठास्	सीयास्थाम्	सीध्वम्
उत्तमपुरुष	सीय	सीवहि	सीमहि

पुरुष ।

२०५ । पुरुष तीन-प्रकार—प्रथम पुरुष (Third person), मध्यम पुरुष (Second person) और उत्तम पुरुष (First person) । 'युष्मद्'-'अस्मद्'-भिन्न नाम (शब्द)-मात्रकोही 'प्रथमपुरुष' कहते हैं । 'युष्मद्'-शब्दको 'मध्यम-

पुरुष',* और 'अस्मद्'-शब्दका 'उत्तमपुरुष' कहते हैं ।

२०६ । तिङन्त क्रियाके तीन वाच्य (Voice)—(१) कर्त्तृवाच्य (Active voice), (२) कर्मवाच्य (Passive voice) और (३) भाववाच्य (Intransitive-passive voice)। क्रियापद जिसको समझाता है, उसे 'वाच्य' कहते हैं । जो क्रिया कर्त्ताको समझाती है, उसे 'कर्त्तृवाच्य' ; जो क्रिया कर्मको समझाती है, उसे 'कर्मवाच्य', और जो क्रिया 'भाव'† अर्थात् धातुके अर्थको समझाती है, उसे 'भाववाच्य' कहते हैं। यथा—स पश्यति (वह देखता है)—यहाँ 'देखता है' यह क्रिया जो देखता है उसको समझाती है, इसलिये यह कर्त्तृवाच्य । तेन चन्द्रो दृश्यते (उससे चन्द्र देखा जाता है)—यहाँ 'देखा जाता है' यह क्रिया जो देखा जाता है उसको समझाती है, इसलिये यह कर्मवाच्य । तेन दृश्यते (उसका देखना)—यहाँ 'देखना' यह क्रिया 'दृश्'-धातुके अर्थकोही समझाती है, इसलिये यह भाववाच्य ।

कर्त्तृवाच्य-प्रयोग ।

☞ कर्त्तृवाच्यमें—कर्त्तामें प्रथमा, और कर्ममें द्वितीया विभक्ति

---

* 'भवत्'-शब्दका अर्थ 'युष्मद्' होनेपरभी, वह 'युष्मद्'-शब्दसे भिन्न, इसलिये उसकी क्रियामें प्रथमपुरुषकी विभक्ति होगी, यथा—भवान् गच्छति । किन्तु 'भवत्'-शब्दका प्रयोग न करनेसे, 'युष्मद्'-शब्दही ऊह्य होता है, इसलिये मध्यमपुरुषही होगा ।

† "धात्वर्थ केवल शुद्धो भाव इत्यभिधीयते" ।

होती है, और क्रियापदके पुरुष और वचन कर्त्ताके अनुसार होते हैं (अर्थात् नाम--'युष्मद्'-'अस्मद्'-भिन्न शब्द--कर्त्ता होनेसे प्रथमपुरुषकी विभक्ति होती है, 'युष्मद्'-शब्द कर्त्ता होनेसे मध्यमपुरुषकी विभक्ति होती है, और 'अस्मद्'-शब्द कर्त्ता होनेसे उत्तमपुरुषकी विभक्ति होती है, और कर्त्ताका जो वचन, क्रियाकाभी वही वचन होता है), यथा--(बालक पुस्तक पढता है) शिशु पुस्तक पठति, (दो बालक पुस्तक पढते हैं) शिशू पुस्तक पठत, (बालक पुस्तक पढते हैं) शिशव पुस्तक पठन्ति; (तू सत्यका पालन कर) त्व सत्य पालय, (तुम दोनो सत्यका पालन करो) युवा सत्य पालयतम्, (तुम सत्यका पालन करो) यूय सत्य पालयत, (मैं चन्द्र देखता हूँ) अह चन्द्र पश्यामि, (हम दोनो चन्द्र देखते हैं) आवा चन्द्र पश्याव, (हम चन्द्र देखते हैं) वय चन्द्र पश्याम ।

२०७ । वाच्यके अनुसार धातुके भिन्न भिन्न रूप होते हैं ।

धातु दश गणोमे विभक्त--भ्वादि, अदादि, ह्वादि (जुहोत्यादि), दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि* ।

२०८ । धातु दो प्रकार--अकर्मक (Intransitive or neuter) और सकर्मक (Transitive) । जिन धातुओं

---

* भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिर्दिवादि स्वादिरेव च ।
तुदादिश्च रुधादिश्च तन क्र्यादि-चुरादय ॥

का कर्म नहीं रहता, वे 'अकर्मक'*, और जिनका कर्म रहता है, वे 'सकर्मक'।

(क) सकर्मक धातुओंके बीचमें दुह्, याच् प्रभृति कई धातुओंके कभी कभी दो कर्म रहते हैं, तब उनको 'द्विकर्मक' कहते हैं।‡

* सत्ता-लज्जा-स्थिति-जागरण

वृद्धि-क्षय-भय-जीवन-मरणम् ।

शयन-क्रीडा-रुचि-दीप्त्यर्था

धातव एते कर्मविहीनाः ॥

कर्मकारकका उल्लेख न रहनेसे सकर्मक धातु अकर्मक होता है; यथा—स चन्द्रं पश्यति—यहाँ 'दृश्' धातु सकर्मक, स पश्यति—यहाँ अकर्मक। उपसर्गके योगसे अर्थान्तर होनेपर अकर्मक धातुभी सकर्मक होता है; यथा—दुःखमनुभवति (दुःख भोगता है)। अकर्मक धातु णिजन्त होनेसे सकर्मक होता है।

† दुहियाच्या ब्रुवर्यो च पचतिश्चि-जि-दण्डय ।

रुधि प्रच्छिर्मन्थतिश्च मुषि शासिर्दुहादय ॥

न्यादयो नयति प्रोक्ता कर्षतिर्हरतिर्वहि ॥

दुह्, याच् (याच्यार्थ—अर्थ, नाथ्, भिक्ष् प्रभृति समस्त धातु), ब्रू (कथनार्थ—कथ, वच्, वद्, भाष् प्रभृति समस्त धातु), पच्, चि, जि, दण्डि, रुध्, प्रच्छ् (प्रश्नार्थ समस्त धातु), मन्थ्, मुष्, शास्—ये दुहादि, और नी, कृष्, हृ, वह्—ये न्यादि।

‡ जब एकही कर्म रहता है, तब केवल सकर्मक।

(ख) सकर्मक धातु कर्तृवाच्यमे, और अकर्मक धातु कर्तृवाच्य तथा भाववाच्यमे प्रयुक्त होते हैं ।

धातु औरभी तीन प्रकारो मे विभक्त—परस्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी । परस्मैपदी धातुके उत्तर परस्मैपदकी, आत्मनेपदी धातुके उत्तर आत्मनेपदकी, और उभयपदी धातुके उत्तर परस्मैपद और आत्मनेपद इन उभयपदो की विभक्ति होती है ।*

संज्ञा ।

सगुण विभक्ति ।

२०९ । 'तिङ्'-विभक्तियोंके बीचमे, लट्—ति, सि, मि , लोट्—तु, आनि, आव, आम, ऐ, आवहै, आमहै , लङ्—द्, स्, अम् ; लिट्—प्रथम और उत्तमपुरुषके 'अ', मध्यमपुरुषके एकवचनका 'थ' ; लुङ्, लुट् लट् और लृङ्की समस्त विभक्ति ; और आशीर्लिङ् आत्मनेपदकी समस्त विभक्ति सगुण ।†

---

* जहाँ फलाकाङ्क्षा रहती है, वहाँ कर्ता स्वयं फलभागी होनेसे, उभयपदी धातुके उत्तर आत्मनेपद होता है, और दूसरा कोई फलभागी होनेसे, परस्मैपद होता है , यथा—(मै दान करूंगा) अहं दानं करिष्ये ; (मैं पिताजीकी स्वर्गकामनासे दान करूगा) अहं पितुः स्वर्गकाय दानं करिष्यामि । उपसर्गविशेषके योगसे कोई कोई परस्मैपदी धातु आत्मनेपदी, और आत्मनेपदी धातु परस्मैपदी होता है (५१८ और ५२२ सूत्र द्रष्टव्य)।

† वैयाकरणलोग ति, सि, मि, तु, आनि, आव, आम, ऐ, आवहै,

अगुण विभक्ति ।

२१० । ति, सि, मि भिन्न समस्त लट्, तु, आनि, आव, आम, ऐ, आवहै, आमहै भिन्न समस्त लोट्, द्, स्, अम् भिन्न समस्त लङ्, प्रथम तथा उत्तम पुरुषके एकवचनके 'अ' और मध्यमपुरुषके एकवचनके 'थ' भिन्न समस्त लिट्, समस्त विधिलिङ् और आशीर्लिङ् का समस्त परस्मैपद अगुण ।

२११ । गुण—इ ईके स्थानमे 'ए', उ ऊके स्थानमे 'ओ', ऋ ॠके स्थानमे 'अर्', और 'ऌ'के स्थानमे 'अल्' होनेका नाम 'गुण' ।

२१२ । वृद्धि—'अ'के स्थानमे 'आ', इ ईके स्थानमे 'ऐ', उ ऊके स्थानमे 'औ', ऋ ॠके स्थानमे 'आर्', और 'ऌ'के स्थानमे 'आल्' होनेका नाम 'वृद्धि' ।

२१३ । उपधा—अन्त्यवर्णके पूर्ववर्णको 'उपधा' कहते हैं; यथा—र्+उ+च्=रुच्—यहाँ चकारसे पूर्ववर्ण 'उकार' उपधा ।

२१४ । आगम—प्रकृति और प्रत्ययका अनिष्ट न करके जो होता है, उसे 'आगम' कहते हैं, यथा—भू+ति=भ्+अ+ति—इस स्थलमे मध्यस्थित 'अ' आगम* ।

आमहै—इन विभक्तियोंके अन्तमे 'प्' युक्त करके पढते हैं; यथा—तिप्, सिप् इत्यादि; और लङ्के द्, स्, अम्के स्थानमे दिप्, सिप्, अमप्, तथा लिट्के परस्मैपदके एकवचनमे णप्, थप्, णप् पढते हैं ।

* मित्रवदागम ।

२१५। आदेश—प्रकृति वा प्रत्ययके स्थानमें जो होता है, उसका नाम 'आदेश'; यथा—स्था+ति=तिष्ठ्+अ+ति=तिष्ठति—यहाँ 'स्थाके स्थानमें तिष्ठ्' आदेश हुआ है।*

२१६। टि—प्रकृतिका शेषस्वरवर्ण और तत्परस्थित व्यञ्जनवर्णको 'टि' कहते हैं।

उपसर्ग (Prefix)।

२१७। प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निर्, दुर्, अभि, वि, अधि, सु, उद्, अति, नि, प्रति, परि, अपि, उप, आङ्—ये अव्यय धातुके पूर्वमें संयुक्त होनेसे इनको 'उपसर्ग' कहते हैं।†

---

† बहुवर्णादेश।

* प्र-परापसमन्ववनिर्दुरभि-
व्यधिसूदति नि प्रति-पर्यपयः।
उप आङिति विंशतिरेष सखे
कुरु कण्ठगतं उपसर्गगणम्॥

प्रादिके अर्थ—प्र=प्रकर्ष; परा=आकर्ष, प्रत्यावृत्ति; अप=अपकर्ष; सम्=सम्यक्; अनु=पश्चात्, सादृश्य, वीप्सा, सामीप्य; अव=निश्चय, अपकर्ष; निर् निस्=निश्चय, निषेध, बहिष्करण; दुर् दुस्=कष्ट, निन्दा, अभि=समन्तात्, उभय, आभिमुख्य; वि=विशेष, वैपरीत्य; अधि=उपरि; सु=शोभन, प्रशंसा, आतिशय्य; उद् उत्=ऊर्द्ध्व, उत्कर्ष; अति=अतिशय्य, अतिक्रम, प्रशंसा; नि=निश्चय, निषेध; प्रति=प्रत्यर्पण, सादृश्य, वीप्सा; परि=सर्वतोभाव, वीप्सा; अपि=सम्भावना, समुच्चय; उप=सामीप्य, पश्चात्, आधिक्य; आङ्=समन्तात्, ईषत्, सीमा, व्याप्ति।

(क) उपसर्गोंके योगसे धातुके भिन्न भिन्न अर्थभी होते हैं, यथा—'हृ' धातुका अर्थ—हरण, किन्तु प्र + हृ = प्रहार, आ + हृ = आहार, सम् + हृ = संहार, वि + हृ = विहार, परि + हृ = परिहार ।*

"धात्वर्थं बाधते कश्चित्"—कोई उपसर्ग धातुके अर्थका विराम करता है, यथा—'आदत्ते'—यहाँ दानार्थक 'दा' धातुमें 'आ' उपसर्ग युक्त होनेसे 'ग्रहण' अर्थ हो गया ।

"कश्चित् तमनुवर्त्तते"—कोई उपसर्ग धातुके अर्थका अनुसरण करता है, यथा—'प्रसूते'—यहाँ 'प्रसव—उत्पादन' 'सू'-धातुका अर्थ 'प्र'-उपसर्गके योगसेभी पूर्ववत् रहा ।

"तमेव विशिनष्ट्यन्य"—और कोई उपसर्ग धातुके अर्थको बढ़ाता है; यथा—'सन्तुष्यति' 'सम्पश्यति'—यहाँ 'तुष्'-धातुका अर्थ 'तुष्ट होना', और 'दृश्'-धातुका अर्थ 'देखना' 'सम्' उपसर्गके योगसे 'अत्यन्त तुष्ट होना' और 'अच्छे प्रकारसे देखना' हुआ ।

"उपसर्गगतिस्त्रिधा"—इस रीतिसे उपसर्गकी प्रवृत्ति तीन प्रकारकी होती है ।

(ख) 'अव' और 'अपि' उपसर्गके आदिस्थित अकारका विकल्पसे लोप होता है, यथा—अवगाह, वगाह, अवगाहते, वगाहते, अवगाह्य, वगाह्य, अपिधानम्, पिधानम्, अपिहितम्, पिहितम्, अपिदधाति, पिदधाति, अवतंस, वतंस ।

(ग) क्विप्-घञ्-प्रभृति प्रत्ययान्त शब्द परे रहनेसे, उपसर्गका अन्त्य

---

* उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहार-संहार-विहार-परिहारवत् ॥

स्वर कभी कभी दीर्घ होता है ; यथा—प्रावृट्, नीवृत्, उपानह्, प्रासाद (देव भूभुजां गृहे), नीकाश, सकाशार्थ, नीहार, नीसार, नीवार, प्राकार (प्राचीर), अतीसार, अतिसार, प्रतीकार, प्रतिकार, प्रतीहार, प्रतिहार, परीहास, परिहास, परीवाद, परिवाद ; प्रतीकाश, प्रतिकाश इत्यादि।

(घ) अय् धातु परे रहनेसे, उपसर्गके 'र' के स्थानमें 'ल' होता है, यथा—प्र + अयते = प्लायते, परा + अयनम् = पल्ायनम्।

लकारार्थ-निर्णय।

२१८। वर्त्तमान-कालमें—लट् (Present tense); अतीत कालमें—लङ् (First preterite), लिट् (Second preterite) और लुङ् (Third preterite, Aorist); भविष्यत् कालमें—लुट् (First future) और लृट् (Second future); अनुज्ञामें—लोट् (Imperative mood); विधि-अर्थमें—विधिलिङ् (Potential mood), आशीर्वाद-अर्थमें आशीर्लिङ् (Benedictive mood); और क्रियातिपत्ति अर्थात् क्रियाद्वयकी अनिष्पत्ति अर्थमें—लृङ् (Conditional mood) होता है।

२१९। लट्—(वह आता है) स गच्छति।

(क) वर्त्तमानसामीप्यमें अर्थात् वर्त्तमानके समीपस्थ अतीत और भविष्यत् कालमेंभी 'लट्' होता है; यथा—(मैं अभी आया हूँ) एषोऽहमागच्छामि, अयमागच्छामि, "अयमहमागच्छामि" शकु० ३ (अभी आता हूँ—आऊंगा); (मैं अभी आऊंगा) इदानीमेव गच्छामि,

अयमहं गच्छामि, एष गच्छामि ।

(ख) 'स्म'-शब्दके योगसे अतीतकालमें 'लट्' होता है, यथा—(वह मेरे घरमें आया था) स मद्गृहम् आगच्छतिस्म, (उसने व्याकरण पढ़ा) स व्याकरणम् अधीते स्म ।

(ग) 'यावत्' और 'पुरा' शब्दके योगसे भविष्यत्-कालमें 'लट्' होता है; यथा—"यावत् अस्य दुरात्मन समुन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि" उत्तर० १ (इस दुरात्माके विनाशके लिए शत्रुघ्नको भेजूंगा), "पुरा भवति" नै० १ १८ (भविष्यति—होगा), "आलोके ते निपतति पुरा (सा)" मेघ० ८६ (वह तेरे दृष्टिपथमें पड़ेगी), "पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधाम्" शकु० ७ ३३ (सप्तद्वीपसमन्विता वसुमती जय करेगा); "(सा) म्रियते पुरा परासुतां त्वदृते" भा० १० ९० (वह तेरे लिये मरेगी), "प्रत्यासीदति मुक्तिस्त्वां पुरा" भा० ११ ३६ (मुक्ति तेरे पास आयेगी), "पुरा दूषयति स्थलीम् (गन्धेनाशुचिना)" र० १२ ३०· (दुर्गन्धसे आश्रमस्थानको दूषित करेगा ।

'जब तक' (Till, before) इस अर्थमेंभी 'यावत्'-शब्दके योगसे 'लट्' होता है, यथा—(वह जब-तक नहीं आयेगा, तब तक पढूंगा) — यावत् न आगच्छति, तावत् पठिष्यामि, "यावन्न परापतति, तावत् अवमर्पत अनेन तरुगहनेन" उत्तर० ४ (जब तक वह न लौटे, तब तक इस जङ्गलसे सिधारें) ।

(घ) 'कदा' और 'कर्हि' शब्दके योगसे भविष्यत्-कालमें विकल्पसे 'लट्' होता है, यथा—(न जाने, कब जाउंगा) न जाने, कदा गच्छामि, गमिष्यामि वा ।

(ट) प्रश्नोत्तर वचनमें 'ननु' शब्दके योगसे अतीत कालमें 'लट्' होता है, यथा—प्रश्न—(वह आया है क्या ?) स किमागच्छत् ? उत्तर—(आया है) ननु आगच्छति।

२२० । लोट्—वर्तमान कालमें अनुज्ञा (अनुमति) अर्थमें 'लोट्' होता है, यथा—(बचा, घर जा) वत्स। गृह गच्छ।

(क) समर्थना अर्थात् अशक्य कर्ममें उत्साह समझानेसे 'लोट्' होता है, यथा—(समुद्रकोभी शोषण कर सकता हूँ) सिन्धुमपि शोषयाणि।

(ख) आशीर्वाद अर्थमेंभी 'लोट्' होता है, (तब 'तु' और 'हि' विभक्तिके स्थानमें विकल्पसे 'तात्' होता है), यथा—(वह दीर्घकाल जीता रहे) स चिरं जीवतु, जीवतात् वा, (तू दीर्घकाल जीता रह) त्वं चिर जीव, जीवतात् वा।

(ग) अनेक क्रियाओंके प्रयोगसे पौन पुन्य वा आतिशय्य अर्थमें सब काल, सब पुरुष और सब वचनोंमेंही 'हि' 'त', 'स्व' तथा 'ध्वम्' होते हैं (परस्मैपदी धातुके उत्तर 'हि' तथा 'त', और आत्मनेपदी धातुके उत्तर 'स्व' तथा 'ध्वम्' होते हैं); यथा—"पुरीमवस्कन्द, लुनीहि नन्दनं, मुषाण रत्नानि, हरामराङ्गना" माघ० १ ५१ (रावण पुन पुन नगर आक्रमण करता, पुन पुन नन्दन काननको छेदन करता, पुन पुन रत्नोंको छीन लेता, पुन पुन देवरमणियोंको हरण करता)।

२२१ । विधिलिङ्—वर्तमान-कालमें 'विधि' अर्थमें 'विधिलिङ्' होता है। विधि दो प्रकार—प्रवर्त्तना और निवर्त्तना। सत्कर्ममें प्रवर्तित करनेका नाम 'प्रवर्त्तना', यथा—(दीनमें दया करना) दीने दयां

कुर्य्यात्, (क्षुधार्त्तको अन्न देना चाहिये) क्षुधिताय अन्नं दद्यात् । असत्कर्मसे निवर्त्तित करनेका नाम 'निवर्त्तना', यथा—(गुरुओंकी निन्दा न करना) गुरून् न निन्देत्, (परधन हरण नहीं करना) परस्व नापहरेत्, (यत्नपूर्वक क्रोध त्यागना चाहिये) क्रोधं यत्नेन वर्जयेत्; (आलस्य छोड़ना चाहिये) आलस्यं परिहरेत् ।

(क) सम्भावना और शक्ति अर्थमें 'विधिलिङ्' होता है, यथा—सम्भावना—(पढ़ूगा, यदि वह पढ़ावे) पठिष्यामि, यदि स पाठयेत्; शक्ति—(मैं भार वहन कर सकता हूँ) अहं भारं वहेयम् ।

(ख) दो क्रियाओंका कार्य्यकारणभाव समझानेसे, दोनोंहीके उत्तर भविष्यत्-कालमें विकल्पसे 'विधिलिङ्' होता है, पक्षे—लृट्; यथा—(यदि लड़कपनमें पढ़ें, तो सारा जीवन सुख पावेगा) यदि बाल्ये पठेत्, यावज्जीवं सुखम् आप्नुयात्, (पक्षे) यदि बाल्ये पठिष्यति, यावज्जीवं सुखम् आप्स्यति,—यहाँ बाल्यकालका अध्ययन यावज्जीवन सुखलाभका कारण है ।

(ग) निमन्त्रण (विधिपूर्वक आह्वान), आमन्त्रण* (आह्वान), अध्येषणा (सम्मान-पूर्वक प्रवर्त्तन अर्थात् प्रेरणा), सम्प्रश्न (निरूपणार्थ जिज्ञासा) और प्रार्थना (याच्ञा) अर्थमें 'विधिलिङ्' और 'लोट्' दोनों होते हैं । यथा—निमन्त्रण—(आज मेरे पितृश्राद्धमें आप यहाँ

---

* जिसके प्रत्याख्यान अर्थात् अस्वीकारसे प्रत्यवाय (अपराध) होता है, उसको 'निमन्त्रण' कहते हैं । जिसके प्रत्याख्यानसे प्रत्यवाय नहीं होता, परन्तु जिसका स्वीकार वा अस्वीकार इच्छानुसार किया जा सकता है, उसको 'आमन्त्रण' कहते हैं ।

भोजन करेंगे) मम मे तिष्ठावदेश भुञ्जीत भवान्; (पक्षे) भुङ्क्ष्व। सामन्त्र—(आप यहाँ बैठिये) इह आसीत भवान्। (पक्षे) आस्ताम् (इच्छा हो तो)। अध्येषणा—(आप मेरे पुत्रको पढ़ाइये) मम पुत्रम् अध्यापयेद् भवान्, (पक्षे) अध्यापय। सम्प्रश्न—(कहिये,—मैं व्याकरण पढ़ूँ, या साहित्य?) किं भो व्याकरणम् अधीयीय, उत साहित्यम्?, (पक्षे) अध्ययै। प्रार्थना—(मैं भिक्षा पाऊँ, अर्थात् मुझे भिक्षा दो) भो भिक्षा लभेय, (पक्षे) देहि मे भिक्षाम्।

(ग) इच्छार्थ धातुके योगसे 'विधिलिङ्' और 'लोट्' दोनो होते हैं; यथा—(मैं चाहता हूँ, आप इस पुस्तकको पढ़ें) इच्छामि, भवान् पुस्तकमेतत् पठेत्, पठतु वा।

२२२। लङ्—अनद्यतन अतीत कालमें 'लङ्' होता है, (वर्तमान दिन, पूर्वरात्रिके शेष प्रहर और पररात्रिके प्रथम प्रहरको 'अद्यतन' कहते हैं, तद्भिन्न काल 'अनद्यतन'), यथा—(कल वह गया) स सोऽगच्छत्।

(क) 'मास्म'-शब्दके योगसे सब कालोंमेंही 'लङ्' होता है; यथा—(मत जा) मास्म गच्छ।

२२३। लिट्—अनद्यतन अथच परोक्ष (जो वक्ताका प्रत्यक्ष नहीं ऐसे) अतीत कालमें 'लिट्' होता है, यथा—(रामने रावणको मारा था) रामो रावणं जघान। उत्तमपुरुषकी क्रिया किसी प्रकारसे वक्ताका परोक्ष नहीं हो सकती, इसलिये उत्तमपुरुषमें कभीभी लिट्का प्रयोग नहीं होता; केवल चित्तविक्षेप (मनकी चञ्चलता) और अत्यन्तापह्नव (सम्पूर्णरूपसे अस्वीकार) समझानेसे होता है; यथा—(मैं सोता

सोता गया था) सुप्तोऽहं रुरोद, ('तुझे नदीमें पैरनेको देखा है') 'त्वं नदीं सन्तरन् दृष्टोऽसि' ऐसा किसीको कहनेसे, उसने उत्तर दिया—('मैं नदीमें नहीं गया') 'नाहं नदीं जगाम'।

२२४। लुङ्—अद्यतन, अनद्यतन और परोक्ष—सर्वप्रकार अतीत-कालमेंही 'लुङ्' होता है, यथा—(आज वह गया है) अद्यासौ अगमत्।

(क) 'मा' *और 'मास्म' शब्दके योगसे सदकालमेंही 'लुङ्' होता है, यथा—(मत कर) मा कार्षी, मास्म कार्षी।

२२५। लुट्—अनद्यतन भविष्यत् कालमें 'लुट्' होता है, यथा—(कल जाऊंगा) श्वो गन्तास्मि।

२२६। लृट्—भविष्यत्-कालमात्रमेंही 'लृट्' होता है, यथा—(मैं जाऊंगा) अहं गमिष्यामि।

२२७। लृङ्—क्रियातिपत्ति अर्थात् दो क्रियाओंकी अनिष्पत्ति (असम्पूर्णता) समझानेसे, अतीत और भविष्यत् कालमें 'लृङ्' होता है; यथा—(ज्ञान होता, तो सुख होता) ज्ञानं चेत् अभविष्यत्, सुखम् अभविष्यत् (अर्थात् ज्ञानभी नहीं हुआ, सुखभी नहीं हुआ), (यदि समुद्र शुष्क हो, तो मनुष्य अमर होंगे) सागरश्चेत् शुष्कोऽभविष्यत्, तदा मानुषा अमरा अभविष्यन् (अर्थात् समुद्रभी शुष्क नहीं होगा, मनुष्यभी अमर नहीं होंगे)।

२२८। आशीर्लिङ्—आशीर्वाद अर्थमें भविष्यत् कालमें 'आशीर्लिङ्' होता है, यथा—(तेरा कुशल हो) तव कुशलं भूयात्, (सज्जन

* 'मा'-शब्दके योगसे 'लोट्' भी होता है, यथा—"मद्वाणि! मा कुरु विषादमनादरेण" भामिनी० ४. ४१।

बहुत दिन जीता रहे) सज्जनश्चिर जीव्यात् ।

Note —व्याकरणमे लङ् और लुङ्का अर्थभेद रहनेपरभी प्रयोगमे उनका कुछ भेद नहीं दीखता, दोनों अतीतकालमात्रमेही उनका प्रयोग किया जा सकता है । ऐसे लुट् और लट्काभी प्रयोगमे कुछ भेद नहीं ।

धातुसम्बन्धी णत्व-विधि ।

२२९ । प्र, परा, परि, निर्—इन चार उपसर्गोंके, और 'अन्तर्'-शब्दके परवर्त्ती 'नद्'*-प्रभृति धातुका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है, यथा—प्रणदति, प्रणमति, परिहण्यते इत्यादि । किन्तु 'हन्'-धातुके 'हन्'के स्थानमे 'घ्न' होनेसे मूर्द्धन्य 'ण' नहीं होता, यथा—परिघ्नन्ति ।

(क) 'नश्'-धातुके 'श्'के स्थानमे 'ष्' होनेसे दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—प्रनष्ट, परिनष्ट इत्यादि । किन्तु 'प्रणाश'—इस शब्दमे मूर्द्धन्य 'ण' हुआ ।

२३० । प्र, परा, परि, निर्—इन उपसर्गोंके, और 'अन्तर्' शब्दके परवर्त्ती धातुके उत्तर विहित लोट्को 'आनि'-विभक्तिका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है, यथा—प्रभवाणि ।

२३१ । 'गद्'-प्रभृति* धातु परे रहनेसे, प्र, परा, परि, निर्—इन

---

* नद्, नम्, नश्, नह्, नी, नु, नुद्, अन्, हन् ।
नदो नमो नशश्चैव नह-नी-नु-नुदस्तथा ।
अनो हनश्चेति नव नदादिर्गण इष्यते ॥

* गद्, नद्, पद्, पत्, वप्, वह्, शम्, हन्, दिह्, दा, धा, या, वा, द्रा, प्सा (भक्षणे—अदा० प०), चि ।

उपसर्गोंके, और 'अन्तर्' शब्दके परवर्त्ती 'नि' उपसर्गका 'न' मूर्द्धन्य होता है, यथा—*प्रणिगदति, प्रणिपतति इत्यादि ।*

२३२ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर्'-शब्दके परवर्त्ती 'हिनु' और 'मीना' (मी धातु) का दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है, यथा—प्रहिणोति, प्रहिणुत, प्रहिण्वन्ति, प्रमीणाति ।

२३३ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर्' शब्दके परवर्त्ती 'हन्'-धातुका 'न' व अथवा म संयुक्त होनेसे विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है, यथा—प्रहण्मि, प्रहन्मि, प्रहण्व, प्रहन्व ।

२३४ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर्' शब्दके परवर्त्ती निन्द्, निक्ष् (चुम्बने—भ्वा० प०) और निम् (चुम्बने—अदा० आ०) धातुका दन्त्य 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है, यथा—प्रणिन्दति, प्रनिन्दति; प्रणिक्षणम्, प्रनिक्षणम्, प्रणिंसितव्यम्, प्रनिंसितव्यम् ।

* * * *

२३५ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर्' शब्दके परवर्त्ती धातुके उत्तर विहित 'कृत्' प्रत्ययका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है, यथा—प्रमाणम्, परिमाणम् ।

किन्तु भा, भू, पू, कम्, गम्, प्याय्, वेप् और कम्प् धातुके उत्तर विहित 'कृत्-प्रत्ययका 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—(भू) परिभवनीयम् ।

२३६ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर्'-शब्दके परवर्त्ती व्यञ्जनादि धातुके उत्तर विहित 'कृत्' प्रत्ययका 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है, यथा—(कुप्) प्रकोपणीयम्, प्रकोपनीयम्, (गुप्)

परिगोपणम् , परिगोपनम् ।

किन्तु धातुकी उपधामें 'अ' अथवा' 'आ' रहनेसे नित्य होता है ; यथा— (वह्) प्रवहणम् , प्रवहमाण ।

२३७ । प्र, परा, परि, निर् ,—और 'अन्तर्'-शब्दके परवर्त्ती णिजन्त धातुके उत्तर विहित 'कृत्'-प्रत्ययका 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है , यथा—(यापि) प्रयापणम् , प्रयापनम् ।

किन्तु २३६ सूत्रोक्त 'भा' प्रभृति धातु णिजन्त होनेसेभी मूर्द्धन्य 'न' नहीं होता , यथा—(भू) परिभावनीयम् ।

२३८ । व्यञ्जनवर्णमें मिलित होनेसे 'कृत्' प्रत्ययका 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता , यथा—प्रमग्न , परिमग्न ।

धातुसम्बन्धी षत्व विधि ।

२३९ । इकारान्त और उकारान्त उपसर्गके परस्थित 'सु'-प्रभृति* धातुका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य 'ष' होता है , यथा—(सु) अभिषुणोति† ; (सू) अभिषुवति , (सो) अभिष्यति , (स्तु) अभिष्टौति , (स्तुभ्)

---

* सु, सू (तुदादि), सो, स्तु, स्तुभ् , स्था, सेनि ('सेना'-शब्द + णिच्), सिध् , सिच् , सञ्ज् , स्वञ्ज् , सद् , स्तम्भ् ।

सु सू सो स्तु स्तुभश्चैव स्था सेनिश्च सिध सिच ।
सञ्जः स्वञ्ज सद स्तम्भ —स्वादिरेते त्रयोदश ॥

† लृट् , और लृङ् विभक्ति तथा ' स्यत् '-प्रत्यय परे रहनेसे नहीं होता , यथा—(लृट्) अभिसोष्यति ; (लृङ्) अभ्यसोष्यत् , (स्यत्) अभिसोष्यत् ।

प्रतिष्टोभते, (स्था) अधिष्ठास्यति, अनुष्ठास्यति, (सेनि) अभिषेणयति, (सिध्)* प्रतिषेधति, (सिच्) निषिञ्चति, (सञ्ज्) निषजति, अनुषजति, (स्वञ्ज्) परिष्वजते, (सद्) विषीदति †, (स्तम्भ्) प्रतिष्टभ्नोति ‡।

'अट्' व्यवधानमेभी मूर्द्धन्य होता है यथा—अभ्यषेणयत्, व्यषिञ्चत्, व्यषीदत् §।

२४०। भोजन अर्थमें 'नि' और 'अव' पूर्वक 'स्वन्'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—निष्वणति, अवष्वणति (सशब्द भुङ्क्ते इत्यर्थः)। (अन्यत्र) विस्वनति वीणा (शब्दायते इत्यर्थः)।

२४१। नि, वि, परि उपसर्गके परवर्त्ती सेव्, सिव् और सह् ||धातुका

---

* गमनार्थ 'सिध्' धातुका नहीं होता, यथा—स गङ्गां सिसेधति।

† 'प्रति'-पूर्वक 'सद्' धातुका नहीं होता, यथा—प्रतिसीदति।

‡ आलम्बन और सामीप्य अर्थमें 'अव'-पूर्वक 'स्तम्भ्'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—अवष्टभ्नाति यष्टिम् (अवलम्बते), अवष्टभ्यते गौ (सामीप्ये निरुध्यते)। 'क्त'-प्रत्यय करनेसे, नि और प्रति उपसर्गके परवर्त्ती 'स्तम्भ्'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—निस्तब्ध, प्रतिस्तब्ध। णिजन्त करनेसे, लुङ्-विभक्तिमें, 'स्तम्भ्'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—पर्य्यतस्तम्भत्।

§ परि, नि, वि-पूर्वक 'स्तु' और 'स्वञ्ज्' धातुका विकल्पसे होता है; यथा—पर्य्यष्टावीत्, पर्य्यस्तावीत्, पर्य्यष्वजत, पर्य्यस्वजत।

|| 'सह्' के स्थानमें 'सोढ' होनेसे मूर्द्धन्य 'ष' नहीं होता, यथा—परिसोढा, निसोढुम्, विसोढ।

'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—निषेवते, परिषेव्यति, विषहते। 'अट्' व्यवधानसेभी होता है, किन्तु 'सेव्-धातुका नित्य, 'सिव्' और 'सह्' धातुका विकल्पसे, यथा—(सेव्) पर्य्यषेवत; (सिव्) पर्य्यषीव्यत्, पर्य्यसीव्यत्, (सह्) न्यषहत, न्यसहत। णिजन्त करनेसे, लुङ्-विभक्तिमें सिव् और सह् धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—(सिव्) पर्य्यसीषिवत् (सह्) पर्य्यसीसहत्।

२४२। 'परि' उपसर्ग परवर्ती 'स्कृ' धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—परिष्करोति, परिष्कार। 'अट्'-व्यवधानमें विकल्पसे; यथा—पर्य्यष्करोत्, पर्य्यस्करोत्।

२४३। अनु, नि, वि, परि और अभि उपसर्गके परवर्ती 'स्यन्द्'-धातुका 'स' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है, यथा—अनुष्यन्दते निष्यन्दते विष्यन्दते घृतम्, (पक्षे) अनुस्यन्दते इत्यादि। किन्तु प्राणी कर्त्ता होनेसे मूर्द्धन्य 'ष' नहीं होता; यथा—निस्यन्दते मत्स्य।

२४४। परि और वि उपसर्गके परवर्ती 'स्कन्द्'-धातुका 'स' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है, यथा—परिष्कन्दति, परिस्कन्दति; विष्कन्दति विस्कन्दति। किन्तु 'निष्ठा' प्रत्यय (क्त, क्तवतु) परे रहनेसे, वि-पूर्वक स्कन्द् धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—विस्कन्न, विस्कन्नवान्।

२४५। निर्, नि और वि उपसर्गके परवर्ती स्फुर् और स्फुल् धातुका 'स' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है; यथा—(स्फुर्) विष्फुरति, विस्फुरति, (स्फुल्) विष्फुलति, विस्फुलति।

२४६। 'वि' पूर्वक 'स्कम्भ्'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—विष्कम्नाति, विष्कम्भ, विष्कम्भक।

२४७। सु, वि, निर् और दुर् उपसर्गके परवर्त्ती 'स्वप्' धातुके स्थानमें जात 'सुप्'का 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—सुषुप्त, दुष्षुप्त।

२४८। इकारान्त और उकारान्त उपसर्गके और 'प्रादु'-शब्दके परस्थित 'अस्' धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—निषन्ति, निष्यात्, प्रादुःषन्ति, प्रादुःष्यात्। किन्तु थ, म और त-संयुक्त 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—निस्थ, निस्म, निस्त।

* * * *

२४९। षोपदेश धातुका* अभ्यस्त (द्विरुक्त) करनेसे, परभागका 'स' यदि इ, उ, ए, ओ—इन चार वर्णोंके परस्थित हो, तो मूर्द्धन्य होता है, यथा—(सिच्) सिषेच,† (सिध्) सिषेध, (स्तु) तुष्टाव।

२५०। धातुके उत्तर विहित 'सन्'-प्रत्ययका 'स' मूर्द्धन्य होनेसे, धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—(सिच्) सिसिक्षति, (सेव्) सिसेविषते।

---

* षञ्ज्, षद्, षह्, षाध्, षिच्, षिध्, षिव्, षु, षू, षेव्, षो, ष्टम्भ्, ष्टु, ष्टुभ्, ष्टै, ष्ठा, ष्णा, ष्णिह्, ष्णु, ष्मि, ष्वञ्ज्, ष्वद्, ष्वप्, ष्विद् इत्यादि।

षञ्ज षद षह षाध षिच् षिधौ षिव् च षुस्तथा।
षू षेव षोस्तथा ष्टम्भ ष्टु-ष्टुभौ ष्ट्यायतिस्तथा॥
ष्ठा-ष्णा-ष्णिह-ष्णुव ष्मिश्च ष्वञ्ज ष्वद-ष्वप्-ष्विदस्तथा।
एते चान्ये च बहव षोपदेशा प्रकीर्त्तिता॥

† 'यङ्'-प्रत्यय होनेसे, 'सिच्'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—सेसिच्यते।

'सन्'का 'स' दन्त्य रहनेसे, धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—(स्था) तिष्ठासति, (स्वप्) सुषुप्सति । किन्तु 'स्तु' धातुसे उत्तर विहित 'सन्'-प्रत्ययका 'स' और धातुका 'स'—दोनोंही मूर्द्धन्य होते हैं, यथा—तुष्टूषति।

२६१ । णिजन्त धातुके बीचमें, 'सन्'-प्रत्ययका 'स' मूर्द्धन्य होने-से, केवल स्विद्, स्वद् और सह् धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—(स्विद्) सिस्वेदयिषति, (स्वद्) सिस्वादयिषति, (सह्) सिसाहयिषति । एतद्भिन्न णिजन्त धातुका होता है, यथा—(सिच्) सिषेचयिषति इत्यादि ।

२६२ । इकारान्त और उकारान्त उपसर्गके परस्थित 'सेनि'-प्रभृति धातु* अभ्यस्त होनेसे, दोनो 'स' मूर्द्धन्य होते हैं, यथा—(सेनि) अभिषिषेनयिषति, (सिच्) अभिषिषेच, (सेव्) परिषिषेवे ।

लिट् विभक्तिमें स्वञ्ज् और सद् धातुके अभ्यस्त परभागका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—(स्वञ्ज्) परिषस्वजे, (सद्) निषसाद।

२६३ । इकारान्त और उकारान्त उपसर्गके परस्थित अभ्यस्त स्था और स्तम्भ् धातुका 'स' 'त'-व्यवधानसेभी मूर्द्धन्य होता है, यथा—(स्था) अनुतष्ठौ, अधितष्ठौ, (स्तम्भ्) अभितष्टम्भ ।

२६४ । वस्, घस्, शास् और सह् यथाक्रम—उस्, जक्स्, शिस् और साट् होनेसे 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—उष्यते, जक्षतु;

---

* सेनि, सिध्, सिच्, सञ्ज्, स्वञ्ज्, सद्, सेव् ।

सेनिः सिध सिचश्चैव सञ्ज स्वञ्ज सदस्तथा।
सेव इत्येष विज्ञेय सेन्यादि सप्तको गण ॥

शिष्यते, तुराषाट् ।

कर्तृवाच्यमें लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् विभक्ति, और शतृ, शानच् प्रत्यय पर रहनेसे, धातुके उत्तर गणानुसार कई 'आगम' होते हैं। किस किस गणमें कौन कौन आगम होता है, सो सहजमें लिये नीचे एकत्र लिखा जाता है —

गणोंके नाम	आगम	उदाहरण
१. भ्वादि	अ (शप्)	भू—भवति
२ अदादि	कुछ नहीं	अद्—अत्ति
३ ह्लादि	कुछ नहीं	हु—जुहोति
४. दिवादि	य (श्यन्)	दिव्—दीव्यति
५. स्वादि	नु (श्नु)	सु—सुनोति, सुनुते
६ तुदादि	अ (श)	तुद्—तुदति, तुदते
७. रुधादि	न (श्नम्)	रुध्—रुणद्धि, रुन्धे
८. तनादि	उ	तन्—तनोति, तनुते
९. क्र्यादि	ना (श्ना)	क्री—क्रीणाति, क्रीणीते
१० चुरादि	अ	चुर्—चोरयति

ये आगमके अक्षर धातुके अन्तिम वर्णके साथ युक्त होते हैं, केवल रुधादि गणमें आगमका 'न' धातुके अन्त्यस्वरमें मिलता है ।

तुदादि।

क्रियाघटन-सूत्र।

[तारा (*) चिह्नित सूत्रोंको साधारण सूत्र समझना, अर्थात् विशेष-सूत्र द्वारा बाधित न होनेसे समस्त तिङन्त-प्रकरण और कृदन्त प्रकरणमें उन चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य होगा।]

२६५। * चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमें तुदादि और भ्वादिगणीय धातु, तथा स्वार्थमें अथवा प्रेरणार्थमें विहित णिजन्त, सनन्त, यङन्त और नामधातुके उत्तर 'अ' आगम होता है, यथा—विश्+ति=विश्+अ+ति=विशति।

२६६। * विभक्तिका अकार वा एकार परे रहनेसे, पूर्ववर्त्ती अकारका लोप होता है, यथा—विश्+अन्ति=विश्+अ+अन्ति=विशन्ति।

२६७। * विभक्तिका 'व' अथवा 'म' परे रहनेसे, पूर्ववर्त्ती अकारके स्थानमें आकार होता है, यथा—विश्+अ+मि=विश्+आ+मि=विशामि।

२६८। * अ, उ, नु—इन तीन आगमोंके परस्थित 'हि'-विभक्तिका लोप होता है, यथा—(अ) विश्+हि=विश्+अ+हि=विश्+अ=विश; (उ) कृ+हि=कुरु, (नु) सु+हि=सुनु। किन्तु 'नु' व्यञ्जनवर्णमें मिलित होनेसे लोप नहीं होता; यथा—आप्नुहि।

२६९। * अकारके परस्थित विधिलिङ्के 'याम्' के स्थानमें

'इयम्', 'युस्' के स्थानमें 'इयुस्', तद्भिन्न 'या'-भागके स्थानमें 'इ' होता है, यथा—विश् + याम् = विश् + अ + इयम् = विशेयम् ; विश् + युस् = विश् + अ + इयुस् = विशेयु , विश् + यात् = विश् + अ + इत् = विशेत् ।

२६० । * पदके अन्तमें स्थित 'झुट्' (६३ सू० टिप्पनी)-वर्णके स्थानमें प्रथम वर्ण होता है ।

२६१ । * लङ्, लुङ्, लृङ् विभक्ति परे रहनेसे, धातुके आदिमें 'अट्' होता है ; 'अ॒' का 'अ' रहता है, यथा—विश् + द् = अ + विश् + अ + द् = अविशद् = अविशत् (२६० सू०) । किन्तु 'मा' और 'मास्म' के योगसे 'अट्' नहीं होता ; यथा—मा विशत्, मास्म विशत् ।

२६२ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमें, इष्—इच्छ्, इष—इन्त्, प्रच्छ्—पृच्छ्, मस्ज्—मज्ज् होता है, यथा—इष् + ति = इच्छ् + अ + ति = इच्छति , इष + ति = इन्त् + अ + ति = इन्तति , प्रच्छ् + ति = पृच्छ् + अ + ति = पृच्छति इत्यादि ।

२६३ । * 'अट्' होनेसे, धातुके आदिस्थित इ ई के स्थानमें 'ए', उ ऊ के स्थानमें 'ओ', ऋ ॠ के स्थानमें 'अर्' होता है, यथा—इष् + द् = अ + इच्छ् + अ + द् = अ + एच्छ् + अ + द् = ऐच्छत् ।

२६४ । चतुर्लकार परे रहनेसे, ऋ—रिय्, ॠ—इर् होता है—यथा—मृ + ते = म् + रिय् + अ + ते = म्रियते ; कॄ + ति = क् + इर् + अ + ति = किरति ।

२६५ । * अकारके परवर्त्ती आते, आथे, आताम्, आथाम्,

विभक्तिमें 'आ' के स्थानमें 'इ' होता है ; यथा—कृ + स + आते = क्र + रिय् (२६४ सू०) + अ + इते = क्रियेते ।

२६६ । अनुस्वार परे रहनेसे, कर्त्तृवाच्यमें, मुच्—मुञ्च्, सिच्—सिञ्च्, लुप्—लुम्प्, लिप्—लिम्प्, विद्—विन्द्, भ्रस्ज्—भृज्ज् होता है ।

☞ लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्—इन चार विभक्तियोंमें गणभेद से धातुके रूपकी विभिन्नता है , इस कारण, इन चार विभक्तियोंमें एक एक गणके धातुके रूप यहां पृथक् प्रदर्शित होते हैं । एतद्भिन्न और और विभक्तियोंमें गणभेदसे रूपभेद नहीं होता इसलिये उनको एक एक विभक्तिमें सब गणोंके धातुकेही रूप पश्चात् दिखलाये जायेंगे । परन्तु सम्पूर्णरचनाभ्यासके लिये 'तुद्' के रूपभी यहां लिखे जाते हैं ; 'तुद्'-, की साधनप्रणाली पश्चात् प्रदर्शित होगी ।

(कर्त्तृवाच्यमें धातुरूप)

Conjugation

तुदादि ।

सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

विश्* प्रवेशे—घुसना To enter.

---

* 'कथ'-प्रभृति कई चुरादिगणीय धातु अकारान्त ; इनको 'अद चुरादि' कहते हैं , तद्भिन्न सभी धातु हलन्त होते हैं ; किन्तु इनको अकारान्त करके उच्चारण करना चाहिये , यथा—'विद्' धातुको 'विद' धातु पढ़न

(विशति तपोवन मुनीन्द्र ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	विशति*	विशत॰	विशन्ति
मध्यमपुरुष	विशसि	विशथ॰	विशथ
उत्तमपुरुष	विशामि	विशाव	विशाम॰

लोट्।

प्रथमपुरुष	विशतु	विशताम्	विशन्तु
मध्यमपुरुष	विश	विशतम्	विशत
उत्तमपुरुष	विशानि	विशाव	विशाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अविशत्	अविशताम्	अविशन्
मध्यमपुरुष	अविश	अविशतम्	अविशत
उत्तमपुरुष	अविशम्	अविशाव	अविशाम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	विशेत्	विशेताम्	विशेयुः
मध्यमपुरुष	विशे॰	विशेतम्	विशेत
उत्तमपुरुष	विशेयम्	विशेव	विशेम

* विशति, विशत, विशन्ति, विशसि, विशथ, विशथ, विशामि, विशाव, विशाम —ऐसा पढना होगा।

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वेशयति	वेशयतः	वेशयन्ति
मध्यमपुरुष	वेशयसि	वेशयथः	वेशयथ
उत्तमपुरुष	वेशयामि	वेशयावः	वेशयामः

✤ आ + विश्—प्रवेशे । उप + विश्—उपवेशने (बैठना), अकर्मक । नि + विश्—प्रवेशे, अवस्थाने (अक०), उपवेशने च (अक०)—आत्मनेपदी, निविशते । नि + विश् + णिच्—स्थापने ; निवेशयति । अभि + नि + विश्—मनोनिवेशे, आग्रहे च, आत्मनेपदी । निर् + विश्—उपभोगे, विवाहे च । प्र + विश्—प्रवेशे । सम् + विश्—निद्रायाम् (अक०)। ✤

प्रच्छ् ज्ञीप्सायाम् (जिज्ञासायाम्)—पूछना To ask.

(द्विकर्मक—पृच्छति वार्त्तां गुरुं शिष्यः ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति
मध्यमपुरुष	पृच्छसि	पृच्छथः	पृच्छथ
उत्तमपुरुष	पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छामः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	पृच्छतु	पृच्छताम्	पृच्छन्तु
मध्यमपुरुष	पृच्छ	पृच्छतम्	पृच्छत
उत्तमपुरुष	पृच्छानि	पृच्छाव	पृच्छाम

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छन्
मध्यमपुरुष	अपृच्छः	अपृच्छतम्	अपृच्छत
उत्तमपुरुष	अपृच्छम्	अपृच्छाव	अपृच्छाम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	पृच्छेत्	पृच्छेताम्	पृच्छेयुः
मध्यमपुरुष	पृच्छेः	पृच्छेतम्	पृच्छेत
उत्तमपुरुष	पृच्छेयम्	पृच्छेव	पृच्छेम

लृट्।

प्रथमपुरुष	प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति
मध्यमपुरुष	प्रक्ष्यसि	प्रक्ष्यथः	प्रक्ष्यथ
उत्तमपुरुष	प्रक्ष्यामि	प्रक्ष्यावः	प्रक्ष्यामः

❀ आ + प्रच्छ्—आमन्त्रणे (गमनानुज्ञार्थं प्रस्थानकाले सम्भाष-
णे—विदा लेना), आत्मनेपदी, आपृच्छते। ❀

इष् (इषु) इच्छायाम्—चाहना To desire, wish

(इच्छति धनं लोकः।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति
मध्यमपुरुष	इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ
उत्तमपुरुष	इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः

लोट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु
मध्यमपुरुष	इच्छ	इच्छतम्	इच्छत
उत्तमपुरुष	इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्
मध्यमपुरुष	ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत
उत्तमपुरुष	ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः
मध्यमपुरुष	इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत
उत्तमपुरुष	इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम

लृट्।

प्रथमपुरुष	एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	एषिष्यसि	एषिष्यथः	एषिष्यथ
उत्तमपुरुष	एषिष्यामि	एषिष्यावः	एषिष्यामः

☞ अनु + इष—अभिलाषे । अनु + इष् + णिच्—अनुसन्धाने अन्वेषयति । प्रति + इष्—ग्रहणे, सम्मानने; प्रतीक्षायाम् । ☜

स्पृश् स्पर्शे—छूना To touch.

(स्पृशति हस्तेन कुमारं जनकः ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्पृशति	स्पृशतः	स्पृशन्ति
मध्यमपुरुष	स्पृशसि	स्पृशथः	स्पृशथ
उत्तमपुरुष	स्पृशामि	स्पृशावः	स्पृशामः

लोट्।

प्रथमपुरुष	स्पृशतु	स्पृशताम्	स्पृशन्तु
मध्यमपुरुष	स्पृश	स्पृशतम्	स्पृशत
उत्तमपुरुष	स्पृशानि	स्पृशाव	स्पृशाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अस्पृशत्	अस्पृशताम्	अस्पृशन्
मध्यमपुरुष	अस्पृशः	अस्पृशतम्	अस्पृशत।
उत्तमपुरुष	अस्पृशम्	अस्पृशाव	अस्पृशाम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	स्पृशेत्	स्पृशेताम्	स्पृशेयुः
मध्यमपुरुष	स्पृशेः	स्पृशेतम्	स्पृशेत
उत्तमपुरुष	स्पृशेयम्	स्पृशेव	स्पृशेम

लृट्।

प्रथमपुरुष	स्प्रक्ष्यति स्पर्क्ष्यति	स्प्रक्ष्यतः स्पर्क्ष्यतः	स्प्रक्ष्यन्ति स्पर्क्ष्यन्ति

मध्यमपुरुष	स्पर्द्धयसि स्पर्द्धयसि	स्पर्द्धयथ स्पर्द्धयथः	स्पर्द्धयथ स्पर्द्धयथ
उत्तमपुरुष	स्पर्द्धयामि स्पर्द्धयामि	स्पर्द्धयाव स्पर्द्धयावः	स्पर्द्धयामः स्पर्द्धयामः

✤ स्पृश् + णिच्—दाने, स्पर्शयति । उप + स्पृश्—आचमने, स्नाने च । ✤

अनुवाद करो—मुझे मत छूना । माता सर्वदा सन्तानका मङ्गल चाहती है । यह धन ग्रहण करो । कभी लोभसे परद्रव्य स्पर्श करना नहीं चाहिये । इससे तुम्हें पाप स्पर्श करेगा । आपलोग पूछिये । कल एक चोर उसके घरमें घुसा था । तू क्या पूछता है ? भोजनके पूर्वमें आचमन करना चाहिये । हमने राजासे धन नहीं चाहा । मेरी पुस्तक छूदो । पूर्वकालमें पतिव्रतायें पतिके साथ अग्निमें प्रवेश करती थीं ('स्म'-योगमें क्रिया बनाना) ।

* * * *

तुदादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

उज्झ् त्यागे—छोड़ना To abandon—(लट्) उज्झति (लृट्) उज्झिष्यति । "सपदि विगतनिद्रस्तल्पमुज्झाञ्चकार" र० ९. ७८ ।

उञ्छ् (उछि) कणश आदाने (भूमौ पतितानामेकैकस्योपादाने)—चुनना, बिनना To glean, gather (bit by bit)—उञ्छति ; उञ्छिष्यति । "शिलानप्युञ्छतः" मनु० ३ १०० ;

"उञ्छं शम्यमुञ्छन्ति यदेते व्रतिनो द्विजाः" हलायुध ।

❀ प्र + उञ्छ्—मार्जने, "प्रोञ्छन्ति प्रचुरैर्धामनेन दीनता प्रजा" हलायुध। ❀

कृत् (कृती) छेदने—काटना To cut—कृन्तति, कर्त्तिष्यति, कर्त्स्यति।

"कृन्तत्यरिशिरांसि स"।

❀ नि + कृत्—छेदने। ❀

कॄ विक्षेपे (क्षेपणे)—बिखेरना, फेंकना To scatter, throw about—किरति, करिष्यति, करीष्यति। "नरि नरि किरति द्राक् सायकान् पुष्पधन्वा"।

❀ अव + कॄ—आच्छादने। उत् + कॄ—उत्क्षेपणे। प्रति + कॄ—हिंसायाम्, प्रतिस्किरति। वि + कॄ—विक्षेपे। वि + नि + कॄ—निक्षेपे। प्र + कॄ—प्रक्षेपे। ❀

गुम्फ् (गुफ्) ग्रन्थने—गूथना To string or weave together—गुम्फति, गुम्फिष्यति। गुम्फति माला मालिक।

गॄ निगरणे (भक्षणे)—निगलना To swallow—गिरति, गिलति; गरिष्यति, गरीष्यति। गिरत्यन्नं लोकः।

❀ उद् + गॄ—वमने, वागादीनां बहिष्करणे च। नि + गॄ—निगरणे। सम् + गॄ—प्रतिज्ञायाम्, आत्मनेपदी; सङ्गिरते। ❀

मिष् स्पर्द्धायाम्।—देखने To look at, look helplessly; "(हव्य) जातवेदोमुखान्मायी मिषतामाच्छिनत्ति नः" कु० २ ४६।

❀ उद् + मिष्—(अक०) नेत्रोन्मीलने (आंख खोलना); "उन्मिमेष तदा कुनिः" भागवतम्;—विकासे; प्रकाशे च। नि + मिष्—(अक०) नेत्र निमीलने (आंख मोचना); "मत्स्य

छसो न निमिषति" महाभा० । ⁂

मृश् स्पर्शे—छूना To touch—मृशति, म्रक्ष्यति, मर्क्ष्यति । प्रायशः उपसर्गके साथही प्रयुक्त होता है ।

⁂ अभि + मृश्, अव + मृश्—स्पर्शे । आ + मृश्—स्पर्शे, आक्रमणे च । परा + मृश्—स्पर्शे, चिन्तने, विचारे, उद्देशे च । वि + मृश्—विचारणे । ⁂

रुज् (रुजो) भञ्जने—तोड़ना To break—रुजति, रोक्ष्यति । "नदी कूलानि रुजति" ।—(२) पीड़ने To pain; "तस्य धर्मरते रोगा न रुजन्ति प्रजामपि", "महते रुजन्नपि गुणाय महान्" मा० ६ ७ ।

लिख् अक्षरविन्यासे (लेखने)—लिखना To write—लिखति; लेखिष्यति, लिखिष्यति । लिखति पुस्तकं लेखक ।—(२) चित्री करणे To paint, "मृगमदतिलकं लिखति" गीतगो० ७ २२।—(३) घर्षणे To scratch, "न किञ्चिदूचे, चरणेन केवलं लिलेख वाष्पाकुललोचना भुवम्" मा० ८. १४ ।

⁂ अभि + लिख्—चित्रीकरणे (तस्वीर खींचना) । आ + लिख्, वि + लिख्—चित्रीकरणे, घर्षणे च । उद् + लिख्—विदारणे; कथने च । ⁂

सृज् निर्माणे*—उत्पादन (पैदा) करना To create—सृजति;

* दिवादि आत्मनेपदीभी होता है, सृज्यते ।—"उपासनामेत्य पितु स्म सृज्यते" नै० १. ३४ ।—[सम् + सृज्—मिलने; "संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः (विमातवायु)" र० ५ ६९]।

सृज्यति । "भूतानि काले सृजति" महाभा० ।—(२) त्यागे, "बाणमसृजद्वृषपर्वजः" र० ११ ४४, "बाष्पवृष्टिमिव हिमसृति समर्जे" र० १६ ४४ ।

अति + सृज्—दाने । उत् + सृज्, वि + सृज्—त्यागे ।

तुदादि अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

कुच् सङ्कोचे—सकरना, सिमटना To be contracted, shrink—कुचति, कुचिष्यति । प्रायश 'सम्' उपसर्गके साथही प्रयुक्त होता है, सङ्कुचति, "सङ्कुचत्यरविन्दानां मुखं पङ्केरुहद्युति" ।

त्रुट् भेदे—टूटना To be broken, fall asunder—त्रुट्यति, त्रुटति, त्रुटिष्यति । "त्रुट्यन्ति सर्वसन्देहाश्छिद्यन्ति ग्रन्थयो हृदि", "यावन्मम दन्ता न त्रुट्यन्ति, तावत् तव पाशं छिनद्मि" हितो० ; "अथ ते बाष्पौघस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरः" (छिन्न इत्यर्थे) उत्तर० १ २९ ।

मस्ज् (टुमस्जो) अवगाहने (सलिलप्रक्षेपणे)—नहाना To bathe—मज्जति ; मङ्क्ष्यति ।—(२) जलान्त प्रवेशे (डूबना) To sink ; मज्जति प्रस्तरो जले , "मज्जे । क्व मम मित्रौ" ।

उत् + मस्ज्—उन्मज्जने । नि + मस्ज्—निमज्जने ।

लुट् संश्लेषणे (सम्पर्कीभावे)*—लोटना To roll about, wallow, welter—लुटति ; लुटिष्यति । "भमिलुंठति पाण्डुः" हितो० २ ६६, "लुठति न सा हिमकरकिरणेन" गीतगो० ७, "हारोऽयं हरिणाक्षीणां लुठति स्तनमण्डले" अमरुशतकम् १०० ; "गृहे गृहे"

* 'लुट् विलोडने (अधःपरिवर्त्तने)'—ऐसा-अर्थ करनेमें प्रयोग-भाव हो ।

पदय तवाङ्गवर्णां मुग्धे। सवर्णावल्यो लुठन्ति" भामिनी० २ ९४ ।

स्फुट् विकसने—खिलना To blossom—स्फुटति ; स्फुटिष्यति ।
स्फुटति पंकजकोरक ।—(२) भेदे (फटना) To burst or split open, "हा हा देवि । स्फुटति हृदयम्" उत्तर० ३ ३८ ।

णि० प्र + स्फुट् + णिच्—निस्फुटीकरणे (फटकना), प्रस्फोटयति । णि०

स्फुर् सञ्चलने—हिलना, फड़कना To vibrate, flutter—स्फुरति ;
स्फुरिष्यति । स्फुरति चामरम्, "नव्य नेत्र स्फुरति" मृच्छ० ।—
(२) प्रकाशे To glitter, "सर्पिमण्डल स्फुरति" माघ० ११ ३ ।

अनुवाद करो—प्रात कालमें नहाना चाहिये । विधाताने इस पृथ्वीको बनाया । इस पुष्पको ठाकुरजीके लिये (चतुर्थी) उत्सर्ग करोगे (उत + सृज्) । उनकी समस्त सम्पत्तिको जलमें विसर्जन किया । राजा अन्त पुरमें घुमता है । तू मेरे पास (अन्तिके) बैठ । मुनिलोग कुशासनमें निद्रा लेते हैं (सम् + विश्) । रात्रिमें पद्म सङ्कुचित होता है । उसने इस कार्य्यका दोष नहीं विचारा (वि + मृश्) । लौकी (अलाबु—क्ली०) समुद्रके जलमें डूब जाती है । लड़कोंने एक एक करके (एकैकश) पाठशालामें प्रवेश किया ।

तुदादि आत्मनेपदी धातु ।

मृ (मृङ्) प्राणत्यागे (मरणे)—मरना To die.

(अकर्मक—म्रियते प्राणी ।

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	म्रियते	म्रियेते	म्रियन्ते

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	म्रियसे	म्रियेथे	म्रियध्वे
उत्तमपुरुष	म्रिये	म्रियावहे	म्रियामहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	म्रियताम्	म्रियेताम्	म्रियन्ताम्
मध्यमपुरुष	म्रियस्व	म्रियेथाम्	म्रियध्वम्
उत्तमपुरुष	म्रियै	म्रियावहै	म्रियामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अम्रियत	अम्रियेताम्	अम्रियन्त
मध्यमपुरुष	अम्रियथा	अम्रियेथाम्	अम्रियध्वम्
उत्तमपुरुष	अम्रिये	अम्रियावहि	अम्रियामहि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	म्रियेत	म्रियेयाताम्	म्रियेरन्
मध्यमपुरुष	म्रियेथा.	म्रियेयाथाम्	म्रियेध्वम्
उत्तमपुरुष	म्रियेय	म्रियेवहि	म्रियेमहि

लृट्।

('लृट्' विभक्तिमे परस्मैपदी होता है।)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मरिष्यति	मरिष्यत॰	मरिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	मरिष्यसि	मरिष्यथ	मरिष्यथ
उत्तमपुरुष	मरिष्यामि	मरिष्याव	मरिष्याम.

* * * *

तुदादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

जुष् (जुषी) सेवने (आश्रये, उपभोगे): प्रीतौ च (अकर्मक)— सेवन करना; आनन्दित होना To attach oneself to, to resort to, to enjoy, to be pleased or satisfied— जुषते; जुषिष्यते । "पौलस्त्योऽजुषत शुचं विरहजन्याम्" भ० १७. ११२; "पौलस्त्योज्झितां राहुणेव चान्द्रीं न किं दशां नाकजुषो जुषन्ते ?" राघवपाण्डवीयम् १. ४८. ।

दृ (दृङ्) आदरे—आदर करना To have regard for—'आ' उपसर्गके साथही इसका प्रयोग होता है—आद्रियते; आदरिष्यते । धर्मम् आद्रियते बुधः ।

तुदादि अकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

धृ (धृङ्) अवस्थाने (जीवने)—रहना, जीता रहना To be or exist, to live, to survive—ध्रियते; धरिष्यते । "ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत् कुतः सुखम् ?" माघ० २. ३५. ।

पृ (पृङ्) व्यायामे—व्यापृत होना (मशगूल या मसरूफ होना) To be busy or active—"प्रायेणायं 'व्याङ्'-पूर्वः"—वि+आ = 'व्या'-उपसर्गके साथही प्रयुक्त होता है—व्याप्रियते; व्यापरिष्यते । धर्मे व्याप्रियते दक्षः ।

❈ वि+आ+पृ+णिच्—नियोजने, प्रवर्तने; व्यापारयति । ❈

लज्ज् (ओलज्जी) व्रीडायाम्—लजाना, शर्माना To be ashamed—लज्जते; लज्जिष्यते । "लज्जते न रमणः तव बान्धवात् ?" नै० २. ११५ ।

विज् (ओविजी) भये, चलने च—डरना, विचलित होना To fear, to be agitated—'उत्' उपसर्गके साथही प्रयुक्त होता है—उद्विजते (उद्विग्न होता है, घबराता है), उद्विजिष्यते। मनो मे संसारात् उद्विजते। 'नहि लोकापवादेभ्य सतामुद्विजते मन'।

तुदादि उभयपदी धातु ।

तुद् व्यथने—दुखाना To torment

(सकर्मक—"तुदति मर्माणि वाक्शरै" ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तुदति	तुदतः	तुदन्ति
मध्यमपुरुष	तुदसि	तुदथः	तुदथ
उत्तमपुरुष	तुदामि	तुदावः	तुदामः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	तुदतु	तुदताम्	तुदन्तु
मध्यमपुरुष	तुद	तुदतम्	तुदत
उत्तमपुरुष	तुदानि	तुदाव	तुदाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्
मध्यमपुरुष	अतुदः	अतुदतम्	अतुदत
उत्तमपुरुष	अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम

विधिलिङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः
मध्यमपुरुष	तुदेः	तुदेतम्	तुदेत
उत्तमपुरुष	तुदेयम्	तुदेव	तुदेम

लृट्।

प्रथमपुरुष	तोत्स्यति	तोत्स्यतः	तोत्स्यन्ति
मध्यमपुरुष	तोत्स्यसि	तोत्स्यथः	तोत्स्यथ
उत्तमपुरुष	तोत्स्यामि	तोत्स्यावः	तोत्स्यामः

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	तुदते	तुदेते	तुदन्ते
मध्यमपुरुष	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
उत्तमपुरुष	तुदे	तुदावहे	तुदामहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्
मध्यमपुरुष	तुदस्व	तुदेथाम्	तुदध्वम्
उत्तमपुरुष	तुदै	तुदावहै	तुदामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त
मध्यमपुरुष	अतुदथाः	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्
उत्तमपुरुष	अतुदे	अतुदावहि	अतुदामहि

विधिलिङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तुदेत	तुदेयाताम्	तुदेरन्
मध्यमपुरुष	तुदेथाः	तुदेयाथाम्	तुदेध्वम्
उत्तमपुरुष	तुदेय	तुदेवहि	तुदेमहि

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तोत्स्यते	तोत्स्येते	तोत्स्यन्ते
मध्यमपुरुष	तोत्स्यसे	तोत्स्येथे	तोत्स्यध्वे
उत्तमपुरुष	तोत्स्ये	तोत्स्यावहे	तोत्स्यामहे

* * * *

तुदादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

क्षिप् प्रेरणे (क्षेपणे)—फेंकना To throw—क्षिपति, क्षिपते, क्षेप्स्यति, क्षेप्स्यते । क्षिपति क्षिपते शर योध । *

⚜ अधि + क्षिप्—निन्दायाम्, तिरस्कारे । आ + क्षिप्—आकर्षणे, निन्दायाम्, दूषणे च । उत् + क्षिप्—उत्तोलने (उठाना) । नि + क्षिप्—क्षेपणे, अर्पणे, स्थापने च । परि + क्षिप्—वेष्टने । प्र + क्षिप्—क्षेपणे । वि + क्षिप्—विकिरणे (बिखेरना) । सम् + क्षिप्—अल्पीकरणे । ⚜

---

* जिसपर कुछ फेंका जाता है, उसमें सप्तमी वा चतुर्थी होता है, यथा—"दिशो वा क्षेप्स्यते मयि" महाभा०, "शत्रौं शस्त्रेऽक्षिपन्" र० १२ ९१ ।

-दिश् दाने, आज्ञापने च—(१) देना; (२) आज्ञा करना To give, to order—दिशति, दिशते, देक्ष्यति, देक्ष्यते । (१) "दिदेश कौत्साय समस्तमेव" र० ५. १०. (२) "दिदेश दासाय निदेशकारिणे" भ० १. ६६.। कथनेऽपि; धर्मं दिशति देशिकः ।

✤ अप+दिश्, वि+अप+दिश्—व्याजे (छल करना); कथने च। आ+दिश्—आज्ञायाम्; "मार्गमादिश"। प्रति+आ+दिश्—निराकरणे, विकारणे। उद्+दिश्—अभिप्राये। उप+दिश्—हितोक्तौ, कीर्तने च। निर्+दिश्—सूचने, कथने; अङ्गुल्या निर्दिशति। प्र+दिश्—दाने, निर्देशे च। सम्+दिश्—दाने; वार्त्ता-कथने च। ✤

-नुद् (णुद्) प्रेरणे (क्षेपणे, निरसने)—(१) चलाना; (२) दूर करना To push or drive on; to remove—नुदति, नुदते; नोत्स्यति, नोत्स्यते । (१) नुदति वाजिनं सारथिः; (२) "पापं नुदति साधूनां दर्शनं सुमहात्मनः" ।

✤ अप+नुद्—दूरीकरणे । वि+नुद्+णिच्—अपाकरणे (दूर करना); प्रीणने च (बहलाना); विनोदयति । ✤

-भ्रस्ज् पाके (भर्जने)—भूनना To fry, roast—भृज्जति, भृज्जते; भ्रक्ष्यति, भ्रक्ष्यते । भृज्जति भृज्जते मत्स्यं सूपकारः ।

-मुच् (मुच्लृ) मोक्षणे (त्यागे)—छोड़ना To leave—मुञ्चति, मुञ्चते; मोक्ष्यति, मोक्ष्यते । मुञ्चति मुञ्चते धनं दाता ।

✤ कर्मकर्तरि—मुच्यते, प्रमुच्यते (मुक्त होता है); "महापातकि-नस्तपसैव मुच्यन्ते किल्बिषात् ततः" मनु० ११. २३९.। अव+

मुच्—उन्मोचने (खोलना), अवमुञ्चति वासांसि । आ + मुच्—परिधाने, वासयुग्म् आमुञ्चति । उत् + मुच्—उन्मोचने । प्रति + मुच्—प्रत्यर्पणे ; परिधाने च । वि + मुच्—त्यागे, "बाणान् विमुञ्चति" महाभा० । ❀

लिप् लेपने—लीपना, पोतना To anoint, besmear—लिम्पति, लिम्पते, लेप्स्यति, लेप्स्यते । लिम्पति लिम्पते चन्दनेन गात्रं स्त्री । "लिम्पतीव तमोऽङ्गानि" मृच्छ० १ ३४ ।

❀ आ + लिप्, उप + लिप्, वि + लिप्—लेपने । ❀

लुप् छेदने (विनाशने)—लोप करना To break destroy—लुम्पति, लुम्पते, लोप्स्यति, लोप्स्यते । "मनुमत वचसा सखि ! लुम्पसि" नै० ४. १०८. ।

❀ लुप्—कर्मकर्तरि—लुप्त होना ; लुप्यते, "तस्य भागो न लुप्यते" मनु० ९. २११. । ❀

विद् (विद्लृ) लाभे—पाना To gain—विन्दति, विन्दते ; वेदिष्यति, वेदिष्यते, वेत्स्यति, वेत्स्यते । पुण्यात्मा विन्दते सुखम् ।

सिच् सेचने (आर्द्रीकरणे)—सींचना To sprinkle, to water—सिञ्चति, सिञ्चते ; सेक्ष्यति, सेक्ष्यते । सिञ्चति धरणीं वारिवाह॰ ।

❀ अभि + सिच्—सेचने ; राज्यादौ प्रतिष्ठापने च, अभिषिञ्चति । ❀

तुदादि अकर्मक उभयपदी धातु ।

मिल् सङ्गमे (मिलने)—मिलना (एकत्र होना, संयुक्त होना) To meet, assemble—मिलति, मिलते ; मेलिष्यति, मेलिष्यते ;

मिलिष्यति—इति मल्लिनाथ । मिलति मिलते इत्यत्र क्रमेण ।
"मिलन्ति प्रत्यह यस्य वाजिवारणमन्दद" ।



भ्वादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[तुदादिके बीचमें स्टार (*) चिह्नित जो जो साधारण सूत्र हैं, भ्वादिगणीय धातुमेंभी उन सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

२६७ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे, गम् और दाण्—यच्छ्, घ्रा—जिघ्र्, स्था—तिष्ठ्, ध्मा—धम्, पा—पिब्, गम्—गच्छ्, ऋ—ऋच्छ्, दृश्—पश्य् होता है ।

२६८ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे, ष्ठिव्—ष्ठीव्, गुह—गूह् आ + चम्—आचाम्, मस्ज्—मज्ज्, भ्रस्ज्—भृज्ज्, दन्श्—दश्, सद्—सीद्, और परस्मैपदमे क्रम्—क्राम् होता है ।

२६९ । चतुर्लकारमे भ्वादिगणीय धातुके उत्तर विहित 'अ' परे रहनेसे, धातुके अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है : यथा—(अन्त्यस्वर) जि + ति=जि + अ + ति = जे + अ + ति=जयति (उपधा लघुस्वर) शुच् + ति = शुच् + अ + ति = शोच् + अ + ति = शोचति ।

२७० । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे, लभ्—लभ्, भ्रन्श्—भ्रंश्, कृप्—कल्प्, और गुप्—गोप् होता है ।



भ्वादि।

अकर्मक परस्मैपदी धातु।

पत् (पतॢ) पतने*—गिरना To fall

(पतति पत्र वृक्षात्।—(२) धर्मभ्रंशे, "पशवश्च गृहस्थश्च तथा उत्तरा पतेद्द्विज" मनु० ८ ११।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पतति	पततः	पतन्ति
मध्यमपुरुष	पतसि	पतथः	पतथ
उत्तमपुरुष	पतामि	पतावः	पतामः

लोट्।

प्रथमपुरुष	पततु	पतताम्	पतन्तु
मध्यमपुरुष	पत	पततम्	पतत
उत्तमपुरुष	पतानि	पताव	पताम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अपतत्	अपतताम्	अपतन्
मध्यमपुरुष	अपतः	अपततम्	अपतत
उत्तमपुरुष	अपतम्	अपताव	अपताम

---

* 'पतॢ गतौ' इति धातुपाठ, पत—जाना To go—सकर्मक; यथा—[स.] पपात पथ" भा० ४ १८ (स अर्जुन पथ मार्गात् पपात जगाम इत्यर्थः)।

विधिलिङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पतेत्	पतेताम्	पतेयुः
मध्यमपुरुष	पते	पतेतम्	पतेत
उत्तमपुरुष	पतेयम्	पतेव	पतेम

लृट्।

प्रथमपुरुष	पतिष्यति	पतिष्यत	पतिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	पतिष्यसि	पतिष्यथ	पतिष्यथ
उत्तमपुरुष	पतिष्यामि	पतिष्यावः	पतिष्यामः

❖ अनु + पत्—अनुसरणे । अभि + पत्—अभिधावने, आक्रमणे च । आ + पत्—आगमने, उपस्थितौ च । उत् + पत्—उड्डयने (उड़ना)। नि + पत्—अधः पतने ; उपस्थितौ च। प्र + नि + पत्—प्रणामे ; प्रणिपतति । सम् + नि + पत्—मिलने । निर् + पत्—निर्गमे (निकलना) ; निष्पतति । ❖

हस् (हसे) हसने—हसना To laugh

(मधुरं हसति शिशुः । उपहासे—दोषदर्शनपूर्वकहासे—ठट्ठा करना—तु सकर्मक, हसन्ति साधवश्चौरम् ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हसति	हसत	हसन्ति
मध्यमपुरुष	हससि	हसथ	हसथ
उत्तमपुरुष	हसामि	हसावः	हसामः

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हसतु	हसताम्	हसन्तु
मध्यमपुरुष	हस	हसतम्	हसत
उत्तमपुरुष	हसानि	हसाव	हसाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अहसत्	अहसताम्	अहसन्
मध्यमपुरुष	अहसः	अहसतम्	अहसत
उत्तमपुरुष	अहसम्	अहसाव	अहसाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	हसेत्	हसेताम्	हसेयुः
मध्यमपुरुष	हसेः	हसेतम्	हसेत
उत्तमपुरुष	हसेयम्	हसेव	हसेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	हसिष्यति	हसिष्यतः	हसिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	हसिष्यसि	हसिष्यथः	हसिष्यथ
उत्तमपुरुष	हसिष्यामि	हसिष्यावः	हसिष्यामः

☞ अव + हस्, उप + हस्—उपहासे । परि + हस्—परिहासे ।

भू सत्तायाम्—होना To be, become

("सत्सङ्गाद्भवति हि साधुता खलानाम्" चाणक्य ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भवति	भवतः	भवन्ति
मध्यमपुरुष	भवसि	भवथः	भवथ
उत्तमपुरुष	भवामि	भवावः	भवामः

लोट्।

प्रथमपुरुष	भवतु	भवताम्	भवन्तु
मध्यमपुरुष	भव	भवतम्	भवत
उत्तमपुरुष	भवानि	भवाव	भवाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
मध्यमपुरुष	अभवः	अभवतम्	अभवत
उत्तमपुरुष	अभवम्	अभवाव	अभवाम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
मध्यमपुरुष	भवेः	भवेतम्	भवेत
उत्तमपुरुष	भवेयम्	भवेव	भवेम

लृट्।

प्रथमपुरुष	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
मध्यमपुरुष	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उत्तमपुरुष	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

पुं॰ अनु+भू—बोधे। अभि+भू—पराजये। उद्+भू—उत्पत्तौ

परा + भू—पराभवे । परि + भू—अनादरे । प्र + भू—उत्पत्तौ, सामर्थ्ये च (सकना)। वि + भू + णिच्—चिन्तायाम्, ज्ञाने प्रकाशने च विभावयति । सम् + भू—सम्भावनायाम् (मुमकिन होना), उत्पत्तौ, मिलने च । सम् + भू + णिच्—सम्मानने, चिन्तने, विवेचने च, "विगोचनं दक्षिण-नयनेन सम्भाव्य" र० ७ ८ इत्यत्र 'सम्भाव्य अलङ्कृत्य' इत्यर्थः ।

स्था (ष्ठा) गतिनिवृत्तौ (अवस्थाने)—रहना, ठहरना To stay
(तिष्ठति मातुरन्ते ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति
मध्यमपुरुष	तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ
उत्तमपुरुष	तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
मध्यमपुरुष	तिष्ठ	तिष्ठतम्	तिष्ठत
उत्तमपुरुष	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
मध्यमपुरुष	अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
उत्तमपुरुष	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	तिष्ठे	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
उत्तमपुरुष	तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति
मध्यमपुरुष	स्थास्यसि	स्थास्यथः	स्थास्यथ
उत्तमपुरुष	स्थास्यामि	स्थास्यावः	स्थास्यामः

❧ अधि + स्था—स्थितौ, पराभवे प्रभुत्वे च—(सकर्मक) "आश्रमवहिर्वृक्षमूलमधितिष्ठति" उत्तर० ४ । अनु + स्था—करणे । अव + स्था—अवस्थितौ, आत्मनेपदी, अवतिष्ठते । प्रति + अव + स्था—विरोधे, आक्षेपे, शङ्कायाम्, प्रातिकूल्ये । आ + स्था—आश्रये, "संयमे यत्नमातिष्ठेत्" मनु० २ ८८ । उत् + स्था—उत्थाने (उठना) । उप + स्था—उपस्थितौ (हाजिर होना); आत्मनेपदी; उपतिष्ठते । प्र + स्था—प्रस्थाने (चले जाना); आत्मनेपदी, प्रतिष्ठते । सम् + स्था—अवस्थाने, आत्मनेपदी, सन्तिष्ठते । ❧

अनुवाद करो—आपकी पत्रिका प्राप्त होकर (अवाप्य) मैं सुखी हुआ । अब यदि वृष्टि हो, तो प्रचुर शस्य होगा । उनका मङ्गल हो । तुमलोग चिरजीवी हो । तुम दोनों भाई यहां रहो । वे क्या घरमें थे ? जो लोग सर्वदा गुरुके पास रहते हैं, उनका कभी अमङ्गल नहीं होता । यहां और अधिक दिन नहीं रहूगा । तू मिथ्यावादी होगा, तो नरकमें गिरेगा । आंधीमें (मरुता) वृक्षसे आम गिरते हैं । ऐसी आंधीसे सब फल गिर जायेंगे । उसकी बात सुनकर (श्रुत्वा) मन हम पढे । नदुर

ऋषियोंके शापसे स्वर्गसे गिरा। अविश्वासी नहीं होना चाहिये। वह यदि चार दिन वहां रहे, तो उसका सब कार्य्य सफल होगा। दूसरेका दुःख देखकर (दृष्ट्वा) कभी हसना नहीं चाहिये। अन्धे और लङ्गड़ेका (द्वितीया) उपहास न करना। नारदको दूरसे देखकर अच्युत (कृष्ण) आसनसे उठे।

सकर्मक परस्मैपदी धातु।

गम् (गम्लृ) गतौ—जाना To go

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
मध्यमपुरुष	गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ
उत्तमपुरुष	गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः

लोट्।

प्रथमपुरुष	गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु
मध्यमपुरुष	गच्छ	गच्छतम्	गच्छत
उत्तमपुरुष	गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्
मध्यमपुरुष	अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत
उत्तमपुरुष	अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत
उत्तमपुरुष	गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम

लृट्।

प्रथमपुरुष	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ
उत्तमपुरुष	गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः

** गम् + णिच्—अवबोधने (समझाना), गमयति, "द्वौ नञौ प्रकृतार्थं गमयतः" (Two negatives make one affirmative)। अति + गम्—अतिक्रमे। अधि + गम्—प्राप्तौ, ज्ञाने च। अनु + गम्—अनुसरणे। अप + गम्—अपसरणे, दूरीभावे। अव + गम्—ज्ञाने। आ + गम्—आगमने, प्राप्तौ च। उप + आ + गम्—मिलने। उद् + गम्—उद्गमे। प्रति + उद् + गम्—प्रत्युद्गतौ, सम्मानार्थं पुरोगमने। उप + गम्—प्राप्तौ। अभि + उप + गम्—स्वीकारे। निर् + गम्—बहिर्गमने। परि + गम्—प्राप्तौ, ज्ञाने, वेष्टने च। सम् + गम्—मिलने, साधुः साधुभिः सह सङ्गच्छते; (२) योग्यतायाम्; तत्र सङ्गच्छते। **

पा पाने—पीना To drink

(पिबति पयः पान्थः।)

लट्।

प्रथमपुरुष	पिबति	पिबतः	पिबन्ति
मध्यमपुरुष	पिबसि	पिबथः	पिबथ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	पिबामि	पिबावः	पिबामः

लोट्।

प्रथमपुरुष	पिबतु	पिबताम्	पिबन्तु
मध्यमपुरुष	पिब	पिबतम्	पिबत
उत्तमपुरुष	पिबानि	पिबाव	पिबाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अपिबत्	अपिबताम्	अपिबन्
मध्यमपुरुष	अपिबः	अपिबतम्	अपिबत
उत्तमपुरुष	अपिबम्	अपिबाव	अपिबाम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	पिबेत्	पिबेताम्	पिबेयुः
मध्यमपुरुष	पिबेः	पिबेतम्	पिबेत
उत्तमपुरुष	पिबेयम्	पिबेव	पिबेम

लृट्।

प्रथमपुरुष	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
मध्यमपुरुष	पास्यसि	पास्यथः	पास्यथ
उत्तमपुरुष	पास्यामि	पास्यावः	पास्यामः

दृश् (दृशिर्) प्रेक्षणे (ज्ञाने, साक्षात्कारे)—देखना To see.
(पश्यति चन्द्रं लोकः ; "आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।"
चाणक्यः। "पशुः पश्यति गन्धेन, बुद्ध्या पश्यन्ति पण्डिताः।
राजा पश्यति कर्णाभ्यां, सूते पश्यन्ति बर्बराः॥")

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
मध्यमपुरुष	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
उत्तमपुरुष	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	पश्यतु	पश्यताम्	पश्यन्तु
मध्यमपुरुष	पश्य	पश्यतम्	पश्यत
उत्तमपुरुष	पश्यानि	पश्याव	पश्याम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्
मध्यमपुरुष	अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत
उत्तमपुरुष	अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
मध्यमपुरुष	पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
उत्तमपुरुष	पश्येयम्	पश्येव	पश्येम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
मध्यमपुरुष	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
उत्तमपुरुष	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः

अनु+दृश्—आलोकने (देखना); आलोचनायाम् । दृप,

परि, प्र, सम् + दृश् + णिच्—प्रदर्शने (दिखलाना) ; उपदर्शयति &c. ✤

अनुवाद करो—देखो, तू जा, वह भी जाय, परन्तु मै नहीं जाऊंगा । वे कल पढ़नेको (पठितुम्) गये थे ; तू गया था क्या ? यदि श्याम आवे, तो मैंभी आऊंगा । पहले इसे देखो, पीछे जल पीना । शरीरपुष्टिके लिये घृत पान करना चाहिये । कभी मद्य नहीं पीना । प्रणिधानमे क्या देखते हो ? मै शीघ्र उस देशको देखूंगा । तू जल पीयेगा क्या ?

*   *   *   *

भ्वादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

अञ्च् (अन्चु) गतौ ; पूजने च—(१) जाना , (२) पूजा (सम्मान) करना To go ; to worship (honour)—अञ्चति , अञ्चिष्यति । (१) "स्वनम्बा कथमञ्चसि ?" म० ४. २२ ; (२) "मीमोऽयं शिरसाऽञ्चति" वेणी० ६ २७ ।

अट् भ्रमणे—घूमना To wander—अटति ; अटिष्यति । महीमटति परिव्राट् ।

✤ परि + अट्—पर्य्यटने , "तीर्थानि पर्य्यटन्वा" महाभा० । ✤

अर्च् पूजायाम्—पूजा करना To adore—अर्चति ; अर्चिष्यति । "रजनुस्पोपहारेण च्छायामामर्च पादयो " र० ४. ८४. ।

अर्ज् अर्जने—कमाना To earn—अर्जति ; अर्जिष्यति । "यदृच्छ-मर्जति दाता" मै० ९ ८४ ।

अर्द् गतौ , याचने ; पीडने च—(१) जाना ; (२) मांगना ; (३) सताना, मारना To move ; to beg ; to afflict—अर्दति ; अर्दिष्यति । (२) "शरदृघन नार्दति चातकोऽपि" र० ६ १७. ।

-अर्ह् योग्यत्वे, पूजने च—(१) योग्य होना To deserve, merit; (२) पूजा करना—अर्हति; अर्हिष्यति। (१) दण्डमर्हति दुर्वृत्त:; (अर्च) अर्हति विप्रो वेदं पठितुम्।

'तुमुनन्त'-पदके साथ मध्यमपुरुषमें और कभी प्रथमपुरुषमें प्रयुक्त होनेसे, 'अर्ह्'-धातु—सृदु अनुरोध, उपदेश, वा विनीत प्रार्थना सूचित करता है, और अङ्गरेजीमें उसका अनुवाद 'Pray', 'deign', 'be pleased to', 'will be pleased to' द्वारा करना होता है यथा—"द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्!" र० ५ २५ (Pray wait &c), "नार्हसि मे प्रणय विहन्तुम्" र० ३. ६८; "तं सन्त श्रोतुमर्हन्ति" र० १. १० (Will be pleased or be good enough to listen to it)।

-अव् रक्षणे; प्रीणने च—(१) रक्षा करना, (२) प्रीत करना (खुश करना) To protect; to satisfy—अवति; अविष्यति। (१) "अवतु वो गिरिजा"; (२) "न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी" र० १ ६५।

-इ गतौ—अयति; एष्यति।

☞ उद्+इ—उदये; "उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्। वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्॥" माघ० ४ २० (अनेनैव श्लोकेन कविना 'घण्टामाघ' इति नाम लब्धमिति केचिद्वर्णयन्ति); "अभ्युदयति सुदामभ्रन पद्मिनीनाम्"; "उदयति यदि भानु पश्चिमे दिग्विभागे" इत्यदि। ☞

उक्ष् सेचने—सींचना To wet, moisten—उक्षति, उक्षिष्यति। उक्षति वृक्ष मेघ ।

अभि+उक्ष्, प्र+उक्ष्—समन्तात् वारिबिन्दुप्रक्षेपे (छिड़कना), "प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसम्" (यज्ञार्थं मन्त्रैः सम्स्कृतम् इत्यर्थः) मनु० ५ २७ ।

ऋ गतौ, प्राप्तौ च—(१) जाना, (२) पाना To go, to obtain—ऋच्छति, अरिष्यति । (२) ऋच्छति घन कुर्वी, "चण्डालपुक्कसानाञ्च ब्रह्महा योनिमृच्छति" मनु० १२ ५५ ।

ऋ+णिच्—(१) दाने, (२) स्थापने च, अर्पयति । (२) "अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः" र० ९ ७४ ।

कष् हिंसायाम् To injure, (२) घर्षणे To rub, scratch, (३) परीक्षणे (निकषोपरि घर्षणेन स्वर्णस्य)—कसौटीमें घिसकर सुवर्णकी परीक्षा करना To test, rub on a touchstone (as gold), "छद्वेन कषन्निवालसत् कषपाषाणनिभे नभस्तले" नै० २ ६९ ।

कस् गतौ—कसति, कसिष्यति ।

वि+कस्—विकासे (खिलना और विस्तृत होना—अक०) ; "विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकम्" मालती० १ २८ । वि+कस्+णिच्—To cause to expand—विकासयति, "कोषकुड्मलं व्यचीकसत्" माघ०१९ १२, "चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्" भर्तृ० । प्र+वि+कस्—प्रकाशे । निर्+कस्+णिच्—निःसारणे, निष्कासयति ।

काङ्क्ष् (काक्षि) वाञ्छायाम्—आकाङ्क्षा करना, चाहना To wish—

काङ्क्षति, काङ्क्षिष्यति। मधुरा काङ्क्षति वल्लरीम्।

॥ आ + काङ्क्ष्—आकाङ्क्षायाम्। ॥

कित् रोगापनयने (व्याधिप्रतीकारे)—इलाज करना To heal, cure—चिकित्सति, चिकित्सिष्यति।

॥ वि + कित्—संशये। ॥

कृष् आकर्षणे, विलेखने च—(१) खींचना, (२) जोतना To pull, to till—कर्षति, कर्क्ष्यति, क्रक्ष्यति। (१) कर्षन्ति तुरगा रथम्, (२) इक्षुक्षेत्रं कर्षति कृषीवलः।—(३) प्रापणे (ले जाना); द्विकर्मक, कर्षति शाखां ग्रामम्।

॥ आ + कृष्, वि + कृष्—आकर्षणे। अप + कृष्—अपसारणे (हटाना), नाशने, "धैर्यं शोकोऽपकर्षति" रामा०, (२) न्यूनी करणे च (घटाना)। उत् + कृष्—उत्तोलने, उद्धरणे (निकाल लेना, छुड़ाना), आकर्षणे, वर्द्धने च (बढ़ाना)। निर् + कृष्—बलाद्ग्रहणे, आहरणे। प्र + कृष्, उत् + कृष्—कर्मकर्त्तरि—आधिक्ये, वृद्धौ, श्रेष्ठतायाम् (अधिक होना, बढ़ना, श्रेष्ठ होना)। प्रकृष्यते, उत्कृष्यते। वि + प्र + कृष्—दूरीकरणे। ॥

क्रम् (क्रमु) पादविक्षेपे (गतौ)—कदम रखना, चलना To step, walk—क्रामति, क्राम्यति, क्रमते, क्रमिष्यति।—आक्रमणे च, "कृष्णोरगी यदा क्रामसि पुच्छदेशे" महाभा०।

॥ अति + क्रम्—(१) उल्लङ्घने (पार होना), (२) अतिवाहने (काटना), (३) अत्यये च (गुजरना—अक०), यथा—(२) आहारवेलां नातिक्रामेत्, (३) "अतिक्रामति देवार्चन-

विधिरेला" काद०। वि+अति+क्रम्—उल्लङ्घने, भङ्गे (तोड़ना); "कृच्छ्रेष्वपि न मर्य्यादां व्यतिक्रमेत्" पञ्च० १ ९९। अप+क्रम्—अपसरणे (हटना)। आ+क्रम्—आक्रमणे। उत्+क्रम्—उद्गमने, अतिक्रमे च। उप+क्रम्, प्र+क्रम्—आरम्भे, आत्मनेपदी, उपक्रमते, प्रक्रमते। निर्+क्रम्—निर्गमने निष्क्रामति। परा+क्रम्, वि+क्रम्—शौर्याविष्कारे (बहादुरी या हिम्मत दिखाना), "वकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्" मनु० ७ १०६। परि+क्रम्—इतस्ततः पादचारे (चलना फिरना)। सम्+क्रम्—प्रवेशे। ❁

खाद् भक्षणे—खाना To eat—खादति, खादिष्यति। "खादति पृष्ठमांसम्" (चुगली खाता है) हितो० १ ८२।

गद् भाषणे—कहना To say—गदति, गदिष्यति। "वेदान् गदति विस्पष्टम्"।

❁ नि+गद्—कथने। ❁

गुप् (गुपू) रक्षणे—रक्षा करना, बचाना To protect—गोपायति, गोप्स्यति, गोपिष्यति, गोपायिष्यति। "गोपायन्ति कुलस्त्रिय आत्मानम् आत्मना" महाभा०।

गै गाने (कीर्त्तने)—गाना To sing—गायति, गास्यति। गीत गायति गायन। "प्राणरक्षणाच्च न परं पुण्यजातं जगति गीयते जनैन" श्रीहर्षचरितम्।

❁ उत्+गै—उच्चगाने। परि+गै—कीर्त्तने। वि+गै—निन्दायाम्। ❁

घृष् (घृषु) घर्षणे—घिसना To rub—घर्षति; घर्षिष्यति। घर्षति

चन्दन लोक ।

घ्रा गन्धग्रहणे (आघ्राणे)—सूघना To smell—जिघ्रति ; घ्रास्यति । जिघ्रति पुष्पं लोक । "दीपनिर्वाणगन्धञ्च न जिघ्रन्ति गतायुषः" ।

❀ अव, आ, उप + घ्रा—आघ्राणे । ❀

चम् (चमु) भक्षणे—खाना, पीना To eat, to drink—चमति, चमिष्यति । "चचाम मधु माध्वीकम्" भ० १४. ९४ ।

❀ आ + चम्—आचमने, आचामति । पाने—"मण्डम् आचामति मृग" उत्तर० ४ १ । ❀

चर् गतौ (भ्रमणे), भक्षणे च—(१) विचरना, (२) खाना To travel, to eat, graze—चरति ; चरिष्यति । (१) "नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति", (२) तृणानि चरति ।—(३) आचरणे, "शम्बूको नाम तपश्चरति" उत्तर० ।

❀ अति + चर्—लङ्घने । अनु + चर्—अनुगमने, सेवायाञ्च । अभि + चर्—(१) अतिक्रमे, "पतिं या नाभिचरति" मनु० ९ १६५, (२) मारणे च, "श्येनेनाभिचरन्" । वि + अभि + चर्—अतिक्रमे, अन्यथाभावे च । आ + चर्—व्यवहारे, "जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्" मनु० २ ११०. । सम् + आ + चर्—अनुष्ठाने, करणे । उत् + चर्—उदये (उठना) ; मूत्रपुरीषोत्सर्गे ; उच्चारणे च । उत् + चर् + णिच्—उच्चारणे, उच्चारयति । उप + चर्—पूजायाम्, सेवायाम् । परि + चर्—सेवायाम् । वि + चर्—भ्रमणे (डोलना) । वि + चर् + णिच्—मीमांसायाम्, निर्णये ; विचारयति । सम् + चर्—गमने, करणकारकका प्रयोग रहनेसे

आत्मनेपदी—अदन्त सञ्चरते । ✣

चुम्ब् (चुबि) वक्त्रसंयोगे (चुम्बने)—चूमना To kiss—चुम्बति चुम्बिष्यति । चुम्बति बालं माता ।

चूष् पाने—चूसना To suck up or out—चूषति । चूषत्याम्र लोकः ।

जप् मानसे (ह्रदुच्चारे)—जप करना To repeat internally or mutter—जपति, जपिष्यति । मन्त्रं जपति साधकः ।

✣ उप+जप्—भेदे । ✣

जल्प् कथने—कहना, बात करना To speak, talk—जल्पति, जल्पिष्यति । "एकेन जल्पन्त्यनल्पाक्षरम्" पञ्च० १. १४७ ।

जि अभिभवे, उत्कर्षप्राप्तौ च—(१) जीतना, (२) जययुक्त होना (सक०) To conquer, to be supreme or pre-eminent—जयति, जेष्यति । (१) जयति शत्रुं बली, (२) "जयति रघुवंशतिलकः" महाना० १ ३ ।*

✣ निर्+जि—अभिभवे । परा+जि—पराजये, आत्मनेपदी, पराजयते । वि+जि—(१) पराभवे (सक०), (२) उत्कर्षप्राप्तौ च (अक०), आत्मनेपदी, विजयते, यथा—(१) "बन्धुमचकमन्युज विजयते" विक्र० १ ३३, (२) "भो राजन् ! विजयतां भवान्" शकु० ५ । ✣

---

* "अनभिधानादस्मात् तुबन्तौ प्रयोगाभावः, किन्तु तयोः स्थाने विबन्तौ इति । किञ्च तुप् स्थाने तातङ् दृश्यते, यथा—'भावग्रन्थलय कोऽपि जयताद्वाग्गोचरः' इति ।" इति कविकल्पद्रुमटीकाकृद्दुर्गादासः ।

तक्ष् (तक्षू) तनूकरणे (कृशीकरणे)—छीलना, काटना To pare, chop, cut off—तक्षति, तक्ष्णोति; तक्षिष्यति, तक्ष्यति। तक्षति तक्ष्णोति काष्ठं तक्षा।

तप् सन्तापे (दाहे; शोके)—सन्तापित करना (दुखाना—सक०); सन्तप्त होना (दुख पाना—अक०) To burn, to afflict; to suffer pain—तपति, तप्स्यति। "तपति तनुगात्रि! मदनस्त्वाम्" शाकु० ३. १७; "तपति न सा किसलयशयनेन" गीतगो० ७.। प्रकाशेऽपि—रविस्तपति ॥ "अर्जुनार्थं स्मरन्नेतद् यद् यत् तप्यते तपस्तपन्"—सद्विवचनम्।

❖ अनु+तप्—कर्मकर्तरि—पश्चात्तापे (अक०); अनुतप्यते। परि+तप्—परितापे, व्यथायाम् (कर्मकर्तरि), "परितप्यते मोहन पावकोद्गमि" माघ० १६. ३३.। सम्+तप्—सन्तापे (कर्मकर्तरि); "दिवाऽपि मयि निष्क्रान्ते सन्तप्येते गुरू मम" महाभा०। ❖

तॄ प्लवने (अतिक्रमणे); तरणे (प्लवनतरणयोः) च—(१) पार होना; (२)तैरना (अक०) To cross; to float—तरति; तरिष्यति। (१) तरति नदीं भेलकेन पान्थः, "तरति सकलदुःखं मानवं भावयेद्यः"; (२) तरति शुष्ककाष्ठं जले।

❖ अति+तॄ—अतिक्रमे। अव+तॄ—अवतरणे (उतरना)। उत्+तॄ, निर्+तॄ—अतिक्रमे; निस्तरति। प्र+तॄ+णिच्—वञ्चने (ठगना); प्रतारयति। वि+तॄ—दाने। सम्+तॄ—सन्तरणे (तैरना); अतिक्रमे च, "सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि" गीता. ४. ३६.। ❖

त्यज् त्यागे—छोड़ना To leave—त्यजति, त्यक्ष्यति । त्यजति दुष्टं लोकं जन ।

❋ परि + त्यज्, सम् + त्यज्—वर्जने । ❋

दंश् (दनृश्) दशने (दन्तव्यापारे)—डसना To bit—दशति, दङ्क्ष्यति । "पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्व" र० १४ ४, दशति बिम्बफलं शुकशावक ।

दह् भस्मीकरणे (दाहे, सन्तापे)—(१) जलाना, (२) दुःख देना To burn, to torment—दहति, धक्ष्यति । (१) दहत्यग्नि काष्ठम्, (२) "आत्मकृतमप्रतिहतं चापलं दहति" शाकु० ६. ।

❋ निर् + दह्—दाहे, प्रणाशे च, "एनो निर्दहत्याशु तपसा" मनु० ११ २४१ । ❋

दा (दाण्) दाने—देना To give—यच्छति; दास्यति ।

❋ प्र + दा—प्रदाने । ❋

द्रु गतौ (पलायने), द्रवीभावे च—(१) जाना, भागना, (२) पिघलना (अक०) To run, flow, fly, to melt—द्रवति, द्रोष्यति । (१) "यथा समुद्रं द्रवन्ति" गीता. ११ २८, "रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति" गीता ११ ३६, (२) "द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः" उत्तर० ६ १२ ।

❋ अनु + द्रु—अनुसरणे । उप + द्रु—अभिमुखधावने, आक्रमणे । प्र + द्रु, वि + द्रु—पलायने । ❋

धे (धेट्) पाने—पीना To drink—धयति; धास्यति । "न धारयेद्गां धयन्तीम्" मनु० ४ ५९ ।

ध्मा शब्दे (शङ्खादिवादने), अग्निसंयोगे (अग्नेरुज्ज्वलीकरणे, अग्निकुन्त्रौ) च—फूँकना, धौंकना To blow (as a wind-instrument or a fire)—धमति, ध्मास्यति । धमति शङ्खं जनः (सशब्दं करोति), "धमति सुवर्णं वणिक् (अग्निसंयुक्तं करोति); "को धमेच्छान्तस्य पावकम् ?" महाभा० ।

✤ आ + ध्मा—स्फीतौ (फूलना), दर्पाध्मातः, "आध्मातमुदरं भृशम्" सुश्रुत० । ✤

ध्यै चिन्तने—ध्यान करना To contemplate, meditate upon—ध्यायति, ध्यास्यति । ध्यायति विष्णुं वैष्णवः, "ध्यायत्यनिष्टं चेतसा" मनु० ९. २१ ।

✤ अनु + ध्यै—चिन्तायाम्, अनुग्रहे च । नि + ध्यै—स्मरणे दर्शने च, "चिरं निदध्यौ दुहतः स गोदुहः" माघ० १२ ४०. । ✤

नम् (णम्) नतौ (नमस्करणे, नम्रीभावे च)—(१) नमस्कार करना (सक०), (२) झुकना(अक०) To salute, to bend—नमति ; नंस्यति । (१) नमति गुरुं लोकः ; (२) "नमन्ति फलिनो वृक्षाः" ।

✤ अव, आ + नम्—अवनतौ । उद् + नम्—उन्नतौ । उप + नम्—उपस्थितौ । परि + नम्—परिपाके, जीर्णीभावे—"शाखान्तर्गतं परिणमन्ति न पल्लवानि" भा० ६ ३७ ; रूपान्तरीभावे च (तृतीयायोगे साथ)—"क्षीरं जलं वा स्वयमेव दधिहिमभावेन परिणमते" शारीरकभाष्यम् । वि + परि + नम्—विरूपावस्थायाम् । प्र + नम्—प्रणामे । ✤

निन्द् कुत्सायाम्—निन्दा करना To blame—निन्दति ; निन्दिष्यति ।

निन्दति दुष्ट लोक ।

पठ् पाठे (कथने)—पढ़ना To read—पठति ; पठिष्यति । पठति श्लोक धीर ।

भण् कथने—कहना To say, speak—भणति , भणिष्यति । "छिन्न-बन्धे मत्स्ये पलायिते, निर्विण्णो धीवरो भणति—धर्मो मे भविष्यतीति" विक्रमो० ।

म्ना अभ्यासे (पौन पुन्येनानुशीलने)—आवृत्ति करना, दुहराना To repeat (in the mind)—मनति , म्नास्यति । मनति मन्त्रां ब्राह्मण ।

✤ आ + मन्—आवृत्तौ ; उक्तौ च , "प्रायश्चित्त इव राजदण्डेऽप्ये-नसो निष्क्रयमाम्नन्ति धर्मशास्त्राः" महावीर० ४ । ✤

रक्ष् पालने (रक्षणे)—बचाना, हिफाजत करना To protect, take care of—रक्षति ; रक्षिष्यति । "आत्मान सततं रक्षेत्" मनु० ७. २१७ ।

लप् कथने—कहना To speak—लपति , लपिष्यति । "लपति स्निग्धया वाचा" ।

✤ अप + लप्—अपह्नवे, अस्वीकारे (इनकार करना) । अभि + लप्—कथने । आ + लप्—आलापे (बातचीत करना) । प्र + लप्—प्रलापे, अनर्थकवाक्ये (बकना) । वि + लप्—विलापे (अफसोस करना) । सम् + लप्—मिथोभाषणे । ✤

लिङ्ग् (लिगि) गतौ—लिङ्गति ; लिङ्गिष्यति ।

✤ आ + लिङ्ग्—आलिङ्गने (गले लगाना) To clasp. ✤

वद् कथने—बोलना To say—वदति, वदिष्यति । "सत्यं वदति सर्वदा"; "वद, प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते" कु० ५.४४. ।

❀ वद्+णिच्—वादने (बजाना); वादयति; "वादयते मृदु वेणुम्" गीतगो० ५ १. । अनु+वद्—अनुकरणे; पुनः कथने च । अप+वद्—निन्दायाम् । अभि+वद्+णिच्—अभिवादने, प्रणामे; "भगवन्! अभिवादये" विक्रमो० ५, "तात! प्राचेतसान्तेवासी लवोऽभिवादयते" उत्तर० ६ । परि+वद्—निन्दायाम् । प्रति+वद्—प्रतिवचने (जवाब देना) । वि+वद्—कलहे; आत्मनेपदी; विवदते । सम्+वद्—साद्रश्ये । वि+सम्+वद्—वैलक्षण्ये, विरोधे । ❀

वम् (टुवम्) उद्गिरणे (वमने)—वमकना To vomit—वमति, वमिष्यति । "फणी पीत्वा क्षीरं वमति गरलम्" ।

❀ उद्+वम्—नि:सारणे, प्रकटने । ❀

वाञ्छ् (वाछि) कामे—इच्छा करना To wish—वाञ्छति; वाञ्छिष्यति । "(धनुर्भृतस्तस्य) प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम्" भा० १. १९ ।

वृष् (वृषु) सेचने (वर्षणे)—बरसाना To rain or pour down—वर्षति; वर्षिष्यति । "वर्षतोवाश्रुजलं मम" मृच्छ० १. ३४; "काले वर्षन्तु मेघा" (प्रक०) ।

व्रज् गतौ—(१) जाना; (२) पाना To go; to attain—व्रजति; व्रजिष्यति । (१) "नाविनीतैर्व्रजेद्धुर्यैः" मनु० ४. ६७;

"इयं व्रजति यामिनी, त्यज नरेन्द्र ! निद्रारसम्" विक्रमाङ्कदेवचरितम् ११. ७४ ; (२) "व्रजति शुचिरदं त्वयि प्रीतिमान्" मा० १८. २६, "मामेकं शरणं व्रज" गीता १८ ६६ ।

❀ अनु + व्रज्—अनुगमने, समीपगतौ, आश्रये, सहवासे—"मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति" पञ्च० १. । परि + व्रज्—सन्न्यासपूर्वकभ्रमणे । प्र + व्रज्—सर्वसङ्गत्याग-पूर्वक-चतुर्थाश्रमग्रहणे । प्र + व्रज् + णिच्—प्रवासने, निर्वासने ; "चतुर्दश समा राम प्राव्राजयत" र० १२. ६. । ❀

शंस् (शन्स) कथने, स्तुतौ च—(१) कहना, (२) प्रशंसा करना To tell ; to praise—शंसति, शंसिष्यति। (१) "न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितम्" र० ३. ५ ; (२) "साधु साध्विति भूतानि शशंसुर्मारुतात्मजम्" रामा० ।

❀ आ + शंस्—कथने । प्र + शंस्—प्रशंसायाम् । ❀

शुच् शोके (इष्टवियोगादिजन्यदुःखानुभवे)—शोक करना, गम खाना To mourn—शोचति, शोचिष्यति। "न शोचति सदाचारो यो मृतानपि बान्धवान्" ।

❀ अनु + शुच्—अनुशोचने (अफसोस करना) ; "नष्टं मृतमतिक्रान्तं नानुशोचन्ति पण्डिताः" पञ्च० १. ३६३ । ❀

ष्ठिव् (ष्ठिवु) निरासे (मुखेन श्लेष्मादिवमने)—थूकना, उगालना To spit, throw out—ष्ठीवति, ष्ठेविष्यति। "पोतमिन्दुं ष्ठीवाम" भ० १२. १८. । दिवादिगणीय परस्मैपदीमी होता है ; ष्ठीव्यति । .

❀ नि + ष्ठिव्—निष्ठीवने (थूकना), निक्षेपे च । ❀

सिध् (षिधु) गत्याम्—जाना—सेधति ; सेधिष्यति ।

सिध् (षिधू) शासने ; माङ्गल्ये च—सेधति , सेत्स्यति, सेधिष्यति ।

❀ नि + सिध्, प्रति + सिध्—निवारणे (रोकना) ; निषेधति, प्रतिषेधति । ❀

सृ गतौ—चलना To go, move—सरति (वेगगमने—धावति), सरिष्यति ।

❀ अनु + सृ—अनुगमने । अप + सृ—पलायने (हटना, सरकना) । अभि + सृ—सङ्केतस्थानगमने , 'णिच्'-भी होता है । उत् + सृ + णिच्—दूरीकरणे , उत्सारयति । उप + सृ—समीपगमने । निर् + सृ—निष्क्रमणे (निकलना) ; निःसरति । प्र + सृ, वि + सृ—व्याप्तौ । सम् + सृ—देहधारणे । ❀

सृप् (सृप्लृ) गतौ—सर्पति , सर्प्स्यति, स्रप्स्यति ।

❀ अप + सृप्—अपसरणे । उत् + सृप्—ऊर्द्ध्वगमने , उद्वर्त्तने च । उप + सृप्—समीपगमने । प्र + सृप्, वि + सृप्—गमने ; विस्तारे च (फैलना) । सम् + सृप्—सङ्क्रमणे, सञ्चारे । ❀

स्कन्द् (स्कन्दिर्) गतौ , शोषणे च ।

❀ अव + स्कन्द्, आ + स्कन्द्—आक्रमणे । प्र + स्कन्द्—स्कन्दप्रदाने (कूदना), पतने च—"तस्य रेतः प्रचस्कन्द" महाभा० । स्कन्द् + णिच्—निःसारणे, विमोचने, पातने ; "एक शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् क्वचित्" मनु० २. १८०. । ❀

स्मृ चिन्तायाम् (स्मरणे)—याद करना To remember, call to mind—स्मरति ; स्मरिष्यति । हरिं स्मरति मुमूर्षुः ।

❖ वि + स्मृ—विस्मरणे (भूलना) । ❖

अनुवाद करो—नमस्यको नमस्कार करना । किसीको कटु वाक्य नहीं कहना । साधुलोग तीर्थ पर्य्यटन करते हैं । जो धर्मका (द्वितीया) आचरण करता है, छोटे बड़े सब उसका (द्वितीया) आदर करते हैं । पुत्र-शोकसे कोशल्यादेवीने विलाप किया था । शरणागतका (द्वितीया) परित्याग करना नहीं चाहिये । प्रातःकालमें प्रतिदिन (अनुदिनम्) अपना पाठ पढ़ना । ईश्वर हमारी (द्वितीया) रक्षा करेंगे । जननी पुत्रका मुख चुम्बन करती है । कभी किसीकी (द्वितीया) निन्दा करनी नहीं चाहिये । सज्जन सर्वदा गुणियोंकी (द्वितीया) प्रशंसा करते हैं । राजा दशरथने रामके लिये अत्यन्त शोक किया और अन्तमें वह मर गया ।

भ्वादि अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

इङ्ग् (इगि) गतौ (चलने, कम्पने)—चलना, हिलना To move, shake—इङ्गति ; इङ्गिष्यति । "त्वया सृष्टमिदं विश्वं यच्चेङ्गं यच्च नेङ्गति" महाभा० । "यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते" गीता ६ १९- इत्यत्र आत्मनेपदम् आर्षम् ।

एज् (एजृ) कम्पने—काँपना, विचलित होना To tremble, stir—एजति ; एजिष्यति । "स्थाणुरेषोऽयमेजति" महाभा० ।

कूज् अव्यक्तशब्दे (कूजने)—चहचहाना To make an inarticulate sound, coo, warble—कूजति, कूजिष्यति । कूजति कोकिलः, "कुजन् कूले कलहंसमण्डली" नै० १ २७ ।

क्रन्द् (क्रदि) रोदने—रोना To cry, weep—क्रन्दति, क्रन्दिष्यति । "मा पितः क्रन्द मा तात" महाभा० ।—(२) सकरणाह्वाने च

(रोकर पुकारना—सक०) To call out piteously to any-one, "क्रन्दत्यविरतं सोऽयं भ्रातृमातृसुतान्" मार्कण्डेयपुराणम्।

☞ आ + क्रन्द्—रोदने, आह्वाने च। ☞

क्रीड् विहारे (खेलने)—खेलना To play—क्रीडति, क्रीडिष्यति। क्रीडति बालः शिशुभिः।

क्रुश् रोदने; आह्वाने (चीत्कारे) च—(१) रोना, (२) चिल्लाना To weep, to cry out, yell, scream—क्रोशति; क्रोक्ष्यति। (२) "एष क्रोशति दात्यूहः" रामा०।

☞ आ + क्रुश्—(१) चीत्कारे, (२) भर्त्सने च, "शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति" मनु० ८ २६७। वि + क्रुश्—चीत्कारे, "आक्रोश विक्रोश लपाधिचण्डम्" मृच्छ० १. ४१.। ☞

क्वण् शब्दे (वीणादिरवे)—झङ्कारना To sound (indistinctly), jingle, tinkle—क्वणति, क्वणिष्यति। "क्वणन्मणिनूपुरौ"।

क्षर् स्रवणे, मोचने च—(१) बहना, झरना, टपकना, (२) बहाना, निकालना (सक०) To flow, trickle, to emit—क्षरति, क्षरिष्यति। (१) क्षरति क्षतजं भतात्, (२) "स्रोतोभिस्त्रिदशगजा मदं क्षरन्त" भा० ७ ८।

खेल् (खेलृ) क्रीडायाम्—खेलना To play—खेलति; खेलिष्यति।

"धन्यास्त्वन्या सैका धन्या
यस्या कूले कृष्णोऽखेलत्॥" छन्दोमञ्जरी।

गर्ज् शब्दे (गर्जने)—गरजना, गाजना To roar, growl; to emit a deep and thundering sound, thunder—

गर्जति ; गर्जिष्यति । गर्जति सिंह ; गर्जति वारिदपङ्क्ती ; "गर्जति शरदि न वर्षति, वर्षति वर्षासु निस्वनो मेघ" ; "शूरा न गर्जन्ति वृथा हि शूरा." शान्ता० ।

गल् स्रवणे ; पतने च—(१) झरना, (२) गिरना To ooze, to drop or fall down—गलति ; गलिष्यति । (१) "स्वयं हाराकारा गलति जलधारा कुवलयात्" (२) "प्रमोदा जगलु" म० १४ ९१ ।—(३) नाशे To vanish, "किं शास्त्र ? श्रवणेन यस्य गलति द्वैतान्धकारोदय" भामिनी० १ ८४ ।

❋ निर् + गल्—नि सरणे ; निष्कर्षे च—इति निर्गलितोऽर्थः । वि + गल्—भ्रंशे । ❋

गुञ्ज् (गुजि) अव्यक्तशब्दे (गुञ्जने)—गुन्गुनाना, भिनभिनाना To hum, buzz—गुञ्जति ; गुञ्जिष्यति । "अयि दलदरविन्द ! स्यन्दमानं मरन्दं तव किमपि लिहन्तो मञ्जु गुञ्जन्तु भृङ्गा" भामिनी० १. ४. ।

ग्लै विषादे ; श्रमे च—उदास होना ; थकना To be dejected, to be fatigued—ग्लायति ; ग्लास्यति । ग्लायति लोक शोकात् ।

चञ्च् (चचु) चलने—चलना, हिलना To move, shake—चञ्चति । "चञ्चति चञ्चन्ति वाता" छन्दोमञ्जरी ।

चल् कम्पने (अस्थैर्ये) ; गतौ च—(१) काँपना (अस्थिर होना), हिलना ; (२) जाना (सट०) To shake ; to go—चलति ; चलिष्यति । (१) "न चलति खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचित्" ;

(२) "चल सखि । कुञ्जम्" गीतगो० ६ ११ ।

❀ उत्+चल्—प्रस्थाने । प्र+चल्—गमने, कम्पे, प्रसिद्धौ च । वि+चल्—कम्प, क्षोभे, भ्रमे च । ❀

च्युत् (च्युतिर्) क्षरणे (स्खलने च)—चूना, गिरना To trickle, to slip—च्योतति ; च्योतिष्यति ।

जीव् प्राणधारणे (जीवने)—जीता रहना To live—जीवति ; जीविष्यति । "त्वयि जीवति जीवामि" ।—(२) जीविकानिर्वाहे (गुज़रान करना To subsist on) ; "त्वाहारात् किञ्चिदुद्धृत्य ददाति, तेनासौ जीवति" हितो० ।

> "चौरा प्रमत्ते जीवन्ति, व्याधितेषु चिकित्सका॰ ।
> प्रमदा॰ कामयानेषु, यजमानेषु याचका॰ ।
> राजा विवदमानेषु, नित्यं मूर्खेषु पण्डिता ॥" महाभा० ।

❀ अनु+जीव्, उप+जीव्—आश्रये । उत्+जीव्—पुनर्जीवने । सम्+जीव्—जीवने । ❀

ज्वर् रोगे—रोगग्रस्त होना, बीमार होना, ज्वरयुक्त होना To be diseased, to be feverish—ज्वरति ; ज्वरिष्यति । "एतस्मिन् भाग्निराऽऽर्त शरीरेषु ज्वरस्त्वथ । त्वयमेव ज्वरामीति मन्यते हि कुटुम्बिवत् ॥" पञ्चदशी ७ ३२ ।

ज्वल् दीप्तौ (ज्वलने)—जलना To shine, blaze—ज्वलति ; ज्वलिष्यति । ज्वलति वह्निः ।—शब्दे, "विभिदमंगुरुं ज्वलति" रघु० ८ १७ ।

❀ उत्+ज्वल्, प्र+ज्वल्—दीप्तौ । ❀

दल् भेदे—फटना To crack—दलति, दलिष्यति। "दलति न सा हृदि विरहभरेण" गीतगो० ७ ३९ ।—(२)विकासे (खिलना) To bloom, "दलन्नवनीलोत्पलश्यामल देहसौभाग्यम्" उत्तर० १ ।

ध्वन् रवे—ध्वनि करना, बजना To sound—ध्वनति, ध्वनिष्यति। "अथ धीर धीर ध्वनति नवनीलो जलधर" भामिनी० १ ९९, ध्वनति मृदङ्ग ।

नट् नर्तने—नाचना To dance—नटति।

॰ नट्+णिच्—नटयति, "तत् त्वा पुन पलितवर्णकभाजमेन माल्येन केन नटयिष्यति दीर्घमायु" (इत्यात्मान प्रति कञ्चुकी-वाक्यम्) अनर्घ० ३ १ ।

नद् (णद्) शब्दे—नाद करना To sound—नदति। नदति घण्टा। "नवाम्बुमत्ता शिखिनो नदन्ति" घटकर्पर २ ।

नन्द् (टुनदि) हर्षे—खुश होना To be glad—नन्दति, नन्दिष्यति। "ननन्द पश्यन्नुपसीम स स्थली" मा० ४ २ ।

॰ अभि+नन्द्—सत्कारे, प्रशसायाम्, अनुमोदने, कामनायाञ्च । आ+नन्द्—आनन्दे । प्रति+नन्द्—संवर्द्धने, सम्मानने। ॰

फल् निष्पत्तौ (पूर्तौ)—फलना, सफल होना To be fruitful—फलति, फलिष्यति। "भाग्यं फलति सर्वत्र" ।—(२) निष्पादने (सक०) To accomplish, "फलन्ति विविधश्रेयासि मर्त्यानय" मुद्रा० २ १६, "वाल्मीकि फलति स्म दिव्या गिर" अनर्घ० १ ८ ।

✤ प्रति + फल्—प्रतिबिम्बने । ✤

फुल्ल् विकसने—फूलना To bloom, expand—फुल्लति । फुल्लति मल्लीकलिका ।

भ्रम् चलने (भ्रमणे)—घूमना To rove, ramble—भ्रमति ; भ्रमिष्यति । "भ्रमति भुवने कन्दर्पाज्ञा" मालती० १ ३० । क्वचित् सकर्मकोऽपि, "दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानस ! चापलेन" भर्तृ० ; भिक्षां भ्रमति ।

✤ उत् + भ्रम्—परिभ्रमणे । ✤

मील् निमेषे (सङ्कोचे)—मुँद जाना, सकुचना To be closed or shut (as eyes or flowers)—मीलति, मीलिष्यति । मीलति चक्षु (स्वप्नमिच्छति स्यात्), "मीलन्ति रिपुनारीणां मुखपङ्कजानि च" ।

✤ उत् + मील्—उन्मेषे, विकासे । नि + मील्—मुद्रणे । ✤

मूर्च्छ् (मूर्च्छा) मोहे (ज्ञानहीनभावे) ; वृद्धौ च—(१) बेहोश होना, (२) बढ़ना To faint or swoon ; to increase—मूर्च्छति, मूर्च्छिष्यति । (१) मूर्च्छति रोगी ; (२) "मुमूर्च्छ सख्यं रामस्य" र० १२. ५७ ।

म्लै कान्तिक्षये—मलिन होना To fade—म्लायति ; म्लास्यति । म्लायति चन्द्रो दिवसे । "धनोष्मणा म्लायदलं म्लेव मनस्विता" श्रीहर्षचरितम् ।

यम् उपरमे (निवृत्तौ)—परहेज़ करना To abstain from—यच्छति ; यंस्यति । यच्छति पापात् साधुः ।—(२) निग्रहे च

(सक०) To control, "धियं यच्छ च बुद्धिमाशिषि" विवेकचूडामणि ३७० ।

❀ आ + यम्—दीर्घीकरणे । उत् + यम्—उत्तोलने ; उद्योगे च । उप + यम्—विवाहे, स्वीकारे च । सब आत्मनेपदी, यथा—आयच्छते, उद्यच्छते, उपयच्छते। नि + यम्—दमने, निवारणे, शासने, व्यवस्थापने। प्र + यम्—दाने। सम् + यम्—नियमने, बन्धने च।❀

रम् शब्दे—आवाज करना To roar, to sound—रसति, रसिष्यति । "कांव यस्य ररयं रराम" र० १६ ७८ ; "राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोदुन्दुभि" वेणी० १. २६ ; "रसनु रसना" गीतगो० १० ६. ।

रुह् जन्मे—उत्पन्न होना To grow—रोहति, रोक्ष्यति । "छिन्नोऽपि रोहति तरु" भर्तृ० ।

❀ रुह् + णिच्—रोपणे (रोपना, बोना) ; रोपयति । अधि + रुह्, आ + रुह्—पारोहणे (चढ़ना—सक०) ; "मूर्द्धानमधिरोहति" माघ० २. ४६, "सिंहासनमारुरोह" काद० । अव + रुह्—अवतरणे (उतरना) । प्र + रुह्, वि + रुह्, सम् + रुह्—उत्पत्तौ; "न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति" मृच्छ० ४ १७ । वि + रुह् + णिच्—व्रणप्रशमने (घाव आराम करना) To heal (as a wound) ; व्रण विरोपयति । ❀

रुग् (लग्) सङ्गे—लगना To adhere or stick to—लगति ; लगिष्यति । ओष्ठेऽधरो लगति, "हृदयस्य पञ्चाल्लगति स्म" नै० ३. ८ ।

लट् विलासे (क्रीडायाम्)—खेलना To play, sport—लटति ।
ड लयोरक्यस्मरणात्—ललति । "पनसफलानीव वानरा ललन्ति" मृच्छ० ८ ८ ; "गजकलभा इव बन्धुला ललाम" मृच्छ० ४ २८ ।

लस् दीप्तौ—चमकना To shine, glitter—लसति , लसिष्यति । "मुक्ताहारेण लसता हसतीव स्तनद्वयम्" काव्यप्रकाश १० , "भव मसृणवाणि ! करवाणि चरणद्वय सरसलसदलक्तकरागम्" गीतगो० १० ७ , "रौप्य लसद्बिम्बमिवेन्दुबिम्बम्" नै० २२ ५३ ।

✤ उत्+लस्—स्फुरणे । वि+लस्—प्रकाशे , क्रीडायाञ्च । ✤

वल्ग् गतौ (चलने , प्लुतगतौ)—(१) हिलना, (२) कूदना, झपटना, सरपट जाना To move, shake , to bounce, go by leaps, gallop—वल्गति , वल्गिष्यति । (१) "वल्गद्गुरीय-स्तनकम्प्रकञ्चुकम्" माघ० १२ २० , (२) "ववल्गुश्च पदातय" भ० १४ १ , "वल्गु वल्गन्ति सूक्तय" पञ्च० १ ६६ , "विद्या-सद्मविनिर्गलत्कणमुषो वल्गन्ति चेत् पामरा" (सगर्वं विचरन्ति इत्यर्थ) भामिनी० १ ७१ ।—(३) नर्तने (नाचना) To dance, prance ; "द्वारे हेमविभूषणाश्च तुरगा वल्गन्ति यद् दर्पिता" भर्तृ० , "कबन्धारूढो विभ्ये वल्गत सांमिपाने" माघ० १८ ५३ ।

वस् निवासे—बसना, रहना To reside, stay—वसति , वत्स्यति । "वसति वने वनमाली" गीतगो० ५ ८ , "वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि" मा० ८ ३७ ।

✤ अधि+वस्, आ+वस्—वासे (सक०) । उप+वस्—

उपवासे, भोजननिवृत्तौ, "धूकादर्शोऽनुपवसन्ति निम्नमक्षा" । नि+वस्—निवासे । निर्+वस्+णिच्—निर्वासने, नगराद्बहिष्करणे (निकाल देना), निर्वासयति । प्र+वस्—विदेशावस्थाने । प्र+वस्+णिच्, वि+वस्+णिच्—निर्वासने । प्रति+वस्—निवासे । ❀

वेल्ल् कम्पने—हिलना, चलना To shake, move about—वेल्लति, वेल्लिष्यति । "उद्वेल्लन्ति पुराणचन्दनतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसा" उत्तर० २. २९ ।

श्च्युत् (श्चुतिर्) क्षरणे—टपकना To trickle—श्च्योतति, श्च्योतिष्यति । "मधुनो धारा श्च्योतन्ति" उत्तर० ३ ३४ ।

सञ्ज् (षञ्ज्) सङ्गे (संश्लेषे)—चिपटना To stick or adhere to—सजति, सङ्क्ष्यति । "सजति वपुषि वासः" ।

❀ अनु+सञ्ज्—सम्बन्धे, आसक्तौ (कर्मकर्तरि), अनुषज्यते; "धर्मपूते च मनसि नभसीव न जातु रजोऽनुषज्यते" दशकु० । अव+सञ्ज्, आ+सञ्ज्—योजने, स्थापने । प्र+सञ्ज्—आसक्तौ; "प्रसजन्निन्द्रियार्थेषु नरः पतनमृच्छति", कर्मकर्तरि—प्रसक्ते, सम्बन्धे—प्रसज्यते । ❀

सद् (षद्ऌ) विषादे (आकुलीभावे)—उदास होना To be dejected or low-spirited—सीदति; सत्स्यति । "सीदति राधा वासगृहे" गीतगो० ६ २ ।—उपवेशने, नाशे; क्लेशे; क्लान्तौ च ।

❀ अव+सद्—भ्रान्तौ; विनाशे च । आ+सद्—सन्निकर्षे

(नजदीक आना)। उत्+सद्—नाशे। उत्+सद्+णिच्—उन्मूलने, उत्सादयति। उप+सद्—समीपगतौ। नि+सद्—उपवेशने, "उष्णालु शिशिरे निषीदति तरोर्मूलालवाले शिखी" विक्रमो० २ २३.। प्र+सद्—अनुग्रहे, प्रसन्नतायाम् (खुश होना), निर्मलीभावे च (साफ होना)। वि+सद्—विषादे; विषीदति। भ्वा०

स्खल् सञ्चलने (स्खलने, भये)—खिसलना, फिसलना, रपटना To stumble, slip—स्खलति, स्खलिष्यति। "स्खलति चरणं भूमौ" मृच्छ० ९ १३, स्खलति पत्र वृक्षस्य।

स्रु क्षरणे—बहना, झरना To flow, ooze—स्रवति, स्रोष्यति। "न हि निम्बात् स्रवेत् क्षौद्रम्" रामा०।

स्वन् शब्दे—शब्द करना To sound, to hum (as a bee)—स्वनति। "वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः" अमरकोष।

ह्रस् अल्पीभावे—घटना To become small or diminished or lessened—ह्रसति, ह्रसिष्यति। "आयुर्ह्रसति पादशः" मनु० १ ८३।

अनुवाद करो—राजा दशरथ कैकेयीके उस कठोर वाक्यसे मूर्च्छित हुआ। इस वर्ष दुर्भिक्षके कारण हम अतिकष्टसे जीते हैं। सर्वदा साधुके सङ्गमे वास करना चाहिये। इस स्थानमे प्रतिदिन लड़के खेलते हैं। तुम्हारे व्यवहारसे वे सर्वदा सन्तप्त होते हैं। वहां बहुत आमके पेड़ उगे थे। मेरी बातसे वे हसेंगे, परन्तु मेरा चित्त उससे कुछभी विचलित नहीं होगा। मै इस गांवमे और नहीं बसूंगा।

भ्वादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

लभ् (डुलभष्) प्राप्तौ—पाना To gain

(लभते धार्मिक सुखम् ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	लभते	लभेते	लभन्ते
मध्यमपुरुष	लभसे	लभेथे	लभध्वे
उत्तमपुरुष	लभे	लभावहे	लभामहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
मध्यमपुरुष	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उत्तमपुरुष	लभै	लभावहै	लभामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अलभत	अलभेताम्	अलभन्त
मध्यमपुरुष	अलभथा	अलभेथाम्	अलभध्वम्
उत्तमपुरुष	अलभे	अलभावहि	अलभामहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्
मध्यमपुरुष	लभेथा	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
उत्तमपुरुष	लभेय	लभेवहि	लभेमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उत्तमपुरुष	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

❀ आ + लभ्—प्राप्तौ, स्पर्शे, हिंसायाञ्च । उप + आ + लभ्—भर्त्सने । उप + लभ्—प्राप्तौ, अनुभवे, ज्ञाने च । वि + प्र + लभ्—प्रतारणायाम् । ❀

* * * *

भ्वादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

अय् गतौ—अयते, अयिष्यते ।

❀ प्र, परा + अय्—पलायने (भागना), प्लायते, पलायते । ❀

ईक्ष् दर्शने—देखना To see—ईक्षते, ईक्षिष्यते । ईक्षते चन्द्रं लोकः ।

—(२) पर्य्यालोचने (सोचना, विचारना) To consider ; "न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते" कु० ५ ८२ ।

❀ अप + ईक्ष्—अपेक्षायाम् (ठहरना) । अव + ईक्ष्—परिदर्शने ; आलोचनायाञ्च । उप + ईक्ष्—अवज्ञायाम् । निर् + ईक्ष्—निरीक्षणे (देखना) । परि + ईक्ष्—परीक्षायाम् । प्र + ईक्ष्—दर्शने । उत् + प्र + ईक्ष्—उत्प्रेक्षणे, सम्भावने (ख़्याल करना To guess) । प्रति + ईक्ष्—प्रतीक्षायाम् । वि + ईक्ष्—दर्शने । सम् + ईक्ष्—परिदर्शने ।

ऊह् वितर्के (अध्याहारे ; सम्भावने)—(सन्देहाद्विचारो वितर्कः)-विचार करना, अनुमान करना To conjecture, infer—ऊहते ; ऊहिष्यते । "ऊहते धर्मं धीरः" । "अनुक्तमप्यूहति

यजिङतो जन" पञ्च० १. ४४—इत्यत्र परस्मैपदं दृश्यते ।

❀ अप+ऊह—अपनोदने, "हुङ्कारेणैव धनुषः स हि विघ्नान-पोहति" शकु० ३ १. । ("उपसर्गादात्मनेपदं वेति वक्तव्यम्"—उपसर्गके योगसे विकल्पसे आत्मनेपदी होता है) । वि+अप+ऊह्—विनाशे; "आदित्यस्तमो व्यपोहति" महाभा० । प्रति+ऊह्—विघाते । वि+ऊह्—रचनायाम्, विन्यासे । सम्+ऊह्—समाहारे, एकत्रीकरणे । ❀

कत्थ् श्लाघायाम् (आत्मगुणाविष्करणे)—प्रशंसा करना, गर्व करना (अक०) To praise; to boast—कत्थते, कत्थिष्यते । 'कत्थते गुणिनं गुणी", "य स्वनेनापि आत्मीयं गुणं कुत्रापि कत्थते" । "हत्वा कत्थिष्यते न क ?" म० १६. ४. ।

❀ वि+कत्थ्—विकत्थने, श्लाघायाम्, मिथ्यागुणख्यापने (शेखी करना To vaunt) ।

कम् (कमु) वाञ्छायाम्—कामना करना To long for, wish—कामयते; कामयिष्यते । "चेतोमन्त्कुमयते मदीयम्" नै० ३ ६७ ।

क्षम् (क्षमूष्) सहने (क्षमायाम्, शक्तौ च)—(१) सहना, क्षमा करना, (२) सकना (अक०) To forgive, to endure, to be competent or able (to do anything)—क्षमते; क्षमिष्यते, क्षंस्यते । (१) "क्षमस्व परमेश्वर!"; "नात्मा-नुगतान् राज्ञा क्षमेत स्वसुतानपि" हितो० २ १०७, (२) "को रे क्षालयितुं क्षमेत क्षतातमन्यक्षजन्मनि नम ?" नाग० १. ३८. ।

गर्ह् कुत्सायाम्—निन्दा करना To blame, censure—गर्हते ; गर्हिष्यते ।

ॐ वि + गर्ह्—निन्दायाम् । ॐ

गाह् (गाहू) विलोडने (प्रवेशे ; प्राप्तौ च)—(१) आलोड़न करना, (२) घुसना, (३) प्राप्त होना To dive or plunge into, to enter deeply into—गाहते ; गाहिष्यते, घाक्ष्यते । (१) "गाहन्तां महिषा निपानसलिलम्" शाकु० २. ४२ ; "गाहते शाखनत्पर्यम्" ; (२) "कदाचित् काननं जगाहे" काद० ; (३) "मनस्तु मे संशयमेव गाहते" कु० ५. ४६. ।

ॐ अव + गाह्—निमज्जने, स्नाने, प्रवेशे च ; "तनोऽवहन्ती तमसां वगाह्य" र० १४. ७६ । वि + गाह्—निमज्जने ; प्रवेशे ; विलोडने च । ॐ

ग्रस् (ग्रस) अदने—खाना To swallow, devour—ग्रसते ; ग्रसिष्यते । "यावतो ग्रसते ग्रासान्" मनु० ३. १३३. ।—(२) आक्रमणे To seize ; to eclipse ; "हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्न स्फुट फलम्" माघ० २. ४९ ।

ढौक् (ढौकृ) गतौ—जाना To go, approach, "यान्तं वने रात्रिचरी डुढौके" भ० २. २३. ।

ॐ ढौक् + णिच्—प्रापणे (ले जाना), "तन्मांसञ्च गोमायोस्तैः क्षणादाशु ढौकितम्" महाभा० । उप + ढौक्—उपढौकने, उपहारे (उपहार देना, नजर करना) ; "एकैक पशुमुपढौकयाम " पञ्च० १. । ॐ

त्रै* (त्रैङ्) पालने (रक्षणे)—त्राण करना To protect, defend from—त्रायते, त्रास्यते। "क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्र क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ" र० २. ५३।

ॐ परि + त्रै—परित्राणे (रक्षणे)। ॐ

दय् अनुकम्पायाम्—दया करना To pity—दयते, दयिष्यते। दयते दीन दयालु, "तेषां दयसे न कस्मात्?" भ० २ ३३ (अत्र कर्मणि षष्ठी)।

नाथ् (नाधृ) याचने—प्रार्थना करना To beg—नाथते, नाथिष्यते। "मोक्षाय नाथते मुनि", "नाथसे किमु पति न भूभृत?" मा० १३. ६९। "सन्तुष्टमिष्टानि तमिष्टदेव नाथन्ति के नाम न लोकनाथम्?" नै० ३. २५—इत्यत्र परस्मैपदमपि।

पण् व्यवहारे (क्रयविक्रयरूपे वाणिज्ये)—खरीद व फ़रोख्त करना To buy and sell—पणते, पणिष्यते।—द्यूतक्रीडाया ग्लहस्थापने (बाजी लगाना To bet or stake at play), जिस वस्तुका पण रखा जाता है, उसमे षष्ठी, और कहीं द्वितीयाभी होती है, "प्राणानामपणिष्टासौ" भ० ८ १२१, "पणस्व कृष्णा पाञ्चालीम्" महाभा०।

ॐ वि + पण्—विक्रये, "आभीरदेशे किल चन्द्रकान्त त्रिभिर्वराटैर्विपणन्ति गोपा" सुभाषितम्। ॐ

बाध् (बाधृ) पीडने; प्रतिबन्धे च—(१) दुख देना, (२) रोकना

---

* शिष्टप्रयोगमे अदादिगणीय 'त्रा'-धातुभी है; यथा—"त्राहि मा मधुसूदन!"।

To torment; to obstruct—बाधते; बाधिष्यते। (१) "मा बाधते न हि तथा विपिनेषु वाम" महाना० ३ ३७; "न तथा बाधते स्कन्धो यथा 'बाधति' बाधते"; (२) "वीराणां समय स्नेहक्रम बाधते" उत्तर० ६ ११।

✽ आ + बाध्—दमने। प्र + बाध्—परिपीडने। ✽

भाष् कथने—भाषण करना To speak—भाषते, भाषिष्यते। द्विकर्मक—"तं वाक्यमिदं बभाषे"।

✽ अप + भाष्—निन्दायाम्, "न केवलं यो महतोऽपभाषते, शृणोति तस्मादपि य स पापभाक्" कु० ५ ८३। आ + भाष्—आलापे, कथने। प्रति + भाष्—प्रत्युक्तौ। सम् + भाष्—सम्भाषणे। ✽

भिक्ष् याचने—माङ्गना To beg—भिक्षते; भिक्षिष्यते। द्विकर्मक—भिक्षते दातारं धनं भिक्षु।

रभ्—आ + रभ्—आरम्भे To begin—आरभते, आरप्स्यते। शास्त्रं पठितुम् आरभते शिष्य।

✽ परि + रभ्—आलिङ्गने। सम् + रभ्—कोपे। ✽

लोक् (लोकृ) दर्शने—देखना To behold—लोकते; लोकिष्यते।

✽ अव + लोक्, आ + लोक्, वि + लोक्—दर्शने। ✽

वन्द् (वदि) अभिवादने, स्तुतौ च—नमस्कार करना; स्तव करना To salute; to extol—वन्दते; वन्दिष्यते। वन्दते गुरुं लोक।

वेष्ट् वेष्टने—घेरना, लपेटना To surround, envelop; to wind or twist round—वेष्टते।—णिजन्तभी इसी अर्थमें प्रयुक्त

होता है ; वेष्टयति, "शीघ्रात्मा वेष्टयित्वैनं [illegible] गजो हन्तुमैहत । कर-वेष्ट भीमसेनो भ्रम दत्त्वा व्यमोचयत् ॥" महाभा० ।

❀ णिजन्त आ + वेष्ट् और परि + वेष्ट् भी एकार्थक। सम् + वेष्ट् + णिच्—लपेट् करना To fold , "संवेष्टितप्रसारितपटन्यायेनैवानन्यत् कारणात् कार्य्यम्" शारीरकभाष्यम् । ❀

शङ्क् (शकि) संशये, त्रासे च—(१) शङ्का करना, सन्देह करना , (२) डरना (अक०) To doubt, to fear—शङ्कते, शङ्किष्यते । (१) शङ्कते पुरुषत्वं स्थाणौ (स्थाणुर्वा पुरुषो वा इति संशयमारोपयतीत्यर्थः) , (२) शङ्कते व्याघ्रात् ।

❀ आ + शङ्क्—सन्देह । ❀

शंस् (शंसि) इच्छायाम् ; आशिषि (इष्टार्थशंसने) च—(१) चाहना; (२) आशीर्वाद करना To hope for , to bless—नित्यम् 'आङ्'-योग —आ + शंस्—आशंसते , आशंसिष्यते । (१) "मनोरथाय नाशंसे" शकु० ७ १३ , (२) "इत्याशशंसे करणैरबाह्यैः" र० १४ ५० ।

शिक्ष् विद्योपादाने (शिक्षणे)—सीखना To learn—शिक्षते शिक्षिष्यते । "अशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवित्" र० ३ ३१. ।

श्लाघ् (श्लाघृ) कत्थने (प्रशंसायाम्)—सराहना To commend—श्लाघते , श्लाघिष्यते । "श्लाघते गुणिनं गुणी" ।

"गुण दोषौ बुधो गृह्णन् , इन्दु-क्ष्वेडाविवेश्वरः ।
शिरसा श्लाघते पूर्वं, परं कण्ठे नियच्छति ॥"

सह् (षह्) सहने , क्षमायाञ्च—(१) सहना ; (२) क्षमा करना

To endure, to forgive—सहते, सहिष्यते । (१) सहते दुःख सज्जनः, (२) "अपराधमिमं ततः सहिष्ये" शकु० ३ ।—(३) शक्तौ (सकना), "सहना च शास्त्रग्रन्थ उपाय तत् (दुःखत्रयम्) उच्छेत्तुम्" साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी १ ।

॥ उत्+सह्—उत्साहे, सामर्थ्ये (सकना) Expressed by 'can'—dare, venture, "तथानुवृत्तिं न च कर्तुमुत्सहे" कु० ६ ६५ । ॥

सेव् आराधने, उपभोगे, आश्रये च—सेवा करना To worship, to enjoy, to resort to—सेवते, सेविष्यते । विष्णुं सेवते—घृतं सेवते—तीर्थं सेवते साधुः ।

॥ आ+सेव्—उपभोगे । नि+सेव्—आश्रये, उपभोगे च, निषेवते । ॥

स्वञ्ज् (ष्वञ्ज्) आलिङ्गने—गले लगाना, बगलगीरी करना To embrace—स्वजते, स्वङ्क्ष्यते । स्वजते तनयं माता ।

॥ परि+स्वञ्ज्—आलिङ्गने, परिष्वजते । ॥

स्वद् (ष्वद्) आस्वादने (अनुभवे), रुचौ च—(१) चखना, (२) रुचना (अक०) To taste, relish; to be pleasant to the taste—स्वदते; स्वदिष्यते । (१) स्वदस्व हव्यानि, "स्वदते विविधं स्वादु", (२) "अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा" नै० ३ ९३ ।

अनुवाद करो—कभी सत्कार्य्यमें बाधा मत डालो । सर्वांग करणसे गुरुजनोंकी (द्वितीया) सेवा करूंगा । अपव्यवहारसे उनको पीड़ा देना उचित

नहीं। जो दुःखीपर दया करता है, ईश्वर उसका सहाय। सद्विषय बालकके पासभी सीखना। शिक्षक सर्वदा हमारा मङ्गल चाहते हैं। आज तुम्हारी परीक्षा करूंगा। दीनका (द्वितीया) त्राण करो, नहीं तो ईश्वर तुम्हारा (द्वितीया) त्राण नहीं करेंगे। साधुपुरुष जब जिस कार्य्यका (द्वितीया) आरम्भ करते हैं, प्राणान्तमेंभी (प्राणात्ययेऽपि) उसे नहीं छोड़ते। मैं तेरे शत अपराध क्षमा करूंगा। पिता पुत्रका (द्वितीया) आलिङ्गन करता है। राम मेरी (द्वितीया) प्रतीक्षा कर रहा है।

भ्वादि अकर्मक आत्मनेपदी धातु।

ईह् वाञ्छायाम्, चेष्टने च—(१) इच्छा करना, सक०, (२) यत्न करना, कोशिश करना To wish, to endeavour—ईहते ईहिष्यते। (१) "ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्" गीता १६ १२, (२) माधुर्य्यं मधुबिन्दुना रचयितु क्षाराम्बुधेरीहते" भर्तृ०।

🙞 सम्+ईह्—"सर्वे स्वार्थं समीहते" माघ० २ ६९। 🙞

एध् वृद्धौ—बढ़ना To increase, to prosper—एधते, एधिष्यते। "हिंसारतश्च यो नित्य नेहासौ सुखमेधते" मनु० ४ १७०, "अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति। ततः सपत्नान् जयति, समूलस्तु विनश्यति।" मनु० ४ १७४।

कण्ठ् (कठि) शोके (उत्कण्ठायाम्, औत्सुक्ये)—शोक इह आध्यानम् (उत्कण्ठापूर्वकस्मरणम्)—उत्कण्ठित होना, उत्सुक होना To be anxious for, yearn, long for, be eagerly desirous of, remember with regret—'उत' उपसर्ग-

के साथ प्रयुक्त होता है—उत्कण्ठते, उत्कण्ठिष्यते। "स्वर्गाय नो त्कण्ठते" विक्रमो० ३ ४, "उत्कण्ठते च युष्मत्सन्निकर्षस्य" उत्त०
६, "रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते"।

कम्प् (कपि) चलने (कम्पने)—काँपना To shake—कम्पते; कम्पिष्यते। कम्पते वायुना वृक्षः।

❀ अनु+कम्प्—कृपायाम्। सम्+अनु+कम्प्—अनुमोदे। उत्, प्र, वि+कम्प्—प्रकम्पने। ❀

काश् (काशृ) दीप्तौ (प्रकाशे)—चमकना To shine—काशते; काशिष्यते। काशते चन्द्रः।

❀ प्र+काश्—प्रकाशे। प्र+काश्+णिच्—प्रकाशने (उजाला करना); प्रकाशयति, "प्रकाशयति लोकं रविः" गीता १३ ३३। वि+काश्—विकाशे। ❀

कृप् (कृपू) सामर्थ्ये; योग्यतायाम—(१) समर्थ होना, (२) योग्य होना To serve, to be able, to be fit or adequate for—कल्पते, कल्पिष्यते, कल्प्स्यते। (१) "सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा" र० ५ १३; (२) "प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते" र० ८ ४१।

❀ अव+कृप्—औचित्ये। उप+कृप्—विन्यासे, सम्पादनायाम्। वि+कृप्—सन्देहे। ❀

गल्भ् धार्ष्ट्ये (प्रगल्भतायाम्, औद्धत्ये, साहसे) उद्धत होना, साहसी होना To be bold or confident—गल्भते। प्रायः 'प्र' उपसर्ग के साथ प्रयुक्त होता है, "न मौक्तिकच्छिद्रकरी शलाका

प्रगल्भन्ते कर्मणि टङ्किकाया" विक्रमाङ्कदेवचरितम् १ १६, "अति हि नाम प्रगल्भसे" उत्तर० ८ ।—सामर्थ्य ('सकना' इस अर्थमें) 'तुमुनन्त'-पदके साथ व्यवहृत होता है ।

घट् चेष्टायाम् (यत्ने), आपतने, निष्पत्तौ, योग्यतायाञ्च—(१) व्याप्त होना, (२) आ पड़ना, सिद्ध होना, (३) सम्भव होना, योग्य होना To be busy with or strive after, to happen, to be possible—घटते, घटिष्यते। (१) घटते पठितु शिष्य, (२) "कृत्य घटेत सहदो यदि" मालती० १ ९, (३) "तथाऽपि पुविशेषत्वाद्घटतेऽस्य नियन्तृता" पञ्चदशी ६ १०६ ।

✤ घट् + णिच्—संयोजने, सम्पादने, करणे, नियोगे च, घटयति। वि + घट्—विश्लेषे, भेद। ✤

घूर्ण् भ्रमणे (घूर्णने)—घूमना To roll about, whirl—घूर्णते, घूर्णिष्यते। तुदादि परस्मैपदीभी होता है—वोपदेवमते उभयपदी। "नौर्घूर्णते चपलेव स्त्री" घूर्णते शिर, "घूर्णतीव मे मन" महाभा० ।

✤ आ + घूर्ण्—चक्रवद्भ्रमणे। ✤

चेष्ट् यत्ने, व्यापारे च—(१) यत्न करना, (२) काममें लगे रहना To endeavour, to be active—चेष्टते, चेष्टिष्यते। (१) चेष्टते पठितु शिष्य, "वृत्रस्य नातिचेष्टेत" हितो० १ १८८, (२) "सदृश चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि" गीता ३ ३३ । "त शोणितपरीताङ्ग चेष्टमान महीतले" इत्यत्र तु लुप्तार्थ-

(लोटना)।

✤ वि+चेष्ट्—लुठने, परिस्पन्दने, अङ्गपरिवर्त्तने। ✤

च्यु (च्युङ्) पतने (च्युतौ, भ्रंशे, क्षरणे)—खिसकना, गिरना, च्युत होना To slip—च्यवते, च्यविष्यते। धर्माच्च च्यवेत।—नाशे; "उत्पद्यन्ते च्यवन्ते" मनु० १२ ९६।

✤ प्र+च्यु—भ्रंशे, नाशे च। ✤

जृम्भ् (जृभि) जृम्भणे (मुखविकाशे, पुष्पादीनां विकाशे च)—(१) जम्हाना, (२) खिलना To yawn, to expand—जृम्भते; जृम्भिष्यते। (१) "जृम्भस्व सिंह! दन्तांस्ते गणयिष्ये" शकु० ७; (२) "पङ्कजं जृम्भतेऽद्य" ऋतु० ३ २२।—(३) वृद्धौ (बढ़ना) To increase, "जृम्भतां जृम्भतामप्रतिहतप्रसरं क्रोधज्योतिः" वेणी० १।

✤ उद्+जृम्भ्—उद्गमे, विकाशे; वृद्धौ च। वि+जृम्भ्—जृम्भणे, व्याप्तौ च। ✤

डी (डीङ्) वहायसा गतौ (उड्डयने)—उड़ना To fly—डयते; डयिष्यते। डयते पक्षी।

✤ उद्+डी—उड्डयने। ✤

त्रप् (त्रपूष्) लज्जायाम्—लज्जित होना, शर्मिन्दा होना To be ashamed—त्रपते, त्रपिष्यते, त्रप्स्यते। "त्रपन्ते तीर्थानि त्वरितमिह यस्योद्धृतिविधौ" गङ्गालहरी २८।

✤ अप+त्रप्—लज्जायाम्; "स आत्मनाऽपत्रपते भृशं नर स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत" महाभा०; "येनापत्रपते साधुरसाधुस्तेन

तुष्यति" महाभा० । ❦

त्वर् (ञित्वरा) वेगे—त्वरा करना, जल्दी करना To hasten—त्वरते, त्वरिष्यते। "भवान् सुहृदर्थे त्वरताम्" मालविका० २।

❦ त्वर् + णिच्—त्वरयति, "दूतास्त्वरयन्ति माम्" रामा०।❦

द्युत् दीप्तौ (प्रकाशे)—चमकना To shine—द्योतते, द्योतिष्यते। द्योतते रवि।

❦ उत् + द्युत्—औज्ज्वल्ये। वि + द्युत्—शोभायाम्। ❦

ध्वस् (ध्वन्सु) नाशे, भ्रंशे (अध पतने) च—(१) नष्ट होना, (२) स्खलित होना To perish, to fall down—ध्वसते, ध्वसिष्यते। (१) "तमांसि ध्वसन्ते" महावीर० १, (२) "ध्वसेत हृदय सद्य" भा० ११ ६७.।

❦ अप + ध्वस्—निन्दायाम्, तिरस्कारे, "न चाप्यस्यमपध्वसेत् कदाचित् कोपसंयुत" महाभा०। वि + ध्वंस्—निपाते, क्षये। ❦

प्याय् (ओप्यायी)—प्यै (प्यैङ्) वृद्धौ (स्फीतौ)—बढना, फूलना To increase, swell—प्यायते, प्यायिष्यते।

❦ आ + प्याय्, प्यै—स्फीतौ, प्रीतौ च। आ + प्याय्, प्यै + णिच्—वर्द्धने, प्रीणने च, आप्याययति। ❦

प्रथ् विख्यातौ—प्रसिद्ध होना To become famous—प्रथते, प्रथिष्यते। प्रथते गुणी।—(२) विस्तारे (फैलना) To spread abroad (as fame, rumour &c); "तथा यशोऽस्य प्रथते" मनु० ११ १९।

प्लु (प्लुङ्) गतौ (स्फके); सन्तरणे, उत्तरणे च—(१) कूदना,

(२) बहना, तैरना, (३) पार होना (सक०) To leap, jump, to float, to cross (in a boat)—प्लवते; प्लोष्यते। (१) "मृग पुप्लुवे" म० ६ ४८, (२) "किं नाम तत्, सन्तुनि मज्जन्त्यलाबूनि, ग्रावाणः प्लवन्त इति ?" महावीर० १, (३) "पुप्लुवे सागर नौकया" महाभा०।

✤ प्लु + णिच्—प्लावने (डुबाना), प्लावयति। आ + प्लु—अवगाहने, स्नाने "स्नाया जलमाप्लुत्य" मनु० ६ ७७। उत् + प्लु—उत्फाले (फांदना)। उप + प्लु—उत्पीडने। परि + प्लु—चलने, चाञ्चल्ये। वि + प्लु—विपत्तौ, विनाशे च। सम् + प्लु—वृद्धौ। ✤

भास् (भासृ) दीप्तौ (स्फुरणे, स्फुटीभावे, आविर्भावे च)—(१) चमकना, (२) प्रकट होना To shine, to become clear or evident—भासते; भासिष्यते। (१) "तावत् कामनृपातपत्रसुषमं बिम्बं बभासे विधोः" भामिनी० २ ८७; (२) "त्वदङ्गमार्दवे दृष्टे कस्य चित्ते न भासते। मालती-शशभृल्लेखा-कदलीनां कठोरता ॥" चन्द्रालोक ५ ४२.। 'अव' और 'प्रति' उपसर्गके साथभी प्रयुक्त होता है।

भ्रंश् (भ्रंशु) अधःपतने—भ्रष्ट होना To fall or drop down—भ्रंशते; भ्रंशिष्यते। "भ्रंशते दुरितं राष्ट्रे प्रजाभ्यो धनमावह"।

✤ परि, प्र + भ्रंश्—च्युतौ। ✤

भ्राज् (भ्राजृ, टुभ्राजृ) दीप्तौ (शोभायाम्)—चमकना To shine—भ्राजते; भ्राजिष्यते। "विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती" रत्ना० १, २१।

मुद् हर्षे—आनन्दित होना To rejoice—मोदते, मोदिष्यते । मोदते धनी ।

✤ अनु + मुद्—अनुमोदने (पसन्द करना) । प्र + मुद्—हर्षे । ✤

यत् (यती) यत्ने—प्रयत्न करना To attempt, strive—यतते, यतिष्यते । यतते यतितुं सिद्धये ।

✤ आ + यत्—वशीभावे (आयत्त होना, अधीन होना, निर्भर करना), सप्तमी के साथ, "त्वय्यायत्तमिदं" महावीर० १. ४१ । प्र + यत्—प्रयत्ने । ✤

रम् (रमु) क्रीडायाम् (रमणे, आनन्द, आसक्तौ)—(१) खेलना, (२) आनन्दित होना To sport, to take delight in, to be gratified—रमते, रंस्यते । (१) "रमे मुहुर्मध्यगता सखीनाम्" कु० १ २९, (२) "लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि" मेघ० २७ ।

✤ अभि, आ + रम्—आसक्तौ, आरमति । उप + रम्—निवृत्तौ; मरणे च; उपरमति, ०ते । वि + रम्—निवृत्तौ, विरमति । ✤

रुच् प्रीतौ, प्रकाशे च—(१) रुचना, (२) चमकना, शोभित होना To be agreeable; to shine, look beautiful—रोचते; रोचिष्यते । प्रीतिरिह अनुरागविशेषः । तत्र यस्यानुराग, तस्य सम्प्रदानत्वम् । (१) रोचतेऽन्नं बुभुक्षते, "यदेव रोचते यस्मै, भवेत् तत् तस्य सुन्दरम्" हितो० २.६०, (२) "रुचिरे रुचिरेक्षणविभ्रमा" माघ० ६ ४६ ।

✤ वि + रुच्—दीप्तौ । ✤

लम्ब् (लबि) अवस्रंसने (लम्बने)—लटकना To hang down, dangle—लम्बते, लम्बिष्यते। "नृपयोरत्र लम्बन्ते" महाभा०। ⚜ अव+लम्ब्—आश्रये। आ+लम्ब्—आश्रये, आदाने च। वि+लम्ब्—विलम्बने। ⚜

वल् वलने—जाना, चलना To go, to move, to turn to—वलते, वलिष्यते। "अलिकदम्बक वलनेऽभिमुखं तव" माघ० ६ ११; "हृदयमदये तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बलात्" गीतगो० ७.४८। "त्वदभिसरणरभसेन वलन्ती" गीतगो० ६ ३; "दृष्टिरन्यतो न वलति" काद०—इत्यादौ परस्मैपदमपि।

वृत (वृतु) वर्त्तने (स्थितौ, विद्यमानतायाम्)—रहना To exist, remain, stay—वर्त्तते, वर्त्तिष्यते, वर्त्स्यति। "अत्र विपदेऽस्माकं महत् कुतूहलं वर्त्तते" पञ्च० १।

⚜ वृत्+णिच्—आजीविकायाम्, वृत्तिकरणे, प्राणधारणे (गुजरान करना To live on, subsist), वर्त्तयति। "रामोऽपि सह वैदेह्या वने वन्येन वर्त्तयन्" र० १२ २०। क्वचित् आत्मनेपदमपि, यथा—"मदसिक्तमुखैर्मृगाधिपः करिभिर्वर्त्तयते स्वयं हतैः" भा० २. १८। अति+वृत्—अतिक्रमे, उल्लङ्घने (सक०)। अनु+वृत्—अनुसरणे (सक०)। अप+वृत्—प्रतिनिवृत्तौ (लौटना)। वि+अप+वृत्—निवृत्तौ। अभि+वृत्—अभिमुखगमने, आगमने (सक०)। आ+वृत्—आगमने। आ+वृत्+णिच्—दुग्धादिपाके (औटाना); आवृत्तौ (फेरना To repeat) च; आवर्त्तयति। अप+आ+वृत्, उप+आ+वृत्, परा+वृत्, वि+आ+

वृत्—निवृत्तौ (लौटना)। नि+वृत्—निवृत्तौ । निर्+वृत्—निष्पत्तौ, समाप्तौ । प्र+वृत्—प्रवृत्तौ । वि+वृत्—घूर्णने, भ्रमणे । सम्+वृत—सत्तायाम् (होना), "स्विन्नाङ्गुलिः संववृते कुमारी" २० ७ २२. । ॐ

वृध् (वृधु) वृद्धौ—बढ़ना To increase—वर्द्धते, वर्द्धिष्यते, वर्त्स्यति । "वर्द्धते ते तपः" म० ६ ६८ ।

ॐ सम्+वृध्+णिच्—वर्द्धने, प्रतिपालने, सम्माननेच, संवर्द्धयति । ॐ

वेप् (टुवेपृ) कम्पने—कांपना To shudder, tremble—वेपते, वेपिष्यते । वेपते वायुना वृक्षः ।

व्यथ् भये, चलने, दुःखानुभवे च—डरना; विचलित होना, दुःख पाना—To be agitated, to be afflicted, to be sorry—व्यथते, व्यथिष्यते । व्यथते लोकः (दुःखमनुभवति, कम्पते, बिभेति वा) ।

शुभ् दीप्तौ (शोभायाम्)—शोभित होना To look beautiful or handsome—शोभते, शोभिष्यते । "इष्टु शोभसे एतेन विनय-माहात्म्येन" उत्तर० १, "सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते" मृच्छ० १ १० (To appear to advantage).

श्वित् (श्विता) शौक्ल्ये—सफेद होना To be white—श्वेतते । श्वेतते प्रासादः । "व्यतिकरितदिगन्ताः श्वेतमानैर्यशोभिः" मालती० २. ९ । नै० १२ २२ ।

स्पन्द् (स्पदि) किञ्चिच्चलने (ईषत्कम्पने, स्फुरणे)—कांपना, फड़फड़ाना

To throb, palpitate—स्पन्दते, स्पन्दिष्यते । "स्पन्दते दक्षिणो भुज" मृच्छ० , "पस्पन्दे वामनयन जानकी-जामदग्न्ययो" महाना० १ २८ ।

'परि' उपसर्गके साथभी प्रयुक्त होता है ।

स्पर्ध् सघर्षे (पराभिभवेच्छायाम्)—स्पर्द्धा करना, बराबरी करना, झगड़ना To contend or vie with—स्पर्द्धते, स्पर्द्धिष्यते । स्पर्द्धते बलिना मम बन्धो ।

स्मि (ष्मिङ्) ईषद्धसने—मुस्कराना To smile, laugh (gently)—स्मयते, स्मेष्यते । स्मयते वधू । "स्मयमान वदनाम्बुज स्मरामि" भामिनी० २ २७ ।

❀ वि + स्मि—विस्मये (ताज्जुब करना, मुताज्जिब होना) । ❀

स्यन्द (स्यन्दू) स्रवणे (क्षरणे)—चूना, बहना To drop, trickle, flow—स्यन्दते ; स्यन्दिष्यते । अरविन्दात् मकरन्द स्यन्दते ।

❀ अभि + स्यन्द्—द्रवीभावे, क्षरणे , "अभिस्यन्देत हृदयम्" उत्तर० । ❀

स्रस् (स्रंसु) अधो (अध पतने)—च्युत होना To fall down—स्रंसते ; स्रंसिष्यते । "गाण्डीव स्रसते हस्तात्" गीता १. ३० ।

ह्लाद् (ह्लादी) हर्षे—हृष्ट होना To be glad or delighted—ह्लादते, ह्लादिष्यते । "अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादते मन " मा० ११ ८ । "धन्यानां विरजस्तमा भगवतो चर्य्यैकमाह्लादते" (हर्षयति) अनर्घ० २ २९ —इत्यत्र सकर्मक ।

अनुवाद करो—तुम्हारी उन्नतिसे मेरा मन हृष्ट होता है । व्याघ्रका

गर्जन सुनकर (श्रुत्वा) नर्मीका हृदय कांप उठ्ता है। दरिद्र शिशुओंके उपकारके लिये सर्वदा यत्न करूंगा। पूर्व दिशामें चन्द्रमा शोभा पाता है,—यह देखकर (दृष्ट्वा) कौन आनन्दित नहीं होता? रामके कुव्यवहारसे श्याम नितान्त लज्जित हुआ है। कायमनोवाक्यसे प्रयत्न करो।

भ्वादि सकर्मक उभयपदी धातु।

☞ भ्वादि उभयपदी धातु परस्मैपदमें 'पच्'-धातु, और आत्मनेपदमें 'लभ्'-धातुके तुल्य।

खन् (खनु) अवदारणे (खनने)—खोदना To dig—खनति, खनते; खनिष्यति, खनिष्यते। "तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः"।

✤ उत्+खन्—खनने, उत्पाटने, उन्मूलने च। नि+खन्—रोपणे, स्थापने, प्रवेशने (गाड़ना), "ऊर्द्ध्वविषं निखनेत्" याज्ञवल्क्य। ✤

गुह् (गुहू) संवरणे (आच्छादने, गोपने)—ढकना, छिपाना To cover, hide—गूहति, गूहते, गूहिष्यति, गूहिष्यते, घोक्ष्यति, घोक्ष्यते। "गुह्यञ्च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति" भर्तृहरि।

✤ उप+गुह्—आलिङ्गने। नि+गुह्—गोपने। ✤

चाय् (चायृ) दर्शने (चाक्षुषज्ञाने)—देखना To observe, discern, see—चायति, चायते, चायिष्यति, चायिष्यते। "न पर्यतीया प्रमदाश्चचायिरे" माघ० १२ ६१।

✤ नि+चाय्—दर्शने। ✤

धाव् (धावु) शुद्धौ (क्षालने), द्रुतगमने च—(१) धोना, (२) दौड़ना (अक०)—To wash, cleanse, to run—धावति, धावते; धाविष्यति, धाविष्यते। (१) "दधावाद्भिस्ततश्चक्षु सुग्रीवस्य विभी-

पञ॰" म॰ १४ ६०, (२) "धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्या" शकु॰ १ ८।

॰॥॰ अनु + धाव्—पश्चाद्धावने, अनुसन्धाने च। अभि + धाव्—अभिमुखगतौ। निर् + धाव्—मार्जने। ॰॥॰

धृ (धृञ्) धारणे—पकड़ना To hold—धरति, धरते, धरिष्यति, धरिष्यते।

॰॥॰ अव + धृ + णिच्, अथवा चुरादि—निश्चये, निरूपणे; अवधारयति। उद् + धृ—उद्धारे, मोचने। ॰॥॰

नी (णीञ्) प्रापणे (नयने)—ले जाना To carry, lead, take, convey—नयति, नयते, नेष्यति, नेष्यते। द्विकर्मक—नयति नयते गां वनं गोपः (प्रापयतीत्यर्थः)। "मामपि तत्र नय" हितो॰। —(२) अतिवाहने To pass (as time), "सविद्द कुशशयने निशा निनाय" र॰ १ ९५।

॰॥॰ अनु + नी—प्रार्थनायाम्, प्रसादने च। अप + नी—अपसारणे। अभि + नी—अभिनये, अनुकरणे। आ + नी—आनयने। आ + नी + णिच्—मङ्गाना, आनाययति। प्रति + आ + नी—प्रत्यानयने। उद् + नी—उत्क्षेपणे, अनुमाने च। उप + नी—उपनयने; "माणवकम् उपनयते", (२) प्रापणे च, "आर्य्यस्यासनमुपनय" मृच्छ॰। निर् + नी—अवधारणे। परि + नी—विवाहे। प्र + नी—रचनायाम्, प्रापणे च। वि + नी—अपनयने, शासने, शिक्षायाञ्च। ॰॥॰

पच् (डुपचष्) पाके (रन्धने)—पकाना To cook—पचति, पचते, पक्ष्यति, पक्ष्यते। द्विकर्मक—पचति पचते तण्डुलान् ओदनं लोकः।

—(२) जीर्णीकरणे (परिपाक करना, हज़म करना); "पचाम्यन्नं चतुर्विधम्" गीता १५ १४ ।

❀ कर्मकर्त्तरि—परिणामे, परिणतावस्थायाम्—पच्यते, "सद्य एव सुकृतां हि पच्यते कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम्" र० ११ ५०, (२) विनाशोन्मुखीभावे, "नरके पच्यते घोरे"। ❀

भज् भागे; सेवायाम् (अनुरागे, आश्रये, स्वीकारे, प्राप्तौ) च—(१) बाँटना, (२) सेवा करना, भक्ति करना, (३) आश्रय करना, (४) प्राप्त होना To divide, to worship, to resort to, to obtain, experience—भजति, भजते, भक्ष्यति, भक्ष्यते। (१) "भ्रातरः सम भजेरन् पैतृक रिक्थम्" मनु० ९ १०४, (२) हरिं भज, (३) "शिलातलं भेजे" काद०, "भातर्हर्देम। भजस्व कञ्चिदपरम्" भर्तृ० ३, (४) "अजितरत्नमपोऽपि मार्दवं भजते, कैव कथा शरीरिषु?" र० ८ ४३ ।

❀ वि+भज्—विभागे (हिस्सा करना)। ❀

भृ (भृञ्) भरणे (पूरणे, पोषणे, प्रतिपालने)—(१) भरना, (२) पालन करना To fill; to support—भरति, भरते, भरिष्यति, भरिष्यते। (१) भरति कुम्भमम्भसा ; (२) "दरिद्रान् भर कौन्तेय! मा प्रयच्छेश्वरे धनम्" हितो० १. १४

यज् देवपूजायाम् (यागे), दाने च—(१) पूजा वा याग करना; (२) देवताके उद्देशसे उत्सर्ग करना To worship with sacrifices, to make an oblation to—यजति, यजते, यक्ष्यति, यक्ष्यते। (१) यजति यजने विष्णुं सुधीः (पूजयतीत्यर्थः)।

यागार्थमें तृतीयान्त यज्ञ-वाचक शब्दके साथ प्रयुक्त होता है ; "यजेत राजा क्रतुभिः" मनु० ७ ७९, "अश्वमेधेन यजेत" । (२) दाना-र्थमें द्वितीयान्त देवता वाचक और तृतीयान्त उत्सृष्टवस्तुवाचक शब्दके साथ प्रयुक्त होता है, "पशुना रुद्रं यजते" (पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः), "यस्तिलैर्यजते पितॄन्" महाभा० ।

याच् (टुयाचृ) याचने (प्रार्थनायाम्)—याञ्चा करना, माङ्गना To ask, solicit, implore—याचति, याचते, याचिष्यति, याचिष्यते । द्विकर्मक—बलिं याचते वसुधाम् । याचति याचते नृप विप्र , "पितरं प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः" र० ८ १२ ।

लष् इच्छायाम्—इच्छा करना, अभिलाष करना To desire or wish for—लषति, लषते, लष्यति, लष्यते, लषिष्यति, लषिष्यते । प्रायेण अयम् 'अभि' पूर्वक—अभिलषति, अभिलष्यति । "तेन दूतमभिलेषुरङ्गना सुवासवम्" र० १९ १२ ; "मानुषानभिलष्यन्ती" भ० ४ २२ ।

वप् (डुवप्) बीजवपने, तन्तुवपने, मुण्डने च—(१) बीज बोना ; (२) बुनना, (३) मुण्डाना To sow, to weave; to shave—वपति, वपते, वप्स्यति, वप्स्यते । (१) "यादृशं वपते बीजं तादृशं लभते फलम्", (२) वपति तन्तुं तन्तुवायः, (३) वपति मस्तकं नापितः ।

☞ नि+वप्, निर्+वप्—उत्सर्गे, दाने । प्रति+वप्—अनुरोपे (जड़ना), निपतने, विस्तारे च । ☜

वह् प्रापणे ; धारणे च—(१) ले जाना, (२) धारण करना To carry; to bear, support—वहति, वहते, वक्ष्यति वक्ष्यते । (१) द्विकर्मक—वहति वहते भारं ग्रामं जनः (प्रापयतीत्यर्थः). (२) "न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति" मृच्छ० ४ १७ ।—(३) वायोर्गतौ (अक०), "मन्दं वहति मारुतः" रामा० ।—(४) स्यन्दने, स्रवणे, क्षरणे (अक०), "लोकोपकाराय वहन्ति नद्यः" ।

❀ अति+वह्+णिच्—अतिवाहने, यापने, अतिक्रमणे, अतिवाहयति । अप+वह्—उत्सारणे, निरासे च, "अपोवाह वासोऽस्या मारुतः" महाभा० । अप+वह्+णिच्—अपसारणे, अपवाहयति । आ+वह्—उत्पादने, धारणे च । उद्+वह्—विवाहे, धारणे च । निर्+वह्—निष्पत्तौ, सम्पादने स्थितौ च—"सर्वथा सत्यवचने देहो न निर्वहेत्" भागवत-टीका ८ १९ ४१, "कारणसमदिनि कथयन् सख्याधुनेम निर्वहन् कार्यम्" स्वात्मनिरूपणम् ७८. । प्र+वह्—वहने, प्रवाहे । वि+वह्—विवाहे । सम्+वह्+णिच्—संवाहने, अङ्गमर्दने Shampooing संवाहयति । ❀

वे (ञ्.) तन्तुसन्ताने (वस्त्रनिर्माणे)—बुनना To weave—वयति, वयते ; वास्यति, वास्यते । वयति वयते तन्त्रं तन्तुवायः । "यशःपटं वयति स्म तद्गुणैः" न० १ १२ ।

❀ प्र+वे—वयने, ग्रन्थने, "शल्यप्रोत सुनिपुणम्" १० ९. ७९. । ❀

शप् आक्रोशे (विरुद्धानुध्याने, शापे, गालिदाने, सम्बोधनाम्), शपथकरणे च—(१) कोसना, (२) सौगन्द खाना To curse,

scold, abuse, to swear—शपति, शपते, शप्स्यति, शप्स्यते। (१) "अशपद्रूमव मानुषीति ताम्" र० ८ ८०, (२) "कृष्णाय शपते गोपी"। जिस आदमीके पास शपथ किया जाता है, उसमे चतुर्थी, और जिस पदार्थके नामसे शपथ किया जाता है, उसमे तृतीया होती है, "भरतेनात्मना चाहं शपे ते मनुजाधिप।। यथा नान्येन तुष्येयमृते रामविवासनात्" रामा०।

※ अभि+शप्—अभिशापे। ※

श्रि (श्रिञ्) आश्रये, प्राप्तौ च—(१) आश्रय करना, (२) प्राप्त होना To resort to, have recourse to, to attain to—श्रयति, श्रयते, श्रयिष्यति, श्रयिष्यते। (१) "य देश श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम्" हितो० १ १०६, (२) "परीता रक्षोभि श्रयति विवशा कामपि दशाम्" भामिनी० १ ८३.।

※ आ+श्रि–अवलम्बने (सहारा लेना)। सम्+श्रि–आश्रये।※

हृ (हृञ्) हरणे (प्रापणे, स्तेये, नाशने च)—(१) ले जाना, (२) चोरी करना, (३) नष्ट करना To convey, to steal, to destroy—हरति, हरते; हरिष्यति, हरिष्यते। (१) द्विकर्मक—हरति हरते गा वनं गोप, "सन्देशं मे हर" मेघ० ७, (२) "दुर्वृत्त आजन्मातो हरिष्यन्तीति शङ्कया। मदीयपद्यरत्नानां मञ्जूषेषा मया कृता" भामिनी० ४. ४६; (३) "नापेक्षा न च दाक्षिण्यं न प्रीतिर्न च सङ्गतिः। तथापि हरते तापं लोकानामुन्नतो घन॥" भामिनी० १ ३८।

✤ हृ + णिच्—प्रापणे (किसीके द्वारा कुछ भेजना), नाशे, अर्थे, वियोगे (खोना To lose), पराजये (हराना) च, हारयति । अनु + हृ—अनुकरणे । अप + हृ—अपहरणे (छीन लेना, चुराना) । अभि + अव + हृ—अभ्यवहारे, भोजन । वि + अव + हृ—व्यवहारे । आ + हृ—आहरणे, आनयने । उद् + आ + हृ—दृष्टान्तोपन्यासे (नजीर देना), कथने च । वि + आ + हृ—व्याहारे, उक्तौ । सम् + आ + हृ—सङ्ग्रहे । उद् + हृ—उद्धारे (मोचने, उन्मूलने च) । उप + हृ—अन्तिकप्रापणे (पास ले जाना), उपढौकने च (भेंट करना) । निर् + हृ—अपनयने, प्रेतवहने च । परि + हृ—परित्यागे । प्र + हृ—प्रहारे, ताडने । वि + हृ—क्रीडायाम् । सम् + हृ—नाशने, प्रत्याकर्षणे (समेटना), सङ्क्षेपे च। उप + सम् + हृ—उपसंहारे, समापने । ✤

ह्वे (ह्वेञ्) स्पर्द्धायाम् (पराभिभवेच्छायाम्), आह्वाने च—(१) लड़ाई माड़ना, (२) पुकारना To challenge, To call by name—ह्वयति ह्वयते मल्लो मल्लम् (अभिभवितुमिच्छति), (२) ह्वयति जन लोक (आह्वयतीत्यर्थ), "सा पार्वतीति नाम्ना जुहाव" कु० १ २६. ।

✤ आ + ह्वे—आह्वाने To call, summon, invite—परस्मैपदी—पुत्रमाह्वयति,—(२) स्पर्द्धायाम्—आत्मनेपदी—कृष्णश्चाणूरमाह्वयते । ✤

भ्वादि अकर्मक उभयपदी धातु ।

राज् (राजृ) दीप्तौ (शोभायाम्)—शोभित होना To glitter,

appear splendid or beautiful—राजति, राजते, राजिष्यति, राजिष्यते । "राजन् ! राजति वीरवैरिवनितावैधव्यदस्ते भुज" काव्यप्रकाश १० ।

❦ वि+राज्—सुदीप्तौ । निर्+राज्+णिच्—प्रकाशने, विभूषणे, नीराजने, निर्मञ्छने च (आरती करना), नीराजयति, "नीराजयन्ति भूपाला पादपीठान्तभूतलम्" प्रबोध० ? ८ । ❦

अनुवाद करो—दिनमें दोपहरके समय धूपमें मत दौड़ो । साधुपुरुषके पास प्रार्थना निष्फल होनेभी अच्छी, तोभी कृपणके पास कुछभी नहीं मांगना । अपने गुणोंको छिपा रखो । सर्वान्तःकरणसे ईश्वरका (द्वितीया) भजन करो । महातपा दुर्वासाने शकुन्तलाको अभिशाप दिया था । वर्षामें किसानलोग खेतमें बीज बोते हैं । इस पुस्तकको घरमें ले जाऊंगा । विपद्में जिसका (द्वितीया) आश्रय करोगे, प्राणान्तमेंभी उसके उपर कुभाव नहीं लाना ।



दिवादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[इस प्रकरणमें सब सम्भव भ्वादिके तारा(*)-चिह्नित सूत्रोंका कार्य होगा ।]

२७१ । चतुर्लकार पर रहनेसे, कर्तृवाच्यमें दिवादिगणीय धातुके उत्तर 'य' होता है, यथा—दिव्+ति=दीव्+य+ति—

२७२ । * 'य' परे रहनेसे, दिव्—दीव्, सिव्—सीव्, दॄ—दीर्, जॄ—जीर्, व्यध्—विध्, और जन्—जा होता है । दीव्+य+ति=

दीव्यति।

२७३। 'य' परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे शम्—शाम्, श्रम—श्राम्, भ्रम्—भ्राम्, क्षम्—क्षाम्, तम्—ताम्, दम्—दाम्, क्लम्—क्लाम्, मद्—माद्, भ्रंश्—भ्रश्, और रन्ज्—रज् होता है।

२७४। यकार परे रहनेसे, अन्त्य ओकारका लोप होता है. यथा—शो + य + ति = श्यति।

दिवादि परस्मैपदी धातु।

दिव् (दिवु) क्रीडायाम्—खेलना To play.

(अकर्मक—द्वितीयान्त अथवा तृतीयान्त 'अक्ष'-वाचक शब्दके साथ—अक्षं अक्षान् वा दीव्यति।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	दीव्यति	दीव्यत	दीव्यन्ति
मध्यमपुरुष	दीव्यसि	दीव्यथ	दीव्यथ
उत्तमपुरुष	दीव्यामि	दीव्याव.	दीव्याम

लोट्।

प्रथमपुरुष	दीव्यतु	दीव्यताम्	दीव्यन्तु
मध्यमपुरुष	दीव्य	दीव्यतम्	दीव्यत
उत्तमपुरुष	दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
मध्यमपुरुष	अदीव्य	अदीव्यतम्	अदीव्यत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः
मध्यमपुरुष	दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत
उत्तमपुरुष	दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	देविष्यति	देविष्यतः	देविष्यन्ति
मध्यमपुरुष	देविष्यसि	देविष्यथः	देविष्यथ
उत्तमपुरुष	देविष्यामि	देविष्यावः	देविष्यामः

दिवादि सकर्मक परस्मैपदी धातु।

अस् (अह) क्षेपणे—फेंकना To cast—अस्यति, असिष्यति। "तस्मिन्नास्थदिषीकास्त्रम्" र० १२ २३।—(२) अपनोदने, "क्षीणामास श्रमम्" नवोदय ४ ३६।

☞ अधि + अस्—आरोपे। अप + अस्—अपसारणे, त्यागे च। अभि + अस्—अभ्यासे, आवृत्तौ, पुनरनुष्ठाने, मुहुः करणे। उद् + अस्, वि + उद् + अस्—निरासे, अपनयने। नि + अस्—निक्षेपे, स्थापने, त्यागे च। वि + नि + अस्—स्थापने। उप + नि + अस्—प्रस्तावे। सम् + नि + अस्—सन्न्यासे, "सन्तस्य क्षणभङ्गुरं तदखिलं धन्यस्तु सन्न्यस्यति" भर्तृ०। निर् + अस्—दूरीकरणे। परि + अस्—विस्तृतौ, क्षेपणे; पातने च। वि + परि + अस्—विपर्यये। प्र + अस्—प्रक्षेपे। वि + अस्—अपनयने; विभागे च।

सम्+अस्—सङ्क्षेपे, समासे, प्रयोगे। ❀

इष् गतौ—इष्यति, एषिष्यति।

❀ अनु+इष्—अन्वेषणे (ढूँढना)। प्र+इष्+णिच्—प्रेषणे (भेजना), क्षेपणे च, प्रेषयति। ❀

क्षम् (क्षमू) सहने (मर्षणे, क्षमायाम्)—क्षमा करना To forgive—क्षाम्यति, क्षमिष्यति। क्षाम्यति दोषं साधुः।

गृध् (गृधु) लिप्सायाम् (आकाङ्क्षायाम्)—लालच करना To covet—गृध्यति; गर्धिष्यति। गृध्यति धनं लुब्धः।

पुष् पोषणे (उपचये), पुष्टौ च—(१) पुष्ट करना, बढ़ाना, (२) पुष्ट होना (अक०) To nourish, to enhance, to display, to grow strong or fat—पुष्यति; पोक्ष्यति। (१) "कामप्यभिख्यां स्फुरितैरपुष्यदासन्नलावण्यफलोऽधरोष्ठः" कु० ७ १८, "वर्णं पुष्यत्यनेकं सरयूप्रवाहः" र० १६ ५८, "ददृशुरपुष्य उरामिषैः" म० १७ ७२.।

लुभ् आकाङ्क्षायाम् (लोभे)—लालच करना To covet—लुभ्यति, लोभिष्यति। लुभ्यति धनं लुब्धः। परन्तु चतुर्थी और सप्तमीके साथ प्रयुक्त होता है; "तथाऽपि रामो लुलुभे मृगाय", "धर्मे लुभ्यति यः सदा"।

व्यध् ताडने (पीडने, वेधने)—बींधना, चुभाना, छेदना To hurt, pierce—विध्यति; व्यत्स्यति। विध्यति शत्रुं शूरः, "विविधुस्तोमरैः" म० १४ २४।

❀ अनु+व्यध्—सम्पर्के, व्यापने, ग्रन्थने च। अप+व्यध्—

निक्षेपे, निरासे ; त्यागे ; प्रेरणे च । आ + व्यध्—क्षेपे, नि मारणे ; धारणे, परिधाने च । ✠

शो तीक्ष्णीकरणे—पैनाना To sharpeu, whet—श्यति ; शास्यति ।

✠ नि + शो—निशाने, तेजने, तीक्ष्णीकरणे । ✠

श्लिष् (श्लिषु) आलिङ्गने, योगे च—(१) गले लगाना (२) संयुक्त होना (अक०) To embrace, to adhere to—श्लिष्यति ; श्लेक्ष्यति । (१) श्लिष्यति वृक्षं लता ।

✠ आ + श्लिष्—आलिङ्गने योगे च । वि + श्लिष्—वियोगे । प्र + श्लिष्—वियोगे । सम् + श्लिष्—संयोगे । ✠

सिव् (षिवु) तन्तुविस्तारे (सीवने, तन्तुभिर्ग्रन्थने)—सीना To sew—सीव्यति, सेविष्यति । सीव्यति वस्त्रं सौचिकः ।

सो (षो) नाशने—नष्ट करना To kill, destroy—स्यति सास्यति । स्यति पशो जन्तून् ।

✠ अव + सो—अवसाने, समाप्तौ । अधि + अव + सो—अध्यवसाये (उत्साहे, निश्चये च) । परि + अव + सो—पर्य्यवसाने समाप्तौ, परिणामे । प्रति + अव + सो—प्रत्यवसाने, भोजने । वि + अव + सो—व्यवसाये, उद्यमे, चेष्टायाम् । अनु + वि + अव + सो—अनुव्यवसाये (बुद्धार्थस्य पुनर्बोधे) । ✠

दिवादि अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

कुप् क्रोधे—क्रुद्ध होना To be angry—कुप्यति ; कोपिष्यति ।

जिसपर क्रोध किया जाता है, उसमें प्रायशः चतुर्थी होती है ; कुप्यति माता शिशवे ; "कुप्यन्ति हितवादिने" काद० । किन्तु 'प्रति' शब्द-

के योगसे द्वितीया, और 'उपरि' शब्दके साथ षष्ठीभी होती है, "मां प्रति स कुपित", "कुपितश्चन्द्रगुप्तश्चाणक्यस्योपरि" मुद्रा० २। ❀ प्र+कुप्—अनिकोप, प्राबल्ये च—"दोषा प्रकुप्यन्ति ■ सुश्रुत०। ❀

क्रुध् कोपे—रोष करना—क्रुध्यति, क्रोत्स्यति।

क्लम् (क्लमु) ग्लानौ (श्रमे)—श्रान्त होना, थकना To be fatigued or tired—क्लाम्यति, क्लमिष्यति। "काय क्लाम्यति यस्य प्रहरतो रिपून्"।

क्लिद् (क्लिदू) आर्द्रीभावे—भीगना To become wet—क्लिद्यति; क्लेदिष्यति, क्लेत्स्यति। क्लिद्यति वस्त्र पयसा।

क्षुभ् सञ्चलने* (क्षोभे, विकारे, उद्वेगे)—क्षुब्ध होना, विचलित होना, घबराना To shake, to be agitated or disturbed—क्षुभ्यति, क्षोभिष्यति। "महाह्रद इव क्षुभ्यन्" भ० १ ११८। ❀ प्र+क्षुभ्, सम्+क्षुभ्—सञ्चलने। वि+क्षुभ्+णिच्—विलोडने, विक्षोभयति। ❀

जॄ (जॄष्) वयोहानौ (जरायाम्, जीर्णीभावे, क्षये, विलये, परिपाके)—(१) जीर्ण होना, क्षीण होना, (२) नष्ट होना, (३) पचना To grow old, wear out, decay, to perish, to be
8 digested—जीर्यति, जरिष्यति, जरीष्यति, (१) "जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः। जीर्यतश्चक्षुषी श्रोत्रे,

* इसी अर्थमें 'क्षुभ्'-धातु भ्वादिगणीय आत्मनेपदीभी होता है, लट्—क्षोभते।

तृष्णेका तरणायते ॥" पञ्च० ५ १६ ; (२) "सौहृदानि जीर्यन्ति कालेन" महाभा० ; (३) "उदरे चाजरन्त्यं" म० १९ १९० ।

तम् (तमु) ग्लानौ (खेदे, श्रान्तौ, व्यथायाम्, तृष्णीभावे)—(१) श्रान्त होना ; (२) परेशान होना, (३) मुरझाना To be exhausted or fatigued, to be distressed (in body or mind), to pine or waste away—ताम्यति ; तमिष्यति । (१) "ललितशिरीषपुष्पहननैरपि ताम्यति यत्" मालती० ९ ३१, (२) "प्रविशति मुहु कुञ्ज, गुञ्जन् मुहुर्बहु ताम्यति" गीतगो० ५ १६, (३) "गाढोत्कण्ठा लुलितलुलितैरङ्गकैस्ताम्यतीति" मालती० १ १८ ।

✤ उत्+तम्—उत्कण्ठायाम् । सम्+तम्—ग्लानौ । ✤

तुष् प्रीतौ—तुष्ट होना To be contented or satisfied with anything—तुष्यति, तोक्ष्यति । "तुष्यन्ति ब्राह्मणा नित्यम्" ; तृतीयान्त पदके साथ—"शल्लैर्नहाहैंल्तुतुषुर्न देवा" भर्तृ० ।

✤ परि+तुष्, प्र+तुष्—परितोषे । सम्+तुष्—सन्तोषे । ✤

तृप् तृप्तौ—तृप्त होना, राजी होना, To become satisfied—तृप्यति ; तर्पिष्यति, तप्स्यति, त्रप्स्यति । प्रायश तृतीयाके साथ, परन्तु कहीं षष्ठी और सप्तमीके साथभी प्रयुक्त होता है ; "को न तृप्यति वित्तेन ?" हितो० २ १७३ ; "नाग्निस्तृप्यति काष्ठानाम्" पञ्च० १ १४८, "तस्मिन् हि तृप्तुर्देवास्तते यज्ञे" महाभा० ।

✤ परि+तृप्—सम्यक्तृप्तौ । ✤

तृष् (ञितृष्) पिपासायाम् (तृष्णायाम्, आकाङ्क्षायाम्)—प्यासा होना

To be thirsty—तृष्यति, तर्पिष्यति। "क्षताश्च कपयोऽतृप्यन्" म० १९ ९१।

त्रस् (त्रसी) उद्वेगे (त्रासे)—डरना To fear, dread—त्रस्यति, त्रसति, त्रसिष्यति। "प्रमद्वनात् त्रस्यति" कादं०, "त्रसति क सति नाश्रयबाधने ?" नै० ४ १६।

दम् (दमु) उपशमे (शान्तीभावे) शान्तीकरणे (शासने, दमने) च—(१) शान्त होना, (२) दबाना (सक०) To be calm or tranquil, to subdue—दाम्यति दमिष्यति। (१) दाम्यति मुनि, (२) "यमो दाम्यति राक्षसान्" भ० १८ २०।

दुष् वैकृत्ये (अशुद्धीभावे, दोषे)—दोषयुक्त वा अशुद्ध होना To be bad or corrupted, to become impure or contaminated—दुष्यति, दोक्ष्यति। दुष्यति लोक पापात्; "दत्वा पितृश्चार्चयित्वा खादन् मांसं न दुष्यति" मनु० ५ ३२।

✤ प्र+दुष्—व्यभिचारे। ✤

दृप् गर्वे (दर्पे)—घमण्ड करना To be proud—दृप्यति, दर्पिष्यति, द्रप्स्यति, दर्प्स्यति। "स किल नात्मना दृप्यति" उत्तर० ६, "को न दृप्यति वित्तेन ?" हितो० ३ १०३।

दॄ विदारे—फटना To burst or break asunder, split open—दीर्य्यति, दरिष्यति, दरीष्यति। "हृदयं दीर्य्यतीव मे" महाभा०।

✤ अव+दॄ+णिच्—अवदारणे, खनने, अवदारयति। वि+दॄ—विदारे, "वैदेहिबन्धोर्हृदयं विदद्रे" र० १४ ३३। वि+दॄ+

णिच्—विदारणे (फाड़ना), विदारयति । ✤

द्रुह् जिघांसायाम् (अनिष्टचिन्तने, अपकारे)—बुराई चाहना, वैर करना To seek to hurt or injure, meditate mischief—द्रुह्यति, द्रोहिष्यति, ध्रोक्ष्यति । जिसपर द्रोह किया जाता है उसमें चतुर्थी होती है द्रुह्यति खलः साधवे । "योऽन्वेति मां द्रुह्यति मह्यमेव साऽस्मीत्युपालम्भि तयाऽऽलिवर्गः" नै० ३. ७ ।

✤ अभि + द्रुह्—अपकार । ✤

नश् (णश्) नाशे (क्षये, मरणे) अदर्शने (तिरोधाने, पलायने) च—(१) नष्ट होना (२) अदृश्य होना, छिप जाना, (३) भागना To be destroyed, perish, to disappear; to escape—नश्यति, नशिष्यति, नङ्क्ष्यति । (१) "ओदनार्थी ननाश सः" भ० १४. ३१. (२) "भूतानि तस्य नश्यन्ति" हितो० १. २२८. (३) "नेशुर्भिया निशाचराः" भ० १४. ११२ ।

✤ प्र + नश्—'नश्'-वत्, प्रणाश, प्रनष्ट । वि + नश्—विनाशे । ✤

नृत् (नृती) नर्तने—नाचना To dance—नृत्यति; नर्तिष्यति, नर्त्स्यति । "नृत्यति युवतिजनेन समं सखि" गीतगो० १. ।

पुष्प् विकासे—खिलना To open, bloom—पुष्प्यति; पुष्पिष्यति । पुष्प्यति कुन्दकोरकम्, शरदि पुष्प्यन्ति सप्तच्छदाः ।

भ्रंश् (भ्रन्शु) अधःपतने—भ्रष्ट होना, च्युत होना To tumble; to stray from—भ्रश्यति; भ्रंशिष्यति । "भ्रश्यन्ति स्वर्गोन्-मत्यय" महाभा० १ ३१, "मन्दाक्रान्तयन स्वर्गफलाद्गुरुत्वं"

र० १४. १६. । प्रायश पञ्चमीके साथ ।

❀ परि+भ्रश्, प्र+भ्रश्—च्युतौ, हानौ । ❀

भ्रम् (भ्रमु) चलने (भ्रमणे), भ्रान्तौ (अयथार्थज्ञाने) च—(१) घूमना, (२) चूकना To rove, move to err—भ्राम्यति, भ्रमिष्यति । (१) 'सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने' भर्तृ०, (२) "आमरणकारम्तु तत्र इति बभ्राम" ।

मद् (मदी) हर्षे, मत्ततायाञ्च—(१) आनन्दित होना, (२) मतवाला होना To be glad or rejoiced to be drunk or intoxicated—माद्यति, मदिष्यति । (१) "सर्वलोका-तिशायिन्या विभूत्या न च माद्यति", (२) "धीरेन मधुमिनरा शु ममादं" माघ० १० ३७. ।

❀ उत्+मद्—उन्मादे, चित्तविकारे । प्र+मद्—प्रमादे, अनव-धानतायाम् (गाफिल होना); "न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चित" मनु० २.२१७ । ❀

मुह् वैचित्ये (मोहे, ज्ञानहीनीभावे)—मुग्ध होना, विवेकरहित होना, मूर्छित होना To be infatuated, to be perplexed or bewildered, to faint, swoon—मुह्यति, मोहिष्यति, मोक्ष्यति । "आरम्भेषु न मुह्यन्ति नरा पण्डितबुद्धय" हितो० १. १७१; "स बुद्ध्वास्तद्वचन मुमोह" भ० १.२८. ।

यस् (यसु) प्रयत्ने, यस्यति ।

❀ आ+यस्—प्रयत्ने, "तेनायाकुन्तुमस्ततोनापरार्ने पिण्डार्थ-

मायम्यत सेवा लाघवकारिणीं कृतधिय स्थाने स्ववृत्तिं विदु" मुद्रा० ३ १४, खेदे च—"आयम्यसि नपस्यन्ती" भ० ६ ६९ । आ+यम्+णिच्—पीडने "आयामयति मां जलाभिलाप" काद० । प्र+यम्—प्रयत्ने, "पुन पुन प्रायसदुत्स्वनाय" नै० १ १२० । ❋

राध् सिद्धौ (निष्पत्तौ)—निष्पन्न होना To be accomplished or finished—राध्यति, रात्स्यति । राध्यत्योदन ।

❋ अप+राध्—अपराधे, अनिष्टाचरणे (कुसूर करना); व्यक्ति और वस्तु-वाचक शब्दको षष्ठी तथा सप्तमीके साथ—"अपराद्धोऽस्मि तत्रभवत कण्वस्य" शकु० ७, "यस्मिन् कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला" शकु० ४ कहीं चतुर्थीके साथभी प्रयुक्त होता है—"न दूये, सात्वतीसूनुर्यन्मह्यमपराध्यति" माघ० २. ११. । वि+राध्—अपकारे, द्रोहे । "क्रियासमभिहारेण विराध्यन्त क्षमेत क" माघ० २. ४३, "विराद्ध एवं भवता विराद्धा बहुधा च न" माघ० २. ४१. । ❋

शम् (शमु) उपशमे (शान्तभावे, निवृत्तौ)—शान्त होना To be calm, quiet or tranquil, be appeased or pacified, to cease—शाम्यति; शमिष्यति। "शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जन" कु० २. ४०; "न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति" मनु० २ ९४. ।

❋ उप+शम्—'शम्'-वत् । नि+शम्—श्रवणे* । नि+

* "निशम्य शब्दान्" शकु० ५ २ ।

शम् + णिच्—श्रवणे*, दर्शने च, "निशमयति वच" (श्रूयते इत्यर्थः), दर्शने तु—"रूप निशामयति"। "निशामय प्रियसखि !" मालती० ७—इत्यत्र तु श्रवणार्थ । ✤

शुध् शौचे(शुद्धौ)—शुद्ध होना To become pure or purified—शुध्यति; शोत्स्यति। "अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति" मनु० ५. १०९ ।

✤ शुध् + णिच्—उन्मूलने, ऋणोद्धारे, अशुद्धिसंशोधने च, शोधयति । परि + शुध् + णिच्—ऋणोद्धारे, कण्टकापसारणे, भ्रमादिसंशोधने च । वि + शुध्—शुद्धौ । ✤

शुष् शोषे (स्नेहरहितीभावे)—सूखना To be dried—शुष्यति; शोक्ष्यति । शुष्यति धान्यमातपेन ।

✤ परि, वि, सम् + शुष्—अतिशोषे । ✤

श्रम् (श्रमु) तपसि, खेदे (श्रमे, क्लान्तौ, दुःखे) च—(१) तपस्या करना, (२) थकना, दुःखी होना To perform austerities, to be wearied, to be afflicted—श्राम्यति; श्रमिष्यति । (१)"कियच्चिरं श्राम्यसि गौरि ?" कु० ५. ५०; (२) "आतिथेयमनिवारितातिथि कर्तुमाश्रमगुरुः स नाश्रमत्" माघ० १४. ३८, "यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानाम्" मेघ० ९९. ।

✤ परि + श्रम्—परिश्रमे । वि + श्रम्—विश्रामे । ✤

साध् निष्पत्तौ—निष्पन्न होना To be completed or accom-

* "प्रणयिनो निशमय्य स्वरम्" माघ० ६ १९ ।

plished—साध्यति ; सात्स्यति । साध्यति घटः (निष्पन्नः स्याद् इत्यर्थः)।

✤ सम्+सिध्—सन्नाहने ; मार्गे पराक्रमे ; वधे ; गमने च—"साधयामासविद्वसम्भु नैष० ११ ११ - साधयति । प्र+साध् + सिध्—अलङ्करणे, कचसंशोधने, देवनिवेदने च । ✤

सिध् (षिधु) संराद्धौ (निष्पत्तौ)—सिद्ध होना To be accomplished or fulfilled—सिध्यति, सेत्स्यति । "उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः" हितो० ३६।

स्निह् (ष्णिह्) प्रीतौ (स्नेहे)—प्यार करना To feel or have affection for, love, be fond of—स्निह्यति ; स्नेहिष्यति, स्नेक्ष्यति । स्निह्यति वस्तु । जिसपर स्नेह किया जाता है, उसमें सप्तमी होती है ; "किं नु खलु बालेऽस्मिन् औरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः ?" शाकु० ७।

स्विद् (ञिष्विदा) गात्रप्रक्षरणे (घर्मच्युतौ)—पसीजना To sweat, perspire—स्विद्यति ; स्वेत्स्यति । "न च स्विद्यति सन्तापात्"।

हृष् तुष्टौ (आह्लादे)—खुश होना To rejoice, be delighted—हृष्यति ; हर्षिष्यति । हृष्यति लोकः हसति ।—(२) रोमहर्षे (बाल खड़ा होना), "हृष्यन्ति रोमकूपाणि" महाभा० ।

दिवादि आत्मनेपदी धातु ।

मन् ज्ञाने (सम्भावने)—सोचना To think, believe, imagine

(सकर्मक—"आत्मानं मन्ये दक्षिण यज्ञे" मनु० ५. २५ ; "त्वन्मन्ना-

विनमात्मानं बहु मन्यामहे वयम्" कु० ६ ७० —बहु मन्—श्लाघायाम् To esteem highly कथं भवान् मन्यते ?—आपका मत क्या ? What is your opinion ?)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मन्यते	मन्येते	मन्यन्ते
मध्यमपुरुष	मन्यसे	मन्येथे	मन्यध्वे
उत्तमपुरुष	मन्ये	मन्यावहे	मन्यामहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	मन्यताम्	मन्येताम्	मन्यन्ताम्
मध्यमपुरुष	मन्यस्व	मन्येथाम्	मन्यध्वम्
उत्तमपुरुष	मन्यै	मन्यावहै	मन्यामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अमन्यत	अमन्येताम्	अमन्यन्त
मध्यमपुरुष	अमन्यथाः	अमन्येथाम्	अमन्यध्वम्
उत्तमपुरुष	अमन्ये	अमन्यावहि	अमन्यामहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	मन्येत	मन्येयाताम्	मन्येरन्
मध्यमपुरुष	मन्येथाः	मन्येयाथाम्	मन्येध्वम्
उत्तमपुरुष	मन्येय	मन्येवहि	मन्येमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	मंस्यते	मंस्येते	मंस्यन्ते

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	मस्यसे	मस्येथे	मस्यध्वे
उत्तमपुरुष	मस्ये	मस्यावहे	मंस्यामहे

❀ अनु + मन्—अनुमतौ, आदेशे, स्वीकारे—"देवराय प्रदातव्या यदि कन्याऽनुमन्यते" मनु० ९ ९७ । अभि + मन्—चिन्तने, विचारणे, विवेचने; इच्छायाञ्च । अव + मन्—अवज्ञायाम् । सम् + मन्—सम्माने, पूजायाम् । ❀

जन् (जनी) प्रादुर्भावे (उत्पत्तौ)—उत्पन्न होना ;
होना To be born or produced ; to become.
(अकर्मक—घटो जायते, गोमयाद्वृश्चिको जायते । "अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा" हितो० १. ८. ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जायते	जायेते	जायन्ते
मध्यमपुरुष	जायसे	जायेथे	जायध्वे
उत्तमपुरुष	जाये	जायावहे	जायामहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
मध्यमपुरुष	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
उत्तमपुरुष	जायै	जायावहै	जायामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अजायथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्
उत्तमपुरुष	अजाये	अजायावहि	अजायामहि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
मध्यमपुरुष	जायेथाः	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
उत्तमपुरुष	जायेय	जायेवहि	जायेमहि

लृट्।

प्रथमपुरुष	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
मध्यमपुरुष	जनिष्यसे	जनिष्येथे	जनिष्यध्वे
उत्तमपुरुष	जनिष्ये	जनिष्यावहे	जनिष्यामहे

❀ उत्पत्ति अर्थमे—अभि, उप, प्र, वि और सम् उपसर्गके साथ 'जन्'-धातु प्रयुक्त होता है। किन्तु 'प्र' और 'वि' उपसर्गके साथ सकर्मकभी कहीं होता है—'प्रसव करना' अर्थमे, 'प्रजायन्ते सुतान् नार्य्यः'। ❀

सू (षूङ्) प्रसवे (जनने, उत्पादने)—पैदा करना, जनना To bring forth, to produce.

(सकर्मक—सूयते पुत्रं नारी, धर्मोऽर्थं सूयते।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	सूयते	सूयेते	सूयन्ते
मध्यमपुरुष	सूयसे	सूयेथे	सूयध्वे

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	सूये	सूयावहे	सूयामहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	सूयताम्	सूयेताम्	सूयन्ताम्
मध्यमपुरुष	सूयस्व	सूयेथाम्	सूयध्वम्
उत्तमपुरुष	सूयै	सूयावहै	सूयामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	असूयत	असूयेताम्	असूयन्त
मध्यमपुरुष	असूयथाः	असूयेथाम्	असूयध्वम्
उत्तमपुरुष	असूये	असूयावहि	असूयामहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	सूयेत	सूयेयाताम्	सूयेरन्
मध्यमपुरुष	सूयेथाः	सूयेयाथाम्	सूयेध्वम्
उत्तमपुरुष	सूयेय	सूयेवहि	सूयेमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	सविष्यते	सविष्येते	सविष्यन्ते
	सोष्यते	सोष्येते	सोष्यन्ते
मध्यमपुरुष	सविष्यसे	सविष्येथे	सविष्यध्वे
	सोष्यसे	सोष्येथे	सोष्यध्वे
उत्तमपुरुष	सविष्ये	सविष्यावहे	सविष्यामहे
	सोष्ये	सोष्यावहे	सोष्यामहे

अनुवाद करो—तुमलोगोंने मेरे उन बच्चोंको सौंपा था क्या ? उन्होंने

यहाँ नृत्य किया था । ज्वरसे उसका शरीर जीर्ण हो गया । ध्रुवने विजन वनमें कृष्णकी (द्वितीया) आराधना की थी, इसलिये उसका मनोरथ सिद्ध हुआ । उस हरिणको बाणसे विद्ध मत करो । कुटिल मनुष्य अपना मात हृदयमें पोषण करते हैं । प्रचण्ड आतपतापसे देहका रक्त शुष्क होता है । माता पुत्रको आलिङ्गन करती है ।

*　　*　　*　　*

दिवादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

पद् गतौ (प्राप्तौ च)—(१) जाना , (२) पाना To go , to attain—पद्यते , पत्स्यते । (२) "ज्योतिषामाधिपत्यञ्च प्रभाव आप्यपद्यत" महाभा० ।

☞ अनु, अभि + पद्—प्राप्तौ । आ + पद्—प्राप्तौ विपत्प्राप्तौ च—"अर्थधर्मौ परित्यज्य य काममनुवर्त्तते । एवमापद्यते क्षिप्रं राजा दशरथो यथा ॥" रामा० । वि + आ + पद्—म मृ । वि + आ + पद् + णिच्—व्यापादने, हनन , व्यापादयति । उत् + पद्—उत्पत्तौ । वि + उत् + पद्—व्युत्पत्तौ । उप + पद्—(१) योग्यतायाम् , "मद्भावायोपपद्यते" (उपयुक्तो भवति) गीता १३ १८, "नैतत् त्वय्युपपद्यते" (योग्यं न भवति) गीता २ ३ , (२) सम्भावने ; "पुन्नरोहिस्त्रियोर्विशेषो नोपपद्यते" (न सम्भाव्यते) मनु० ९ १३९ , (३) प्राप्तौ , "उपपद्यस्व स्वकर्मोचिता गतिम्" दशकु० , (४) सिद्धौ, सम्भवतायाम् , "सर्वं मन्ये त्वय्युपपन्नमेतत् च" (सिद्धम्) कु० ३ १२ । अभि + उप + पद्—अनुग्रहे । निर् + पद्—निष्पत्तौ, सिद्धौ । प्र + पद्—गतौ , प्राप्तौ च , "ये

यथा मां प्रपद्यन्ते" (समाश्रयन्ते) गीता ■ ११. । प्रति+पद्—प्राप्तौ, ज्ञाने, अङ्गीकारे, उत्तरदाने च—"कथं प्रतिवचनमपि न प्रतिपद्यसे ?" मुद्रा० ६ । प्रति+पद्+णिच्—बोधने । वि+प्रति+पद्—विरोधे, विरुद्धज्ञाने संशये । वि+पद्—विपत्तौ, मरणे च । सम्+पद्—सम्पन्नतायाम् (होना), "सम्पत्स्यते ■ कामोऽयम्" कु० २ ५४, "सम्पत्स्यन्ते नमसि भवतो राजहंसाः सहायाः" (भविष्यन्ति) मेघ० ११, "साधो शिक्षा गुणाय सम्पद्यते, नासाधो (गुणम् उत्पादयति इत्यर्थः) पञ्च० १—मत्र चतुर्थीके न्याय । सम्+पद्+णिच्—सम्पादने, सम्पादयति । ✽ बुध् ज्ञाने, जागरणे च—(१) समझना, (२) जागना (अक०) To understand, to wake up—बुध्यते; आत्मने । (१) बुध्यन्ते शास्त्रं सर्वे, (२) "ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः" र० १० ६ ।

✽ अनु+बुध्—स्मरणे, ज्ञाने । अव+बुध्—ज्ञाने । उद्+बुध्—विकासे, जागरणे च । नि+बुध्—ज्ञाने, श्रवणे च, ण्यादि परस्मैपदी—निबोधति । प्र+बुध्—जागरणे, विकासे, ज्ञाने च । प्रति, वि+बुध्—जागरणे । सम्+बुध्—ज्ञाने । ✽

दिवादि अकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

खिद् दैन्ये (दीनभावे, उपतप्तीभावे, दुःखानुभवे)—दुःख पाना, खिन्न होना To suffer pain or misery, to be depressed or exhausted—खिद्यते; आत्मने । "स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः" शाकु० ५ ७; "न पुरुषो न खिद्यते नेन्द्रियैः"

हितो० २ १३९ ।

डी वहायसे (नभोगमने)—उड़ना To fly—डीयते, डयिष्यते ।

दीप् (दीपी) दीप्तौ (उज्ज्वलीभावे, प्रकाशे, शोभायाम्, ज्वलने)—चमकना To shine, to burn or be lighted—दीप्यते, दीपिष्यते । दीप्यते निशि चन्द्रमा ।

❀ उत्, प्र, सम् + दीप्—ज्वलने । ❀

दू (दूङ्) परितापे (खेदे)—दुःखित होना To be afflicted to be sorry—दूयते, दविष्यते । "दुर्जनोक्त्या न दूयते" ।

प्री (प्रीङ्) प्रीतौ—प्रीत होना To be satisfied or pleased—प्रीयते, प्रेष्यते । "प्रकाममप्रीयत यज्वना प्रिय" माघ० १ १७ ।

युज् समाधौ (चित्तवृत्तिनिरोधे), योग्यभावे च—(१) चित्तको एकाग्र करना, (२) योग्य होना To concentrate the mind, to be fit or right, be proper—युज्यते, योक्ष्यते । (१) युज्यते योगी, (२) शेषोक्त अर्थमे षष्ठी और सप्तमीके साथ प्रयुक्त होता है, "या यस्य युज्यते भूमिका, तां खलु भावेन तथैव सर्वे वयं पाठिता" मालती० १, "त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं त्वयि युज्यते" हितो० १ ।

युध् युद्धे (अभिमर्देऽऽयामे)—लड़ाई करना To fight—युध्यते; योत्स्यते । "तुण्डघातमयुध्यत" भ० ५. १०१ ।

ली (लीङ्) श्लेषे (लीनभावे)—लीन होना (चिपटना, छिपकर रहना, गायब होना, गलना) To stick or adhere firmly to, to lurk; to disappear, to melt away—

लीयते, लेष्यते। लीयते चन्द्र सूर्यः "(मृङ्गाङ्गना) लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः सञ्जातलज्जा इव" रत्ना० १. २६।

॰ नि+ली—सश्लेषे; निभृतावस्थाने (छिपना) च। वि+ली—नाशे; द्रवीभावे (पिघलना), अदर्शने च—"पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत" माघ० १ १२,। वि+ली+णिच्—द्रवीकरणे। ॰

विद् सत्तायाम् (विद्यमानतायाम्)—रहना To be, exist—विद्यते; वेत्स्यते। "अशासना कुले जाते मयि पाप न विद्यते" मृच्छ० ० ३७।

॰ निर्+विद्—आत्मावज्ञायाम्; अनुतापे, वैराग्ये च। ॰

दिवादि सकर्मक उभयपदी धातु।

नह् (णह्) बन्धने—बांधना To tie, bind, gird round—नह्यति, नह्यते; नत्स्यति, नत्स्यते। "पुराणमासे विपणिस्थपण्या सर्वाङ्गनद्धाभरणेव नारी" र० १६ ४१, "शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु निषेदु" (व्याप्तेषु इत्यर्थः) कु० १. ५५।

॰ अपि+नह्—बन्धने, आच्छादने च; प्राय अकारका लोप होता है; "मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा" शकु० ७. २; "कवच पिनह्य" म० ३ ५०। उद्+नह्—ऊर्ध्वस्य बन्धने। परि—नह्—वेष्टने। सम्+नह्—आच्छादने; मिलने, उद्योगे (आत्मनेपदी) च—"छेत्तु वज्रमणीन् शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते" भर्तृ०। ॰

मृष् तितिक्षायाम् (क्षमायाम्)—सहना; क्षमा करना To put up with; to pardon—मृष्यति, मृष्यते; मर्षिष्यति, मर्षिष्यते।

"शान्तं—तत् किमिदमकार्यमनुष्ठितं देवेन" राम—लोको न मृष्यतीति" उत्तर० ३; "कुप्यन्तु लवस्य बालिशता तातपादाः" उत्तर० ६. ।

दिवादि अकर्मक उभयपदी धातु ।

क्लिश् उपतापे (क्लेशे)—क्लेश पाना To be afflicted—क्लिश्यति, क्लिश्यते; क्लेशिष्यति, क्लेशिष्यते । बोपदेवमते—उभयपदी पाणिनिमते—आत्मनेपदी । "त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम्" मनु० ८. १६९ ।

रञ्ज् (रञ्ज्) रागे (आसक्तौ; रक्तीभावे च)—(१) अनुरक्त होना, आसक्त होना; (२) लाल होना To be attached or devoted to; to become red—रज्यति रज्यते; रङ्क्ष्यति, रङ्क्ष्यते । (१) "देवानियं निषधराजरुचस्त्यजन्ती रूपादरज्यत नले न विदर्भसुभ्रूः" नै० १३. ३८ (२) "नेत्रे स्वयं रज्यतः" उत्तर० ५. ३६. ।

णिच् रञ्ज्+णिच्—लाक्षादिना रक्तीकरणे (रंगना), प्रसादने च (खुश करना); रञ्जयति । अनु+रञ्ज्—अनुरागे । अप+रञ्ज्—विरागे । उप+रञ्ज्—उपरागे, राहुग्रासे । वि+रञ्ज्—विरागे ।

अनुवाद करो—विनोदिनीने दो सन्तानको (द्वितीया) प्रसव किया है। लक्ष्मणने इन्द्रजित्के साथ युद्ध किया था। वे पद-पदमें (प्रतिपदम्) विपन्न होते हैं। यह काम तीन दिनोंमें सम्पन्न हुआ था। जो इसे समझेगा, वह फल पायेगा। उनके परम आलस्यसे सब कोई दुःखित हुए। यदि उनसे व्याकुल न रहे, तो जाओ। हम कभी उनके वचनसे खिन्न

नहीं होंगे। सब लोगोंने इसके वाक्यका आशय अच्छे प्रकारसे नहीं समझा।

स्वादि।

क्रियाघटन-सूत्र।

[इस प्रकरणमें २५८। २६०। २६१ सूत्रोंका कार्य्य होगा।]

२७५। चतुर्णकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमें स्वादिगणीय धातुके उत्तर 'नु' आगम होता है, यथा—सु+ति=सु+नु+ति—

२७६। * सानुग (ति, सि, मि, तु, द्, म्, आनि, आव, आम, अम्, ऐ, आवहै, आमहै) विभक्ति परे रहनेसे, 'नु' और 'उ' इन दोनों आगमोंका गुण होता है, यथा—सुनोति। उ—तन्+उ+ति=तनोति।

२७७। 'नु' परे रहनेसे, 'श्रु' के स्थानमें 'श्र', और 'धिव्' के स्थानमें 'धि' होता है, यथा—श्रु+ति=श्रु+नु+ति=श्र+णु+ति=श्र+णो+ति=शृणोति; धिव्+ति=धिव्+नु+ति=धि+नु+ति=धि+नो+ति=धिनोति॥

२७८। * विभक्तिका अगुण स्वरवर्ण परे रहनेसे, स्वरवर्णके परस्थित 'नु' और 'उ' आगमोंके उकारके स्थानमें 'व्', और व्यञ्जनवर्णके परस्थित 'नु' के उकारके स्थानमें 'उव्' होता है, यथा—(स्वर) श्रु+अन्ति=श्र+नु+अन्ति=श्र+णु+अन्ति=श्र+ण्+व्+अन्ति =शृण्वन्ति। (व्यञ्जन) शक्+अन्ति=शक्+नु+अन्ति=शक्+न्+उव्+अन्ति=शक्नुवन्ति।

२७९। * 'व' और 'म' परे रहनेसे, 'नु' और 'उ' आगमोंके

उकारका विकल्पसे लोप होता है, किन्तु 'नु' व्यञ्जनवर्णसे मिलित होनेसे नहीं होता, यथा—(नु) शृणु+व=शृण्व, शृणुव। (उ) तन्+उ+व=तन्व, तनुव। व्यञ्जन—शक्नुव।

२८०। * अकार भिन्न अन्य वर्णके परस्थित 'अन्ते,' 'अन्ताम्' और 'अन्त' विभक्तिके नकारका लोप होता है, यथा—मस्नुत्+अन्ते= मस्नुत्+अते=मस्नुते।

स्वादि परस्मैपदी धातु।

श्रु श्रवणे—सुनना To hear

(मार्गं—"मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपम्" मेघ० १३।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति
मध्यमपुरुष	शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ
उत्तमपुरुष	शृणोमि	शृण्वः, शृणुवः	शृण्मः, शृणुमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
मध्यमपुरुष	शृणु	शृणुतम्	शृणुत
उत्तमपुरुष	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्
मध्यमपुरुष	अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अशृणवम्	अशृणव, अशृणुव	अशृणम, अशृणुम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
मध्यमपुरुष	शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
उत्तमपुरुष	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

लृट्।

प्रथमपुरुष	श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति
मध्यमपुरुष	श्रोष्यसि	श्रोष्यथः	श्रोष्यथ
उत्तमपुरुष	श्रोष्यामि	श्रोष्यावः	श्रोष्यामः

✤ आ + श्रु, प्रति + श्रु—प्रतिज्ञायाम्। सम् + श्रु—अकर्मक आत्मनेपदम्, संशृणुते, "हिताद्य संशृणुते स किंप्रभुः" भा० १ ५। ✤

शक् (शक्लृ) सामर्थ्ये—सकना To be able

(अकर्मक, 'तुमुन्' अन्त क्रियापदके साथ प्रायशः प्रयुक्त होता है—यथा शक्नोति हरिं द्रष्टुम्। सकर्मक धातुके योगसे सकर्मक होता है, इदं वक्तुं शक्यते, "शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुम्" र० २ ४०, अन्यत्रापि—"धारया मनेनापि सुदोऽमराणाम्"—सम्पाद्य इत्यर्थ—नै० ६ ९८।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शक्नोति	शक्नुतः	शक्नुवन्ति

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	शक्नोषि	शक्नुथः	शक्नुथ
उत्तमपुरुष	शक्नोमि	शक्नुवः	शक्नुमः
		लोट्।	
प्रथमपुरुष	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
मध्यमपुरुष	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
उत्तमपुरुष	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम
		लङ्।	
प्रथमपुरुष	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्
मध्यमपुरुष	अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत
उत्तमपुरुष	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम

विधिलिङ्—शक्नुयात्। लृट्—शक्ष्यति।

अनुवाद करो—सबसमय गुरुजनोंका वाक्य सुनना। कभी अश्लील वाक्य सुनना नहीं चाहिये। मैंने प्रातःकालमें मेघका गर्जन सुना था। तू कोकिलकी मधुर ध्वनि नहीं सुनता है क्या? राम श्याम दोनों भाई गान सुन रहे हैं।

* * * *

स्वादि सकर्मक परस्मैपदी धातु।

आप् (आप्लृ) प्राप्तौ—पाना To obtain—आप्नोति। आप्स्यति।

ज्ञानात् कैवल्यमाप्नोति।

☞ अव+आप्—प्राप्तौ, लाभे। प्र+आप्—प्राप्तौ, उपगमने च—"जटायु प्राप रावणम्" भ० ६ ९६, "प्रापदाश्रमम्" र०

१ ८९ । सम्+प्र+आप्—सम्प्राप्तौ । वि+आप्—व्याप्तौ । सम्+आप्—प्राप्तौ । सम्+आप्+णिच्—समापने, समाप्ति करणे, समापयति । ❋

क्षि हिंसायाम् (नाशे)—नष्ट करना To destroy—क्षिणोति, क्षेष्यति । "न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति" २० २ ८० ।

❋ कर्मकर्त्तरि—क्षीयते (क्षीण होना), "प्रतिक्षणमयं कायः क्षीयमाणो न लक्ष्यते" हितो० ४ ६९, "प्रत्यासन्नविरविधुरमनसः प्रायो मतिः क्षीयते" पञ्च० २, ४ । ❋

दु (टुदु) उपतापने (पीड़ने)—दुखाना, सताना To torment, afflict—दुनोति, दोष्यति । "वर्गद्वयं मति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः" कु० ३ २८ । "मन्मथेन दुनोमि" गीतगो० ३ १—इत्यत्र अकर्मक ।

धिन्व् (धिवि) प्रीणने—सन्तुष्ट करना To please, satisfy—धिनोति ; धिन्विष्यति । "धिनोति द्रव्येन हिरण्यरेतसम्" मा० १ २२ ।

पृ प्रीणने—पृणोति, परिष्यति । अतिथीन् पृणोति ।

हि प्रेरणे—प्रेरण करना, निक्षेप करना To send forth, impel, to throw or discharge—हिनोति, हेष्यति । "गदा शक्रजिता जिघ्ये" भ० १४, ३६ ।

❋ प्र+हि—प्रेरणे (भेजना); निक्षेपे च । ❋

स्वादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

अश् (अशू) व्याप्तौ (पूरणे, आच्छादने, प्राप्तौ)—(१) व्याप्त

करना, (२) प्राप्त होना To pervade, fill completely, to get, obtain

((१) "क्षमातल बलजन्यरादिरानशे" माघ० १७ ४६, (२) "अत्यु-त्कटै पुण्यपापैरिहैव फलमश्नुते" हितो० १ ८४ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अश्नुते	अश्नुवाते	अश्नुवते
मध्यमपुरुष	अश्नुषे	अश्नुवाथे	अश्नुध्वे
उत्तमपुरुष	अश्नुवे	अश्नुवहे	अश्नुमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	अश्नुताम्	अश्नुवाताम्	अश्नुवताम्
मध्यमपुरुष	अश्नुष्व	अश्नुवाथाम्	अश्नुध्वम्
उत्तमपुरुष	अश्नवै	अश्नवावहै	अश्नवामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	आश्नुत	आश्नुवाताम्	आश्नुवत
मध्यमपुरुष	आश्नुथाः	आश्नुवाथाम्	आश्नुध्वम्
उत्तमपुरुष	आश्नुवि	आश्नुवहि	आश्नुमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	अश्नुवीत	अश्नुवीयाताम्	अश्नुवीरन्
मध्यमपुरुष	अश्नुवीथाः	अश्नुवीयाथाम्	अश्नुवीध्वम्
उत्तमपुरुष	अश्नुवीय	अश्नुवीवहि	अश्नुवीमहि

लृट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अशिष्यते	अशिष्येते	अशिष्यन्ते
	अद्यते	अद्येते	अद्यन्ते
मध्यमपुरुष	अशिष्यसे	अशिष्येथे	अशिष्यध्वे
	अद्यसे	अद्येथे	अद्यध्वे
उत्तमपुरुष	अशिष्ये	अशिष्यावहे	अशिष्यामहे
	अद्ये	अद्यावहे	अद्यामहे

स्वादि सकर्मक उभयपदी धातु।

वृ (वृञ्) वरणे (प्रार्थनायाम्)—मनोनीत करना, पसन्द करना, चाहना To choose, select (as a boon).

("ववार रामस्य वनप्रयाणम्" भ० ३ ६,

"यदेव वव्रे तदपश्यदाहृतम्" र० ३. ६ ।)

(परस्मैपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वृणोति	वृणुतः	वृण्वन्ति
मध्यमपुरुष	वृणोषि	वृणुथः	वृणुथ
उत्तमपुरुष	वृणोमि	वृण्वः, वृणुवः	वृण्मः, वृणुमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	वृणोतु	वृणुताम्	वृण्वन्तु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	वृणु	वृणुतम्	वृणुत
उत्तमपुरुष	वृणवानि	वृणवाव	वृणवाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अवृणोत्	अवृणुताम्	अवृण्वन्
मध्यमपुरुष	अवृणोः	अवृणुतम्	अवृणुत
उत्तमपुरुष	अवृणवम्	अवृण्व,अवृणुव	अवृण्म,अवृणुम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	वृणुयात्	वृणुयाताम्	वृणुयुः
मध्यमपुरुष	वृणुयाः	वृणुयातम्	वृणुयात
उत्तमपुरुष	वृणुयाम्	वृणुयाव	वृणुयाम

लृट्—वरिष्यति, वरीष्यति।

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	वृणुते	वृण्वाते	वृण्वते
मध्यमपुरुष	वृणुषे	वृण्वाथे	वृणुध्वे
उत्तमपुरुष	वृण्वे	वृणुवहे	वृणुमहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	वृणुताम्	वृण्वाताम्	वृण्वताम्
मध्यमपुरुष	वृणुष्व	वृण्वाथाम्	वृणुध्वम्
उत्तमपुरुष	वृणवै	वृणवावहै	वृणवामहै

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अवृणुत	अवृण्वाताम्	अवृण्वत
मध्यमपुरुष	अवृणुथाः	अवृण्वाथाम्	अवृणुध्वम्
उत्तमपुरुष	अवृण्वि	अवृणुवहि	अवृणुमहि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	वृण्वीत	वृण्वीयाताम्	वृण्वीरन्
मध्यमपुरुष	वृण्वीथाः	वृण्वीयाथाम्	वृण्वीध्वम्
उत्तमपुरुष	वृण्वीय	वृण्वीवहि	वृण्वीमहि

लृट्—वरिष्यते, वरीष्यते।

❀ अप + वृ, अप + आ + वृ—उन्मोचने, प्रकाशने। आ + वृ—गोपने, आच्छादने, रोधे च। प्र + आ + वृ—परिधाने। नि + वृ + णिच्—निवारणे, निवारयति। निर् + वृ—निर्वृतौ, सुखे, स्वस्थतायाम्। वि + वृ—व्याख्याने, प्रकाशने च। परि + वृ—वेष्टने। सम् + वृ—गोपने; निरोधे च। ❀

*　　*　　*　　*

स्वादि सकर्मक उभयपदी धातु।

चि (चिञ्) चयने (राशीकरणे, सङ्ग्रहणे)—चुनना, बटोरना, इकट्ठा करना To collect, gather, accumulate—चिनोति, चिनुते, चेष्यति, चेष्यते। द्विकर्मक—वृक्षं पुष्पं चिनोति।

❀ कर्मकर्त्तरि—वृद्धौ (बढ़ना); चीयते; "राजहंस! तव सैव शुभ्रता चीयते न च न चापचीयते" काव्यप्रकाश; "चीयते बालिश-

स्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषि" मुद्रा० १ ३ । अप + वि—कर्मकर्त्तरि —हानौ, क्षये, अपचीयते । अव + वि—चयने । आ + वि—सञ्चये, सङ्ग्रहे, व्याप्तौ, आच्छादने च । उद् + वि—सङ्ग्रहे । उप + वि—वर्द्धने (बढ़ाना); "यश स्तोमानुपचिकरचित्" अनर्घ० १, ३६,—कर्मकर्त्तरि—वृद्धौ, उपचीयते, "वने नैव सह्योपचीयते मद" काद० । नि + वि—व्याप्तौ, प्रधानत 'क्त'-प्रत्ययान्तही व्यवहृत होता है, "शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलम्" शकु० ७ ११ । निर् + चि—निश्चये । परि + चि—ज्ञाने, अभ्यासे च । प्र + चि—कर्मकर्त्तरि—वृद्धौ; प्रचीयते । वि + चि—सञ्चये, अन्वेषणे च—"विष्णु विचिन्वन्ति योगिनो विमुक्तये" (ब्यायन्तीत्यर्थ) १० १० २३ । सम् + चि—सञ्चये । ✤

धु (धुञ्), धू (धूञ्) कम्पने—हिलाना To shake—धुनोति, धुनुते, धूनोति, धूनुते, धु—अनिट्, धू—वेट्, धोष्यति धोष्यते, धविष्यति धविष्यते । "धूनोति चम्पकवनानि धुनोत्यशोक (वायु)"। (२) अपनोदने, "सप्तमपि शिरस्यन्ध क्षिप्ता धुनोत्यहिशङ्कया" शकु० ७ २४ ।

✤ अव + धू—निरासे । आ + धू—ईषत्कम्पे । उद् + धू—उत्क्षेपे । निर् + धू, नि + धू—निरासे, नाशे । ✤

सु (षुञ्) सुरासन्धाने, सोमादे पीडने, मन्थने; स्नाने च—(१) मद्य चुआना; (२) सोमलताप्रभृतिको निचोड़ना; (३) मथना, (४) नहाना (कक०) To distil, to press out or extract juice; to churn, to bathe—सुनोति, सुनुते,

सोप्यति, सोप्यते।

❀ अभि + सु—स्नाने; अभिषुणोति; "वाराँसोमभिषुण्वते" अ-र्ग्वेद: २ २९ । ❀

स्तृ (स्तृञ्) आच्छादने—ढाँपना, बिछाना To spread, strew, cover—स्तृणोति, स्तृणुते, स्तरिष्यति, स्तरिष्यते। "शिरोभि र्मही तस्तार" १० ४ ६३।

❀ आ + स्तृ—विस्तारे (बिछाना)। परि + स्तृ—विस्तारे, आवरणे च। वि + स्तृ—विस्तारे। ❀

अनुवाद करो—जो सर्वान्त करणसे प्रयत्न करता है, वह उपयुक्त फल पाता है। इस वर्ष वणिक् लोगोंने वाणिज्यसे लक्ष रुपये प्राप्त किये हैं। परिश्रमका फल तुमने पाया, परन्तु उसने क्यों नहीं पाया? मनुष्य पूर्ण अध्यवसायसे क्या नहीं पा सकता? मेघ चारों दिशायें व्याप्त करता है। प्रबल झञ्झावातसे वृक्षसमूह कम्पित होते हैं। भक्तगण प्रातःकालमें उठकर (उत्थाय) पुष्प चयन करते हैं। परिमित और नियमित भोजनसे शरीरका स्वास्थ्य और बल बढ़ते हैं। बाल्यकालसेही प्रतिदिन थोड़ी थोड़ी विद्या सञ्चय करना और उसके लिये (तदर्थम्) सद्गुरुका (द्वितीया) वरण करना चाहिये। शङ्का मत करो। मेरे साथ रामचन्द्रको प्रेरण करो। राक्षस हमें अत्यन्त सताते हैं। रामचन्द्र अवश्य राक्षसोंका (द्वितीया) संहार करनेमें (संहर्तुम्) समर्थ होगा।



तनादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[इस प्रकरणमें २६८ । २६० । २६१ । २७६ । २७८ । २७९ । २८० सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

२८१ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्त्तृवाच्यमें तनादिगणीय धातुके उत्तर 'उ' आगम होता है, यथा—तन् + ति = तन् + उ + ति = तनोति ।

२८२ । सगुण विभक्ति परे रहनेसे, कृ—कर्, अन्यत्र 'कुर्' होता है ।

२८३ । व, म और य परे रहनेसे, 'कृ' धातुके उत्तर विहित 'उ' आगमका लोप होता है ।

तनादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

कृ (डुकृञ्) करणे—करना To do

("तात ! किं न करवाण्यहम् ?", "सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्" भर्त्तृ० ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
मध्यमपुरुष	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
उत्तमपुरुष	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु
मध्यमपुरुष	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
उत्तमपुरुष	करवाणि	करवाव	करवाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
मध्यमपुरुष	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उत्तमपुरुष	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
मध्यमपुरुष	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
उत्तमपुरुष	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
उत्तमपुरुष	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

(आत्मनेपद)

लट् ।

प्रथमपुरुष	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
मध्यमपुरुष	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उत्तमपुरुष	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

लोट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
मध्यमपुरुष	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उत्तमपुरुष	करवै	करवावहै	करवामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
मध्यमपुरुष	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उत्तमपुरुष	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
मध्यमपुरुष	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उत्तमपुरुष	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

लृट्।

प्रथमपुरुष	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
मध्यमपुरुष	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
उत्तमपुरुष	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

❀ अलम्+कृ—भूषणे (सजाना); अलङ्करोति। ऊरी, उररी+कृ—स्वीकारे। पुरस्+कृ—पूजायाम्, अग्रत करणे च। तिरस्+कृ—भर्त्सने, आच्छादने च। बहिस्+कृ—दूरीकरणे; बहिष्करोति। सत्+कृ—आदरे। नमस्+कृ—नमस्कारे। सजू+कृ—सहायीकरणे। अधि+कृ—स्वामित्वे, नियोगे, विषयीकरणे च। अनु+कृ—अनुकरणे। अप+

कृ—अपकारे; जिसका अपकार किया जाय, उसमें प्रायशः षष्ठी होती है: "किं तस्या मयाऽपकृतम्?" पञ्च० ४. कहीं द्वितीया और सप्तमी होती है: "अथवा सैनिका. कश्चिदपकुर्युर्युधिष्ठिरम्" महाभा०: "न येषु महीजसदर्प्यादपकुर्वन्ति मलिम्लुचा इव" माघ० १६. ५२.। आ + कृ + णिच्—आह्वाने, आकारयति। अप + आ + कृ—अपसारणे। उप + आ + कृ—सत्कारपूर्वकवेदग्रहणे, सत्कारपूर्वकपरिग्रहणे च। "सौमित्रे! सीमन्तमुपाकुरु" रामा०। निर् + आ + कृ—निराकरणे, निरास्ते। वि + आ + कृ—व्याख्यायाम्। उप + कृ—उपकारे: प्रायशः षष्ठीके साथ, "न हि दीपौ परस्परस्योपकुरुत" शारीरकभाष्यम्; (२) करणे च। "किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि?"। परा + कृ—परिहरणे। परि + कृ—भूषणे; शोधने, निर्मलीकरणे च; परिष्करोति, पर्यस्करोत्। वि + प्र + कृ—पीडने; "किं सत्त्वानि विप्रकरोषि?" शकु० ७; (२) विकारप्रापणे च; "कमपरमवशं न विप्रकुर्युर्विभुमपि तं यदमी स्पृशन्ति भावाः?" कु० ६. ९५.। प्रति + कृ—प्रतिकारे। वि + कृ—विकारे: "उपरक्षवत् धर्मो विकरोति हि धर्मिणम्"; "चित्तं विकरोति कामः"; अकर्मक होनेसे आत्मनेपदी होता है; "छात्रान्तमुपकर्णे प्रकुर्वाणि विकुर्वते (मित्राणि)" र० १७. ४८. (विरुद्ध चेष्टन्ते अपकुर्वते इत्यर्थः)। सम् + कृ—अलङ्करणे; शोधने च; संस्करोति।

* * * *

तन् (तनु) विस्तारे (प्रसारणे)—तानना, पसारना, फैलाना To spread, stretch, extend—तनोति, तनुते; तनिष्यति, तनिष्यते। "तनोति रविस्तापम्" कु० २. ३३।—(२) करणे, उत्पादने:

"त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुदाहम्" गीतगो० ४ ७, "पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भक" र० ३ २९, (३) अनुष्ठाने, निष्पादने; "नवतिं नवाधिका महाक्रतूना ततान" र० ३. ६९ (४) रचने च, "तनुते टीकाम्" ।

※ अव + तन्—व्याप्तौ । आ + तन्—व्याप्तौ, "आतेने वनगहनानि वाहिनी सा" मा० ७, २९, (२) उत्पादने, "जडतामातनोति" उत्तर० ३ १२, (३) करणे, "सरय्यामाततान" कादं० । प्र + तन्—विस्तारे । वि + तन्—विस्तारे, व्याप्तौ, करणे, उत्पादने, रचने च । वि + तन् + णिच्—दीर्घीकरणे, विस्तारे, वितानयति । सम् + तन्—विस्तारे । ※

तनादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

मन् (मनु) बोधे—जानना, समझना To consider, regard, deem—मनुते, मन्यते । "मनुते मनुतुल्योऽसौ प्रजामात्मजवत् प्रभु", "समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते" भर्तृ० ।

अनुवाद करो—सभी अपना अपना काम करो । उन्होंने इस कामको उत्तमरूपसे किया । भोजनके पश्चात् और रात्रिमें स्नान नहीं करना । जो लोग असत् कार्य्य करते हैं, वे अवश्य दु ख पाते हैं । तू कर, मैं भी करूँ । वह करे तो करे, मै नहीं करूंगा । रामकी माताने मनोयोगसे गृहसंस्कार किया है । शिष्यगण गुरुका (द्वितीया) अनुकरण करते हैं । मै उसका प्रतिकार करूगा । प्राणपणसे दूसरेका उपकार करना ।



क्र्यादि।

क्रियाघटन-सूत्र।

[इस प्रकरणमें २६० । २६१ । २६३ । २८० सूत्रोंका कार्य होगा।]

२८४। चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमें क्र्यादिगणीय धातुके उत्तर 'ना' आगम होता है, यथा—अश् + ति = अश्नाति।

२८५। 'अम्'-भिन्न विभक्तिका स्वरवर्ण परे, 'ना'—'न्' होता है; यथा—अश् + अन्ति = अश् + ना + अन्ति = अश् + न् + अन्ति = अश्नन्ति।

२८६। 'ना' परे रहनेसे, धातुके उपधा नकारका लोप होता है; यथा—मन्थ् + ति = मन्थ् + ना + ति = मथ्नाति।

२८७। अगुण व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'ना'—'नी' होता है, यथा—अश् + ना + त = अश्नीत।

२८८। 'ना' परे रहनेसे, पू, लू, धू, शॄ, दॄ, वॄ और कॄ धातुका अन्त्य स्वर ह्रस्व होता है, यथा—पू + ना + ति = पुनाति।

२८९। व्यञ्जनवर्णके परस्थित 'ना'—'हि' के साथ मिलकर 'आन' होता है, यथा—अश् + हि = अश् + ना + हि = अश् + आन = अशान।

२९०। 'ना' परे रहनेसे, ग्रह्—गृह्, और ज्ञा—जा होता है; यथा—ग्रह् + ति = गृह्णाति; ज्ञा + ति = जानाति।



क्र्यादि ।

सकर्मक उभयपदी धातु ।

क्री (डुक्रीञ्) क्रये (मूल्यदानेन द्रव्यग्रहणे)—
मोल लेना To buy
(क्रीणाति क्रीणीते धान्य धनेन लोकः ।)
(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति
मध्यमपुरुष	क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ
उत्तमपुरुष	क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु
मध्यमपुरुष	क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत
उत्तमपुरुष	क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
मध्यमपुरुष	अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
उत्तमपुरुष	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
उत्तमपुरुष	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

लृट्—क्रेष्यति।

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
मध्यमपुरुष	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
उत्तमपुरुष	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
मध्यमपुरुष	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
उत्तमपुरुष	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
मध्यमपुरुष	अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
उत्तमपुरुष	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
मध्यमपुरुष	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
उत्तमपुरुष	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

लृट्।

प्रथमपुरुष	क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
मध्यमपुरुष	क्रेष्यसे	क्रेष्येथे	क्रेष्यध्वे
उत्तमपुरुष	क्रेष्ये	क्रेष्यावहे	क्रेष्यामहे

❋ परि+क्री—क्रयविशेषे (किराया लेना To hire, purchase for a time)। वि+क्री—विक्रये, विक्रीणीते, 'विनिमय' (बदला बदली करना To barter, exchange) अर्थमें परस्मैपदी होता है, "विक्रीणाति तिलैस्तिलान्" पञ्च० २ ७२। ❋

ज्ञा बोधे (ज्ञाने)—जानना To know

("आपत्सु मित्रं जानीयात्" हितो० १ ७४। उपसर्गविहीन उभयपदी, "जाने तपसो वीर्य्यम्" शकु० ३. २, "न त्वं दृष्ट्वा न पुनरल्का ज्ञास्यसे कामचारिन्!" मेघ० ६३; "सन्दर्भ-शुद्धिं गिरां जानीते जयदेव एव" गीतगो० १. ४.।)

(परस्मैपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जानाति	जानीतः	जानन्ति
मध्यमपुरुष	जानासि	जानीथः	जानीथ
उत्तमपुरुष	जानामि	जानीवः	जानीमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	जानातु	जानीताम्	जानन्तु
मध्यमपुरुष	जानीहि	जानीतम्	जानीत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	जानानि	जानाव	जानाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
मध्यमपुरुष	अजानाः	अजानीतम्	अजानीत
उत्तमपुरुष	अजानाम्	अजानीव	अजानीम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः
मध्यमपुरुष	जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात
उत्तमपुरुष	जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम

लृट्।

प्रथमपुरुष	ज्ञास्यति	ज्ञास्यतः	ज्ञास्यन्ति
मध्यमपुरुष	ज्ञास्यसि	ज्ञास्यथः	ज्ञास्यथ
उत्तमपुरुष	ज्ञास्यामि	ज्ञास्यावः	ज्ञास्यामः

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	जानीते	जानाते	जानते
मध्यमपुरुष	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
उत्तमपुरुष	जाने	जानीवहे	जानीमहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
मध्यमपुरुष	जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	ज्ञानै	ज्ञानावहै	ज्ञानामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अज्ञानीत	अज्ञानाताम्	अज्ञानत
मध्यमपुरुष	अज्ञानीथाः	अज्ञानाथाम्	अज्ञानीध्वम्
उत्तमपुरुष	अज्ञानि	अज्ञानीवहि	अज्ञानीमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
मध्यमपुरुष	जानीथाः	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
उत्तमपुरुष	जानीय	जानीवहि	जानीमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
मध्यमपुरुष	ज्ञास्यसे	ज्ञास्येथे	ज्ञास्यध्वे
उत्तमपुरुष	ज्ञास्ये	ज्ञास्यावहे	ज्ञास्यामहे

* अनु+ज्ञा—अनुमतौ, "तदनुजानीहि मा गमनाय" उत्तर० ३. । अनु+ज्ञा+णिच्—गमनाय आदेशग्रहणे, आमन्त्रणे, आप्रच्छने ; अनुज्ञापयति ; "स मातरमनुज्ञाप्य तपस्येव मनो दधे" महाभा० । अभि+ज्ञा—अनुस्मृतौ, ज्ञाने च । प्रति+अभि+ज्ञा—अनुस्मरणे । अव+ज्ञा—अनादरे, अवमाननायाम् । आ+ज्ञा—ज्ञाने । आ+ज्ञा+णिच्—आदेशे, शासने, विज्ञापने च । उप+ज्ञा—आद्यज्ञाने, "पाणिनिना उपज्ञातं व्याकरणम्" (विनोपदेशेन ज्ञातम्) । परि+ज्ञा—परिज्ञाने, निश्चये । प्र+ज्ञा—सम्यग्बोधे, परिज्ञाने । प्रति+ज्ञा—प्रतिज्ञायाम्,

आत्मनेपदी ; "हरचापारोपणेन कन्यादानं प्रतिजानीते" प्रसन्नराघवम् ४. । वि + ज्ञा—विशिष्टज्ञाने । वि + ज्ञा + णिच्—विज्ञापने ; विज्ञापयति । ❦

ग्रह उपादाने (ग्रहणे, स्वीकारे)—लेना

To take, accept

("प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्" र० १ १८. ।—(२) धारणे ; "तं कण्ठे जग्राह" काद० (३) वशीकरणे ; "गृहीतुमार्य्यान् परिचर्य्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः" माघ० १. १७ ; (४) ज्ञाने ; "तथाऽपि मृगतृष्णिकया तथैव गृहीतम्" शाकु० ६ ; "नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः" मनु० ८. २६ , (५) जायते ; "वार्द्धौद न गृह्णीयात्" ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति
मध्यमपुरुष	गृह्णासि	गृह्णीथ	गृह्णीथ
उत्तमपुरुष	गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीम•

लोट् ।

प्रथमपुरुष	गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
मध्यमपुरुष	गृहाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्
मध्यमपुरुष	अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत
उत्तमपुरुष	अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयुः
मध्यमपुरुष	गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात
उत्तमपुरुष	गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम

लृट्—ग्रहीष्यति ।

(आत्मनेपद)

लट् ।

प्रथमपुरुष	गृह्णीते	गृह्णाते	गृह्णते
मध्यमपुरुष	गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीध्वे
उत्तमपुरुष	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
मध्यमपुरुष	गृह्णीष्व	गृह्णाथाम्	गृह्णीध्वम्
उत्तमपुरुष	गृह्णै	गृह्णावहै	गृह्णामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अगृह्णीत	अगृह्णाताम्	अगृह्णत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अगृह्णीथाः	अगृह्णाथाम्	अगृह्णीध्वम्
उत्तमपुरुष	अगृह्णि	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
मध्यमपुरुष	गृह्णीथाः	गृह्णीयाथाम्	गृह्णीध्वम्
उत्तमपुरुष	गृह्णीय	गृह्णीवहि	गृह्णीमहि

लृट्।

प्रथमपुरुष	ग्रहीष्यते	ग्रहीष्येते	ग्रहीष्यन्ते
मध्यमपुरुष	ग्रहीष्यसे	ग्रहीष्येथे	ग्रहीष्यध्वे
उत्तमपुरुष	ग्रहीष्ये	ग्रहीष्यावहे	ग्रहीष्यामहे

❀ ग्रह्+णिच्—विक्षेपे, ग्राहयति। अनु+ग्रह्—अनुग्रहे; "महात्मानोऽनुगृह्णन्ति भजमानानरीनपि" माघ० २ १८। अव+ग्रह्—निग्रहे। उद्+ग्र+णिच्—उपन्यासे; उद्ग्राहयति। उप+ग्रह्—परिग्रहे; "अव्यवसायिनं प्रमदेव वृद्धपतिं नेच्छत्युपग्रहीतुं लक्ष्मीः" हितो०। नि+ग्रह्—पीडने। परि+ग्रह्—आदाने, स्वीकारे। प्र+ग्रह्—प्रकर्षेण ग्रहणे। प्रति+ग्रह्—स्वीकारे; आक्रमणे च। वि+ग्रह्—युद्धे, कलहे, समस्तस्य पृथक्करणे च। सम्+ग्रह्—सङ्ग्रहे। ❀

* * * *

क्र्यादि सकर्मक परस्मैपदी धातु।

अश् भोजने—खाना To eat—अश्नाति, अशिष्यति। अभात्यन्न

बुभुक्षित ।

✤ उप + अश्—उपभोगे, प्राप्तौ च । प्र,सम् + अश्—भोजने । ✤

कुष् निष्कर्षे (नि सारणे, बहिष्करण)—फाड़कर निकालना To tear, extract, pull or draw out—कुष्णाति, कोषिष्यति । "शिवा कुष्णन्ति मांसानि" म० १८ १२ ।

✤ निर् + कुष्—बहिर्नि सारणे, विदारणे, निष्कुष्णाति, निष्कोक्ष्यति, निष्कोषिष्यति । ✤

क्लिश् (क्लिशू) बाधने (पीड़ने)—दुःख देना To torment, afflict, molest, distress—क्लिश्नाति, क्लेशिष्यति, क्लेक्ष्यति । "स क्लिश्नाति भुवनत्रयम्" कु० २ ४० ।

गॄ शब्दे (वक्तौ, उच्चारणे, स्तुतौ)—(१) कहना, (२) स्तव करना To speak, utter, relate, to praise, extol—गृणाति, गरिष्यति, गरीष्यति । (१) गृणाति वाक्य लोक, (२) "केचिद्भीता प्राञ्जलयो गृणन्ति" गीता ११. २१. ।

ग्रन्थ् सन्दर्भे (ग्रन्थने, रचनायाम्)—(१) गूथना, (२) बनाना To tie or string together, to write, compose—ग्रथ्नाति, ग्रन्थिष्यति । (१) ग्रथ्नाति मालां मालिक, "काच मणि काञ्चनमेकसूत्रे ग्रथ्नन्ति मुग्धा", (२) "ग्रथ्नामि काव्यशशिनं विततार्थरश्मिम्" काव्यप्रकाश १० ।

✤ उद् + ग्रन्थ्—बन्धने । सम् + ग्रन्थ्—रचनायाम् । ✤

दॄ विदारणे—फाड़ना To tear, rend, sunder—दृणाति; दरिष्यति, दरीष्यति । "दृणाति च रिपून् रणे" ।

॥ वि + दृ—विदारणे, "स्तन विददार काक" अनर्थः। ॥
पुष् पोषणे (भरणे, वर्द्धने)—(१) पालना, (२) बढ़ाना To nourish, maintain, support, to increase, augment—पुष्णाति; पोषिष्यति। (१) "तेनाद्य वत्समिव लोकममु पुषाण" भट्टि०, (२) "पुपोष लावण्यमयान् विशेषान्" कु० १ २५ ।—(३) प्रकाशने, खोलने, "न हीश्वरव्याहृतय कदाचित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम्" कु० ३ ६३ ।
बन्ध् बन्धने—बाँधना To bind, tie, fasten—बध्नाति; भन्त्स्यति। "प्रत्यासमिता न बबन्ध नीवीम्" र० ७. ९ ।—(२) परिधाने, "न हि चूडामणि पादे प्रभवामीति बध्यते" पञ्च० १ ७८; (३) रचने, "श्लोक एव त्वया बद्ध" रामा०।
॥ अनु + बन्ध्—सम्बन्धे, अपरित्यागे, अनुवर्त्तने; "सत्योऽयं जनप्रवादो यद्विपद्विपद मनुबन्नाति सम्पदम् सम्पदमनुबध्नाति" काद०। आ + बन्ध्—बन्धने, करणे च—'आबद्धाञ्जलि'। उत् + बन्ध्—गलरज्ज्वादिना ऊर्द्ध्वबन्धने। नि + बन्ध्—बन्धने, स्थिरीकरणे, रचनायाञ्च। निर् + बन्ध्—आग्रहे। प्र + बन्ध्—रचनायाम्। प्रति + बन्ध्—व्याघाते, निरोधे, 'प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः" र० १. ८०। सम् + बन्ध्—सम्बन्धे, संयोगे। ॥
मन्थ् विलोडने* (मन्थने, संक्षोभे, पीडने, विनाशे)—(१) मथना, (२) हिलाना, विचलित करना, सताना (३) विनष्ट करना

* 'मन्थ्' (मथि) धातु भ्वादि परस्मैपदीभी होता है, मन्थति। 'मथ' (मथे) धातुभी होता है भ्वादि परस्मैपदी, मथति।

To churn, to agitate, to oppress, afflict, to destroy—मथ्नाति, मन्थिष्यति । (१) मथ्नाति दधि बल्लवी; द्विकर्मक—सुधां सागरं ममन्थुः, (२) "मा मथ्नातीव मन्मथः" महाभा०, "मन्मथो मां मथ्नन् निजनाम सान्वयं करोति" दश-कु०, (३) "मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपात्?" वेणी० १ १५ ।

मुष् (मुषु) स्तेये (चौर्ये, लुण्ठने, अपाकरणे)—(१) चोरी करना, (२) दूर करना To steal, rob, plunder, to dispel—मुष्णाति, मोषिष्यति । (१) "मुषाण रत्नानि" माघ० १. ५१, द्विकर्मक—देवदत्तं शतं मुष्णाति, (२) "दैवं प्रज्ञां मुष्णाति" महाभा०, "विषयबाहुल्यं कालविप्रकर्षश्च न स्मृतिं मुष्णाति" महावीर० ।

मृद् क्षोदे (मर्दने, चूर्णीकरणे, विनाशने)—(१) मींड़ना, मलना, चूरना, (२) विनष्ट करना To rub, press, squeeze, to pound, pulverize, to destroy—मृद्नाति, मर्दिष्यति । (१) "मम च मृदितं क्षौमं बाल्ये त्वदङ्गविवर्तनैः" वेणी० ५ ३०, "मृद्नाति द्विषतां दर्पं यो भुजाभ्यां भुवः पतिः", (२) "बला-न्यमृद्नान्नलिनाभवक्त्रः" र० १८ ५ ।

॥॰ अभि, अव + मृद्—निष्पेषणे, पीडने, दलने, उच्छेदे । उप + मृद्—हनने, विनाशने । वि + मृद्—घर्षणे । सम् + मृद्—पीडने, सञ्चूर्णने । ॥॰

शॄ हिंसने (हनने, छेदने)—हिंसा करना, मारना, टुकड़ा करना To kill, destroy, to tear to pieces—शृणाति, शरि

ष्यति, मथिष्यति । "कनकमय कन्दुक परिमहा ! मथ्नाति यस्मात् प्रसभेन तन्वं ते" भा० १४ १३; "मथ्नन्निव परुषं वचो मथ्नन्तु" महावीर० ३. ३२. ।

स्तम्भ् (स्तम्भु) रोधने; जडीकरणे च—(१) रोकना; (२) निश्चल करना, बे-होश करना To stop, hinder suppress; to stupefy, paralyze, benumb—स्तभ्नाति, स्तभ्नोति (स्वादि) स्तम्भिष्यति । (१) "कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषः" शकु० ४ ६, (२) "प्राणा दध्वंसिरे, गात्रं तस्तम्भे च प्रिये हृते" भा० १४ ६६. ।

❁ अव + स्तम्भ्—अवलम्बने, निरोधे च । उत् + स्तम्भ्—धारणे, आश्रये । उप + स्तम्भ्—आश्रये । वि + स्तम्भ्—प्रतिबन्धे, निवारणे; व्यापने, धारणे च । सम् + स्तम्भ्—निरोधे; स्थिरीकरणे च । ❁

क्र्यादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

धू (धूञ्) कम्पने—हिलाना To shake—धुनाति, धुनीते; धोष्यति धोष्यते, धविष्यति धविष्यते । धूनं धुनाति वायुः ।

पू (पूञ्) शोधने (पवित्रीकरणे)—शुद्ध करना, पवित्र करना To purify, cleanse—पुनाति, पुनीते; पविष्यति, पविष्यते । "जाह्नवी मां पुनातु"; "भागीरथि ! पुनीहि माम्"; "पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे" शकु० १. ।

प्री (प्रीञ्) प्रीणने—प्रीत करना, खुश करना To satisfy—प्रीणाति, प्रीणीते; प्रेष्यति, प्रेष्यते । "प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं

स पुत्र = भर्तृ० । "प्रभु प्रीणातु विश्वभुक्", "कच्चिन्मनस्ते प्रीणाति वनवासे ?" महाभा०—इत्यत्र अकर्मकोऽपि ।

वृ (वृञ्) वरणे—प्रार्थना करना To choose, ask for—वृणाति, वृणीते, वरिष्यति वरिष्यते, वरीष्यति वरीष्यते । "पुत्र ! वरं वृणीष्व" र० २ ६३ ।

लू (लूञ्) छेदने—काटना, लावनी करना To cut, sever, reap—लुनाति, लुनीते, लविष्यति, लविष्यते । "शरासनज्यामलुनाद् बिडौजस" र० ३ ५९, "लुनीहि नन्दनम्" माघ० १ ५१. ।

स्तृ (स्तृञ्) आच्छादने—ढाँकना, बिछाना To cover, strew—स्तृणाति, स्तृणीते, स्तरिष्यति स्तरिष्यते, स्तरीष्यति स्तरीष्यते ।

अनुवाद करो—ग्वालेलोग साँझके समय दूध मथते हैं । दूसरेका द्रव्य नहीं चुराना । फूलके फूलसे माला गूथते हैं । रावणने त्रिभुवनको नचाया था । माता दूधसे बालकका (द्वितीया) पोषण करती है । घसियारे इस मैदानमें गायोंको बाँधते हैं । बाजारमें (विपणि, आपण) सब लोग द्रव्यादि क्रय करते हैं । यहाँ दूकानदारलोग (आपणिक, विपणिन्) सब द्रव्य बेचते हैं । धर्मशील पुत्र पिताको पवित्र करता है । मैं कभी भी सत्यमार्ग नहीं छोड़ूंगा,—उसने यह प्रतिज्ञा की थी । हमलोगोंको भोजनके लिये अनुज्ञा कीजिये । किसानलोग दात्र द्वारा धान्य छेदन करते हैं । मलयपवन वृक्षको हिलाता है । अन्याय उपायसे उपार्जित वस्तु ग्रहण नहीं करना । धर्मके लिये सङ्ग्रह करो ।



चुरादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

२११ । चुरादिगणीय धातुके उत्तर स्वार्थमें 'णिच्' होता है ; 'णिच्'-का 'इ' रहता है ।

२१२ । * 'णिच्' परे रहनेसे, धातुके उपधा अकार तथा अन्त्य-स्वरकी वृद्धि, और उपधा ह्रस्वस्वरका गुण होता है, यथा—(वृद्धि) हृ + इ = हारि, (गुण) चुर् + इ = चोरि ।

२१३ । *'णिच्' परे रहनेसे, पूर्ववर्त्ती अकारका लोप होता है; यथा—कथ + इ = कथि ।

२१४ । 'णिच्' परे रहनेसे, कृत्-कीर्त्, और कृप्—कल्प् होता है ।

२१५ । * णिजन्त, सनन्त, यङन्त और काम्यादि* प्रत्ययान्त-की फिर 'धातु' संज्ञा होती है, और चतुर्दशारमें भ्वादिगणीय धातुके तुल्य कार्य्य होता है ; यथा—कथि + ति = कथि + अ + ति = कथे + अ + ति = कथयति ।

चुरादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

भक्ष् अदने (भक्षणे)—खाना To eat.

(भक्षयति तण्डुलान् मूषिकः ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भक्षयति	भक्षयत	भक्षयन्ति

* काम्य, यङ्, क्यङ्, क्विप् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	भक्षयसि	भक्षयथः	भक्षयथ
उत्तमपुरुष	भक्षयामि	भक्षयावः	भक्षयामः
		लोट् ।	
प्रथमपुरुष	भक्षयतु	भक्षयताम्	भक्षयन्तु
मध्यमपुरुष	भक्षय	भक्षयतम्	भक्षयत
उत्तमपुरुष	भक्षयाणि	भक्षयाव	भक्षयाम
		लङ् ।	
प्रथमपुरुष	अभक्षयत्	अभक्षयताम्	अभक्षयन्
मध्यमपुरुष	अभक्षयः	अभक्षयतम्	अभक्षयत
उत्तमपुरुष	अभक्षयम्	अभक्षयाव	अभक्षयाम
		विधिलिङ् ।	
प्रथमपुरुष	भक्षयेत्	भक्षयेताम्	भक्षयेयुः
मध्यमपुरुष	भक्षयेः	भक्षयेतम्	भक्षयेत
उत्तमपुरुष	भक्षयेयम्	भक्षयेव	भक्षयेम
		लृट् ।	
प्रथमपुरुष	भक्षयिष्यति	भक्षयिष्यतः	भक्षयिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	भक्षयिष्यसि	भक्षयिष्यथः	भक्षयिष्यथ
उत्तमपुरुष	भक्षयिष्यामि	भक्षयिष्यावः	भक्षयिष्यामः

* * * *

चुरादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

अञ्च् (अञ्चु) विशेषणे (प्रकाशने, जनने, वर्द्धने)—प्रकाश करना, बढ़ाना

To manifest, produce, increase—अङ्कयति, अङ्कयिष्यति । "मुदमङ्कय" गीतगो० १०. ११ ।

अर्च् पूजायाम्—पूजा करना, सम्मान करना To adore, worship, honour—अर्चयति । "दूरस्थो नार्चयेदगुरुम्" मनु० २. २०२. ।

✠ अभि और सम् उपसर्गके साथभी इसी अर्थमे प्रयुक्त होता है । ✠

अर्ज् अर्जने—कमाना To earn—अर्जयति ।

✠ उप + अर्ज्—उपार्जने, "चिरकालोपार्जित सुहृद" हितो० । ✠

अर्ह् पूजायाम्—अर्हयति ।

ईर् प्रेरणे, क्षेपणे, चालने, कथने च—(१) फेंकना; (२) हिलाना; (३) कहना To throw, cast, to move, shake, to utter, say—ईरयति । (१) "ऐरिरत् महाद्रुमम्" भ० १५. ५२; (२) "वातेरितपल्लवाङ्गुलिभि" शकु० १, (३) "न च सरसमनेष्वपि तेन वागपरपा परुषाक्षरमीरिता" र० ९. ८ ।

✠ उद् + ईर्—उच्चारणे, उक्ती, उत्क्षेपणे, प्रकाशने, उत्पादने च । अभि + उद् + ईर्—उक्ती । प्र + ईर्—प्रेरणे । सम् + ईर्—विक्षेपणे; कम्पने च । ✠

कृत् संशब्दने (कीर्तने)—कथन करना mention, repeat, utter, declare—कीर्तयति । "कीर्तयन्ति च गोष्ठेषु यद्गुणास्तपोधना", "विप्रसेवैव शूद्रस्य प्रशस्तं कर्म कीर्त्यते" मनु०१० १२३. ।

कल्प् (कृप्) करणे (विन्यासे, रचनायाम्, निर्माणे; निरूपणे)—(१) सोचना; (२) तैयार करना, (३) निर्देश करना To consider, imagine; to prepare, to compose, to

settle—कल्पयति । (१) "कल्पयन्तु मे विपरीत कल्पयति" मुद्रा० ७, (२) "शयनमप्याकल्पयत्" काद०, "इदं शास्त्रमकल्पयत्" मनु० १. १०२, (३) "आसन कल्पयामास" महाभा० ।

⚜ अव + क्लृप्—सम्भावनायाम् । उप + क्लृप्—विन्यासे, आयोजने । परि + क्लृप्—करणे, निश्चये च । प्र + क्लृप्—उद्भावने; निरूपणे च । वि + क्लृप्—सन्देहे । सम् + क्लृप्—सङ्कल्पे, मानस क्रियायाम्, इच्छायाम् । ⚜

क्षल् शौचने (क्षालने)—धोना To wash, purify—क्षालयति । "क्षालयामि तव पादपङ्कजे" महाना० ३. ४९ ।

⚜ प्र + क्षल्, वि + क्षल्—प्रक्षालने । ⚜

खण्ड् (खडि) भेदने (भञ्जने, खण्डने, छेदने, विनाशे)—(१) टुकड़ा करना, काटना, (२) नष्ट करना To break to pieces, cut; to destroy—खण्डयति । (१) "खण्डं खण्डमखण्डयत् मातुलङ्गमत्" महाना० २. ४, (२) "रजनीचरनाथेन खण्डितं तिमिरं निशि" हितो० ।

गर्ह् कुत्सायाम्—निन्दा करना To blame—गर्हयति । "विपन्नां हि दशां प्राप्य दैवं गर्हयते नरः" हितो० ४. ३—इत्यत्र आत्मनेपदमपि । "त विगर्हन्ति साधवः" मनु० ९. ६८ (भ्वादि० आत्मनेपदी) ।

गुप् गोपने—छिपाना To conceal—गोपयति । "वित्तं गोपयति यस्तु वनीयकेभ्यः" ।

घट् सङ्घाते (योजनायाम्)—जोड़ना To join, unite—घाटयति ।

घाटयति कवाट द्वारि जन (सयोजयतीत्यर्थ) ।

✽ उत्+घट्—उद्घाटने (खोलना), "मञ्जूषा यन्त्रैरुद्घाटयामास", "कपाटमुद्घाटयामि" मृच्छ० ३ । ✽

घट्ट चालने—हिलाना To shake—घट्टयति ।

✽ आ+घट्ट—आघाते । वि+घट्ट—अभिघाते । सम्+घट्ट—सङ्घर्षे । ✽

घुष् (घुषिर्) विशब्दने (कथने, आविष्करणे, घोषणायाम्) ढण्ढोरा करना, मुहरत देना, मनादी करना To cry or proclaim aloud, announce or declare publicly—घोषयति । "इति घोषयतात्र डिण्डिम" हितो० २ ८४, "यमुरस्य जयमनोघयत्" र० ९ १० ।

✽ आ, वि+घुष्—घोषणायाम् । प्र+उत्+घुष्—निनादने । ✽

चट् भेदने—चाटयति ।

✽ उत्+चट्—उच्चाटने, अपसारणे ; "उच्चाट इव कातालिकाना दानादिदानो मवतीमिरेप ?" नै० ३ ७ । ✽

चर्च् अध्ययने (अनुशीलने)—चर्चा करना To peruse, study repeatedly—चर्चयति । चर्चयति वेदं विप्र ।—अनुलेपने, "चन्दनचर्चितनीलकलेवर०" गीतगो० १ ४० ।

चर्व् अदने (चर्वणे)—चबाना To chew, eat, browse—चर्वयति, चर्वति । चर्वयति चर्वति तण्डुल बालक , "रथ वक्त्रे निक्षिप्य दशनैश्चर्वयति" सप्तशती ।

चिन्त् (चिति) स्मृत्याम् (चिन्तायाम्)—चिन्ता करना, गौर करना To-

think, reflect—चिन्तयति। "चिन्तय तावत् केनापदेशेन पुनराश्रमपदं गच्छाम" शकु० २ ।—उद्भावने To devise, "कोऽप्युपायश्चिन्त्यताम्" हितो० १ ।

❋ परि, वि, सम् + चिन्त्—अत्यन्तचिन्तायाम्, ध्याने, स्मरणे।❋

चुद् प्रेरणे (क्षेपणे, चालने; नियोगे, प्रश्ने च)—(१) फेंकना, (२) चलाना, (३) नियुक्त करना; (४) पूछना, शङ्का करना To throw, to drive on, to prompt, impel, to ask, to adduce as an argument or objection—चोदयति। (१) "नारैर्मन्मथचोदितैः" महाभा०, (२) "चोदयाश्वान्" शकु० १; (३) "तान् वने मानुषांश्चोदयत्" महाभा०; "चोदयामास न, ममा वै क्रियतामिति" महाभा०, (४) "शिष्यान् समानीयाचार्योऽर्थमचोदयत्" महाभा०।

❋ प्र + चुद्, सम् + चुद्—प्रेरणे,—कथने च; परिवेषयेत प्रयतो गुणान् सर्वान् प्रचोदयन्" मनु० ३ २२८; "सञ्चोदयामास नीयं याहीति मारथिम्" रामा०। ❋

चुर् स्तेये (चौर्य्यं)—चोरी करना To steal—चोरयति। चोरयति धन चोर; "मधुपुरवधूमनोऽभिरामताम्" माघ० १. १६.।

चूर्ण् प्रेरणे (चूर्णीकरणे)—चूरना To pulverize, pound—चूर्णयति। "चूर्णयत्यरिमण्डलं च"।

छद् अपवारणे (आच्छादने, गोपने)—ढकना, छिपाना To cover hide, conceal, veil—उभयपदी; छादयति, छादयते; छदति, छदते। छादयति छादयते दिस मेघ।

❀ अव, आ, प्र + छद्—आच्छादने, मवरणे, गोपने । सम् + छद्—आच्छादने, व्यापने । ❀

छन्द्—❀ उप + छन्द्—प्रलोभने, प्रार्थनायाञ्च—उपच्छन्दयति । ❀

जस् हिंसायाम्, ताडने च—जासयति ।

❀ उत् + जस्—उन्मूलने To kill, destroy, extirpate—उज्जासयति । पर्शके साथ, निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहाम्" माघ० १ ३७ । ❀

टङ्क (टकि) बन्धने—टाँकना To tie, fasten, to stitch—टङ्कयति ।

❀ उत् + टङ्क—उल्लेखे, सर्वेऽपि धातवोऽत्र सार्थां उट्टङ्किता । ❀

तड् आघाते (ताडने)—मारना, पीटना To beat, strike—ताडयति । "लालयेत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्" चाणक्य ।—वादने, "अताडयन् मृदङ्गांश्च" म० १७ ७. ।

तप् दाहे (उष्णीकरणे, व्यथनेच)—(१) गर्म करना; (२) पीड़ा देना To heat, to torment—तापयति । (१) "न हि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया" हितो० १ ८७; (२) "भृशं तापित-कन्दर्पेण" गीतगो० २१ २२ ।

तर्क् वितर्के (विचारे, ऊहे, सन्देहे)—गुमान करना, विचार करना, अनुमान करना To conjecture, infer, suspect—तर्कयति । "त्वं तावत् कतमां तर्कयसि ?" शकु० ६, "वृक्षसेचनाद् अमवर्तां परिश्रान्तां तर्कयामि" शकु० १, "(पातु) त्वं चेदच्छ-स्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्य्यगम्भ" मेघ० ६१ ।

❀ प्र, वि + तर्क्—वितर्के। ❀

तिज् निशाने (तीक्ष्णीकरणे)—तेज करना, पैनाना To sharpen, whet—तेजयति। "कुसुमचापमतेजयदंशुभिर्हिमकरः" र० ९ ३९।

❀ उत् + तिज्—उद्दीपने, प्रोत्साहने, व्यग्रकरणे, तीक्ष्णीकरणे च। ❀

तुल् उन्माने (परिमाणे)—तोलना To weigh measure—तोलयति। तोलयति काञ्चनं वणिक्।—उत्थापने, "कैलासे तुलिते" महावीर० ६ ३७।

❀ उत् + तुल्—उत्तोलने, उर्द्धनयने। ❀

दुल् उत्क्षेपे—डुलाना, झुलाना To swing, shake to and fro—दोलयति। "स दोलयति शुद्रा सहशाली"।

धृ धारणे, गृहीतापरिशोधने च—(१) धारण करना, (२) धारना To hold, sustain, to assume, to put on (clothes, ornaments &c), to owe anything to a person—धारयति। (१) "धारयन् मस्करिव्रतम्" भ० ५ ६३, (२) "तस्मै तस्य वा धनं धारयसि"।

पट् विदारणे (छेदने)—चीरना, फाड़ना, तोड़ना To split, tear up, to break—पाटयति। "कश्चिन्मध्यात् पाटयामास दन्ती" माघ० १८, ५१। "अन्याह भित्तिषु मया निशि पाटितासु" मृच्छ० ३. १४.।

❀ उत् + पट्—उत्पाटने, उन्मूलने (उखाड़ना)। ❀

पाल् रक्षणे (पालने)—पालना To protect, nourish—पालयति। अपत्यवत् पालयति प्रजा नृप।

पीड् बाधने (पीडने, क्लेशदाने)—दुखाना To pain, torment—पीडयति। पीडयति शत्रु लोक।—मर्दने च (दाबना), "अमेन सिकतासु तैलमपि यत्नत पीडयन्" भर्तृ०।

⚜ उप+पीड्—सङ्कुप, उत्सारणे, नोदने, पीडने च। उप+पीड्—संश्लेषे, पीडने च। नि+पीड्—पीडने, धारणे, आलिङ्गने च। निर्+पीड्—निष्पीडने, आर्द्रवस्त्रादेर्निर्जलीकरणे (निचोड़ना)। ⚜

पुष् धारणे (पोषणे)—पोषण करना To nourish, bring up, maintain—पोषयति। "परपिण्डेनात्मानं पोषयामि" हितो०।

पूज् पूजायाम् (सम्माने, प्रशंसायाम्)—पूजा करना To worship, revere—पूजयति। "राजानं पूजयति" रघु० १.।

पूर् आप्यायने (पूरणे)—पूर्ण करना To fill, to fulfil, satisfy—पूरयति। "पूरय मधुरिपुकामम्" गीतगो० ६ १४।

भू चिन्तायाम्; शोधने; मिश्रणे, उत्पादने; वर्द्धने च—(१) चिन्ता करना (२) शुद्ध करना, (३) मिलाना, (४) पैदा करना; (५) बढ़ाना To think or reflect, consider, to purify, to mingle or mix, to produce, to foster, cherish—भावयति। (१) "अर्थमनर्थं भावय नित्यम्" मोहमुद्गर, (२) 'तपसा भावितात्मानो ज्ञानं विन्दन्ति निश्चितम्', (४) "भूतानि भावयति जनयति वर्द्धयतीति वा भूतभावन" विष्णुसहस्रनामभाष्यम्, (५) "देवान् भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु व। परस्परं भावयन्त श्रेय परमवाप्स्यथ॥"

गीता ३ । ११ ।

भूष् अलङ्करणे (भूषणे)—सिङ्गारना To adorn—भूषयति । "शुचि भूषयति श्रुतं वपुः, प्रशमस्तस्य भवत्यलङ्क्रिया" मा० २ । ३२ ।

मण्ड् (मडि) भूषायाम्—भूषित करना To adorn, decorate—मण्डयति । मण्डयति हारो जनम् ।

मान् पूजायाम् (सम्मानने)—सम्मान करना To honour, respect—मानयति । "मान्यान् मानय" भर्तृ० ।

मार्ग् अन्वेषणे (अनुसन्धाने)—ढूँढना To seek for—मार्गयति, मार्गति । मार्गयति मार्गति गुणं गुणी ।

मार्ज्, मृज् (मृजू) शोधने (मार्जने, दूरीकरणे)—मलना, हटाना To purify, cleanse, to wipe—मार्जयति । "यो मार्जयति सान्द्रान्धकारमवाप्यवाक्यताम्" ।

मर्ष् तितिक्षायाम् (क्षमायाम्)—क्षमा करना To endure, to pardon, excuse—मर्षयति, मर्षति, मर्षयते । "आर्य्य ! मर्षय मर्षय" वेणी० १ ।

मोक्ष् मोचने—मुक्त करना, छोड़ना, फेंकना To release, to cast—मोक्षयति । "त्वां शरान्मोक्षयिष्यति" महाभा०, "लक्ष्येषु मोक्षयति यश्च शरं मनुष्यः" ।

यत् परिभवे (ताडने), अलङ्करणे च—यातयति ।

✤ निर् + यत्—प्रत्यर्पणे (फेर देना To return), प्रतिदाने, वैरशुद्धौ च (बदला लेना To requite, repay, retaliate)—"रामलक्ष्मणयोर्वैरं स्वयं निर्यातयामि ते" रामा० । ✤

यन्त्र् (यत्रि) बन्धने (नियमने)—रोकना, अटकाना, दबाना To restrain, curb, check—यन्त्रयति । "स्नेहकारुण्ययन्त्रित" महाभा० ।

✤ नि+यन्त्र्—'यन्त्र्' वत् । ✤

लक्ष् दर्शने (ज्ञाने), अङ्कने (चिह्नीकरणे) च—(१) देखना, (२) चिह्नित करना To perceive, to apprehend, to mark—उभयपदी, लक्षयति, लक्षयते । लक्षयति लक्षयते घट लोक (पश्यति, चिह्नयुक्त करोति वा इत्यर्थः), "चरितान्यस्य लक्षय" महाभा० ।

✤ आ+लक्ष्—आलोचने, ज्ञाने च । उप+लक्ष्—ज्ञाने, अनुमाने, विशेषणे—"केदारोपलक्षित", लक्षणया बोधने च—"काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामित्यादौ दध्युपघातकर्तृत्वेन श्वादिरुपलक्ष्यते" । सम्+लक्ष्—सम्यग्दृष्टौ, परीक्षायाम् । ✤

लङ्घ् (लघि) लङ्घने (अतिक्रमणे)—लांघना, पार होना To leap or pass over—लङ्घयति । "गिरिमलङ्घयत्" र० ४ ६२; "यशो भवद्गुरुर्लङ्घयितु नमोद्यन" र० ३ ४८ । भ्वादिगणीय उभयपदीभी होता है, लङ्घति, लङ्घते, "लङ्घते स्म मुनिरेष विमानान्" नै० ५ ४ ।

✤ उत्, वि+लङ्घ्—उल्लङ्घने । ✤

लड् उपसेवायाम् (अत्यन्तपालने, लालने)—लाड करना To caress, fondle—लाडयति । लालयति । "लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणाः । तस्मात् पुत्रञ्च शिष्यञ्च ताडयेन्न तु लालयेत् ॥" चाणक्य ।

❀ उप + लट्—"बालकमुपलालयन्" शकु० ७ । ❀

लोक् (लोकृ) दर्शने—देखना To behold—लोकयति ।

❀ अव, आ, वि + लोक्—दर्शने । ❀

लोच् (लोचृ)—❀ आ + लोच्, परि + आ + लोच्—चिन्तने, विचारणे, निरूपणे । ❀

वच् परिभाषणे (वाचने, पाठे)—बांचना To read, peruse—वाचयति । "नामाङ्कितामसुहृता वाचयत्यखिला लिपिम्" ।

वण्ट् (वटि) विभाजने (वण्टने)—बाँटना To divide—वण्टयति । पक्षे—भ्वादि परस्मैपदी—वण्टति । "वण्टयन्ति धना रत्नं, विप्रा वण्टन्ति हाटकम्" ।

वृ वारणे—रोकना To prevent—वारयति । वरेभ्यो गा वारयति, "प्रविशन्त न कश्चिद्वारयन्" ।

❀ अप + वृ—आच्छादने, गोपने । ❀

वृज् (वृजी) वर्जने (त्यागे)—छोड़ना To shun, give up, abandon—वर्जयति । "वर्जयेद्दलता नृत्यम्" ।

❀ अप + वृज्—त्यागे, दाने, छेदने च । आ + वृज्—आनमने, दाने, प्रसादने च । वि + वृज्—परित्यागे । ❀

शिष् असर्वोपयोगे (पारशेषीकरणे)—बचाना, छोड़ देना, बाकी रखना To leave as a remainder, spare—शेषयति, शेषति । शेषयति शेषति यशोराशिं लोक (अवशिष्टं करोतीत्यर्थ) ।

❀ अव + शिष्, परि + शिष्—अवशेषे । वि + शिष्—अतिशायने, अतिक्रमे, पराभवे, तिरस्कारे । निर् + शिष्—शून्यीकरणे,

उन्मूलने, उत्पादने, निरोसने । ❀

श्रण् दाने To give away, bestow—प्रायेणायं 'वि' पूर्व—विश्राणयति । "विश्राणयति य धीमान् विप्रेभ्यो विपुलं वसु" ।

सद्—❀ आ + सद्—प्राप्तौ, गमने (सन्निकर्षे) च—पाना, जाना To obtain, to go to, approach—आसादयति । "सासादयति विद्यानां पारम्", "क्व स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रः नति कर्षति" । ❀

सान्त्व् समाश्वासने (सान्त्वनायाम्)—तसल्ली देना To soothe, comfort—सान्त्वयति । सान्त्वयति शोकार्त्त दयालु ।

सूद्—❀ नि + सूद्—हिंसने To kill—निसूदयति, निषूदयति । ❀

स्फुट् भेदने—फोड़ना To burst or rend asunder, split—स्फोटयति ।

❀ आ + स्फुट्—ताडुकाड़ने, "याद्र चास्फोटयच्छने" महाभा०। ❀

स्वद् आस्वादने (रसोपादाने)—चखना To taste—स्वादयति । स्वादयति क्षीरं लोकः ।

❀ आ + स्वद्—आस्वादने, अनुभवे । ❀

चुरादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

कुत्स् भर्त्सने (निन्दायाम्)—निन्दा करना To abuse—कुत्सयते । "पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्" मनु० २ ५४—इत्यत्र परस्मैपदी, आर्षमन्येषु पदनियमामावात् ।

चित् ज्ञाने—जानना To know—चेतयते* । "कादम्बरीरसभरेण

* ज्ञानार्थमें 'चित्' (चिती) धातु भ्वादिगणीय परस्मैपदीभी होता

समन्त एव मर्त्यो न चिच्छिदपि चेतयते जनोऽयम्" कादम्बरी।

तन्त्र् कुटुम्बधारणे (धारणे, पोषणे)—To support, maintain (as a family)—तन्त्रयते।—शासने, नियमने, "प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा" शकु० ५. ५।

तर्ज् भर्त्सने—डाँटना, झिड़कना To scold to threaten—तर्जयते। बहुत परस्मैपदमें भी महाकविप्रयोग दीखता है, "सखीमङ्गुल्या तर्जयति" शकु० १. 'आहितानिशंद्रुतम्तर्जयन्निव केतुभिः" र० ४. २८।

भर्त्स् भर्त्सने (धमकाना)—भर्त्सयते। परस्मैपदी—वोपदेव।

भल्—आ० नि+भल्—दर्शने—निभालयते। परस्मैपदी भी। आ०

मन्त्र् (मत्रि) गुप्तभाषणे (मन्त्रणायाम्)—सलाह करना To consult—मन्त्रयते। "कुरु त्वं वा मन्त्रयते" नै० ३. १०७। क्वचित् परस्मैपदी भी होता है "किमेकाकिनी मन्त्रयसि?" शकु० ३, "हन्त! सर्वङ्कषालालसिकेऽप्यतोक्तिताद्वितीया त्वं किं मन्त्रयन्त्यामी?" मालती० २.।

आ० अनु, अभि+मन्त्—अभिमन्त्रणे, मन्त्रसंस्कारणे। आ+मन्त्र्—कथने प्रस्थानानुमतिप्रार्थने सम्बोधने, निमन्त्रणे च। नि+मन्त्र्—निमन्त्रणे। आ०

दन्श् (दन्शु) विलम्बने (धर्षणे, वञ्चनायाम्)—धोखा देना,

है; यथा—चेतति; चेतिष्यति। अविद्यानिद्रयाऽऽक्रान्ते जगत्येव चेतति" (आर्त्ति, प्रबुध्यते इत्यर्थः), "...चेतयेनेति" (चै तन्ययुक्त भवतीत्यर्थः) पञ्चदशी० ६ १८०; "चित्तेन ...

ठगना To cheat, deceive—वञ्चयते । "कथमथ वञ्चयते जनमनुगतमसमशरज्वरदूनम्" गीतगो॰ ८ ७. । परस्मैपदी भी होता है; "(सन्तम) वञ्चयन् प्रणयिनीर्विससार स" र॰ १९ १७. ।

सकर्मक अदन्त चुरादि धातु ।

अङ्क लक्षणे (चिह्नीकरणे)—चिह्नित करना, निशान करना To mark—अङ्कयति । अङ्कापयति । "अङ्कयानास वत्सान्" महाभा॰ ।

अर्थ याचने—मांगना To beg, ask, solicit—आत्मनेपदी; अर्थयते । द्विकर्मक—"स्वामिनमर्थमर्थयते" दशकु॰; "वैन्यं गत्वार्थयस्व धनम्" महाभा॰ ।

✿ अभि+अर्थ, प्र+अर्थ—प्रार्थनायाम् । सम्+अर्थ—विमर्शे; दृढीकरणे, समर्थीकरणे च । ✿

अवधीर अवज्ञायाम्—अनादर करना To disregard—अवधीरयति । "अवधीरयति साधुमसाधुः" ।

✿ यथा—अवधीर्य । "हितवदन्नवधीर्य" हितो॰; "हुर्णाव धारामवधीर्य" नै॰ १. ७२. । ✿

आन्दोल दोलने—झुलाना, हिलाना To swing, to shake—आन्दोलयति । "मन्दमारुतान्दोलिता लतेव" दशकु॰ ।

कथ वाक्यप्रबन्धे (कथने, वर्णने)—कहना To tell, relate—कथयति । प्रायश चतुर्थ्यन्त व्यक्तिवाचक शब्दके साथ; "रामभिन्नमन्दर्शनोत्सुकं मैथिलाय कथयाम्बभूव स" र॰ ११ ३७ ।

कर्ण भेदने ।—✿ आ+कर्ण—श्रवणे, आकर्णयति । ✿

कल गतौ; सङ्ख्यायाम् (गणनायाम्) च—कलयति । "कलि- कान-

धेनु = ।—(१) धारणे, ग्रहणे To hold, bear, assume, put on, "म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम्" गीतगो० १. ; "कलयति हि हिमांशोर्निष्कलङ्कस्य लक्ष्मीम्" मालती० १ २२ ; "कलय वलयश्रेणीं पाणौ" गीतगो० १२ २६ ।—(२) गणनायाम् To count, reckon, "कालः कलयतामहम्" गीता. १०. ३० ।—(३) करणे To make, "सदा पान्थः पूषा गगनपरिमाणं कलयति" मनूं०, "मधुमिलितमधुरकुम्कलितरावे (केलिसदने)" गीतगो० ११ १९. ।—(४) ज्ञाने To know, "कलयन्नपि सव्ययोऽव्ययम्" माघ० ९ ६३, "तथा निषिद्धालिङ्गनां मदैना छायाद्वितीयां कलयाञ्चकार" नै० ३ १२. ।—(५) चिन्तने, विचारे To think, consider, "व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम्" गीतगो० ४ ७, "कलयामि मणिनूपुरं बहुदूषणाम्" गीतगो० ७ ७ ।—(६) निर्माणे To form, "मरकतशकलकलितकलधौतलिपे" गीतगो० ८ ४ ।

❀ आ + कल—बोधे, बन्धने ; आक्रमणे, ग्रहणे, अधिकारे च । परि + कल—ज्ञाने । सम् + कल—सङ्कलने (योजने ; सङ्ग्रहे च) To add or sum up । वि + अव + कल—व्यवकलने, वियोजने To subtract or deduct ❀

क्षप क्षेपणे (दूरीकरणे ; अतिवाहने)—(१) दूर करना ; (२) काटना, गवाना To cast, to remove; to pass—क्षपयति । (२) "पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम्" स्मृति ।

गण सङ्ख्याने (गणनायाम् ; विचारे, ज्ञाने)—गिनना To count,

number, to consider—गणयति । "लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती" कु० ६ ८४, "पाञ्चजन्य महिमा स गण्यते, कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि य" र० ११ ७५ ।

ॐ वि + गण—ज्ञाने, निश्चये । अव + गण—अवज्ञायाम् । ॐ

गवेष मार्गणे (अन्वेषणे, अनुसन्धाने)—ढूँढना To seek—गवेषयति । गवेषयति गुण गुणी, "तस्मादेष यत्न प्राणस्तत्रैवान्यो गवेष्यताम्" कथासरित्सागर । "गवेषमाणं महिषीकुलं जलम्" ऋतु० १ २१—इत्यत्र भ्वादिगणीय आत्मनेपदी ।

गुण अभ्यासे (गुणने, पूरणे, 'आम्रेडने' इति मल्लिनाथ.—माघ० २ ७७) गुण करना, जर्ब करना To multiply—गुणयति । "इति पूर्तिश्च गुणके" इति भट्टबिद् ।

चित्र चित्रीकरणे (आलेख्यकरणे)—तस्वीर या शबीह् खींचना To paint—चित्रयति । चित्रयति प्रतिमा लोक । "वागुर्ङ्गसाधरित-चित्रितचित्तमद्य" (अलङ्कृत) गीतगो० १ २, "क्रौञ्चपदालीचित्रितलीला" छन्दोमञ्जरी ।

दण्ड दण्डनिपातने—दण्ड देना, डाण्डना To punish—दण्डयति । दण्डापयति । दण्डयति अपराधिन राजा । द्विकर्मक—"तान् सहस्रञ्च दण्डयेत्" मनु० ९. २३४ ; "अनृतन्तु वदन् दण्ड्य स्ववित्तस्यांशमष्टमम्" मनु० ८ ३६ । "कौटसाक्ष्य कुर्वाणान् दण्डयित्वा प्रवासयेत्" मनु० ८ ३६ ।

पार कर्मसमाप्तौ (शक्तौ)—सकना To be able—पारयति । "न मन्दु मातापित्रो भर्तृवियोगदु खिता दुहितरं द्रष्टुं पारयन" शकु० ६

"अधिकं न हि पारयामि वक्तुम्" भामिनी० ३ ६१।

मह पूजायाम् To honour, worship—महयति। "गोत्रार न निर्धाना महयन्ति महेश्वर विबुधा", "त्वां पुमानित्यगास्थैषा वृत्तं हि महित सताम्" कु० ६ १२।

मिश्र सम्पर्के (मिश्रणे, संयोजने)—मिलाना To mix—मिश्रयति। मिश्रयति घृतेनान्न लोक, "वाच न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभि" शाकु० १. २६।

मूत्र प्रस्रावे—पेशाब करना To make water—मूत्रयति। "तिष्ठन् मूत्रयति" महाभा०।

मृग अन्वेषणे—ढूंढना To search for—आत्मनेपदी, मृगयते। "रामो मृगं मृगयते वनवीथिकायाम्" महाना० ३ ९६।

रच रचनायाम् (प्रणयने, निर्माणे, करणे)—रचना, तैयार करना To prepare, to make, to compose—रचयति। "रचयति शयन सचकितनयनम्" गीतगो० ५ १०, "मौलौ वा रचयाञ्जलिम्" वेणी० ३ ४२, "अश्वघाटी जगन्नाथो विश्वहृद्यामरीरचत्", "रचयति चिकुरे कुरवककुसुमम्" (विन्यस्यति) गीतगो० ७ २३, "विरचितानुकरवेश" र० ९ ७६।

रस आस्वादने—चखना To taste, relish—रसयति। रसयति मधु द्विरेफ, "मृद्वीका रसिता" भामिनी० ४ १४।

रह त्यागे—छोड़ना To quit, abandon—रहयति। रहयति शोकं धीर, "रहदत्यापदुपेतमायति" मा० २ १४।

रूप रूपकरणे—बनाना To form—रूपयति। रूपयति प्रतिमा शिल्पी।

—(२) अभिनये (नाट्येन प्रकाशने—नाटकमें दिखलाना) To represent on the stage; "शकुन्तला मोहं रूपयति" शकु॰ ४ ।

❀ नि + रूप—निरूपणे (निर्णये, निश्चये, दर्शने; विचारणे, स्वरूपकथने च) । ❀

वर ईप्सायाम्—वरण करना, पसन्द करना To ask for, choose, seek to get—वरयति । "कन्या वरयते रूपम्" ।

वर्ण शुक्लादिवर्णकरणे (रञ्जने), वर्णने, स्तुतौ च—(१) रङ्गना; (२) वर्णन करना, (३) स्तुति करना To colour; to describe; to praise—वर्णयति । (१) प्रतिमां वर्णयति; (२) कथां वर्णयति; (३) हरिं वर्णयति ।

❀ निर् + वर्ण—दर्शने । ❀

वास उपसेवायाम् (गुणान्तराधाने, सुरभीकरणे)—सुगन्धित करना, खुशबूदार करना To scent, perfume—वासयति । वासयति वस्त्रं चन्दनं; "देहे चन्दनवद्वासयति मुखं कुमारस्य" हितो॰ ।

❀ अधि + वास—'वास'-वत् । ❀

विडम्ब अनुकरणे (सदृशीकरणे), वञ्चने च—(१) अनुकरण करना, नकल करना; (२) ठगना To imitate, copy, resemble; to cheat, to ridicule—विडम्बयति । (१) "(तं) कर्तुर्विडम्बयामास, न पुनः प्राप तच्छ्रियम्" र॰ ४. १७; (२) "एवमात्माभिप्रायसम्भावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्ब्यते" शकु॰ २. ।

वीज व्यजने (वायुसञ्चालने)—पङ्खा झलना To fan—वीजयति । सख्यौ शकुन्तलां वीजयतः; "वीज्यते स हि संहृतमानैः"

कु० ३. ४२ ।

व्यय वित्तसमुत्सर्गे (धनव्यये)—व्यय करना, खर्च करना, To expend—व्यययति । "बहु व्यययति द्रव्यम्" ।

शील अभ्यासे (अनुशीलने)—अभ्यास करना To practise repeatedly, study—शीलयति । "शीलयन्ति यतयः सुशीलताम्" मा० १३. ४३ ।—(२) परिधाने, "शीलय नीलनिचोलम्" गीतगो० ५. ११ ।—आश्रयणे, गमने, "यदनुगमनाय निशि गहनमपि शीलितम्" गीतगो० ७. ८, "स्मेरानना सपदि शीलय सौधमौलिम्" भामिनी० २. ४ ।

श्लथ दौर्बल्ये (शिथिलीकरणे)—शिथिल (ढीला) करना To slacken, loosen, relax—श्लथयति । "परित्राणस्नेहः श्लथयितुमशक्यः खलु मया" गङ्गालहरी ३७ ।

सभाज पूजने (सत्कारे), प्रीणने च—सम्मान करना, आनन्दित करना To salute, greet, pay respects, congratulate; to please, gratify—सभाजयति । "स्नेहात् सभाजयितुमेत्य" उत्तर० १. ७, "सुचरितनन्दिनः ऋषयो इव सभाजयितुमागता इति तर्कयामि" शकु० ५. ।—अलङ्करणे, "वधूपरिषद् पुण्यश्रीकं श्रियैव सभाजयन्" उत्तर० ४. १९ ।

सूच दर्शीकरणे—सूचित करना, प्रकाश करना, ज़ाहिर करना To indicate, reveal—सूचयति । "त्वां सूचयिष्यति तु माल्यसमुद्भवोऽयं (गन्धः)" मृच्छ० १. ३५, "मन्त्रो गुप्तद्वारो न सूच्यते" र० १७. ५८ ।

स्तेन चौर्य्ये—चोरी करना To steal—स्तेनयति।

"वाच्यर्था नियता सर्वे वाङ्मूला वाग्विनि सृता।

तां तु यः स्तेनयेद्वाच स सर्वस्तेयकृन्नर॥" मनु० ४ २५६।

स्पृह इच्छायाम्—चाहना To wish, long for—स्पृहयति। चतुर्थी-के साथ, पुष्पेभ्यः स्पृहयति, "न मथिलेय स्पृहयाम्बभूव भर्त्रे दिवो, नाप्यलकेश्वराय" र० १६ ४२।

अनुवाद करो—कभी अपरिमित भोजन नहीं करना। कोई द्रव्य एकाकी भोजन नहीं करना। तू अब जा, मैं उसके साथ बात करूँ। आज शिक्षक हमलोगोंको नीतिवाक्य कहेंगे। किसीके साथ झूठ मत कहो। आपने मुझे क्या कहा? किसीका द्रव्य चुराना नहीं चाहिये। रामदास एक एक करके (पृथक्त्वा) रुपया गिनता है। रातमें वहाँ नहीं जाना। किसीको (द्वितीया) भर्त्सना मत करो। वह जितना कमाता है, सभी व्यय करता है। इन फलोंको बाँट दो। सबका गुण कीर्त्तन करो। वे दुखीको तसल्ली देते थे। दुष्ट लोग जहाँ तहाँ सभीका दोष कीर्त्तन करते हैं। वाल्मीकिजीने ललित पद्योंमें रामचन्द्रका चरित्र समग्र वर्णन किया है। साधुलोग सर्वदा सद्विषयकी (द्वितीया) आलोचना करते हैं।



रुधादि।

क्रियाघटन-सूत्र।

[इस प्रकरणमें २६०। २६१ सूत्रोंका कार्य्य होगा।]

२९६। चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमें रुधादिगणीय धातुके अन्त्यस्वरके पश्चात् 'न्' होता है, यथा—रुध्+ति=रुन्ध्+ति—

२९७ । मधुग विभक्ति परे रहनेसे, 'न्'के स्थानमे स्वरान्त 'न' होता है, यथा—रुन्ध्+ति=रुणध् (१०० (क) सूत्र)+ति—

२९८ । * धकारसे परे 'त' अथवा 'थ' रहनेसे, दोनो मिलकर 'द्ध' होता है, यथा—रुणध्+ति=रुणद्धि ।

२९९ । * एक वर्गके तीन वर्ण एकत्र होनेसे, मध्यम वर्णका लोप होता है, यथा—रुन्द्+त =र (न्द्द)=रुन्त ।

३०० । * 'म' परे रहनेसे, 'द्' और 'ध'के स्थानमे 'न्' होता है, यथा—रुणध्+मि=रुणन्मि ।

३०१ । * व्यञ्जनवर्णके परस्थित 'हि'—'धि' होता है, यथा—रुध्+हि=रुन्ध्+धि=रुन्द्‍ +धि=रुन्धि (२९९ सू०) ।

३०२ । * व्यञ्जनवर्णके परस्थित लङ् का 'द्' और सकारका लोप होता है, यथा—अ+रुणध्+द्=अरुणध्=अरुणत् (२६० सू०) ।

३०३ । * एक्‌क मकारका लोप होनेसे, धातुके 'द्' और 'ध्'के स्थानमे विकल्पसे रेफ होता है, यथा—अरुणत्, अरुण ।

३०४ । * 'च' अथवा 'ज'—परस्थित तकारसे मिलकर 'क्त', और थकारसे मिलकर 'क्थ' होता है, यथा—भुन्+ते=भुनज्+ते=भुन्+क्ते=भुङ्क्ते ।

३०५ । * च, छ, ज, श, ष, ह और ध—परस्थित दन्त्य सकारसे मिलकर 'क्ष' होता है, यथा—भुनज्+से=भुङ्क्षे ।

३०६ । * 'ध' परे रहनेसे, 'च' और 'ज'के स्थानमे 'ग' होता है,

---

† एक वर्गके दो चतुर्थ वर्ण एकत्र होनेसे, आदिका वर्ण तृतीय वर्ण होता है ।

और विरामके अर्थात् कोई वर्ण परे न रहनेसे अन्तस्थित 'ह्' और 'श्' के स्थानमें 'क्' होता है; यथा—सुद्रुह्+स्वे=सुद्रुक्स्वे=सुद्रुक्षे; भुज्+द्=अभुनक्।

३०७। चतुर्थवार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमें 'हिन्स्'के स्थानमें 'हिन्' होता है; यथा—हिन्स्+ति=हिनस्ति।

३०८। * 'ध' परे रहनेसे, पूर्ववर्ती 'स' के स्थानमें 'द्' होता है, अथवा सकारका लोप होता है; यथा—हिन्स्+हि=हिन्स्+धि=हिन्द्+धि=हिन्धि।

३०९। ति, सि, मि, तु, द, स्—इन विभक्तियोंके परे रहनेसे, 'तृह्' धातुको 'नृ'—'ने' होता है; यथा—तृह्+ति=तृनेह्+ति=तृणेह्+ति—

३१०। य, र, ल, व, ह, न, म, ङ, ण भिन्न व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'ह'के स्थानमें 'ढ' होता है; यथा—तृणेह्+ति=तृणेढ्+ति—

३११। * टवर्ग और मूर्द्धन्य षकारसे परस्थित तवर्गके स्थानमें टवर्ग होता है; परन्तु 'ढ'से परस्थित 'त' और 'थ'के स्थानमें 'ढ' होता है; यथा—तृणेढ्+ति=तृणेढ्+ढि—

३१२। 'ढ' परे रहनेसे, पूर्व ढकारका लोप होता है, और उस भिन्न उसका स्वर दीर्घ होता है; यथा—तृणेढ्+ढि=तृणेढि। रुह्+त=रुढ्+त=रुढ्+ढ=रुढ्ढ=रूढ। (ऐसे) मुह्+क्त=मूढ।

३१३। * कोई वर्ण परे न रहनेसे, धातुके ज, श, ष और ह के स्थानमें 'ट' अथवा 'ड' होता है; और 'ध' परे रहनेसे, 'ड' होता है;

यथा—अतृणेह्=अतृणेट् अथवा अतृणेड्।

३१४। * वर्गके प्रथम और द्वितीय वर्ण तथा श, ष, स परे रहने-से, श, ष, स, ह भिन्न 'झट्' वर्णके स्थानमें प्रथमवर्ण होता है, यथा—छिद्+ति=छिनत्ति।



रुधादि।

सकर्मक परस्मैपदी धातु।

भञ् (भञ्जो) आमर्द्दने (भङ्क्ते)—तोडना To break

("भनक्त्युरुवन कपि" भ० ९ २, "भनज्मि मर्यादां" ६ ३८।—पराभवे, "क्षत्राणि राम परिभूय रामाद् क्षत्रादुपयाऽभज्यत स द्विजेन्द्र" नै० २२ १३३।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भनक्ति	भङ्क्तः	भञ्जन्ति
मध्यमपुरुष	भनक्षि	भङ्क्थः	भङ्क्थ
उत्तमपुरुष	भनज्मि	भञ्ज्वः	भञ्ज्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	भनक्तु	भङ्क्ताम्	भञ्जन्तु
मध्यमपुरुष	भङ्ग्धि	भङ्क्तम्	भङ्क्त
उत्तमपुरुष	भनजानि	भनजाव	भनजाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अभनक्	अभङ्क्ताम्	अभञ्जन्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अभनक्	अभङ्क्तम्	अभङ्क्त
उत्तमपुरुष	अभनजम्	अभञ्ज्व	अभञ्ज्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	भञ्ज्यात्	भञ्ज्याताम्	भञ्ज्युः
मध्यमपुरुष	भञ्ज्याः	भञ्ज्यातम्	भञ्ज्यात
उत्तमपुरुष	भञ्ज्याम्	भञ्ज्याव	भञ्ज्याम

लृट्—भङ्क्ष्यति, भङ्क्ष्यतः, भङ्क्ष्यन्ति।

हिंस् (हिसि) हिंसायाम्—मार डालना, नष्ट करना

To kill, destroy completely

("हिनस्ति दुष्कृत सूनृता वाक्"।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हिनस्ति	हिंस्तः	हिंसन्ति
मध्यमपुरुष	हिनस्सि	हिंस्थः	हिंस्थ
उत्तमपुरुष	हिनस्मि	हिंस्व	हिंस्म

लोट्।

प्रथमपुरुष	हिनस्तु	हिंस्ताम्	हिंसन्तु
मध्यमपुरुष	हिन्धि	हिंस्तम्	हिंस्त
उत्तमपुरुष	हिनसानि	हिनसाव	हिनसाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अहिन	अहिंस्ताम्	अहिंसन्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अहिन.	अहिंस्तम्	अहिंस्त
उत्तमपुरुष	अहिनसम्	अहिंस्व	अहिंस्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	हिंस्यात्	हिंस्याताम्	हिंस्युः
मध्यमपुरुष	हिंस्याः	हिंस्यातम्	हिंस्यात
उत्तमपुरुष	हिंस्याम्	हिंस्याव	हिंस्याम

लृट्— हिंसिष्यति, हिंसिष्यतः, हिंसिष्यन्ति ।

पिष् (पिष्लृ) सञ्चूर्णने (पेषणे)—पीसना To pound, grind, crush—पिनष्टि, पेक्ष्यति । पिनष्टि लोको गोधूमम् ।

शिष् (शिष्लृ) अवशेषे, विशेषणे (विशेषकरणे) च—(१) बाकी रखना, (२) विशेष करना, इमतियाज करना, तमीज करना, फर्क करना To leave as a remainder, to distinguish or discriminate from others—शिनष्टि, शेक्ष्यति । ✤ शिष्—कर्मकर्त्तरि—बाकी रहना, शिष्यते, "तेषामेकः शिष्यते, अन्ये लुप्यन्ते" । अव+शिष्—कर्मकर्त्तरि, "यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते" गीता ७ २ । वि+शिष्—यद्वने,—कर्मकर्त्तरि; अतिशये (बिहतर होना, अफज़ल होना), "मौनात् सत्यं विशिष्यते" मनु० २ ८३, "सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते" मनु० ४ २३३ । परि+शिष्—अवशेषे । ✤

तृह् हिंसायाम् (वधे)—To kill, hurt, injure

("तृणे तृणेढि ज्वरन् सन्तु ज्वरन् क्रमात् करोप-

द्रुमषण्डमण्डलम् ॥" नै० ९ १८१ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तृणेढि	तृण्ढः	तृंहन्ति
मध्यमपुरुष	तृणेक्षि	तृण्ढः	तृण्ढ
उत्तमपुरुष	तृणेह्मि	तृंह्वः	तृंह्मः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	तृणेढु	तृण्ढाम्	तृंहन्तु
मध्यमपुरुष	तृण्ढि	तृण्ढम्	तृण्ढ
उत्तमपुरुष	तृणहानि	तृणहाव	तृणहाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अतृणेट्	अतृण्ढाम्	अतृंहन्
मध्यमपुरुष	अतृणेट्	अतृण्ढम्	अतृण्ढ
उत्तमपुरुष	अतृणहम्	अतृंह्व	अतृंह्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	तृंह्यात्	तृंह्याताम्	तृंह्युः
मध्यमपुरुष	तृंह्याः	तृंह्यातम्	तृंह्यात
उत्तमपुरुष	तृंह्याम्	तृंह्याव	तृंह्याम

लृट्—तर्हिष्यति, तर्क्ष्यति ।

अञ्ज् (अन्ज्) म्रक्षणे (लेपने), व्यक्तीकरणे च—(१) लेपन करना, तेल लगाना, (२) प्रकाश करना To anoint, to show—अनक्ति । (१) "अनक्ति गात्रं तैलेन जनः", (२) मा नाञ्जी

राक्षसीमीया" भ ९ ४९ ।

❦ अञ्ज् + णिच्—अञ्जन लगाना, अञ्जयति, "नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे, न चाभ्यक्तामनावृताम् (पश्येद्भार्यां द्विजोत्तम)" मनु० ४ ४४ । अभि + अञ्ज्—अभ्यङ्क्ते, तैलादिमर्दने । वि + अञ्ज्—व्यङ्क्ते, प्रकाशने । अभि + वि + अञ्ज्—अभिव्यङ्क्ते, प्रकटने । ❦

रुधादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

रुध् (रुधिर्) आवरणे (रोधे)—रुद्ध करना, रोकना

To obstruct, oppose, to besiege

("इदं रुणद्धि मां पद्ममन्तःकूजितषट्पदम्" विक्रमो०, ४ २१, "रुन्धन्तु* वारणघटा नगरं मदीया" मुद्रा० ४ १७ ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	रुणद्धि	रुन्धः	रुन्धन्ति
मध्यमपुरुष	रुणत्सि	रुन्धः	रुन्ध
उत्तमपुरुष	रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	रुणद्धु	रुन्धाम्	रुन्धन्तु
मध्यमपुरुष	रुन्धि	रुन्धम्	रुन्ध
उत्तमपुरुष	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम

* 'रोत्स्यन्ति' इति पाठान्तरम् ।

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अरुणत्	अरुन्धाम्	अरुन्धन्
मध्यमपुरुष	अरुणत्, अरुण	अरुन्धम्	अरुन्ध
उत्तमपुरुष	अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः
मध्यमपुरुष	रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात
उत्तमपुरुष	रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम

लृट्—रोत्स्यति, रोत्स्यतः, रोत्स्यन्ति।

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	रुन्धे	रुन्धाते	रुन्धते
मध्यमपुरुष	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्ध्वे
उत्तमपुरुष	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे

लोट्।

प्रथमपुरुष	रुन्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
मध्यमपुरुष	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्ध्वम्
उत्तमपुरुष	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अरुन्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
मध्यमपुरुष	अरुन्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्ध्वम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
मध्यमपुरुष	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
उत्तमपुरुष	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

लृट्—रोत्स्यते, रोत्स्येते, रोत्स्यन्ते।

⚜ अनु+रुध्—दिवादिगणीय आत्मनेपदी—अनुरुध्यते, अनुरुध्यन्ते, "सद्वृत्तिमनुरुध्यन्तां भवन्तः" महावीर० २, "हन्त विदग्धोऽपि परिचयमनुरुध्यन्ते" उत्तर० ३, "वात्सल्यमनुरुध्यन्ते महात्मानः" महावीर० ६; "मधुवचनमनुरुध्यते वा भवान्?" काद०। अव+रुध्—अवरोधे। उप+रुध्—निर्बन्धे, प्रतिबन्धे, अवरोधे To besiege, आच्छादने च। नि+रुध्—निरोधे, नियमने। प्रति+रुध्—प्रतिरोधे। वि+रुध्—कर्मकर्तरि—विरोधे (असैक्ये, कलहे च), विरुध्यते। सम्+रुध्—प्रतिबन्धे, संयमने च। ⚜

भुज् पालने To rule, govern, to protect

(भुनक्ति पृथिवीं राजा।)

(परस्मैपदी)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति
मध्यमपुरुष	भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु
मध्यमपुरुष	भुङ्ग्धि	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त
उत्तमपुरुष	भुनजानि	भुनजाव	भुनजाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अभुनक्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्
मध्यमपुरुष	अभुनक्	अभुङ्क्तम्	अभुङ्क्त
उत्तमपुरुष	अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म

विधिलिङ्—भुञ्ज्यात्, भुञ्ज्याताम्, भुञ्ज्युः।

लृट्—भोक्ष्यति, भोक्ष्यतः, भोक्ष्यन्ति।

भुज् अभ्यवहारे (भोजने); उपभोगे (अनुभवे) च—

(१) खाना; (२) भोग करना To eat; to enjoy; to suffer.

((१) "शयनस्थो न भुञ्जीत" मनु० ४. ७४; (२) "अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्" मनु० ३. ११८; 'हृष्टो जन्मे तु फलानि भुङ्क्ते"।)

(आत्मनेपदे)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
उत्तमपुरुष	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
मध्यमपुरुष	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
उत्तमपुरुष	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
मध्यमपुरुष	अभुङ्क्थाः	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अभुञ्जि	अभुञ्ज्वहि	अभुञ्ज्महि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
मध्यमपुरुष	भुञ्जीथाः	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
उत्तमपुरुष	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि

लृट्—भोक्ष्यते, भोक्ष्येते, भोक्ष्यन्ते ।

❧ उप+भुज्—उपभोगे । परि, सम्+भुज्—सम्भोगे । ❧

छिद् (छिदिर्) द्वैधीकरणे (छेदने , नाशने)—(१) काटना , (२) नष्ट करना To cut , to destroy.

((१) "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि" गीता २. २३ ;

(२) "तृष्णां छिन्धि" भर्तृ० ।)

(परस्मैपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	छिनत्ति	छिन्त	छिन्दन्ति
मध्यमपुरुष	छिनत्सि	छिन्थ	छिन्थ
उत्तमपुरुष	छिनद्मि	छिन्द्व	छिन्द्म.

लोट्।

प्रथमपुरुष	छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु
मध्यमपुरुष	छिन्धि	छिन्तम्	छिन्त
उत्तमपुरुष	छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्
मध्यमपुरुष	अच्छिनत्, अच्छिन.	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त
उत्तमपुरुष	अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म

विधिलिङ्—छिन्द्यात्, छिन्द्याताम्, छिन्द्युः।

लृट्—छेत्स्यति, छेत्स्यत, छेत्स्यन्ति।

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	छिन्ते	छिन्दाते	छिन्दते
मध्यमपुरुष	छिन्त्से	छिन्दाथे	छिन्द्ध्वे
उत्तमपुरुष	छिन्दे	छिन्द्वहे	छिन्द्महे

लोट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	छिन्ताम्	छिन्दाताम्	छिन्दताम्
मध्यमपुरुष	छिन्त्स्व	छिन्दाथाम्	छिन्ध्वम्
उत्तमपुरुष	छिनदै	छिनदावहै	छिनदामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अच्छिन्त	अच्छिन्दाताम्	अच्छिन्दत
मध्यमपुरुष	अच्छिन्थाः	अच्छिन्दाथाम्	अच्छिन्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अच्छिन्दि	अच्छिन्द्वहि	अच्छिन्द्महि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	छिन्दीत	छिन्दीयाताम्	छिन्दीरन्
मध्यमपुरुष	छिन्दीथाः	छिन्दीयाथाम्	छिन्दीध्वम्
उत्तमपुरुष	छिन्दीय	छिन्दीवहि	छिन्दीमहि

लृट्—छेत्स्यते, छेत्स्येते, छेत्स्यन्ते।

⚜ आ+छिद्—आकृष्य ग्रहणे (छीन लेना), छेदे च। उत्+छिद्—उन्मूलने। परि+छिद्—इयत्तया अवधारणे, निर्णये। वि+छिद्—छेदे, विभागे। ⚜

* * * *

भिद् (भिदिर्) विदारणे (भङ्गे, विच्छेदे)—तोड़ना, भेद करना To break, pierce—भिनत्ति, भिन्ते, भेत्स्यति, भेत्स्यते। भिनत्ति भिन्ते कूल नदी; "तेषां कथं नु हृदयं न भिनत्ति लज्जा?" मुद्रा० २ ३३।

❀ कर्मकर्तरि—भिन्न होना, भिद्यते, "पैशुन्याद्भिद्यते स्नेह" पञ्च० १ १११. (नश्यति इत्यर्थ), "षट्कर्णो भिद्यते मन्त्र" (प्रकाशते इत्यर्थ) पञ्च० १. १०८। उद्+भिद्—कर्मकर्तरि—उद्गमे, प्रकाशे, "अद्यापि पक्षावपि नोद्भिद्येते" काद०। निर्+भिद्—भेदने, प्रकाशने च। प्रति+भिद्—भर्त्सने। सम्+भिद्—मिश्रणे, सङ्लेषे। ❀

युज् (युजिर्) योगे (सङ्गते)—संयुक्त करना, मिलाना, जोड़ना To join, unite—युनक्ति, युङ्क्ते, योक्ष्यति, योक्ष्यते। युनक्ति युङ्क्ते घृतेनान्न लोक। "यम युनज्मि कालेन" भ० ६ ३७।

❀ 'उद' और स्वरान्त उपसर्गके योगसे आत्मनेपदी होता है। अनु+युज्—प्रश्ने, अनुयुङ्क्ते। अभि+युज्—उद्योगे, आक्रमणे, अपराधयोजने च अभियुङ्क्ते। आ+युज्—संयमने, आयुङ्क्ते। उद्+युज्—उद्योगे, उद्युङ्क्ते। उप+युज्—प्रयोगे, सेवने, उपभोगे च, उपयुङ्क्ते। नि+युज्—नियोगे, प्रेरणे, आदेशे; नियुङ्क्ते। नि+युज्+णिच्—नियोगे, नियोजयति। प्र+युज्—प्रयोगे, निर्देशे च, प्रयुङ्क्ते। वि+युज्—त्यागे, वियोजने च; वियुङ्क्ते। सम्+युज्—संयोजने। ❀

रिच् (रिचिर्) विरेचने (शून्यीकरणे)—सूना करना, खाली करना To empty, evacuate, clear—रिणक्ति, रिङ्क्ते, रेक्ष्यति, रेक्ष्यते। "रिणच्मि जल्पेस्तोयम्" भ० ६ ३६, "तिमिररिच्यमानं पूर्वदिङ्मुखमालोकयमग दृश्यते" विक्रमो० ३।

❀ अति+रिच्, वि+अति+रिच्, उद्+रिच्—कर्मकर्तरि—

अतिशये, पञ्चमीके साथ, "अश्वमेधसहस्रेभ्य सत्यमेवातिरिच्यते" हितो० ४ १३९, "स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते" र० १०.३०, "ममैवोऽिच्यते जन्म—तव जन्मन" महाभा०। ❀

विच् (विचिर्) पृथक्करणे—अलग करना To separate, discriminate—विनक्ति, विङ्क्ते, वेक्ष्यति, वेक्ष्यते। वोपदेवमते—ह्वादिगणीयभी होता है, वेवेक्ति, वेविक्ते।

❀ वि+विच्—पृथक्करणे विचारणे, निर्णये च। ❀

अनुवाद करो—राजा विद्रोहियोंको रुद्ध करता है। अशोकवनमें सीताको अवरुद्ध किया था। राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंने तीन बाणों-से खर दूषणका मस्तक छेदन किया था। यदि फल चाहो, तो पुष्प मत तोड़ो। नौकरलोग कुठारसे लकड़ी फाड़ते हैं। आदमी आलस्यके कारण दुःख भोगता है। वार-वार भोजन करना नहीं चाहिये। तुम्हारे पुत्रको असत् सङ्गसे वियुक्त करो। वहाँ तीन आदमी भेजो। उस कार्य्यमें निरर्थक आदमी नियुक्त मत करो।



अदादि।

क्रियाघटन-सूत्र।

[इस प्रकरणमें तुदादि और रुधादिके तारा (*)-चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य यथासम्भव होगा।]

३१५। 'अद्'-धातु लङ्के 'द्' और 'स्' से मिलकर यथाक्रम 'आदत्' और 'आद' होता है, यथा—अद्+द्=आदत्, अद्+स्=आद।

३१६। * हकार, छ और च्छ—परस्थित 'त' और यकारसे मिल-

कर यथाक्रम 'ष' और 'ष' होता है, यथा—वश् + ति = वष्टि ।

३१७ । * अगुण विभक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे, 'वश'के स्थानमें 'उश' होता है, यथा—वश् + थ = उष्ठ ।

३१८ । * य, व और म भिन्न अगुण व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'हन्' धातुके अकारका लोप होता है, और अन्ति, अन्तु तथा अन् परे रहनेसे, 'हन्'के स्थानमें 'घ्न' होता है, यथा—हन् + त = हत, हन् + अन्ति = घ्नन्ति । हन् + यात् = हन्यात, हन् + व = हन्व ; हन् + म = हन्म ।

३१९ । * 'हि'के साथ मिलकर हन्—जहि, अस्—एधि, और शास्—शाधि होता है, यथा—हन् + हि = जहि, अस् + हि = एधि ; शास् + हि = शाधि ।

३२० । विधिलिङ्, और लट् लोट्की अगुण विभक्ति परे रहनेसे, 'अस्' धातुके अकारका लोप होता है ; और लट्का 'सि' परे रहनेसे, 'अस्' धातुके सकारका लोप होता है, यथा—अस् + यात् = स्यात् ; अस् + त = स्त, अस् + ताम् = स्ताम्, अस् + सि = असि ।

३२१ । लङ्के 'द्' और 'स्' परे रहनेसे, 'अस्' धातुके उत्तर 'ई' होता है ; यथा—अस् + द् = आसीत् ; अस् + स् = आसी ।

३२२ । * सगुण लट् आदि चार विभक्ति परे रहनेसे, अदादि और ह्वादिगणीय धातुके अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है, यथा—द्विष् + ति = द्वेष्टि (३११ सूत्रानुसार 'त'के स्थानमें 'ट') ।

३२३ । * द्विष्, विद् और आकारान्त धातुके परस्थित 'अन्' विकल्पमें 'उस्' होता है, यथा—द्विष् + अन् = अद्विषु, अद्विषन् ।

३२५। ⁂ अगुण व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'शास्'के स्थानमें 'शिष्' होता है, यथा—शास्+त=शिष्+त=शिष्ट।

३२६। ⁂ अभ्यस्त धातुके परस्थित 'अन्'—'उस्' होता है, 'उस्' परे अन्त्यस्वरका गुण होता है, और 'अन्ति' तथा 'अन्तु'के नकारका लोप होता है, यथा—शास्+अन्=अशासु, शास्+अन्ति=शासति।

३२६। ⁂ लङ्का 'द्' परे रहनेसे, धातुके अन्त्य 'स्'के स्थानमें 'त्', और 'स्' परे रहनेसे, विकल्पमें 'त्' होता है, यथा—चकास्+द्=अचकात्।

३२७। ⁂ सगुण विभक्ति परे रहनेसे, 'मृज्'के स्थानमें 'मार्ज्' होता है, और विभक्तिका अगुण स्वर पर, विकल्पसे 'मार्ज्' होता है, यथा—मृज्+ति=मार्ज्+ति—

३२८। ⁂ त, थ, ध परे रहनेसे, मृज्, सृज्, यज् और भ्रस्ज् धातुके 'ज्'के स्थानमें मूर्द्धन्य 'ष्' होता है, यथा—मार्ज्+ति=मार्ष्टि, मृज्+त=मृष्ट, मृज्+हि=मृज्+धि (३०१ सू०)=मृष्+धि=मृड्+धि (३१३ सू०)=मृड्ढि (३११ सू०)।

३२९। अन्तस्थित 'मृज्' धातुके 'ज्'के स्थानमें 'ट्' अथवा 'ड्' होता है, यथा—मृज्+द्=अमार्ज्=अमार्ट् अमार्ड्।

३३०। लट्, लोट्, लङ् विभक्तिका व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, रुद्, स्वप्, श्वस्, अन् और जक्ष् धातुके उत्तर 'इ' होता है, और 'ई' 'स्'

---

† द्विरुक्त धातु, और जक्ष्, जागृ, दरिद्रा, चकास्, शास् धातुकी 'अभ्यस्त' संज्ञा होती है।

परे 'ई' अथवा 'अ' होता है; यथा—रुद्+ति=रोदिति (३२०सू०) रुद्+द्=अरोदीत्, अरोदत्।

३३१। ति, सि, मि, तु, द्, स् परे रहनेसे 'ब्रू' धातुके उत्तर 'ई' होता है; और वह 'ई' परे रहनेसे गुण होता है; यथा—ब्रू+ति=ब्रवीति।

३३२। * अगुण स्वर परे रहनेसे धातुके इवर्णके स्थानमें 'इय्', और उवर्णके स्थानमें 'उव्' होता है; यथा—अधि+इ+आते=अधि+इय्+आते=अधीयाते; ब्रू+अन्ति=ब्रुवन्ति।

३३३। ऐ, आवहै, आमहै परे रहनेसे, 'सू' धातुके 'ऊ'के स्थानमें 'उव्' होता है; यथा—सू+ऐ=सुवै।

३३४। * दुहादि धातुका 'ह' परस्थित 'त', 'थ' और धकारसे मिलकर 'ग्ध' होता है; और 'स' 'ध्व' परे रहनेसे, अथवा कोई वर्ण परे न रहनेसे, आदिस्थित 'द'के स्थानमें 'ध', और अन्तस्थित 'ह'के स्थानमें 'क' होता है; यथा—दुह्+ति=दोग्धि; दुह्+सि=धोक्षि; दुह्+द्=अदोह्=अधोक्।

३३५। चतुर्थकालमें 'शी' धातुका गुण होता है; और 'अते,' 'अताम्', 'अन्त' विभक्ति परे रहनेसे, 'शी' धातुके उत्तर 'र' होता है; यथा—शी+ते=शेते; शी+अन्ते=शेरते (२८०सू०)।

३३६। त, थ, ध, स परे रहनेसे, 'चक्ष्'के स्थानमें 'चष्' होता है; यथा—चक्ष्+ते=चष्टे।

३३७। लट्, लोट्, लङ्के 'स' 'ध्व' परे रहनेसे, 'ईश्' और 'ईड्' धातुके उत्तर 'इ' होता है; यथा—ईश्+से=ईशिषे; ईड्—

से=ईढिपे।

३३८। * अगुण व्यञ्जनवर्ण परे, 'दरिद्रा' धातुके 'आ'के स्थानमें 'इ' होता है, और 'अम्' भिन्न विभक्तिका स्वर परे रहनेसे, 'दरिद्रा' धातुके आकारका लोप होता है, यथा—दरिद्रा+त=दरिद्रित, दरिद्रा+अन्ति=दरिद्रति।

३३९। अगुण स्वर परे रहनेसे, 'इण्' धातुके 'इ'के स्थानमें 'य्' होता है, यथा—इ+अन्ति=यन्ति।

३४०। ति, सि, मि, तु, द्, स् परे रहनेसे, 'रु' और 'स्तु' धातुके बाद विकल्पसे 'ई' होता है, और 'ई' परे गुण होता है; पक्षे वृद्धि होती है, यथा—रु+ति=रवीति, रौति।

अदादि।

सकर्मक परस्मैपदी धातु।

अद् भक्षणे—खाना To eat

(फल्मत्ति विहङ्गम।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अत्ति	अत्तः	अदन्ति
मध्यमपुरुष	अत्सि	अत्थ	अत्थ
उत्तमपुरुष	अद्मि	अद्वः	अद्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	अत्तु	अत्ताम्	अदन्तु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अद्धि	अत्थम्	अत्थ
उत्तमपुरुष	अदानि	अदाव	अदाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	आदत्	आत्ताम्	आदन्
मध्यमपुरुष	आदः	आत्तम्	आत्त
उत्तमपुरुष	आदम्	आद्व	आद्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
मध्यमपुरुष	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
उत्तमपुरुष	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

लृट् अत्स्यति, अत्स्यतः, अत्स्यन्ति।

हन् हिंसायाम् (प्रहारे, ताडने; त्यागे च)—(१) वध करना, विनष्ट करना, (२) मारना, पीटना, (३) छोड़ना To kill, destroy, to strike, beat; to abandon.

((१) मृगं घ्नन्ति मृगाविदः, (२) "शिशिरेण कुम्भे जघान" र० ५. ६०, (३) "मा धर्मं जहि" महाभा०।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हन्ति	हतः	घ्नन्ति
मध्यमपुरुष	हंसि	हथः	हथ
उत्तमपुरुष	हन्मि	हन्वः	हन्मः

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हन्तु	हताम्	घ्नन्तु
मध्यमपुरुष	जहि	हतम्	हत
उत्तमपुरुष	हनानि	हनाव	हनाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
मध्यमपुरुष	अहन्	अहतम्	अहत
उत्तमपुरुष	अहनम्	अहन्व	अहन्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
मध्यमपुरुष	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
उत्तमपुरुष	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

लृट्—हनिष्यति, हनिष्यतः, हनिष्यन्ति ।

❀ अप + हन्—ध्वंसने, दूरीकरणे । अभि + हन्—आघाते, प्रहारे, वादने च । अव + हन्—कण्टने । आ + हन्—आघाते, प्रहारे; वादने च,—अपना कोई अङ्ग-प्रत्यङ्ग कर्म होनेसे 'आ + हन्' आत्मनेपदी होता है, "आहते स्व वक्षः"। वि + आ + हन्—व्याघाते, प्रतिबन्धे । उप + हन्—प्रहारे; नाशने च । नि + हन्—विनाशे, आघाते, वादने च । वि + हन्—विनाशे, प्रतिबन्धे च । सम् + हन्—सङ्घाते, योगे । ❀

द्विष् अप्रीतौ (द्वेषे, निन्दायाम्, विरोधे)—द्वेष करना, वैर करना, नफरत करना To hate,

dislike, be hostile towards

(धातुपाठे—उभयपदी। "द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्" कु० ५ ७५।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	द्वेष्टि	द्विष्टः	द्विषन्ति
मध्यमपुरुष	द्वेक्षि	द्विष्ठः	द्विष्ठ
उत्तमपुरुष	द्वेष्मि	द्विष्वः	द्विष्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	द्वेष्टु	द्विष्टाम्	द्विषन्तु
मध्यमपुरुष	द्विड्ढि	द्विष्टम्	द्विष्ट
उत्तमपुरुष	द्वेषाणि	द्वेषाव	द्वेषाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अद्वेट्	अद्विष्टाम्	अद्विषुः, अद्विषन्
मध्यमपुरुष	अद्वेट्	अद्विष्टम्	अद्विष्ट
उत्तमपुरुष	अद्वेषम्	अद्विष्व	अद्विष्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	द्विष्यात्	द्विष्याताम्	द्विष्युः
मध्यमपुरुष	द्विष्याः	द्विष्यातम्	द्विष्यात
उत्तमपुरुष	द्विष्याम्	द्विष्याव	द्विष्याम

लृट्—द्वेक्ष्यति, द्वेक्ष्यतः, द्वेक्ष्यन्ति।

शास् (शासु) अनुशासने (उपदेशे, शासने, आज्ञायाम्)—

(१) शिक्षा देना, (२) पालन करना, हुकूमत करना, (३) आदेश करना To teach, to rule, govern, to order

((१) द्विकर्मक—"माणवक धर्मं शास्ति", "स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपम्" भा० १ ५, (२) "राज्य रजोरिक्तमना शशास" र० १४ ८५, (३) "शाधि न करवाम किम्" कु० ६ २४ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शास्ति	शिष्टः	शासति
मध्यमपुरुष	शास्सि	शिष्ठः	शिष्ठ
उत्तमपुरुष	शास्मि	शिष्वः	शिष्मः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	शास्तु	शिष्टाम्	शासतु
मध्यमपुरुष	शाधि	शिष्टम्	शिष्ट
उत्तमपुरुष	शासानि	शासाव	शासाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः
मध्यमपुरुष	अशात्, अशाः	अशिष्टम्	अशिष्ट
उत्तमपुरुष	अशासम्	अशिष्व	अशिष्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्युः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	शिष्याः	शिष्यातम्	शिष्यात
उत्तमपुरुष	शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम

लृट्—शासिष्यति, शासिष्यतः, शासिष्यन्ति।

❖ अनु+शास्—उपदेशे, आदेशे, दण्डने च। प्र+शास्—'शास्'-वत्। ❖

मृज् (मृज्) शुद्धीकरणे (मार्जने)—साफ करना, पोंछना To wipe or wash off, cleanse.

("स्वेदलवान् ममार्ज" माघ० ३ ७९, "गोपरता दममृजन्" माघ० ६, २८ ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मार्ष्टि	मृष्टः	मृजन्ति, मार्जन्ति
मध्यमपुरुष	मार्क्षि	मृष्ठः	मृष्ठ
उत्तमपुरुष	मार्ज्मि	मृज्वः	मृज्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	मार्ष्टु	मृष्टाम्	मृजन्तु, मार्जन्तु
मध्यमपुरुष	मृड्ढि	मृष्टम्	मृष्ट
उत्तमपुरुष	मार्जानि	मार्जाव	मार्जाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अमार्ट्	अमृष्टाम्	अमृजन्, अमार्जन्
मध्यमपुरुष	अमार्ट्	अमृष्टम्	अमृष्ट

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अमार्जम्	अमृज्व	अमृज्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	मृज्यात्	मृज्याताम्	मृज्युः
मध्यमपुरुष	मृज्याः	मृज्यातम्	मृज्यात
उत्तमपुरुष	मृज्याम्	मृज्याव	मृज्याम

लृट्—मार्जिष्यति मार्क्ष्यति, मार्जिष्यतः मार्क्ष्यतः, मार्जिष्यन्ति मार्क्ष्यन्ति ।

वश् इच्छायाम्—कामना करना To desire, long for

("किं स्वो वष्टि दास, वाणी ध्वसातम्" शान्तिशतकम्, "अमी हि वीर्य्यप्रभवं भवस्य जयाय सेनान्य-मुशन्ति देवा" कु० ३. १५ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वष्टि	उष्टः	उशन्ति
मध्यमपुरुष	वक्षि	उष्ठः	उष्ठ
उत्तमपुरुष	वश्मि	उश्वः	उश्मः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	वष्टु	उष्टाम्	उशन्तु
मध्यमपुरुष	उड्ढि	उष्टम्	उष्ट
उत्तमपुरुष	वशानि	वशाव	वशाम

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अवट्	औष्टाम्	औशन्
मध्यमपुरुष	अवट्	औष्टम्	औष्ट
उत्तमपुरुष	अवशम्	औश्व	औश्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	उश्यात्	उश्याताम्	उश्युः
मध्यमपुरुष	उश्याः	उश्यातम्	उश्यात
उत्तमपुरुष	उश्याम्	उश्याव	उश्याम

लृट्—वशिष्यति।

वच् परिभाषणे (कथने)—कहना To say, speak

("हितं मितञ्च यो वक्ति"।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वक्ति	वक्तः	* * †
मध्यमपुरुष	वक्षि	वक्थः	वक्थ
उत्तमपुरुष	वच्मि	वच्वः	वच्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	वक्तु	वक्ताम्	वचन्तु
मध्यमपुरुष	वग्धि	वक्तम्	वक्त
उत्तमपुरुष	वचानि	वचाव	वचाम

† अयम् 'अन्ति'-परो न प्रयुज्यते, बहुवचनपर इत्यन्ये।

लङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अवक्	अवक्ताम्	अवचन्
मध्यमपुरुष	अवक्	अवक्तम्	अवक्त
उत्तमपुरुष	अवचम्	अवच्व	अवच्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	वच्यात्	वच्याताम्	वच्युः
मध्यमपुरुष	वच्याः	वच्यातम्	वच्यात
उत्तमपुरुष	वच्याम्	वच्याव	वच्याम

लृट्—वक्ष्यति, वक्ष्यतः, वक्ष्यन्ति ।

❀ निर्+वच्—निरुक्तौ, व्याख्यायाम् । प्र+वच्—कथने, वर्णने । प्रति+वच्—प्रतिवचने । ❀

विद् ज्ञाने—जानना To know *

("विद्धि व्याधिव्यालग्रस्तम्
लोकं शोकहतञ्च समस्तम् ।" मोहमुद्गर ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वेत्ति	वित्तः	विदन्ति

* "सत्तायां विद्यते, ज्ञाने वेत्ति, विन्ते विचारणे ।
विन्दते विन्दति प्राप्तौ, श्यन्-लुक्-श्नम्-शेष्विदं क्रमात् ॥"
"वेत्ति सर्वाणि शास्त्राणि, गर्वस्तस्य न विद्यते ।
विन्ते धर्मं सदा सद्भिः, तेषु पूजाञ्च विन्दति ॥"

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	वेत्सि	वित्थः	वित्थ
उत्तमपुरुष	वेद्मि	विद्वः	विद्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु
मध्यमपुरुष	विद्धि	वित्तम्	वित्त
उत्तमपुरुष	वेदानि	वेदाव	वेदाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अवेत्	अवित्ताम्	अविदुः,अविदन्
मध्यमपुरुष	अवेत्, अवेः	अवित्तम्	अवित्त
उत्तमपुरुष	अवेदम्	अविद्व	अविद्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	विद्यात्	विद्याताम्	विद्युः
मध्यमपुरुष	विद्याः	विद्यातम्	विद्यात
उत्तमपुरुष	विद्याम्	विद्याव	विद्याम

लृट्—वेदिष्यति, वेदिष्यतः, वेदिष्यन्ति।

विद् धातुके लट् और लोट्से और एकप्रकार रूप होते हैं, यथा—

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वेद	विदतुः	विदुः
मध्यमपुरुष	वेत्थ	विदथुः	विद
उत्तमपुरुष	वेद	विद्व	विद्म

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	विदाङ्करोतु	विदाङ्कुरुताम्	विदाङ्कुर्वन्तु
मध्यमपुरुष	विदाङ्कुरु	विदाङ्कुरुतम्	विदाङ्कुरुत
उत्तमपुरुष	विदाङ्करवाणि	विदाङ्करवाव	विदाङ्करवाम

✱ आ + विद् + णिच्—आवेदने, ज्ञापने, आवेदयति । नि + विद् + णिच्—निवेदने, ज्ञापने, उत्सर्गे च । ✱

इ (इण्) गतौ (प्राप्तौ च)—(१) जाना, (२) पाना To go to, come to or near, to obtain, attain to

((१) "शशिन पुनरेति शर्वरी" र० ८. ५६, (२) "निर्वृदि क्षयमेति" मृच्छ० १ १४ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	एति	इतः	यन्ति
मध्यमपुरुष	एषि	इथः	इथ
उत्तमपुरुष	एमि	इवः	इमः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	एतु	इताम्	यन्तु
मध्यमपुरुष	इहि	इतम्	इत
उत्तमपुरुष	अयानि	अयाव	अयाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	ऐत्	ऐताम्	आयन्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	ऐः	ऐतम्	ऐत
उत्तमपुरुष	आयम्	ऐव	ऐम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	इयात्	इयाताम्	इयुः
मध्यमपुरुष	इयाः	इयातम्	इयात
उत्तमपुरुष	इयाम्	इयाव	इयाम

लृट्—एष्यति, एष्यतः, एष्यन्ति।

❁ अति+इ, वि+अति+इ—अतिक्रमे। अनु+इ—अनुगमने; अन्वये च। अप+इ—अपगमे, क्षये। वि+अप+इ—व्यपगमे, निवृत्तौ। अभि+इ—अभिमुख्यगतौ, प्राप्तौ च। अव+इ—ज्ञाने। सम्+अव+इ—समवाये, मिलने (मेलने वा), संयोगे। आ+इ—आगमने, प्राप्तौ; एति। उत्+इ—उदये, उद्गमने, उन्नते। अभि+उत्+इ—उदये; उन्नतौ च। उप+इ—समीपगमने, प्राप्तौ च। अभि+उप+इ—उपस्थितौ, स्वीकारे च। परा+इ—पलायने, प्राप्तौ च। परि+इ—प्रदक्षिणीकरणे, वेष्टने च। वि+परि+इ—विपर्य्यये, वैपरीत्ये, अन्यथाभावे। प्र+इ—परलोकगतौ, मरणे। अभि+प्र+इ—अभिप्राये, आशये (इच्छा करना, इरादा करना, मकसद रखना)। प्रति+इ—प्रतीतौ, ज्ञाने, विश्वासे, प्रतिगमने च। ❁

अनुवाद करो—देखो, एक हरिण निविष्टचित्तसे घास खा रहा है। निरपराध जन्तुओंका (द्वितीया) हनन करना नहीं चाहिये। व्यर्थ मुझे मत मारो। असुर स्वभावसेही देवताओंके प्रति द्वेष करते हैं। दुष्टका

(द्वितीया) शासन करो। विडाल भोजनके पश्चात् मुख मार्जन करता है। जो आत्माका तत्त्व अच्छे प्रकारसे जानता है, वह अनायास मुक्त होता है। आत्मज्ञानकोही सब धर्मोंसे श्रेष्ठ जानना। आओ, चलें।

अदादि अकर्मक परस्मैपदी धातु।

अस् सत्तायाम् (विद्यमानतायाम्, स्थितौ)—रहना
To be, exist

("नास्त्यगतिर्मनोरथानाम्" विक्रमो०।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अस्ति	स्तः	सन्ति
मध्यमपुरुष	असि	स्थः	स्थ
उत्तमपुरुष	अस्मि	स्वः	स्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	अस्तु	स्ताम्	सन्तु
मध्यमपुरुष	एधि	स्तम्	स्त
उत्तमपुरुष	असानि	असाव	असाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
मध्यमपुरुष	आसीः	आस्तम्	आस्त
उत्तमपुरुष	आसम्	आस्व	आस्म

विधिलिङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यात्	स्याताम्	स्युः
मध्यमपुरुष	स्याः	स्यातम्	स्यात
उत्तमपुरुष	स्याम्	स्याव	स्याम

लृट्—भविष्यति।

रुदादि* ।

रुद् (रुदिर्) अश्रुविमोचने (रोदने)—रोना।

To cry, weep, lament

(अश्रुविमोचनमात्रेऽकर्मक —रोदिति लोकः शोकात्। आह्वानविशिष्ट रोदने तु सकर्मक —"नामग्राहमरोदीत् सा भ्रातरौ" भ० ५. ५ ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	रोदिति	रुदितः	रुदन्ति
मध्यमपुरुष	रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ
उत्तमपुरुष	रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु

---

* रोदिति स्वपितिश्चैव श्वसिति प्राणितिस्तथा।
जक्षितिश्चैव विज्ञेयो रुदादि पञ्चको गण ॥

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	रुदिहि	रुदितम्	रुदित
उत्तमपुरुष	रोदानि	रोदाव	रोदाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अरोदीत् / अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्
मध्यमपुरुष	अरोदीः / अरोदः	अरुदितम्	अरुदित
उत्तमपुरुष	अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः
मध्यमपुरुष	रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात
उत्तमपुरुष	रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम

लृट्—रोदिष्यति, रोदिष्यतः, रोदिष्यन्ति ।

स्वप् (ञिष्वप्) शयने (निद्रायाम्)—सोना To sleep.

('गुणानामेव दौरात्म्याद् धुरि धुर्यो नियुज्यते । असञ्जातकिणस्कन्धः

सुखं स्वपिति गौर्गडिः ॥" काव्यप्रकाश १०।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति
मध्यमपुरुष	स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	स्वपिमि	स्वपिव	स्वपिमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	स्वपितु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
मध्यमपुरुष	स्वपिहि	स्वपितम्	स्वपित
उत्तमपुरुष	स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अस्वपीत्, अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
मध्यमपुरुष	अस्वपी, अस्वप	अस्वपितम्	अस्वपित
उत्तमपुरुष	अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्युः
मध्यमपुरुष	स्वप्याः	स्वप्यातम्	स्वप्यात
उत्तमपुरुष	स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

लृट्—स्वप्स्यति, स्वप्स्यत, स्वप्स्यन्ति।

श्वस् प्राणने (श्वासे, जीवने)—दम लेना, जीना To breathe, respire, draw breath; to live.

("क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ।" र० ८ ८७।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	श्वसिति	श्वसित	श्वसन्ति
मध्यमपुरुष	श्वसिषि	श्वसिथ	श्वसिथ
उत्तमपुरुष	श्वसिमि	श्वसिव	श्वसिम

लोट्।

प्रथमपुरुष	श्वसितु	श्वसिताम्	श्वसन्तु
मध्यमपुरुष	श्वसिहि	श्वसितम्	श्वसित
उत्तमपुरुष	श्वसानि	श्वसाव	श्वसाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अश्वसीत् अश्वसत्	अश्वसिताम्	अश्वसन्
मध्यमपुरुष	अश्वसी अश्वस.	अश्वसितम्	अश्वसित
उत्तमपुरुष	अश्वसम्	अश्वसिव	अश्वसिम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	श्वस्यात्	श्वस्याताम्	श्वस्यु
मध्यमपुरुष	श्वस्या	श्वस्यातम्	श्वस्यात
उत्तमपुरुष	श्वस्याम्	श्वस्याव	श्वस्याम

लृट्—श्वसिष्यति, श्वसिष्यत , श्वसिष्यन्ति।

* आ + श्वस्, सम् + आ + श्वस्—आश्वासे, सान्त्वनायाम्।

उत्+श्वस्—उच्छ्वासे (बहिर्मुखश्वासे, अन्तर्मुखश्वासे इत्यन्ये)। नि+श्वस्, निर्+श्वस्—निश्वासे (अन्तर्मुखश्वासे, बहिर्मुखश्वासे इत्यन्ये)। वि+श्वस्—विश्वासे, प्राय ससमीक माय, "शुचि विश्वसिति कुत्र कुमारी" कु० ८, ११० । शूर

प्र+अन्—प्राणने (श्वासत्यागे, जीवने)—साँस छोड़ना, जीता रहना To respire, to live, be alive.

("कथमसौ क्षीणा क्षणं प्राणिति" गीतगो० ४, २१ ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	प्राणिति	प्राणितः	प्राणन्ति
मध्यमपुरुष	प्राणिषि	प्राणिथः	प्राणिथ
उत्तमपुरुष	प्राणिमि	प्राणिवः	प्राणिमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	प्राणितु	प्राणिताम्	प्राणन्तु
मध्यमपुरुष	प्राणिहि	प्राणितम्	प्राणित
उत्तमपुरुष	प्राणानि	प्राणाव	प्राणाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	प्राणीत्, प्राणत्	प्राणिताम्	प्राणन्
मध्यमपुरुष	प्राणीः, प्राणः	प्राणितम्	प्राणित
उत्तमपुरुष	प्राणम्	प्राणिव	प्राणिम

विधिलिङ ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	प्राण्यात्	प्राण्याताम्	प्राण्युः
मध्यमपुरुष	प्राण्याः	प्राण्यातम्	प्राण्यात
उत्तमपुरुष	प्राण्याम्	प्राण्याव	प्राण्याम

लृट्—प्राणिष्यति, प्राणिष्यतः, प्राणिष्यन्ति ।

जक्षादि ।*

जक्ष् भक्षणे—खाना To eat

(सकर्मक—"जक्षिमोऽनपराधेऽपि नरान्" भ० ५ ३९ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जक्षिति	जक्षितः	जक्षति
मध्यमपुरुष	जक्षिषि	जक्षिथः	जक्षिथ
उत्तमपुरुष	जक्षिमि	जक्षिवः	जक्षिमः

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जक्षितु	जक्षिताम्	जक्षतु
मध्यमपुरुष	जक्षिहि	जक्षितम्	जक्षित
उत्तमपुरुष	जक्षाणि	जक्षाव	जक्षाम

---

* जक्ष्, जागृ, दरिद्रा, चकास्, शास् ।
जक्ष जागृ दरिद्रा च चकास्ति शास्तिरेव च ।
दीधी वेवी च विज्ञेयौ जक्षादि सप्तको गण ॥

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अजक्षीत्, अजक्षत्	अजक्षिताम्	अजक्षुः
मध्यमपुरुष	अजक्षीः, अजक्षः	अजक्षितम्	अजक्षित
उत्तमपुरुष	अजक्षम्	अजक्षिव	अजक्षिम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	जक्ष्यात्	जक्ष्याताम्	जक्ष्युः
मध्यमपुरुष	जक्ष्याः	जक्ष्यातम्	जक्ष्यात
उत्तमपुरुष	जक्ष्याम्	जक्ष्याव	जक्ष्याम

लृट्—जक्षिष्यति।

जागृ निद्राक्षये (जागरणे)—जागना To be awake.

("दण्ड सुप्तेषु जागर्त्ति, दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः" मनु० ७. १८।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जागर्त्ति	जागृतः	जाग्रति
मध्यमपुरुष	जागर्षि	जागृथः	जागृथ
उत्तमपुरुष	जागर्मि	जागृवः	जागृमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	जागर्त्तु	जागृताम्	जाग्रतु
मध्यमपुरुष	जागृहि	जागृतम्	जागृत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	जागराणि	जागराव	जागराम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अजागः	अजागृताम्	अजागरुः
मध्यमपुरुष	अजागः	अजागृतम्	अजागृत
उत्तमपुरुष	अजागरम्	अजागृव	अजागृम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	जागृयात्	जागृयाताम्	जागृयुः
मध्यमपुरुष	जागृयाः	जागृयातम्	जागृयात
उत्तमपुरुष	जागृयाम्	जागृयाव	जागृयाम

लृट्—जागरिष्यति।

चकास् (चकासृ) दीप्तौ (शोभायाम्)—चमकना

To shine, be bright

("गण्डश्चण्डि! चकास्ति नीलनलिनश्रीमोचनं लोचनम्" गीतगो० १०. १४, "चकास्ति योग्येन हि योग्यसङ्गमः" नै० ६ ९६.।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	चकास्ति	चकास्तः	चकासति
मध्यमपुरुष	चकास्सि	चकास्थः	चकास्थ
उत्तमपुरुष	चकास्मि	चकास्वः	चकास्मः

लोट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	चकास्तु	चकास्ताम्	चकासतु
मध्यमपुरुष	चकाधि, चकाद्धि	चकास्तम्	चकास्त
उत्तमपुरुष	चकासानि	चकासाव	चकासाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अचकात्	अचकास्ताम्	अचकासुः
मध्यमपुरुष	अचकात्, अचकाः	अचकास्तम्	अचकास्त
उत्तमपुरुष	अचकासम्	अचकास्व	अचकास्म

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	चकास्यात्	चकास्याताम्	चकास्युः
मध्यमपुरुष	चकास्याः	चकास्यातम्	चकास्यात
उत्तमपुरुष	चकास्याम्	चकास्याव	चकास्याम

लृट्—चकासिष्यति।

अदादि आकारान्त सकर्मक परस्मैपदी धातु।

पा रक्षणे (पालने)—रक्षा करना To protect.

("अधर्मान्मां पाहि" महाभा०।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पाति	पातः	पान्ति
मध्यमपुरुष	पासि	पाथः	पाथ
उत्तमपुरुष	पामि	पावः	पामः

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पातु	पाताम्	पान्तु
मध्यमपुरुष	पाहि	पातम्	पात
उत्तमपुरुष	पानि	पाव	पाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अपात्	अपाताम्	अपु, अपान्
मध्यमपुरुष	अपाः	अपातम्	अपात
उत्तमपुरुष	अपाम्	अपाव	अपाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	पायात्	पायाताम्	पायु
मध्यमपुरुष	पायाः	पायातम्	पायात
उत्तमपुरुष	पायाम्	पायाव	पायाम

लृट्—पास्यति ।

❀ प्रति + पा + णिच्—(१) प्रतिपालने, रक्षणे, (२) प्रतीक्षायाञ्च, प्रतिपालयति, "अन्यासक्तो देव, तद्‌वसर प्रतिपालयामि" शकु० ६, "प्रतिपालय माम्, यावदुपसर्पामि" वेणी० ६ । ❀

* * * *

ख्या कथने—कहना To tell, declare—ख्याति, ख्यास्यति । "ख्याति साधु कथां हरे" ।

❀ ख्या + णिच्, अभि + ख्या + णिच्—ख्यापने, विज्ञापने, प्रकाशने, ख्यापयति । आ + ख्या—कथने, वर्णने । उप + आ + ख्या—

वर्णने। प्रति + आ + ख्या—निराकरणे, अस्वीकारे। वि + आ + ख्या—व्याख्यायाम्, विवरणे। सम् + ख्या—गणनायाम्। ❧

-मा माने (परिमाणे)—नापना To measure—माति, मास्यति। माति भूमिं नयेन राजा। "न माति मानिनो यस्य यशस्त्रिभुवनोदरे"; "ततो मनुष्यत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुद" माघ० १ २३—इत्यादिषु अन्तर्भावार्थे अकर्मक., न माति—न परिमाणं गच्छति, अतिरिच्यते इत्यर्थ (नहीं समाता Is not contained or comprised in, does not find room or space in)।

❧ अनु + मा—अनुमाने। उप + मा—उपमाने। निर् + मा—निर्माणे, "निर्माति च पर्वणि पूर्णमिन्दुम्" भै० ३ ३२। परि + मा—परिमाणे; "उदरं परिमाति मुष्टिना" नै० २. ३९.। प्र + मा—प्रमायाम्, निश्चयज्ञाने। ❧

-या गतौ (प्राप्तौ च)—(१) जाना, (२) पाना To go, to attain to—याति, यास्यति। (१) "ययौ तदीयामवलम्ब्य चाङ्गुलिम्" र० ३ २५; (२) "धनात् तु यो याति नरो दरिद्रतां स शरीरेण मृत स जीवति" मृच्छ० १ १०।

❧ या + णिच्—अतिवाहने, क्षरणे, यापयति। अति + या—अतिक्रमे। अनु + या—अनुवर्त्तने; अनुकरणे, सादृश्ये; सहगमने च। अप + या—पलायने। अभि + या—समीपगमने; आक्रमणे च। -आ + या—आगमने, प्राप्तौ च। उत् + या—उत्थाने, उद्गतौ; उत्पत्तौ च। प्रति + उत् + या—प्रत्युद्गमने, सम्मानार्थं पुरोगमने।

प्र+या—प्रयाणे, गमने, प्रस्थाने। ❀

-रा दाने—देना To bestow—राति, रास्यति। "न राति रोगिणेऽपथ्यं वाञ्छतेऽपि भिषक्तम"।

-ला आदाने (ग्रहणे)—लेना To take, receive—लाति; लास्यति। "लल सङ्कान्" म० १४ १२।

अदादि आकारान्त अकर्मक परस्मैपदी धातु।

द्रा पलायने—भागना To run away—द्राति, द्रास्यति।

❀ नि+द्रा—निद्रायाम्। ❀

भा दीप्तौ (शोभायाम्, प्रकाशे)—चमकना, ज़ाहिर होना To shine, to seem, appear—भाति, भास्यति। "तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः" उद्भट, "बुभुक्षितं न प्रति भाति किञ्चित्" महाभा०।

❀ आ+भा, प्रति+भा—शोभायाम्, स्फुरणे, प्रकाशे, अवभासे च। ❀

वा गतौ (वायोर्गतौ)—हवा चलना To blow—वाति, वास्यति। वाति वायुः।

❀ निर्+वा—निर्वाणे (शीतलतायाम्, शान्तौ, निर्वृतौ)। "निरवात् कृशानुः" रावणपाण्डवीयम् ८ ४२, "तस्य वपुर्जलार्द्रो पवनैर्न निर्ववौ" माघ० १ ६९। निर्+वा+णिच्—निर्वापणे (ठण्डा करना, बुझाना), निर्वापयति। ❀

-स्ना शौचे (स्नाने)—नहाना To bathe—स्नाति, स्नास्यति। "स्नाति गङ्गाजलैर्नित्यम्"; "मृगतृष्णाम्भसि स्नातः"।

दरिद्रा दुर्गतौ (कृच्छ्रेणावस्थाने, अकिञ्चनीभावे)—दरिद्र होना To be poor or needy—(लट्) दरिद्राति, दरिद्रितः, दरिद्रति; (लोट्) दरिद्रातु, दरिद्रिताम्, दरिद्रतु, (लङ्) अदरिद्रात्, अदरिद्रिताम्, अदरिद्रुः, (लृट्) दरिद्रिष्यति। "उपर्युपरि पश्यन्त सर्व एव दरिद्रति" हितो० २ २ ।

अदादि उकारान्त सकर्मक परस्मैपदी धातु।

नु (णु) स्तुतौ—स्तव करना, प्रशंसा करना

To praise, extol

("सात्वती तन्निधुने नुनाव" कु० ७. ९० ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	नौति	नुतः	नुवन्ति
मध्यमपुरुष	नौषि	नुथ	नुथ
उत्तमपुरुष	नौमि	नुव	नुमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	नौतु	नुताम्	नुवन्तु
मध्यमपुरुष	नुहि	नुतम्	नुत
उत्तमपुरुष	नवानि	नवाव	नवाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अनौत्	अनुताम्	अनुवन्
मध्यमपुरुष	अनौः	अनुतम्	अनुत
उत्तमपुरुष	अनवम्	अनुव	अनुम

विधिलिङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	नुयात्	नुयाताम्	नुयुः
मध्यमपुरुष	नुयाः	नुयातम्	नुयात
उत्तमपुरुष	नुयाम्	नुयाव	नुयाम

लृट्—नविष्यति, नोष्यति।

अदादि उकारान्त अकर्मक परस्मैपदी धातु।

क्षु (टुक्षु) शब्दे (क्षुते)—छींकना To sneeze—क्षौति, क्षविष्यति। क्षौति कपी।

रु शब्दे (रवे)—आवाज़ करना To sound, to hum (as bees)—रौति रवीति, रुतः रुवीतः, रुवन्ति, रविष्यति रोष्यति।

"कर्णे कल॰ किमपि रौति शनैर्विचित्रम्" हितो॰ १ ८२।

अदादि सकर्मक आत्मनेपदी।

'अधि'-पूर्वक [illegible] (अधीङ्) अध्ययने—पढ़ना

To read, study

(अध्यापकाद्व्याकरणमधीते।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अधीते	अधीयाते	अधीयते
मध्यमपुरुष	अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
उत्तमपुरुष	अधीये	अधीवहे	अधीमहे

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
मध्यमपुरुष	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
उत्तमपुरुष	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
मध्यमपुरुष	अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
उत्तमपुरुष	अध्ययि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
मध्यमपुरुष	अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
उत्तमपुरुष	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
मध्यमपुरुष	अध्येष्यसे	अध्येष्येथे	अध्येष्यध्वे
उत्तमपुरुष	अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

सू (षूङ्) प्रसवे (जनने, उत्पादने)—जनना, पैदा करना To bring forth, produce

(विटपलता पल्लवं सूते ; "कीर्त्तिं सूते सूनृता वाक्" ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	सूते	सुवाते	सुवते
मध्यमपुरुष	सूषे	सुवाथे	सूध्वे
उत्तमपुरुष	सुवे	सूवहे	सूमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	सूताम्	सुवाताम्	सुवताम्
मध्यमपुरुष	सूष्व	सुवाथाम्	सूध्वम्
उत्तमपुरुष	सुवै	सुवावहै	सुवामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	असूत	असुवाताम्	असुवत
मध्यमपुरुष	असूथा:	असुवाथाम्	असूध्वम्
उत्तमपुरुष	असुवि	असूवहि	असूमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	सुवीत	सुवीयाताम्	सुवीरन्
मध्यमपुरुष	सुवीथा:	सुवीयाथाम्	सुवीध्वम्
उत्तमपुरुष	सुवीय	सुवीवहि	सुवीमहि

लृट्—सविष्यते, सोष्यते ।

अनुवाद करो—सुख दु:ख निरन्तर आता जाता है । नदीके तटमे वृक्षावली शोभा पाती है । मैं तुझे विपद्से रक्षा करूंगा । उस दिन मैंने गङ्गामें स्नान किया था । जो सबके मङ्गलकी (द्वितीया) कामना करते हैं, सर्वान्त:करणसे उनकी (द्वितीया) प्रशंसा करनी चाहिये । भक्तगण

कविजनने महात्माकी स्तुति करते हैं। रघुदेवने महात्मा भीष्मका (द्वितीया) प्रश्न किया था। उनके अनुग्रहसे हम जीते हैं। दुर्वृत्त दुर्मु-खसे सीताका अपवाद सुनकर (श्रुत्वा) रामने दीर्घ निश्वास छोड़ा। लड़के! तुमलोग कलह मत करो।

चक्ष् (चक्षिङ्) कथने—कहना To speak, tell.

(आर्धधातुक 'ख्याङ्'-पूर्व —आदेश कर्म और।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	चष्टे	चक्षाते	चक्षते
मध्यमपुरुष	चक्षे	चक्षाथे	चड्ढ्वे
उत्तमपुरुष	चक्षे	चक्ष्वहे	चक्ष्महे

लोट्।

प्रथमपुरुष	चष्टाम्	चक्षाताम्	चक्षताम्
मध्यमपुरुष	चक्ष्व	चक्षाथाम्	चड्ढ्वम्
उत्तमपुरुष	चक्षै	चक्षावहै	चक्षामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अचष्ट	अचक्षाताम्	अचक्षत
मध्यमपुरुष	अचष्ठाः	अचक्षाथाम्	अचड्ढ्वम्
उत्तमपुरुष	अचक्षि	अचक्ष्वहि	अचक्ष्महि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	चक्षीत	चक्षीयाताम्	चक्षीरन्
मध्यमपुरुष	चक्षीथाः	चक्षीयाथाम्	चक्षीध्वम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	चक्षीय	चक्षीवहि	चक्षीमहि

लृट्—ख्यास्यति, ख्यास्यते, क्शास्यति, क्शास्यते ।

❧ प्रति+आ+चक्ष्—प्रत्याख्याने, अस्वीकारे । वि+आ+चक्ष्—व्याख्याने, विवरणे । प्र, परि+चक्ष्—कीर्तने, कथने । ❧

*　　*　　*　　*

ईड् स्तुतौ—स्तव करना To praise—(लट्) ईट्टे, ईडाते, ईडते, ईडिषे, ईडाथे, ईड्ढ्वे, ईडे, ईड्वहे, ईड्महे । (लृट्) ईडिष्यते । "तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे" शङ्कर ।

ईश् ऐश्वर्ये (प्रभुतायाम्)—प्रभु होना, प्रभुत्व करना, हुकूमत करना To rule, be master of, govern, command—(लट्) ईष्टे, ईशाते, ईशते ; ईशिषे, ईशाथे, ईशिध्वे ; ईशे, ईश्वहे, ईश्महे । (लङ्) ऐष्ट, ऐशाताम्, ऐशत, ऐष्ठाः, ऐशाथाम्, ऐशिध्वम्, ऐशि, ऐश्वहि, ऐश्महि । (विधि) ईशीत । (लृट्) ईशिष्यते । प्रायः षष्ठीके साथ प्रयुक्त होता है, "नायं गात्राणामीष्टे" काद०, "अर्थानामीशिषे त्वं, वयमपि च गिरामीश्महे यावदर्थम्" भर्तृ० ।—(२) सामर्थ्ये (सकना) ; "माधुर्यमीष्टे हरिणान् ग्रहीतुम्" र० १८. १३, "न तत् सोढुमीशे" र० १४ ३८, "कमिवेशाने रमयितुं न गुणाः ?" मा० ६. २४ ।

वस् आच्छादने (परिधाने)—पहरना To put on—वस्ते, वसाते, वसते ; वस्से, वसाथे, वध्वे, वसे, वस्वहे, वस्महे । वसिष्यते । "वसने परिधूसरे वसाना" शकु० ७ २१ ।

आङ्+शास् (शाठ) इच्छायाम्; आशिषि (इष्टार्थाशंसने) च—(१) चाहना, (२) आशीर्वाद करना To desire; to bless, pronounce or give a blessing—(लट्) आशास्ते, आशासाते, आशासते, आशास्से, आशासाथे, आशाध्वे, आशासे, आशास्वहे, आशास्महे । (लृट्) आशासिष्यते । (१) कुतस्तस्य विजयादन्यत्, यस्य भगवान् पुराणपुरुषो नारायणः स्वयं मङ्गलान्याशास्ते ?" वेणी० ६; (२) "किमन्यदाशास्महे ? केवलं वीरप्रसवा भूयाः" उत्तर० १ ।

ह्नु (ह्नुङ्) अपनयने (अपह्नवे, गोपने ;—चौर्य्ये इति वोपदेव)—(१) दूर करना, अपहरण करना; (२) छिपाना To take away, deprive (one) of; to conceal, hide—ह्नुते, ह्नुवाते, ह्नुवते; ह्नोष्यते । प्रायेण 'अप'-पूर्वक, 'नि'-पूर्वकश्चायं प्रयुज्यते ।

अप+ह्नु—अपलापे, अस्वीकारे, गोपने । नि+ह्नु—गोपने ।

अदादि अकर्मक आत्मनेपदी ।

आस् उपवेशने (यासे, स्थितौ, सत्तायाम्)—
(१) बैठना; (२) रहना To sit, to dwell, to remain, to exist

((१) आस्ते सिंहासने नृप; (२) "यत्रास्मै रोचते, तत्रायमास्ताम्" काद०; "जगन्ति यस्या सविकाशमासत" माघ० १. २३, आकाशमास्ते ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	आस्ते	आसाते	आसते
मध्यमपुरुष	आस्से	आसाथे	आद्ध्वे, आध्वे
उत्तमपुरुष	आसे	आस्वहे	आस्महे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
मध्यमपुरुष	आस्स्व	आसाथाम्	आद्ध्वम्, आध्वम्
उत्तमपुरुष	आसै	आसावहै	आसामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	आस्त	आसाताम्	आसत
मध्यमपुरुष	आस्थाः	आसाथाम्	आद्ध्वम्, आध्वम्
उत्तमपुरुष	आसि	आस्वहि	आस्महि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	आसीत	आसीयाताम्	आसीरन्
मध्यमपुरुष	आसीथाः	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
उत्तमपुरुष	आसीय	आसीवहि	आसीमहि

लृट्—आसिष्यते, आसिष्येते, आसिष्यन्ते ।

⚜ अधि+आस्—उपवेशने, अधिवासे, अधिष्ठाने च, सकर्मक। अनु+आस्—पश्चादुपवेशने; उपासनायाञ्च; सकर्मक। उद्+आस्—उदासीनतायाम्, उपेक्षायाम्। उप+आस्—समीपोपवेशने; उपासनायाम्, अनुष्ठाने च—"अग्निहोत्रमुपासते" मनु० ११ ४२। परि+

स्व + आम्—सेवायाम् । ✣

शी (शीङ्) स्वप्ने (शयने)—सोना

To lie down, sleep.

("किं निःशङ्कं शेषे ?
शेषे वयसि समागतो मृत्युः ।
अथवा सुखं शयीथा
निकटे जागर्त्ति जाह्नवी जननी ॥"
भामिनी॰ ४. ३०.)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शेते	शयाते	शेरते
मध्यमपुरुष	शेषे	शयाथे	शेध्वे
उत्तमपुरुष	शये	शेवहे	शेमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्
मध्यमपुरुष	शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्
उत्तमपुरुष	शयै	शयावहै	शयामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अशेत	अशयाताम्	अशेरत
मध्यमपुरुष	अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्
उत्तमपुरुष	अशयि	अशेवहि	अशेमहि

विधिलिङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्
मध्यमपुरुष	शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्
उत्तमपुरुष	शयीय	शयीवहि	शयीमहि

लृट्—शयिष्यते, शयिष्येते, शयिष्यन्ते ।

❁ अति + शी—अतिक्रम, अतिवर्त्तन, सकर्मक । अधि + शी—अधिष्ठाने (सक०) । अनु + शी—अनुताप, अनुशय (अक०) । सम् + शी—संशये । ❁

अदादि गणस्थ उभयपदी ।

स्तु (ष्टुञ्) स्तुता (प्रशंसायाम्)—स्तव करना

To praise extol, glorify

([illegible] स्तवानि [illegible] ।

[illegible])

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्तौति, स्तवीति	स्तुतः	स्तुवन्ति
मध्यमपुरुष	स्तौषि, स्तवीषि	स्तुथः	स्तुथ
उत्तमपुरुष	स्तौमि, स्तवीमि	स्तुवः	स्तुमः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	स्तौतु, स्तवीतु	स्तुताम्	स्तुवन्तु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	स्तुहि	स्तुतम्	स्तुत
उत्तमपुरुष	स्तवानि	स्तवाव	स्तवाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अस्तौत्,अस्तवीत्	अस्तुताम्	अस्तुवन्
मध्यमपुरुष	अस्तौ , अस्तवीः	अस्तुतम्	अस्तुत
उत्तमपुरुष	अस्तवम्	अस्तुव	अस्तुम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	स्तुयात्	स्तुयाताम्	स्तुयुः
मध्यमपुरुष	स्तुयाः	स्तुयातम्	स्तुयात
उत्तमपुरुष	स्तुयाम्	स्तुयाव	स्तुयाम

लृट्—स्तोष्यति ।

(आत्मनेपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्तुते	स्तुवाते	स्तुवते
मध्यमपुरुष	स्तुषे	स्तुवाथे	स्तुध्वे
उत्तमपुरुष	स्तुवे	स्तुवहे	स्तुमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	स्तुताम्	स्तुवाताम्	स्तुवताम्
मध्यमपुरुष	स्तुष्व	स्तुवाथाम्	स्तुध्वम्
उत्तमपुरुष	स्तवै	स्तवावहै	स्तवामहै

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अस्तुत	अस्तुवाताम्	अस्तुवत
मध्यमपुरुष	अस्तुथाः	अस्तुवाथाम्	अस्तुध्वम्
उत्तमपुरुष	अस्तुवि	अस्तुवहि	अस्तुमहि

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	स्तुवीत	स्तुवीयाताम्	स्तुवीरन्
मध्यमपुरुष	स्तुवीथाः	स्तुवीयाथाम्	स्तुवीध्वम्
उत्तमपुरुष	स्तुवीय	स्तुवीवहि	स्तुवीमहि

लृट्—स्तोस्यते, स्तोष्येते, स्तोष्यन्ते।

❀ प्र+स्तु—प्रस्तावे, प्रारम्भे। ❀

ब्रू (ब्रूञ्) कथने—बोलना To tell, to declare

("ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजो-
पयोगिताम्।" कि० २ ४८।)

(परस्मैपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	ब्रवीति, आह*	ब्रूत, आहतुः	ब्रुवन्ति, आहुः
मध्यमपुरुष	ब्रवीषि, आत्थ	ब्रूथ, आहथुः	ब्रूथ
उत्तमपुरुष	ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः

---

* शिष्टप्रयोगमें 'आह'-पद अतीतकालमें प्रयुक्त होता है, यथा—"अथाह वर्णी" (आह—उवाच इत्यर्थः) कु० ५ ६५—अत्र टीकायाम् "आहेति भूतार्थे 'लट्'-प्रयोगो भ्रान्तिमूल इत्याह वामनः" इति मल्लिनाथः।

লোট্।

	একবচন	দ্বিবচন	বহুবচন
প্রথমপুরুষ	ব্রবীতু	ব্রূতাম্	ব্রুবন্তু
মধ্যমপুরুষ	ব্রূহি	ব্রূতম্	ব্রূত
উত্তমপুরুষ	ব্রবাণি	ব্রবাব	ব্রবাম

লঙ্।

প্রথমপুরুষ	অব্রবীৎ	অব্রূতাম্	অব্রুবন্
মধ্যমপুরুষ	অব্রবীঃ	অব্রূতম্	অব্রূত
উত্তমপুরুষ	অব্রবম্	অব্রূব	অব্রূম

বিধিলিঙ্।

প্রথমপুরুষ	ব্রূয়াৎ	ব্রূয়াতাম্	ব্রূয়ুঃ
মধ্যমপুরুষ	ব্রূয়াঃ	ব্রূয়াতম্	ব্রূয়াত
উত্তমপুরুষ	ব্রূয়াম্	ব্রূয়াব	ব্রূয়াম

ব্রূ—বক্তি।

(আত্মনেপদ)

লট্।

প্রথমপুরুষ	ব্রূতে	ব্রুবাতে	ব্রুবতে
মধ্যমপুরুষ	ব্রূষে	ব্রুবাথে	ব্রূধ্বে
উত্তমপুরুষ	ব্রুবে	ব্রূবহে	ব্রূমহে

লোট্।

প্রথমপুরুষ	ব্রূতাম্	ব্রুবাতাম্	ব্রুবতাম্
মধ্যমপুরুষ	ব্রূষ্ব	ব্রুবাথাম্	ব্রূধ্বম্

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
मध्यमपुरुष	अब्रूथा	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
उत्तमपुरुष	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
मध्यमपुरुष	ब्रुवीथा	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
उत्तमपुरुष	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

लृट्—वक्ष्यते ।

दुह् प्रपूरणे (दोहने, निष्कासने)—(१) दोहना, निकालना, (२) पूर्ण करना To milk or squeeze out, extract, to yield or grant (any desired object).

((१) द्विकर्मक—"पयो घटोध्नीरपि गा दुहन्ति" भ० १२ ७३, "रत्नानि धरित्रीं दुदुहु" कु० १. २, (२) "कामान् दुग्धे सूनृता वाक्" ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	दोग्धि	दुग्धः	दुहन्ति

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	धोक्षि	दुग्धः	दुग्ध
उत्तमपुरुष	दोह्मि	दुह्वः	दुह्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	दोग्धु	दुग्धाम्	दुहन्तु
मध्यमपुरुष	दुग्धि	दुग्धम्	दुग्ध
उत्तमपुरुष	दोहानि	दोहाव	दोहाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अधोक्	अदुग्धाम्	अदुहन्
मध्यमपुरुष	अधोक्	अदुग्धम्	अदुग्ध
उत्तमपुरुष	अदोहम्	अदुह्व	अदुह्म

विधिलिङ्—दुह्यात्। लृट्—धोक्ष्यति।

(आत्मनेपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	दुग्धे	दुहाते	दुहते
मध्यमपुरुष	धुक्षे	दुहाथे	धुग्ध्वे
उत्तमपुरुष	दुहे	दुह्वहे	दुह्महे

लोट्।

प्रथमपुरुष	दुग्धाम्	दुहाताम्	दुहताम्
मध्यमपुरुष	धुक्ष्व	दुहाथाम्	धुग्ध्वम्
उत्तमपुरुष	दोहै	दोहावहै	दोहामहै

लङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अदुग्ध	अदुहाताम्	अदुहत
मध्यमपुरुष	अदुग्धाः	अदुहाथाम्	अधुग्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अदुहि	अदुह्वहि	अदुह्महि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	दुहीत	दुहीयाताम्	दुहीरन्
मध्यमपुरुष	दुहीथाः	दुहीयाथाम्	दुहीध्वम्
उत्तमपुरुष	दुहीय	दुहीवहि	दुहीमहि

लृट्—धोक्ष्यते ।

दिह् लेपने, उपचये (वृद्धौ, वृद्धिकरणे) च—(१) लीपना, (२) बढ़ना (अक०), बढ़ाना To anoint, smear, to increase—देग्धि, दिग्धे, धेक्ष्यति, धेक्ष्यते । (१) देग्धि सौधं सुधया लेपकः, (२) देग्धि दिग्धे देहं (प्रतिदिनमुपचितं स्यात्) ।

❀ सम् + दिह्—सन्देहे, संशये । ❀

लिह् आस्वादने (लेहने)—चाटना To taste, to lick.

("पिण्डमुत्सृज्य करं लेढि" इति न्याय ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	लेढि	लीढः	लिहन्ति
मध्यमपुरुष	लेक्षि	लीढः	लीढ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	लेह्मि	लिह्व	लिह्म

लोट्।

प्रथमपुरुष	लेढु	लीढाम्	लिहन्तु
मध्यमपुरुष	लीढि	लीढम्	लीढ
उत्तमपुरुष	लेहानि	लेहाव	लेहाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अलेट्	अलीढाम्	अलिहन्
मध्यमपुरुष	अलेट्	अलीढम्	अलीढ
उत्तमपुरुष	अलेहम्	अलिह्व	अलिह्म

विधिलिङ्—लिह्यात्। लृट्—लेक्ष्यति।

(आत्मनेपद)

लट्।

प्रथमपुरुष	लीढे	लिहाते	लिहते
मध्यमपुरुष	लिक्षे	लिहाथे	लीढ्वे
उत्तमपुरुष	लिहे	लिह्वहे	लिह्महे

लोट्।

प्रथमपुरुष	लीढाम्	लिहाताम्	लिहताम्
मध्यमपुरुष	लिक्ष्व	लिहाथाम्	लीढ्वम्
उत्तमपुरुष	लेहै	लेहावहै	लेहामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अलीढ	अलिहाताम्	अलिहत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अलीढा	अलिह्याथाम्	अलीढ्वम्
उत्तमपुरुष	अलिहि	अलिह्वहि	अलिह्महि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	लिहीत	लिहीयाताम्	लिहीरन्
मध्यमपुरुष	लिहीथाः	लिहीयाथाम्	लिहीध्वम्
उत्तमपुरुष	लिहीय	लिहीवहि	लिहीमहि

लृट्—लेक्ष्यते ।

अनुवाद करो—विपद् सम्पद्में ईश्वर सदा रक्षा करता है, और वह सबके पाप पुण्यकी (द्वितीया) सत्ता करता है। दक्षिणसे मलय पवन आता है। मेरे शरीरमें आनन्द नहीं समाता। वृक्षकी शाखामें चिड़ियाँ रव करती थीं। आओ, हमलोग ईश्वरकी (द्वितीया) स्तुति करें।



ह्वादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[इस प्रकरणमें यथासम्भव पूर्व पूर्व प्रकरणोंके तारा (*) चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

३४१ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्त्तृवाच्यमें ह्वादिगणीय धातु अभ्यस्त (द्विरुक्त) होता है, और अभ्यस्त होकर, हु—जुहु, भी—बिभी, भृ—बिभृ, हा—जहा, ह्री—जिह्री, दा—ददा, धा—दधा, निज्—नेनिज् और विज्—वेविज् होता है, यथा—हु + ति = जुहु + ति = जुहोति (३२२सू०) ।

३४२। अगुण स्वर परे रहनेसे, 'हु' धातुके उकारके स्थानमे 'व्' होता है; और 'हु' धातुके परस्थित 'हि' के स्थानमे 'धि' होता है; यथा—जुहु+अन्ति=जुह्वति (३२९ सू०), जुहु+हि=जुहुधि।

३४३। स्त्-आदिका अगुण व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, पारस्मैपदी अभ्यस्त 'हा' और 'भी' धातुके अन्तमे विकल्पसे 'इ' होता है; यथा—बिभी+त=बिभित, (पक्षे) बिभीत, जहा+त=जहित, (पक्षे)-

३४४। अगुण स्वर परे रहनेसे, अभ्यस्त आकारान्त धातुके आकारका लोप होता है, और व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, आकारके स्थानमे 'ई' होता है, परन्तु 'दा' और 'धा' धातुका आ—ई नहीं होता, यथा—जहीत; (अगुण स्वर) जहा+अन्ति=जहति।

३४५। * अगुण स्वर परे रहनेसे, अनेकस्वरविशिष्ट धातुके 'इ' 'ई' के स्थानमे 'य्' होता है; यथा—बिभी+अन्ति=बिभ्यति; जिह्री+अन्ति=जिह्रियति (३३१ सूत्रानुसार 'इय्')।

३४६। विधिलिङ्का 'य' परे रहनेसे, परस्मैपदी 'हा' धातुके अन्त्य आकारका लोप होता है, और 'हि' परे हा—जहा, जहि तथा जही होता है।

३४७। स, ध, त और थ परे रहनेसे, दधा—धद्, और ददा—दद् होता है, और 'हि' परे रहनेसे, ददा—दे, और दधा—धे होता है; यथा—दधा+ते=धत्ते; ददा+ते=दत्ते, दधा+हि=धेहि; ददा+हि=देहि।

३४८। स्त्-आदिका अगुण स्वर परे रहनेसे, अभ्यस्त (द्विरुक्त) धातुके उपधाका गुण नहीं होता; यथा—नेनिज्+अति=नेनिजति।

३४९। चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्त्तृवाच्यमे मा—मिमा, और आत्म नेपदी हा—जिहा होता है।

ह्वादि सकर्मक परस्मैपदी धातु।

हु दाने (प्रक्षेपे, वैधे आधारे देवतोद्देश्यकहविस्त्यागे, होमे)—हवन करना To offer or present (as an oblation to fire), sacrifice

(जुहोति घृतमग्नौ कृष्णाय होता, "जटाधर सन् जुहुधीह पावकम्" मा० १ ४४ ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जुहोति	जुहुत	जुह्वति
मध्यमपुरुष	जुहोषि	जुहुथ	जुहुथ
उत्तमपुरुष	जुहोमि	जुहुव	जुहुम·

लोट्।

प्रथमपुरुष	जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु
मध्यमपुरुष	जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत
उत्तमपुरुष	जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवु
मध्यमपुरुष	अजुहो·	अजुहुतम्	अजुहुत
उत्तमपुरुष	अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम

विधिलिङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः
मध्यमपुरुष	जुहुयाः	जुहुयातम्	जुहुयात
उत्तमपुरुष	जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम

लृट्—होष्यति।

हा (ओहाक्) त्यागे—छोड़ना To leave, abandon.

("मूढ ! जहीहि धनागमतृष्णाम्" मोहमुद्गर ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जहाति	जहितः , जहीतः	जहति
मध्यमपुरुष	जहासि	जहिथः	जहिथ
उत्तमपुरुष	जहामि	जहिवः	जहिमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	जहातु	जहिताम्	जहतु
मध्यमपुरुष	जहिहि जहीहि जहाहि	जहितम्	जहित
उत्तमपुरुष	जहानि	जहाव	जहाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अजहात्	अजहिताम्	अजहुः
मध्यमपुरुष	अजहाः	अजहितम्	अजहित

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अजहाम्	अजहिव	अजहिम

आशीर्लिङ्—हेयात् । लृट्—हास्यति ।

* दशरथो—स्नुषाभावे [illegible] हीयते हि मतिस्तात ! हीन सह समागमेन [illegible] श्लो० ४२ । *

ह्वादि अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

भी ञि— भये—डरना, To fear, to be afraid of

([illegible] । [illegible] भीत विभुवति ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	बिभेति	बिभीत *	बिभ्यति
मध्यमपुरुष	बिभेषि	बिभीथ	बिभीथ
उत्तमपुरुष	बिभेमि	बिभीव	बिभीम

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	बिभेतु	बिभीताम्	बिभ्यतु
मध्यमपुरुष	बिभीहि	बिभीतम्	बिभीत
उत्तमपुरुष	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम

लङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अबिभेत्	अबिभीताम्	अबिभयु
मध्यमपुरुष	अबिभे	अबिभीतम्	अबिभीत

* अगुण व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'भी' धातुके ईकारके स्थानमें विकल्पसे ह्रस्व इकार होता है, यथा—बिभीत, बिभित ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अबिभयम्	अबिभीव	अबिभीम

विधिलिङ्।

प्रथमपुरुष	बिभीयात्	बिभीयाताम्	बिभीयुः
मध्यमपुरुष	बिभीयाः	बिभीयातम्	बिभीयात
उत्तमपुरुष	बिभीयाम्	बिभीयाव	बिभीयाम

लृट्—भेष्यति।

ह्री लज्जायाम्—शर्मिन्दा होना To blush, to be ashamed.

(स्वपद् अथवा पञ्चमी षष्ठीके साथ प्रयुक्त होता है ; "जिह्रेम्यार्य्यपुत्रेण सह गुरुजनसमीपं गन्तुम्" शकु० ७ , "जिह्रेति नीचसङ्गेभ्यः", "अन्योन्यस्यापि जिह्रीमः , किं पुनः सहवासिनाम्" मा० ११. ८८ ।)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जिह्रेति	जिह्रीतः	जिह्रियति
मध्यमपुरुष	जिह्रेषि	जिह्रीथः	जिह्रीथ
उत्तमपुरुष	जिह्रेमि	जिह्रीवः	जिह्रीमः

लोट्।

प्रथमपुरुष	जिह्रेतु	जिह्रीताम्	जिह्रियतु
मध्यमपुरुष	जिह्रीहि	जिह्रीतम्	जिह्रीत
उत्तमपुरुष	जिह्रयाणि	जिह्रयाव	जिह्रयाम

लङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अजिहेत्	अजिहीताम्	अजिहयु
मध्यमपुरुष	अजिहे	अजिहीतम्	अजिहीत
उत्तमपुरुष	अजिहयम्	अजिहीव	अजिहीम

विधिलिङ्—जिह्रीयात् । लृट्—हेप्यति ।

ह्वादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

मा माने—मापना, नापना To measure

("व्यधित मिमान इवावनि पदानि" माघ० ७ १३,
"पुर सखीनाममिमीत लोचने" कु० ५ ६१ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मिमीते	मिमाते	मिमते
मध्यमपुरुष	मिमीषे	मिमाथे	मिमीध्वे
उत्तमपुरुष	मिमे	मिमीवहे	मिमीमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	मिमीताम्	मिमाताम्	मिमताम्
मध्यमपुरुष	मिमीष्व	मिमाथाम्	मिमीध्वम्
उत्तमपुरुष	मिमै	मिमावहै	मिमामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अमिमीत	अमिमाताम्	अमिमत
मध्यमपुरुष	अमिमीथाः	अमिमाथाम्	अमिमीध्वम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अमिमि	अमिमीवहि	अमिमीमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	मिमीत	मिमीयाताम्	मिमीरन्
मध्यमपुरुष	मिमीथाः	मिमीयाथाम्	मिमीध्वम्
उत्तमपुरुष	मिमीय	मिमीवहि	मिमीमहि

लृट्—मास्यते ।

❀ अनु+मा—अनुमाने, "अग्निं प्रकृतिं स्माहुर्लिङ्गैस्तुमिमीमहे" महाभा० । उप+मा—उपमाने । निर्+मा—निर्माणे; "[illegible] [illegible] निर्मानि" महाभा० [illegible] । परि+मा—परिमाणे । प्र+मा—[illegible], "न परोपदिष्ट न च स्वतः प्रमिमीऽशुभ [illegible]" माघ० १६ ४० । ❀

हा (ओहाङ्) गतौ—जाना To go, move.

("जिहीते नवाश्रयम्" ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जिहीते	जिहाते	जिहते
मध्यमपुरुष	जिहीषे	जिहाथे	जिहीध्वे
उत्तमपुरुष	जिहे	जिहीमहे	जिहीमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	जिहीताम्	जिहाताम्	जिहताम्
मध्यमपुरुष	जिहीष्व	जिहाथाम्	जिहीध्वम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	जिहे	जिहावहे	जिहामहे

लङ्।

प्रथमपुरुष	अजिहीत	अजिहाताम्	अजिहत
मध्यमपुरुष	अजिहीथाः	अजिहाथाम्	अजिहीध्वम्
उत्तमपुरुष	अजिहि	अजिहीवहि	अजिहीमहि

विधिलिङ्—जिहीत, जिहीयाताम्, जिहीरन्।

लृट्—हास्यते।

✤ उप+हा—आगमने ; उपाजिहीथा न महीतलं यदि" माघ० १.३७.। उत्+हा—उदये, "उज्जिहीते हिमांशु" महाभा० ४ ३९ ; अपगमे च, "उज्जिहानजीवितम्" मालती० १० । ✤

ह्लादि सकर्मक उभयपदी धातु।

भृ (डुभृञ्) धारणे ; पोषणे च—(१) धारण करना ;
(२) पोषण करना To bear, to maintain.

((१) "द्रुमौ बिभर्त्ति पर्णौ खलु पृष्ठकेन" चौरपञ्चाशिका ९० ;
(२) साध्वीं भार्य्यां बिभृयात्" मनु० ९. ९९ ।)

(परस्मैपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	बिभर्त्ति	बिभृतः	बिभ्रति
मध्यमपुरुष	बिभर्षि	बिभृथः	बिभृथ
उत्तमपुरुष	बिभर्मि	बिभृवः	बिभृमः

लोट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	बिभर्त्तु	बिभृताम्	बिभ्रतु
मध्यमपुरुष	बिभृहि	बिभृतम्	बिभृत
उत्तमपुरुष	बिभराणि	बिभराव	बिभराम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अबिभः	अबिभृताम्	अबिभरुः
मध्यमपुरुष	अबिभः	अबिभृतम्	अबिभृत
उत्तमपुरुष	अबिभरम्	अबिभृव	अबिभृम

विधिलिङ्—बिभृयात्, बिभृयाताम्, बिभृयुः।

लृट्—भरिष्यति।

(आत्मनेपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	बिभृते	बिभ्राते	बिभ्रते
मध्यमपुरुष	बिभृषे	बिभ्राथे	बिभृध्वे
उत्तमपुरुष	बिभ्रे	बिभृवहे	बिभृमहे

लोट्।

प्रथमपुरुष	बिभृताम्	बिभ्राताम्	बिभ्रताम्
मध्यमपुरुष	बिभृष्व	बिभ्राथाम्	बिभृध्वम्
उत्तमपुरुष	बिभरै	बिभरावहै	बिभरामहै

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अबिभृत	अबिभ्राताम्	अबिभ्रत
मध्यमपुरुष	अबिभृथा	अबिभ्राथाम्	अबिभृध्वम्
उत्तमपुरुष	अबिभ्रि	अबिभृवहि	अबिभृमहि

विधिलिङ्—बिभ्रीत, बिभ्रीयाताम्, बिभ्रीरन्।

लृट्—भरिष्यते।

सम् + भृ—सञ्चये, समूहे, निष्पादने, उत्पादने च।

दा (डुदाञ्) दाने—देना To give.

("अवकाश किलोदन्वान् रामायाभ्यर्थितो ददौ" र० ४ ५८,

"कथमस्य स्तन दास्ये ?" हरिवंशम्।)

(परस्मैपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ददाति	दत्तः	ददति
मध्यमपुरुष	ददासि	दत्थः	दत्थ
उत्तमपुरुष	ददामि	दद्वः	दद्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	ददातु	दत्ताम्	ददतु
मध्यमपुरुष	देहि	दत्तम्	दत्त
उत्तमपुरुष	ददानि	ददाव	ददाम

लङ्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
मध्यमपुरुष	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
उत्तमपुरुष	अददाम्	अदद्व	अदद्म

विधिलिङ्—दद्यात्, दद्याताम्, दद्युः।

लृट्—दास्यति।

(आत्मनेपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	दत्ते	ददाते	ददते
मध्यमपुरुष	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
उत्तमपुरुष	ददे	दद्वहे	दद्महे

लोट्।

प्रथमपुरुष	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
मध्यमपुरुष	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उत्तमपुरुष	ददै	ददावहै	ददामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अदत्त	अददाताम्	अददत
मध्यमपुरुष	अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

विधिलिङ्—ददीत, ददीयाताम्, ददीरन्।

लृट्—दास्यते।

आ + दा, उप + आ + दा—ग्रहणे, स्वीकरणे, आत्मनेपदी। वि + आ + दा—व्यादाने, प्रसारणे। प्र + दा—प्रदाने। सम् + प्र + दा—सम्प्रदाने, सम्यक्दाने।

धा (डुधाञ्) (१) धारणे, (२) पोषणे च To hold up, sustain, to maintain.

((१) "शिरसि मसीपटलं दधाति दीपः" भामिनी० १ ७४, (२) "सम्यग्विनियमेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्" र० १ २६ ।—(३) स्थापने To put, place, "विद्यालदोषेषु दधाति दण्डम्" महाभा०; "धत्ते चक्षुर्मुकुलिनि रणत्कोकिले बालचूते" मालती० ३ १२, "धर्मे दध्यान्मनः" मनु० १२ २३,—(४) दाने To bestow anything upon one, "पुण्यां लक्ष्मीमथ मयि भृशं धेहि देव। प्रसीद" मालती० १.९.१)

(परस्मैपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	दधाति	धत्तः	दधति
मध्यमपुरुष	दधासि	धत्थः	धत्थ
उत्तमपुरुष	दधामि	दध्वः	दध्मः

लोट्।

प्रथमपुरुष	दधातु	धत्ताम्	दधतु
मध्यमपुरुष	धेहि	धत्तम्	धत्त

२

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	दधानि	दधाव	दधाम

लङ्।

प्रथमपुरुष	अदधात्	अधत्ताम्	अदधु
मध्यमपुरुष	अदधाः	अधत्तम्	अधत्त
उत्तमपुरुष	अदधाम्	अदध्व	अदध्म

विधिलिङ्—दध्यात्, दध्याताम्, दध्युः।

लृट्—धास्यति।

(आत्मनेपद)

लट्।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	धत्ते	दधाते	दधते
मध्यमपुरुष	धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
उत्तमपुरुष	दधे	दध्वहे	दध्महे

लोट्।

प्रथमपुरुष	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
मध्यमपुरुष	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्
उत्तमपुरुष	दधै	दधावहै	दधामहै

लङ्।

प्रथमपुरुष	अधत्त	अदधाताम्	अदधत
मध्यमपुरुष	अधत्थाः	अदधाथाम्	अधद्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि

विधिलिङ्—दधीत, दधीयाताम्, दधीरन्।

लृट्—धास्यते।

४५ अन्तर्+धा—अभ्यन्तरीकरणे, स्वीकरणे, "विश्रम्भे देवि! मामन्तर्धातुमर्हसि" र० १९. ८१, आवरणे, आच्छादने, "पितुरन्तर्दधे कीर्तिं शीलवृत्तिसमाधिभिः" महाभा०, अन्तर्धाने च (छिप जाना, गायब होना, पोशीदा होना—अक०)—आत्मनेपदी (वक्रमीके साथ);—कर्मकर्त्तरि, अन्तर्धीयते, "इषुभिर्व्यतिसर्पद्भिरादित्योऽन्तरधीयत" महाभा०, "रात्रिरादित्योदयेऽन्तर्धीयते" निरुक्तम्। तिरस्+धा—अन्तर्धाने। पुरस्+धा—पुरस्करणे, अग्रतः स्थापने। श्रत्+धा—श्रद्धायाम्, विश्वासे (द्वितीयान्त वस्तुके साथ), "क श्रद्धास्यति भूतार्थम्?" मृच्छ० ३. २४.। अपि+धा—आच्छादने। अभि+धा—आख्याने, कथने। अव+धा—स्थापने, प्रणिधाने, मनःसयोगे च, आत्मनेपदी। वि+अव+धा—व्यवधाने, अन्तरे। आ+धा—स्थापने, धारणे, अर्पणे, उत्पादने च। सम्+आ+धा—एकाग्रीकरणे, सिद्धान्ते, विरोधभञ्जने, प्रतिकारे च। उप+धा—स्थापने, उपधानीकरणे, प्रयोगे, अर्पणे च। नि+धा—स्थापने, न्यासे। प्र+नि+धा—स्थापने, अर्पणे, प्रसारणे च। सम्+नि+धा—स्थापने,—कर्मकर्त्तरि—उपस्थितौ, सन्निधीयते। परि+धा—परिधाने। वि+धा—करणे, अनुष्ठाने। अनु+वि+धा—अनुवर्त्तने। प्रति+वि+धा—प्रतिकारे। सम्+धा—संयोजने, मिलने, सौहार्दस्थापने, आरोपणे (बाणादीनां धनुषि), उत्पादने च। अति+सम्+धा—वञ्चने, प्रतारणे। अनु+सम्+धा—अन्वेषणे, विन्दने, विचारणे, अनुसरणे च। अभि+सम्+धा—उद्देशे, अभिप्राये, वञ्चना-

धार्, धरोहरणे च। ❦

* * * *

निज् (णिजिर्) शौचे (निर्मलीकरणे)—धोना To wash, cleanse, purify—(लट्) नेनेक्ति, निनिक्त, नेनिजति; नेनिक्ते, नेनिजाते, नेनिजते। (लोट्) नेनेक्तु, हि—नेनिग्धि, आनि—नेनिजानि। (लङ्) अनेनक्, अनेनिक्ताम्, अनेनिजुः, अम्—अनेनिजम्, अनेनिक्त। (विधिलिङ्) नेनिज्यात्, नेनिजीत। (लृट्) नेक्ष्यति, नेक्ष्यते।

❦ अव + निज्—अवनेजने, प्रक्षालने। निर् + निज्—निर्णेजने, शोधने। ❦

विज् (विजिर्) पृथक्करणे—अलग करना To separate—इसके रूप 'निज्' धातुवत्।

विष् (विष्लृ) व्याप्तौ—व्याप्त होना, फैलना To pervade—(लट्) वेवेष्टि, वेविष्टः, वेविषति; वेविष्टे। (हि) वेविड्ढि। (लङ्) अवेवेट्, अवेविष्टाम्, अवेविषुः, अम्—अवेविषम्; अवेविष्ट। (विधिलिङ्) वेविष्यात्, वेविषीत। (लृट्) वेक्ष्यति, वेक्ष्यते।

❦ परि + विष् + णिच्—परिवेषणे, अन्नाद्युपसर्पणे (परोसना); वेष्टने च; परिवेषयति। ❦

अनुवाद करो—देवतालोग घृत भक्षण करते हैं। घृतसे अग्निमें हवन करो। ब्राह्मणोंको प्रतिदिन होम करना चाहिये। छोटे बड़े सब कोई दुष्टसे डरते हैं। देवतालोग असुरोंसे बड़े डरते थे। असत् कर्मका (द्वितीया) त्याग करो। मुझे दो वस्त्र दीजिये। उन्होंने मुझे ऐसा कहा है। अब कपड़े पहनो।

शत्रुके साथ सन्धि नहीं करना । अनन्तर वे अन्तर्हित हो गये । गुरु और शास्त्रके वाक्यमे श्रद्धा करनी चाहिये ।

☞ एक कालकी क्रिया समझानेसे, प्रथम, मध्यम, उत्तम—इन तीन पुरुषोंके बीचमे इसी क्रमसे परवर्त्ती पुरुषके अनुसार क्रियाका पुरुष, और समष्टि सङ्ख्याके अनुसार क्रियाका वचन होगा ; अर्थात् कर्त्ता—प्रथम और मध्यम पुरुष होनेसे मध्यम पुरुषके अनुसार, कर्त्ता—प्रथम और उत्तम पुरुष होनेसे उत्तम पुरुषके अनुसार, और कर्त्ता—प्रथम, मध्यम तथा उत्तम पुरुष होनेसे उत्तम पुरुषके अनुसार क्रिया होगी , यथा—(वह और तू जाओ) स त्वञ्च यातम् , (वह और मैं जायें) स च अहञ्च याव ; (वह, तू और मैं जायें) स त्वम् अहञ्च याम ।

कर्त्ता व्यस्तरूपसे अर्थात् अनियमसे विन्यस्त होनेपरभी इसी नियमानुसार क्रिया होगी , यथा—(तू और वह जाओ) त्वं स च यातम् , (मैं और तू जायें) अहञ्च त्वञ्च याव , (मैं, तू और वह जायें) अहं त्वं स च याम ।*

---

* पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग पदका एकही विशेषण होनेसे, वह पुंलिङ्ग होता है ; और उनमे एकके अथवा दोनोंके साथ क्लीवलिङ्ग पद रहनेसे, उनका विशेषण क्लीवलिङ्ग होता है । यथा—महान्तौ वृक्षः शाखा च , महान्तो वृक्षः शाखाः प्रशाखाश्च , महान्ति वृक्षः पत्रञ्च , महान्ति वृक्षः शाखा पत्रञ्च । वृक्षः शाखा च पतितौ , वृक्षः फलञ्च पतिते , वृक्षः शाखा फलञ्च पतितानि ।

क्लीवलिङ्गके स्थलमे विकल्पसे एकवचनान्त होता है । यथा—महत् वृक्षः ... श्च ; महत् वृक्षः शाखा पत्रञ्च ।

अनुवाद करो—तू और मैं चन्द्र देखते हैं। राम, श्याम और मैं जायेंगे। तुम और वे क्यों नहीं आये ? मैं, तू और वह कभी झूठ नहीं कहेंगे। तुम और वे काम क्यों नहीं करते ? वे और हम खा चुके हैं।

✕ एक क्रिया और काल समझानेमें, हिन्दीमें व्यवहृत 'वा', 'अथवा', 'या' (or, either—or, neither—nor)—इन अव्ययोंके योगमें क्रियाके पास जो कर्त्ता रहता है, उसीके अनुसार क्रियाके पुरुष और वचन होते हैं, यथा—(तू या मैं जाऊंगा) त्वम् अहं वा यास्यामि (तुम अथवा वे जावें) यूयं ते वा यान्तु; (वे अथवा तू गया था) ते त्वं वा अगच्छः ।

अनुवाद करो—लड़के या शिक्षक जानता है। इस पुस्तकको मैं अथवा तू पढ़। मेरे पढ़नेका व्यय पिता वा भ्राता देता था। उसने, नहीं तो तूने, मेरी हानि की है। इस वस्त्रको मैं अथवा तू पहनेगा। इस बालसे तू या वह हंसा है।



द्विष्टप्रयोगमें अन्तिम पद वा निकटवर्त्ती पदके अनुसारभी विशेषण वा क्रियापदके लिङ्ग वचन होते हैं, यथा—"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी", "स्त्रियो धन सुतो दाराः", "विषादप्यमृतं ग्राह्यम्, अमेध्यादपि काञ्चनम्। नीचादप्युत्तमा विद्या, स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥" "यस्य वीर्य्येण कृतिनो वयञ्च भुवनानि च" उत्तर० १ ३२ (भुवनानि कृतानि); "काननञ्च जृम्भितगुणो नवशैवलञ्च" मालती० ९. ३५ ।

विषय-सूची।

विषय सूची ।

विषय सूची ।

विषय सूची ।

विषय सूची ।

पाठ-परिशुद्धि ।

पृष्ठ २८ पंक्ति ८ मे—'सिर्द्धस्तत्तर 'के स्थानमे 'स्थार्यस्तत्तर ' पढना ।

पृ० ४३ पं० ७ के नीचे पढना—'निक्षेप करो—राम उवाच, अत एव, देव ऋषि ।'

पृ० १०२ पं० १७ (च) मे पढना—'कोटि' शब्दभी स्त्रीलिङ्ग ।

पृ० १८७ पं० ६ मे पढना—'(पूज्य अध्यापक कहाँ ?) क तत्रभवान् अध्यापक ? ।'

पृ० २०३ पं० १ के नीचे पढना—'यहासे Hence—इत ।'

पृ० २०७ पं० ८ मे—'अच्छे तौरसे' पढना ।

पृ० २१६ पं० ६ मे—'बुद्धि' शब्दके पश्चात् 'दैवी'-शब्द पढना ।

पृ० २२४ पं० ३ मे पढना—'क्रियामे प्रथमपुरुषकी विभक्ति होती है ।'

पृ० २२६ पं० १ मे पढना—'सकर्मक धातु कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्यमे ।'

पाठ परिशुद्धि ।

पृ० २७१ पं० ७ के पश्चात् ('गम् गतौ' के नीचे) पढ़ना—("सर्वे गत्यर्था प्राप्त्यर्था ज्ञानार्थाश्च"। "काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्" हितो० ।—प्राप्तौ, यथा—तृप्तिं गच्छति, विषादं गच्छति ।)

पृ० २७२ पं० १२ मे 'उप + आ + गम्' के पश्चात् निम्नलिखित अंश छूट गया , सो ठीक करके पढ़ना—

'उप + आ + गम्—प्राप्तौ । प्रति + आ + गम्—प्रत्यावर्तने (लौटना) । सम् + आ + गम्—मिलने ।'

पृ० ३२३ पं० १६ मे पढ़ना—'ह्वयति, ह्वयते , ह्वास्यति, ह्वास्यते । (१) ह्वयति ह्वयते मह्वो मह्वम् ।'

पृ० ३४२ पं० १७ मे—'क्षुभ्यते दासस्य दधी ' पढ़ना ।

पृ० ३७२ पं० १३ मे—'सम्पत् सम्पदमनुबध्नाति' पढ़ना ।

पृ० ५०६ पं० २२ मे—'म० ८, १६ ' पढ़ना ।

पृ० ५६४ पं० १—'णिजन्त धातु' यह शीर्षक ५३९ सूत्रके ऊपर होना चाहिये ।

पृ० ५६७ पं० १७ मे—'अगुग य' के स्थानमे 'अगुग य' पढ़ना ।

पृ० ६१३ पं० १२ मे—'जिससे' के स्थानमे 'जिसमे' पढ़ना ।

पृ० ६२६ पं० १० मे—'एकेन ऊना गणिता दशाख्या ' के स्थानमे 'ऊना किलैकेन मता दशाख्या ' पढ़ना ।

पृ० ६४३ पं० १२—'तृतीयाप्रतिषेध ' इत्यादि टिप्पणीस्थविषय टिप्पणी-विभाजक 'लाइन' के नीचे आना चाहिये ।

पृ० ७०६ पं० ११ मे—'२० १४ ३३' पढ़ना ।

पृ० ९९३ 'ईदृश्'—'सर्वनाम स्त्रीलिङ्ग शब्द' पढ़ना ।

इट्-विधान।

३६० । लट्, लोट्, लङ् और य भिन्न व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, धातुके उत्तर 'इट्' होता है, 'ट्' नहीं रहता। जिन धातुओंके उत्तर 'इट्' होता है, उनको 'सेट् धातु' कहते हैं।

३६१ । दरिद्रादि (१) भिन्न आकारान्त, इवर्णान्त, उकारान्त, ऋका-रान्त धातु, और शकादि (२) व्यञ्जनान्त धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता। जिन धातुओंके उत्तर 'इट्' नहीं होता, उन्हें 'अनिट् धातु' कहते हैं।

३६२ । स्नु, धाय्, स्फाय्, प्याय्, सू (अदादि), सू (दिवा-दि), धू, रधादि (३) धातु, ऊकार इत् (४) धातु, और रु, तु, क्षु, नु धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है। इनको 'वेट् धातु' कहते हैं। यथा—रध् + स्यति = रधिष्यति, रत्स्यति।

नीचे आकारान्त आदि-क्रमसे अनिट्

धातु लिखे जाते हैं—

दरिद्रादि। (१)

आकारान्त—'दरिद्रा' भिन्न सब।

आकारान्ता अदरिद्रा अनिट परिकीर्त्तिता ।

इकारान्त—श्रि और श्वि भिन्न सब।

श्रि श्वि-भिन्ना इकारान्ताश्चानिट कथिता बुधै ।

ईकारान्त—डी शी दीधी वेवी भिन्न सब।

डी शी वेवी दीधी-भिन्ना ईकारान्तास्तथाऽनिट ।

उकारान्त—यु रु नु स्नु क्षु क्ष्णु ऊर्णु भिन्न सब।

वर्जयित्वा यु रु क्षु स्नु णु क्ष्णू ऊर्णुञ्च नसमम्।
अनिट स्युरुकारान्ता ।

ऋकारान्त—वृ और जागृ भिन्न सब।
ऋकारान्ता वृ-जागृभ्या विना सर्वेऽनिटो मता ।

शकादि। (२)

कान्त—केवल शक् धातु।
कान्तेषु शक एवानिट्।

चान्त—पच् मुच् रिच् वच् विच् सिच्।
चान्तेषु पच्-मुच-रिचो वच् विचौ सिच एव च।
अनिट पद् परिज्ञेया ।

छान्त—केवल प्रच्छ् धातु।
प्रच्छदच्छान्तेष्वनिट् स्मृत ।

जान्त—त्यज् निज् भज् भञ्ज् भुज् भ्रस्ज् मस्ज् सृज्
यज् युज् रञ्ज् रुज् विज् भञ्ज् सृज् स्वञ्ज्।
त्यजो निजो भजो भञ्जो भुज-भ्रस्जौ मस्न सृज्-यज ।
युजो रञ्जो रुज विजौ सन् मञ्जौ स्वञ्ज एव च।
षोडशैतान् जकारान्तान् जानीयादिड्विवर्जितान् ॥

दान्त—अद् क्षुद् खिद् छिद् तुद् नुद् पद् भिद् विद्*
विन्द्† शद् सद् स्कन्द् स्विद् हद्।
अद क्षुद खिदश्चैव छिद् तुदौ नुद्-पदौ भिद ।

---

* दिवादि।

† व्याघ्रभूत्यादिमतेऽयं सेट्, चान्द्रादिमतेऽनिट्।

विदो विन्द शद् सदौ स्कन्द स्विद हदास्तथा ।
दकारान्तेषु विज्ञेया इमे पञ्चदशानिट ॥

धान्त—क्रुध् क्षुध् बुध् बन्ध् युध् राध् रुध् व्यध् शुध् साध् सिध् * ।
क्रुध· क्षुधो बुधो बन्धो युधो राधो रुधो व्यध ।
शुध साध सिधश्चेति धान्तेष्वेकादशानिट ॥

नान्त—मन् और हन् धातु ।
अनिटौ मन् हनौ नान्ते ।

पान्त—आप् क्षिप् छुप् तप् तिप् तृप् त्रप् दृप् लिप् लुप् वप् शप् सृप् स्वप् ।
आप· क्षिपश्छुपश्चैव तप्-तिप्-तृप् त्रप् दृपो लिप ।
लुप् वप् शप् सृप्-स्वप पान्तेष्वनिट् स्युश्चतुर्दश ॥

भान्त—यभ् रभ् लभ् ।
यभ् रभ्-लभो भकारान्तेष्वनिटो गदितास्त्रय ॥

मान्त—गम् नम् यम् रम् ।
गम् नमौ यम् रमौ चेति मकारान्तेष्विमेऽनिट ।

शान्त—क्रुश् दन्श् दिश् दृश् मृश् रिश् रुश् लिश् विश् स्पृश् ।
क्रुश्-दन्श-दिश्-दृशश्चैव मृश् रिश्-रुश्-लिश् विशस्तथा ।
स्पृशश्चेति शकारान्तेष्वनिट कीर्त्तिता दश ॥

षान्त—कृष् तुष् त्विष् दुष् द्विष् पिष् पुष् † मृष् विष् शिष् शुष् श्लिष् ।
कृष्-तुष् त्विष्-दुष्-द्विषश्चैव पिष् पुष्-मृष् विष् शिषस्तथा ।

---

* दिवादि ।

† दिवादि पुष् । क्र्यादि पुष् सेट् ।

तृप् दृपौ चेति कथ्यन्ते पान्तेषु द्वादशानिटः ॥

सान्त—घस् और वस् धातु।

अनिटौ घस्-वसौ सान्ते।

हान्त—दह् दिह् दुह् नह् मिह् रुह् लिह् वह्।

दहो दिहो दुहश्चैव नहो मिह-रुहौ लिह।

वहश्चेति हकारान्तेष्वनिटोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥

रधादि। (३)

रध् तृप् दृप् द्रुह् नश् मुह् ष्णिह् ष्णुह्।

रध्यतिस्तृप्य-दृप्यौ च द्रुह्यतिर्नश्यतिस्तथा।

मुह्यति स्निह्यति स्नुह्यो रधाद्यष्ट धातवः ॥

ऊकार-इत (ऊदित्) धातु। (४)

मृज्, सिध्, तृप्, दृप्, क्षम्, गुह्, मुह्, अश् (स्वादि), गाह्, तृह्, क्लिद्, त्रपूष् (त्रप्), स्निह्, नश्, द्रुह् इत्यादि।

लृट्।

[यथासम्भव पूर्व पूर्व प्रकरणोके स्टार (*) चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य होगा।]

३६३। * लृट्, लुट् और लृङ् विभक्ति परे रहनेसे, धातुके अन्त्य-स्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है, यथा—भू+स्यति=भविष्यति, (ज्ञानार्थ) विद्+लृट्=वेदिष्यति, कथि—कथयिष्यति।

३६४। * 'स्य' परे रहनेसे, ऋकारान्त धातु और हन् धातुके उत्तर 'इट्' होता है, और वृत्, क्लृप्(कृप्) प्रभृति धातुके उत्तर

परस्मैपदके 'स्य' परे 'इट्' नहीं होता, किन्तु आत्मनेपदमें नित्य, अन्यत्र विकल्पसे होता है, यथा—(कृ) करिष्यति, (हन्) हनिष्यति, (वृत्) वर्त्स्यति, वर्त्तिष्यते।

३६५। * लृट्, लृङ् परे रहनेसे, नृत्, छृद्, चृत्, छृद् और तृद् धातुके उत्तर, और आशीर्लिङ्के आत्मनेपदमें नृत् आदि, वृ तथा ॠका-रान्त धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है, यथा—(नृत्) नर्तिष्यति, नर्त्स्यति।

३६६। * 'स' परे रहनेसे, परस्मैपदमें गम् धातुके उत्तर 'इट्' होता है; आत्मनेपदके योग्य होनेसे विकल्पसे होता है; यथा—गमिष्यति।

३६७। * चतुर्लकार परे रहनेसे अकर्तृवाच्यमें, और लृट्-आदि विभक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे समस्त वाच्यमें, एकारान्त, ऐकारान्त तथा ओकारान्त धातु आकारान्त होता है, यथा—(धे) धास्यति, (गै) गास्यति, (शो) शास्यति।

३६८। * उक्त विषयमें ब्रू—वच्, अस्—भू, चक्ष्—ख्शा अथवा ख्या† होता है, यथा—ब्रू+स्यति=वक्ष्यति (३०५ सू०), (अस्) भविष्यति, (चक्ष्) ख्शास्यति, ख्शास्यते, ख्यास्यति, ख्यास्यते।

३६९। * स्वरवर्ण परे गुह्—गूह् होता है, यथा—गुह्+स्यति= गूहिष्यति (३६२ सू०)। सर्वत्र क्लृप् (कृप्)—कल्प् होता है, केवल 'कृपण' प्रभृति स्थानमें नहीं होता, यथा—कल्प्स्यते।

३६०। * 'स' परे रहनेसे, 'ध' के स्थानमें 'प', और दह्, बन्ध्, बुध् धातुके 'द' के स्थानमें 'भ' होता है, गुह् और गाह् धातुके 'ग' के

† अन, उस्, अस् परे नहीं होता। ख्शा और ख्या उभयपदी।

स्थानमें 'ष' होता है, यथा—(रम्) रप्स्यते; (कुट्) मोत्स्यते; (गुह्) घोक्ष्यति।

३६१। * कुटादिं† धातुके उत्तर गुण नहीं होता, परन्तु लिट्का सगुण 'अ' और ण-इत्(णित्) प्रत्यय परे रहनेसे होता है; यथा—(कुट्) कुटिष्यति।

३६२। * चतुर्लकार-भिन्न सगुण विभक्तिमें भ्रस्ज् के स्थानमें—भर्ज् और भ्रज् होते हैं, यथा—भ्रस्ज्+स्यति=भर्क्ष्यति, भ्रक्ष्यति (३०६ सू०)।

३६३। * लुट्-आदि विभक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे, दरिद्रा धातुका 'आ' लुप्त होता है, परन्तु सन्, अक, अन परे रहनेसे नहीं होता; लुङ् परे विकल्पसे लोप होता है, यथा—दरिद्रा+स्यति=दरिद्रिष्यति।

३६४। ग्रह् धातुके उत्तर विहित 'इट्' दीर्घ होता है; और वृ तथा ॠकारान्त धातुके उत्तर विहित 'इट्' विकल्पसे दीर्घ होता है; किन्तु लिट् और आशीर्लिङ्में नहीं होता, यथा—(ग्रह्) ग्रहीष्यति; (तॄ) तरीष्यति, तरिष्यति।

३६५। * सगुण धुट्-वर्ण परे रहनेसे, कृष्, मृश्, स्पृश्, तृप्, दृप् और सृप् धातुके 'ऋ' के स्थानमें विकल्पसे 'र' होता है; दृश् और सृज् धातुके 'ऋ' के स्थानमें नित्य 'र' होता है; यथा—(कृष्) क्रक्ष्यति, कर्क्ष्यति; (दृश्) द्रक्ष्यति।

३६६। * 'स' परे रहनेसे, 'स्' के स्थानमें 'त्' होता है; यथा—

† कुटादि—कुट्, पुट्, लुट्, स्फुट्, स्फुर्, स्फुल्, त्रुट्, विज् इत्यादि। विज और लिख् धातु विकल्पसे कुटादि।

(वस्) वत्स्यति ।

३६७ । * 'स' और 'त' परे रहनेसे, नश् और मस्ज् धातुके अकारके पश्चात् अनुस्वार होता है, यथा—(नश्) नङ्क्ष्यति, (मस्ज्) मङ्क्ष्यति ।

लृङ् ।

[लट्-विभक्तिमें धातुके जिसप्रकार रूप होते हैं, लृङ्-विभक्तिमेंभी उसीप्रकार रूप होंगे, केवल अधिक २६१ और २६३ सूत्रोंका कार्य्य होगा, यथा—(भू) अभविष्यत्, (विद्—अदादि) अवेदिष्यत् ।]

कृ धातु ।

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्
मध्यमपुरुष	अकरिष्यः	अकरिष्यतम्	अकरिष्यत
उत्तमपुरुष	अकरिष्यम्	अकरिष्याव	अकरिष्याम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त
मध्यमपुरुष	अकरिष्यथाः	अकरिष्येथाम्	अकरिष्यध्वम्
उत्तमपुरुष	अकरिष्ये	अकरिष्यावहि	अकरिष्यामहि

३६८ । लृङ्-विभक्ति परे रहनेसे, 'अधि'-पूर्वक 'इ' धातुके स्थानमें विकल्पसे 'गी' होता है, यथा—अधि + इ + स्यत = अध्यगीष्यत† ।

---

† 'गी' का गुण नहीं होता ।

(पक्षे) अध्यैष्यत ।

अनुवाद करो—उसका धन होता, तो मुझे देता । विद्या रहती, तो श्यामको (द्वितीया) सब कोई आदर करते । ज्ञान होता, तो सुख होता । मैं भक्त होता, तो ईश्वरकी कृपा पाता । सामर्थ्य रहता, तो अभी इस कामको करता ।

लुट् ।

[इस प्रकरणमें यथासम्भव पूर्व पूर्व स्टार (*)-चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

३६९ । * 'त' परे रहनेसे, भृ, स्तु, कुष्, सह्, रिष्, रुष्, लुभ्, अश् और इष् धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है, यथा—(भृ) भरिता, भर्त्ता ; (स्तु) स्तविता, स्तोता इत्यादि ।

३७० । * सह् और वह् धातुका 'ह्' परस्थित तकारसे मिलकर 'ढ' होता है, और पूर्वस्थित अकारके स्थानमें ओकार होता है ; यथा—सह्+ता=सहिता, (पक्षे) सोढा, वह्+ता=वोढा ।

३७१ । 'भ'—परस्थित 'त' अथवा 'थ'से मिलकर 'ब्ध' होता है ; यथा—लभ्+ता=लब्धा ।

परस्मैपदी—भू धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भविता	भवितारौ	भवितारः
मध्यमपुरुष	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
उत्तमपुरुष	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

आत्मनेपदी—शी धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शयिता	शयितारौ	शयितारः
मध्यमपुरुष	शयितासे	शयितासाथे	शयिताध्वे
उत्तमपुरुष	शयिताहे	शयितास्वहे	शयितास्महे

कृ—कर्ता ।
मृ—मरिता, मर्ता ।
तॄ—तरीता, तरिता (३६४ सू०) ।
जि—जेता ।
नी—नेता ।
श्रु—श्रोता ।
गै—गाता (३६७ सू०) ।
अधि + इ—अध्येता ।
क्लृप् (कृप्)—कल्प्ता† ।
ग्रह्—ग्रहीता (३६४ सू०) ।
चल्—चलिता ।
त्यज्—त्यक्ता ।
दह्—दग्धा (३३४ सू०) ।

दृश्—द्रष्टा (३६६।३६९ सू०) ।
नश्—नंष्टा, नशिता (३०२ सू०) ।
प्रच्छ्—प्रष्टा (३१६ सू०) ।
गम्—गन्ता ।
मन्—मन्ता ।
हन्—हन्ता ।
वच्—वक्ता (३०४ सू०) ।
लभ्—लब्धा ।
वस्—वस्ता ।
रुध्—रोद्धा (२९८ सू०) ।
शक्—शक्ता ।
भ्रस्ज्—भर्ष्टा, भ्रष्टा (३६० सू०) ।
मस्ज्—मङ्क्ता ।
दरिद्रा—दरिद्रिता (३६३ सू०) ।

दिवादि विद्—वेत्ता, अदादि विद्—वेदिता ।

सृज्—स्रष्टा । या—याता । दा—दाता । सह्—सहिता, सोढा । वह्—वोढा ।

---

† लुट्के परस्मैपदमें क्लृप् (कृप्) धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता ।

अनुवाद करो—कल राम राजा होगा । परसो तुम्हारे घर जाऊंगा । तू शीघ्र इसका फल पायेगा । राजा शत्रुओंके साथ युद्ध करेगा । वे तुझे किसी कार्य्यमें नियुक्त करेंगे । तू अवश्य युद्धमें शत्रुओंको जीतेगा ।

आशीर्लिङ्—परस्मैपद ।

३७२ । * आशीर्लिङ्के परस्मैपदमें दा, धा, षे, पा, मा, हा और गै धातुके अन्तमें 'ए' होता है, यथा—दा+यात=देयात्, (धा) धेयात्, (पा) पेयात्, (मा) मेयात्, (हा) हेयात्, (गै) गेयात् ।

३७३ । * अगुण 'य' परे रहनेसे, अन्त्य 'इ' और 'उ' दीर्घ होते हैं, यथा—(जि) जीयात्, (श्रु) श्रूयात् ।

३७४ । * संयुक्तवर्णादि आकारान्त धातुका 'आ' विकल्पसे 'ए' होता है, परन्तु स्था धातुके अन्तमें नित्य 'ए' होता है, यथा—(घ्रा) घ्रेयात्, घ्रायात्, (स्था) स्थेयात् ।

३७५ । * अगुण 'य' परे रहनेसे, ह्रस्व ऋ—'रि' होता है, यथा—(कृ) क्रियात् ।

३७६ । * अगुण 'य' और लिङ्की अगुण विभक्ति परे रहनेसे, संयुक्तवर्णादि ऋकारान्त धातु, और ऋ, जागृ धातुका गुण होता है, यथा—(स्मृ) स्मर्य्यात्, (ऋ) अर्य्यात्, (जागृ) जागर्य्यात् ।

३७७ । * अगुण 'य' वा प्रत्यय परे रहनेसे, धातुके 'ॠ' के स्थानमें 'इर्' होता है, यदि वह 'ॠ' ओष्ठ्यवर्गमें युक्त हो, तो 'उर्' होता है, यथा—(कॄ) कीर्य्यात्, (पॄ) पूर्य्यात् ।

३७८ । * अगुण विभक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे, ग्रह्—गृह्, प्रच्छ्—

पृच्छ्, व्यध्—विध्, यज्—इज् और ह्वे—हु होता है; यथा—(ग्रह्) गृह्यात्, (प्रच्छ्) पृच्छ्यात्, (व्यध्) विध्यात्; (यज्) इज्यात्, (ह्वे) हूयात् (३७३ सू०)। किन्तु लिट् परे प्रच्छ्—पृच्छ् नहीं होता।

३७९। * अगुण विभक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे, वच्—उच्, वश्—उश्, वप्—उप्, वस्—उस्, वह्—उह् और स्वप्—सुप् होता है; यथा—(वश्) उश्यात्, (वच्) उच्यात्, (वप्) उप्यात्, (वस्) उष्यात्, (वह्) उह्यात्, (स्वप्) सुप्यात्।

३८०। * अगुण विभक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे, निन्दादि†-भिन्न धातुके उपधा नकारका लोप होता है, यथा—ध्वन्स्+यात्=ध्वस्यात्, (शन्स्) शस्यात्।

भू धातु।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
मध्यमपुरुष	भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त
उत्तमपुरुष	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

आशीर्लिङ्—आत्मनेपद।

३८१। आशीर्लिङ्के आत्मनेपदमें धातुके अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है, यथा—(शी) शयिषीष्ट, (द्युत्) द्योतिषीष्ट।

---

† निन्दादि—निन्द्, चिन्त्, कम्प्, लङ्घ्, वन्द्, काङ्क्ष्, वण्ट्, मन्त्र् इत्यादि।

३८२। आशीर्लिङ्का आत्मनेपद परे रहनेसे, अनिट् धातुके अन्तस्थित ऋकारका और उपधा लघुस्वरका गुण नहीं होता; यथा—(कृ) कृषीष्ट; (भुज्) भुक्षीष्ट (३०९ सू०)। (वृ) वरिषीष्ट, वृषीष्ट।

३८३। * अकार आकार भिन्न स्वरके परवर्त्ती लुङ्, लिट् और आशीर्लिङ्के 'ध' के स्थानमें 'ढ' होता है, यथा—कृ + सीध्वम् = कृषीढ्वम्। परन्तु 'इट्'-युक्त ह, य, व, र और लकारके परस्थित 'ध' विकल्पसे 'ढ' होता है, यथा—(सेव्) सेविषीढ्वम्, सेविषीध्वम्।

मृ धातु।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मृषीष्ट	मृषीयास्ताम्	मृषीरन्
मध्यमपुरुष	मृषीष्ठा	मृषीयास्थाम्	मृषीढ्वम्
उत्तमपुरुष	मृषीय	मृषीवहि	मृषीमहि

शी धातु।

प्रथमपुरुष	शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्	शयिषीरन्
मध्यमपुरुष	शयिषीष्ठाः	शयिषीयास्थाम्	शयिषीढ्वम्, शयिषीध्वम्
उत्तमपुरुष	शयिषीय	शयिषीवहि	शयिषीमहि

सेव् धातु।

प्रथमपुरुष	सेविषीष्ट	सेविषीयास्ताम्	सेविषीरन्
मध्यमपुरुष	सेविषीष्ठाः	सेविषीयास्थाम्	सेविषीढ्वम्, सेविषीध्वम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	सेविषीय	सेविषीवहि	सेविषीमहि

अनुवाद करो—इस दुःखिनीका एकमात्र पुत्र रामजीवन दीर्घकाल जीता रहे। ईश्वर तुम्हारा मङ्गल करे। आप मुझे आशीर्वाद करें, जिससे मैं कृतकार्य्य हो सकूँ। दरिद्रोंका दुःख दूर हो (अस+इ)। पिपासार्त्त जल पान करे। छात्रलोग सर्वदा गुरुके आज्ञानुवर्त्ती हों।

लिट्।

[इस प्रकरणमें यथासम्भव पूर्व पूर्व स्तार (*) चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य होगा।]

३८४। लिट्का व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, सेट् अनिट् समस्त धातुओंके उत्तर 'इट्' होता है।

३८५। कृ, सृ, भृ, स्तु, द्रु, स्रु, श्रु धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता।

३८६। 'थ' परे रहनेसे, दृश्, सृज्, स्वरान्त और अनिट् अकारवान् धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है, केवल स्वरान्त ऋ और अकारवान् अद् धातुके उत्तर नित्य 'इट्' होता है।

३८७। 'थ' परे रहनेसे, ऋकारान्त धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता। ऋ, वृ, स्कृ धातुके उत्तर नित्य, और स्वृ धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है।

३८८। लिट् विभक्ति परे रहनेसे, धातु अभ्यस्त (द्विरुक्त) होता है, यथा—नम्+अ=नम् नम्+अ—

३८९। अभ्यस्तधातुके पूर्वभागके आदिस्वरके पश्चात् जो वर्ण रहता है, उसका लोप होता है, यथा—नम् नम्+अ=ननम्+अ—

३१० । लिट्के प्रथमपुरुषके एकवचनका 'अ' परे रहनेसे, धातुका उपधा अकार और अन्त्यस्वर वृद्धि प्राप्त होता है ; यथा—ननाम ।

३११ । लिट्के उत्तमपुरुषके एकवचनका 'अ' परे रहनेसे, धातुके उपधा अकारकी विकल्पसे वृद्धि होती है, और अन्त्यस्वरकी गुण व वृद्धि दोनोंही प्राप्त होता है , यथा—नम् + अ = ननाम, ननम ।

३१२ । सगुण लिट्-विभक्ति परे रहनेसे, अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है , परन्तु वृद्धिकी सम्भावना रहनेसे नहीं होता ; यथा—विद् + अ = विद् विद् + अ = विविद् + अ = विवेद ।

३१३ । * धातु अभ्यस्त होनेसे, पूर्वभागके क, ख, ग, ङ के स्थानमें—'च' , ग, घ, ज, झ, ह के स्थानमें—'ज' ; ट, ठ के स्थानमें—'ट' , ड, ढ के स्थानमें—'ड' , त, थ के स्थानमें—'त' ; द, ध के स्थानमें—'द' , प, फ के स्थानमें—'प' , ब, भ के स्थानमें—'ब' ; दीर्घके स्थानमें—ह्रस्व ; और ऋ, ॠ के स्थानमें—'अ' होता है ; यथा—कुर् + अ = कुर् कुर् + अ = चुकुर् + अ = चुकोर ।

३१४ । * अभ्यस्त धातुके पूर्वभागमें संयुक्तवर्ण रहनेसे, अन्त्य व्यञ्जनवर्णका लोप होता है ; यथा—भ्रम् + अ = भ्रम् भ्रम् + अ = भभ्रम् + अ = बभ्रम् + अ = बभ्राम ।

३१५ । * अभ्यस्त धातुके पूर्वभागमें स्क, स्त, ष्ठ, स्ट, ष्ट, ष्ठ, स्न, स्थ, स्प, स्फ रहनेसे, आदिवर्णका लोप होता है ; यथा—स्मर् + अ = स्मर् स्मर् + अ = सस्मर् + अ = सस्मार ।

३१६ । लिट्के प्रथम और उत्तम पुरुषका 'अ' परे रहनेसे, आकारान्त धातुका 'आ' परस्थित अकारमें मिलकर 'औ' होता है , यथा—

स्था + अ = तस्था + अ = तस्थौ ।

३९७। अनिट् 'थ'-भिन्न लिट् परे रहनेसे, आकारान्त धातुके आकारका लोप होता है, यथा—तस्थिथ, (अनिट् 'थ') तस्थाथ ।

३९८। * असमानस्वरवर्ण परे रहनेसे, अभ्यस्त धातुके पूर्वभाग स्थित उ, ऊ के स्थानमे—'उव्', और इ, ई के स्थानमे—'इय्' होता है, यथा—उप् + अ = उप् उप् + अ = उ उप् + अ = उ ओप् + अ = उव् ओप् + अ = उवोप, इ + अ = इ इ + अ = इ ऐ + अ = इय् ऐ + अ = इयाय ।

३९९। लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर भू—बभूव्, चि—चिकि और चिचि, जि—जिगि, और हि—जिघि होता है, यथा—(भू) बभूव ; (चि) चिकाय, चिचाय, (जि) जिगाय, (हि) जिघाय ।

४००। प्रथम और उत्तम पुरुषके एकवचनके 'अ'-भिन्न सगुण अगुण समस्त लिट् परे रहनेसे, दीर्घ 'ऋ' और संयुक्तवर्णसे मिलित ह्रस्व 'ऋ' का गुण होता है, यथा—कृ + थ = चकृ + इ + थ = चकरिथ, स्मृ + थ = सस्मृ + थ = सस्मर्थ ।

४०१। लिट्का अगुण स्वर परे रहनेसे, ऋकारान्त धातुके 'ऋ' के स्थानमे 'र्' होता है, यथा—कृ + अतु = चकृ + अतु = चक्रतु ।

४०२। अगुण लिट् परे रहनेसे, इदित (निन्द्-प्रभृति) और पूजार्थ 'अञ्च्'-भिन्न धातुका उपधा 'न' विकल्पसे लुप्त होता है, यथा—दन्श् + अतु = ददन्शतु, ददशतु । (निन्द्) निनिन्दतु ।

४०३। स्वादिगणीय अश् धातु, ऋकारादि धातु, और जिसके अन्तमे संयुक्तवर्ण रहे ऐसे अकारादि धातुके पूर्वभागके स्थानमे 'आन्'

होता है; यथा—(अश्) आनशे (ऋत्) आनर्त्त, आनृततु , (अर्च्) आनर्च, आनर्चतु , आनर्चु ।

४०४ । लिट् विभक्ति परे रहनेसे, अभ्यस्त व्यधादि धातुके पूर्वभागके स्वरयुक्त 'य' के स्थानमे 'इ' होता है , यथा—व्यध् + ए = व्यध् व्यध् + ए = विव्यधे , व्यध् + अ = विव्याध , व्यच् + अ = विव्याच , द्युत् + ए = दिद्युते ।

४०५ । लिट् विभक्ति परे रहनेसे, व्ये धातुका 'ए'—'आ' नहीं होता, और पूर्वभागके स्वरयुक्त 'य' के स्थानमे 'इ' होता है , यथा—व्ये + अ = विव्याय ।

४०६ । सगुण लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर यज्—इयज् , और अगुण लिट् परे 'ईज्' होता है , यथा—यज् + अ = इयाज , यज् + अतु = ईजतु ।

(३७८ सूत्रानुसार) ग्रह् + अतु = गृह् + अतु = गृह् गृह् + अतु = जगृहतु , किन्तु—(प्रच्छ्) पप्रच्छतु ।

४०७ । सगुण लिट् परे, अभ्यस्त वशादि*धातुके पूर्वभागके स्वरयुक्त 'व' के स्थानमें 'उ' होता है , और अगुण लिट् परे, पूर्वभाग तथा परभाग उभयत्र 'व' के स्थानमे 'उ' होता है , यथा—सगुण—वप् + अ = वप् वप् + अ = उवप् + अ = उवाप , (वस्) उवास , (वह्) उवाह , (वद्) उवाद , (ब्रू और वच्) उवाच । अगुण—वप् + अतु = उवप् + अतु = ऊपतु , (वस्) ऊषतु , (वह्) ऊहतु , (वद्) ऊदतु , (ब्रू और

---

* वशादि—वशो वहो वशश्चैव वचो वद वसी तथा ।
एते वयश्च कथिता विशश्चिद्विवपादय ॥

वच्) ऊचतु ।

४०८ । लिट् परे रहनेसे, 'वे' धातुके स्थानमे विकल्पसे 'वय्' होता है, और अगुण लिट् परे, 'वे' धातुके स्थानमे 'ऊव्' और 'ऊय्' होते हैं, यथा—वे + अ = वय् + अ = वयय् + अ = उवाय, (अगुण) वे + अतु = ऊवतु, ऊयतु । (विकल्पपक्षमे) वे + अ = ववौ, वे + अतु = ववतु ।

४०९ । लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर 'दी'—दिदि, प्याय्—पिपी, ह्वे—जुहु, श्वि—शुशु और शिश्वि होता है, यथा—दी + ए = दिद्ये ; प्याय् + ए = पिप्ये, ह्वे + अ = जुहाव, ह्वे + अतु = जुहुवतु, श्वि + अ = शुशाव, शिश्वाय, श्वि + अतु = शुशुवतु, शिश्वियतु, श्वि + थ = शुशविथ, शिश्वयिथ ।

४१० । सगुण लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर स्वप्—सुष्वप्, और अगुण लिट् परे, 'सुषुप्' होता है, यथा—स्वप् + अ = सुष्वाप ; स्वप् + अतु = सुषुपतु, (थ) सुष्वपिथ, सुषुप्थ ।

४११ । लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर हन्—जघन्, अद्—जघस् और आद् होता है, यथा—हन् + अ = जघान ; अद् + अ = जघास, आद ।

४१२ । अगुण लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर गम्—जग्म्, खन्—चख्न्, जन्—जज्ञ्, घस्—जक्ष्, और हन्—जघ्न् होता है ; यथा—गम् + अतु = जग्मतु, (खन्) चख्नतु, (अद्) जक्षतु, आदतु ; (हन्) जघ्नतु ; जन् + ए = जज्ञे ।

४१३ । अनिट् 'थ' परे रहनेसे, दृश् और सृज् धातुके ऋकारके स्थानमे 'र' होता है, और दृप्यादि धातुके 'ऋ' के स्थानमे विकल्पसे 'र'

होता है, यथा—दृश् + थ = ददर्शिथ, दद्रष्ट, (कृष्) चकर्षिथ, चक्रष्ट, चकर्ष्ठ, (तृप्) ततर्पिथ, तत्रप्थ, ततर्प्थ, (दृप्) ददर्पिथ, दद्रप्थ, ददर्प्थ, (मृश्) ममर्शिथ, मम्रष्ट, ममर्ष्ठ, (सृप्) ससर्पिथ, सस्रप्थ, ससर्प्थ।

४१४। आदि और अन्तमें असंयुक्तव्यञ्जनवर्ण न रहनेसे, बीचमें अकार-युक्त अभ्यस्त धातुके उत्तर प्रथम और उत्तम पुरुषके एकवचनके 'अ' भिन्न लिट् परे, पूर्वभागका लोप होता है, और परभागके अकारके स्थानमें एकार होता है, यथा—चल् + अ = चचाल, (अतु) चेलतु, (थ) चेलिथ।

४१५। जिन अभ्यस्त धातुओंका पूर्वभाग रूपान्तरित होता है, उन सब धातुओंका और अन्तःस्थ वकारादि धातुका पूर्वसूत्रानुसार कार्य्य नहीं होता, यथा—(गद्) जगाद, जगदतु, जगदु; (वज्) ववाज, ववजतु। (नन्द्) ननन्द, ननन्दतु।

४१६। प्रथम और उत्तम पुरुषके 'अ'-भिन्न लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर तॄ—तेर्, फल्—फेल्, भज्—भेज्, और त्रप्—त्रेप् होता है; यथा—तॄ + अ = ततार, (अतु) तेरतु। फल् + अ = पफाल, (अतु) फेलतु। भज् + अ = बभाज; (अतु) भेजतु। त्रप् + ए = त्रेपे।

४१७। प्रथम और उत्तम पुरुषके 'अ'-भिन्न लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर राज्—रेज् और रराज्, भ्रम्—भ्रेम् और बभ्रम्, वम्—वेम् और ववम् होते हैं, यथा—राज् + अ = रराज; (अतु) रेजतु, रराजतु। भ्रम् + अ = बभ्राम, (अतु) भ्रेमतु, बभ्रमतु। वम् + अ =

ववाम, (अतु) रेमतु, यजमतु ।

४१८। लिट् परे, 'अधि' पूर्वक 'इ' धातुके स्थानमे—'गा', और अज् धातुके स्थानमे—'वी' होता है, पश्चात् अभ्यस्त होता है, यथा—अधि + इ + ए = अधिजगे, अज् + अ = विवाय ।

४१९। लिट् परे रहनेमें, दय्, अय्, आस्, अनेकस्वरविशिष्ट धातु और आकार भिन्न गुरुस्वरादि धातुके उत्तर 'आम्' होता है, 'आम्' परे, धातुके अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है, और 'आम्'-अन्त धातुके उत्तर कृ, भू, अस् धातुकी लिट् विभक्तिका रूप होता है, यथा—(दय्) दयाम्बभूव, दयामास, दयाञ्चकार, अनेकस्वर—(कारि) कारयाम्बभूव, कारयामास, कारयाञ्चकार, गुरुस्वरादि—(ईह्) ईहाम्बभूव, ईहामास, ईहाञ्चक्रे । *

४२०। लिट् परे रहनेमे, हु, भी, ह्री, भृ, जागृ, दरिद्रा, काश्, कास् और उष् धातुके उत्तर विकल्पमे 'आम्'† होता है, 'आम्' परे, धातुका गुण होता है, यथा—(हु) जुहवाम्बभूव, जुहवामास, जुहवाञ्चकार, (पक्षे) जुहाव । (भी) बिभयाम्बभूव, (पक्षे) बिभाय । (ह्री) जिह्रयाम्बभूव, (पक्षे) जिह्राय । (भृ) बिभराम्बभूव, (पक्षे) बभार । (जागृ) जागराम्बभूव, (पक्षे) जजागार । (दरिद्रा) दरिद्राम्बभूव, (पक्षे) ददरिद्रौ—'ददरिद्र' इति केचित् । (काश्)

---

* कर्तृवाच्यमे 'आम्'-अन्त धातुके उत्तर प्रयुक्त 'भू' और 'अस्' परस्मैपदी रहते हैं। परस्मैपदी धातुके उत्तर 'कृ' परस्मैपदी, आत्मनेपदी धातुके उत्तर आत्मनेपदी, और उभयपदी धातुके उत्तर उभयपदी होता है ।

† 'आम्' परे, हु, भी, ह्री, भृ धातुका अभ्यस्त-कार्य्य होता है ।

काशाम्बभूव, (पक्षे) चकाशे। (कास्) कासाम्बभूव; (पक्षे) चकासे। (उष्) ओषाम्बभूव, (पक्षे) उवोष।

४२१। लिट् परे रहनेसे, अदादि विद् धातुके उत्तर विकल्पसे 'आम्' होता है, 'आम्' अवशिष्ट रहता है, यथा—विद्+अ=विदाम्बभूव, विदाञ्चकार, विदामास। विकल्पपक्षके रूप पश्चात् दिखलाये जावेंगे।

(लिट्-रूप)

परस्मैपदी।

पा धातु।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पपौ	पपतुः	पपुः
मध्यमपुरुष	पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप
उत्तमपुरुष	पपौ	पपिव	पपिम

स्था धातु।

प्रथमपुरुष	तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः
मध्यमपुरुष	तस्थिथ, तस्थाथ	तस्थथुः	तस्थ
उत्तमपुरुष	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम

इ धातु।

प्रथमपुरुष	इयाय	ईयतुः	ईयुः
मध्यमपुरुष	इययिथ, इयेथ	ईयथुः	ईय
उत्तमपुरुष	इयाय, इयय	ईयिव	ईयिम

जि धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जिगाय	जिग्यतु	जिग्युः
मध्यमपुरुष	जिगयिथ, जिगेथ	जिग्यथुः	जिग्य
उत्तमपुरुष	जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम

श्रु धातु ।

प्रथमपुरुष	शुश्राव	शुश्रुवतु	शुश्रुवु
मध्यमपुरुष	शुश्रोथ	शुश्रुवथु	शुश्रुव
उत्तमपुरुष	शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुव	शुश्रुम

भू धातु ।

प्रथमपुरुष	बभूव	बभूवतु	बभूवु
मध्यमपुरुष	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
उत्तमपुरुष	बभूव	बभूविव	बभूविम

सृ धातु ।

प्रथमपुरुष	ससार	सस्रतु	सस्रु
मध्यमपुरुष	ससर्थ	सस्रथु	सस्र
उत्तमपुरुष	ससार, ससर	सस्रृव	सस्रृम

स्मृ धातु ।

प्रथमपुरुष	सस्मार	सस्मरतुः	सस्मरु
मध्यमपुरुष	सस्मर्थ	सस्मरथु	सस्मर
उत्तमपुरुष	सस्मार, सस्मर	सस्मरिव	सस्मरिम

कृ धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	चकार	चक्रतुः	चक्रुः
मध्यमपुरुष	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
उत्तमपुरुष	चकार	चकृव	चकृम

प्रच्छ् धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पप्रच्छ	पप्रच्छतुः	पप्रच्छुः
मध्यमपुरुष	पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ	पप्रच्छथुः	पप्रच्छ
उत्तमपुरुष	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम

दृश् धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
मध्यमपुरुष	ददर्शिथ, दद्रष्ठ	ददृशथुः	ददृश
उत्तमपुरुष	ददर्श	ददृशिव	ददृशिम

सृज् धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ससर्ज	ससृजतुः	ससृजुः
मध्यमपुरुष	ससर्जिथ, सस्रष्ठ	ससृजथुः	ससृज
उत्तमपुरुष	ससर्ज	ससृजिव	ससृजिम

त्यज् धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तत्याज	तत्यजतुः	तत्यजुः
मध्यमपुरुष	तत्यजिथ, तत्यक्थ	तत्यजथुः	तत्यज
उत्तमपुरुष	तत्याज, तत्यज	तत्यजिव	तत्यजिम

गम् धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जगाम	जग्मतु	जग्मुः
मध्यमपुरुष	जगमिथ, जगन्थ	जग्मथु	जग्म
उत्तमपुरुष	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

हन् धातु ।

प्रथमपुरुष	जघान	जघ्नतु	जघ्नु
मध्यमपुरुष	जघनिथ, जघन्थ	जघ्नथु	जघ्न
उत्तमपुरुष	जघान, जघन	जघ्निव	जघ्निम

वस् धातु ।

प्रथमपुरुष	उवास	ऊषतु	ऊषु
मध्यमपुरुष	उवसिथ, उवस्थ	ऊषथु	ऊष
उत्तमपुरुष	उवास, उवस	ऊषिव	ऊषिम

हस् धातु ।

प्रथमपुरुष	जहास	जहसतुः	जहसु
मध्यमपुरुष	जहसिथ	जहसथु	जहस
उत्तमपुरुष	जहास, जहस	जहसिव	जहसिम

पत् धातु ।

प्रथमपुरुष	पपात	पेततु	पेतु
मध्यमपुरुष	पेतिथ	पेतथु	पेत
उत्तमपुरुष	पपात पपत	पेतिव	पेतिम

इष् धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	इयेष	ईषतुः	ईषुः
मध्यमपुरुष	इयेषिथ	ईषथुः	ईष
उत्तमपुरुष	इयेष	ईषिव	ईषिम

प्र + आप् धातु ।

प्रथमपुरुष	प्राप	प्रापतुः	प्रापुः
मध्यमपुरुष	प्रापिथ	प्रापथुः	प्राप
उत्तमपुरुष	प्राप	प्रापिव	प्रापिम

रुद् धातु ।

प्रथमपुरुष	रुरोद	रुरुदतुः	रुरुदुः
मध्यमपुरुष	रुरोदिथ	रुरुदथुः	रुरुद
उत्तमपुरुष	रुरोद	रुरुदिव	रुरुदिम

विद् धातु ।

प्रथमपुरुष	विवेद	विविदतुः	विविदुः
मध्यमपुरुष	विवेदिथ	विविदथुः	विविद
उत्तमपुरुष	विवेद	विविदिव	विविदिम

मृज् धातु ।

प्रथमपुरुष	ममार्ज	ममार्जतुः (२२७ सू०) ममृजतुः	ममार्जुः / ममृजुः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	ममार्जिथ ममार्ष्ठ	ममार्जथु ममृजथु	ममार्ज ममृज
उत्तमपुरुष	ममार्ज	ममार्जिव ममृजिव	ममार्जिम ममृजिम

आत्मनेपदी।

अधि+इ धातु।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे
मध्यमपुरुष	अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिढ्वे
उत्तमपुरुष	अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे

त्रप् धातु।

प्रथमपुरुष	त्रेपे	त्रेपाते	त्रेपिरे
मध्यमपुरुष	त्रेपिषे	त्रेपाथे	त्रेपिढ्वे
उत्तमपुरुष	त्रेपे	त्रेपिवहे	त्रेपिमहे

लभ् धातु।

प्रथमपुरुष	लेभे	लेभाते	लेभिरे
मध्यमपुरुष	लेभिषे	लेभाथे	लेभिढ्वे
उत्तमपुरुष	लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे

उभयपदी ।

दा धातु ।

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ददौ	ददतु	ददुः
मध्यमपुरुष	ददिथ, ददाथ	ददथु	दद
उत्तमपुरुष	ददौ	ददिव	ददिम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	ददे	ददाते	ददिरे
मध्यमपुरुष	ददिषे	ददाथे	ददिढ्वे
उत्तमपुरुष	ददे	ददिवहे	ददिमहे

ज्ञा धातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	जज्ञौ	जज्ञतु	जज्ञु
मध्यमपुरुष	जज्ञिथ, जज्ञाथ	जज्ञथु	जज्ञ
उत्तमपुरुष	जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
मध्यमपुरुष	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिढ्वे
उत्तमपुरुष	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

नी धातु।

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	निनाय	निन्यतुः	निन्युः
मध्यमपुरुष	निनयिथ, निनेथ	निन्यथुः	निन्य
उत्तमपुरुष	निनाय	निन्यिव	निन्यिम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
मध्यमपुरुष	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिढ्वे
उत्तमपुरुष	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

कृ धातु।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	चकार	चक्रतुः	चक्रुः
मध्यमपुरुष	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
उत्तमपुरुष	चकार, चकर	चकृव	चकृम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
मध्यमपुरुष	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
उत्तमपुरुष	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

हृ धातु।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	जहार	जह्रतुः	जह्रुः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	जहर्थ	जह्रथु	जह्र
उत्तमपुरुष	जहार, जहर	जह्रिव	जह्रिम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	जह्रे	जह्राते	जह्रिरे
मध्यमपुरुष	जह्रिषे	जह्राथे	जह्रिढ्वे (ध्वे)
उत्तमपुरुष	जह्रे	जह्रिवहे	जह्रिमहे

ग्रह् धातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	जग्राह	जगृहतु:	जगृहु:
मध्यमपुरुष	जगृहिथ	जगृहथु:	जगृह
उत्तमपुरुष	जग्राह, जग्रह	जगृहिव	जगृहिम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
मध्यमपुरुष	जगृहिषे	जगृहाथे	जगृहिढ्वे (ध्वे)
उत्तमपुरुष	जगृहे	जगृहिवहे	जगृहिमहे

ब्रू धातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	उवाच	ऊचतु	ऊचु
मध्यमपुरुष	उवचिथ,उवक्थ	ऊचथु	ऊच
उत्तमपुरुष	उवाच	ऊचिव	ऊचिम

(आत्मनेपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
मध्यमपुरुष	ऊचिषे	ऊचाथे	ऊचिढ्वे
उत्तमपुरुष	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमहे

भक्षयामास् ।

प्रथमपुरुष	भक्षयामास	भक्षयामासतुः	भक्षयामासुः
मध्यमपुरुष	भक्षयामासिथ	भक्षयामासथुः	भक्षयामास
उत्तमपुरुष	भक्षयामास	भक्षयामासिव	भक्षयामासिम

भक्षयाम्भू ।

प्रथमपुरुष	भक्षयाम्बभूव	भक्षयाम्बभूवतुः	भक्षयाम्बभूवुः
मध्यमपुरुष	भक्षयाम्बभूविथ	भक्षयाम्बभूवथुः	भक्षयाम्बभूव
उत्तमपुरुष	भक्षयाम्बभूव	भक्षयाम्बभूविव	भक्षयाम्बभूविम

भक्षयाकृ ।

प्रथमपुरुष	भक्षयाञ्चकार	भक्षयाञ्चक्रतुः	भक्षयाञ्चक्रुः
मध्यमपुरुष	भक्षयाञ्चकर्थ	भक्षयाञ्चक्रथुः	भक्षयाञ्चक्र
उत्तमपुरुष	भक्षयाञ्चकार	भक्षयाञ्चकृव	भक्षयाञ्चकृम

* * * *

आकारान्त प्रभृति क्रमसे कई प्रचलित धातुओंके 'अ, अतुस्, थ', और आत्मनेपदमें 'ए, से' विभक्तियोंके रूप नीचे लिखे जाते हैं । इन विभक्तियोंके रूप जाननेसे अवशिष्ट रूप अनायास समझे जा सकते ।

यथा—ययौ, ययतुः ; ययिथ ययाथ ।

ঘ্রা—জঘ্রৌ, জঘ্রতুঃ; জঘ্রিথ জঘ্রাথ।

ধ্মা—দধ্মৌ, দধ্মতুঃ, দধ্মিথ দধ্মাথ।

মা—মমৌ, মমতুঃ, মমিথ মমাথ।

স্না—সস্নৌ, সস্নতুঃ, সস্নিথ সস্নাথ।

হা—জহৌ, জহতুঃ, জহিথ জহাথ।

মা, থা, বা—'হা'-ধাতুবৎ।

ধা—'দা'-ধাতুর তুল্য।

চি—চিকায় চিচায়, চিক্যতুঃ চিচ্যতুঃ, চিকয়িথ চিকেথ, চিচয়িথ চিচেথ। চিক্যে চিচ্যে।

স্মি—সিষ্মিয়ে, সিষ্মিয়িষে।

ক্রী—চিক্রায়, চিক্রিয়তুঃ; চিক্রয়িথ চিক্রেথ। চিক্রিয়ে, চিক্রিয়িষে।

ভী—বিভয়াম্বভূব, বিভয়ামাস, বিভয়াঞ্চকার; বিভয়াম্বভূবতুঃ ইত্যাদি, বিভয়াম্বভূবিথ ইত্যাদি। (পক্ষে) বিভায়, বিভ্যতুঃ; বিভয়িথ, বিভেথ।

শী—শিশ্যে, শিশয়িষে।

দু—দুদাব, দুদুবতুঃ, দুদবিথ।

র—ররাস, ররসতুঃ, ররষিথ।

হু—জুহবাম্বভূব ইত্যাদি, জুহবাম্বভূবিথ ইত্যাদি। (পক্ষে) জুহাব; জুহবিথ জুহোথ।

মৃ—মম্রে, মমৃষে। (তুদাদি) মমার, মম্রতুঃ, মমর্থ।

জাগৃ—জজাগার, জজাগরতুঃ, জজাগরিথ। (পক্ষে) জাগরামাস ইত্যাদি।

द—दद्रे, दद्रिषे।

घृ—दधार, दध्रतु, दधर्थ। दध्रे, दध्रिषे।

भृ—(भ्वादि) बभार, बभ्रतु, बभर्थ। बभ्रे, बभृषे। (ह्वादि) बिभराम्बभूव, (पक्षे) बभार। ('ण'-विभक्तिमें) बिभराम्बभूव, बिभरामास, बिभराञ्चक्रे, (पक्षे) बभ्रे।

मृ—ममार, मम्रतु, ममर्थ, मम्रिव। (परस्मैपद होता है)।

वृ—ववार, वव्रतु, ववरिथ, ववृव। वव्रे, ववृषे।

स्तृ—तस्तार, तस्तरतु, तस्तर्थ, तस्तरिव। तस्तरे, तस्तरिषे।

तॄ—ततार, तेरतु, तेरु, तेरिथ।

दॄ—ददार, ददरतु दद्रतु, ददरिथ।

ह्वे—जुहाव, जुहुवतु, जुहविथ जुहोथ।

गै—जगौ, जगतु, जगिथ जगाथ।

त्रै—तत्रे, तत्रिषे।

ध्यै—दध्यौ, दध्यतु, दध्यिथ दध्याथ।

तर्क्—तर्कयामास इत्यादि, तर्कयामासतु इत्यादि, तर्कयामासिथ।

लोक्—लुलोके, लुलोकिषे।

शक्—शशाक, शेकतु, शेकिथ शशक्थ।

शङ्क्—शशङ्के, शशङ्किषे।

श्लिष्—शिश्लेष, शिश्लिषतु, शिश्लेषिथ।

श्लङ्घ्—ललङ्घ, ललङ्घतु, ललङ्घिथ। (उपहासार्थे) ललङ्घे, ललङ्घिषे।

श्लाघ्—शश्लाघे, शश्लाघिषे।

पच्—पपाच, पेचतु, पेचिथ पपक्थ। पेचे, पेचिषे।

मुच्—मुमोच, मुमुचतु , मुमोचिथ । मुमुचे , मुमुचिषे ।
याच्—ययाच, ययाचतु , ययाचिथ । ययाचे , ययाचिषे ।
शुच्—शुशोच, शुशुचतु , शुशोचिथ ।
सिच्—सिषेच, सिषिचतु , सिषेचिथ । सिषिचे , सिषिचिषे ।
भ्रस्ज्—बभ्रस्ज, बभ्रजतु बभ्रस्जतु , बभ्रज्जिथ बभ्रष्ठ ।
भुज्—बुभोज, बुभुजतु , बुभोजिथ । बुभुजे , बुभुजिषे ।
मस्ज्—ममस्ज, ममस्जतु , ममज्जिथ ममङ्क्थ ।
यज्—इयाज, ईजतु , इयजिथ इयष्ठ । ईजे , ईजिषे ।
युज्—युयोज, युयुजतु , युयोजिथ । युयुजे , युयुजिषे ।
रञ्ज्—ररञ्ज, ररजतु ररञ्जतु , ररञ्जिथ ररङ्क्थ । ररजे ररञ्जे ।
सञ्ज्—ससञ्ज, ससजतु ससञ्जतु , ससञ्जिथ ससङ्क्थ ।
घट्—जघटे , जघटिषे ।
चेष्ट्—चिचेष्टे , चिचेष्टिषे ।
पठ्—पपाठ, पेठतु , पेठिथ ।
क्रीड्—चिक्रीड, चिक्रीडतु , चिक्रीडिथ ।
कृत्—चकर्त्त, चकृततु , चकर्तिथ ।
नृत्—ननर्त्त, ननृततु , ननर्तिथ ।
यत्—येते , येतिषे ।
वृत्—ववृते , ववृतिषे ।
व्यथ्—विव्यथे ; विव्यथिषे ।
क्रन्द्—चक्रन्द, चक्रन्दतु , चक्रन्दिथ ।
खाद्—चखाद, चखादतु , चखादिथ ।

छिद्—चिच्छेद, चिच्छिदतु , चिच्छेदिथ।

पद्—पेदे, पेदिषे।

वद्—उवाद, ऊदतु , उवदिथ।

विद्—(दिवादि) विविदे , विविदिषे।

सद्—ससाद, सेदतु , सेदिथ ससत्थ।

स्पन्द्—पस्पन्दे , पस्पन्दिषे।

क्रुध्—चुक्रोध, चुक्रुधतु , चुक्रोधिथ।

बन्ध्—बबन्ध, बबधतु बबन्धतु , बबन्धिथ बबन्ध।

बाध्—बबाधे , बबाधिषे।

बुध्—बुबोध, बुबुधतु , बुबोधिथ। (दिवादि) बुबुधे , बुबुधिषे।

रुध्—'बुध्' धातुवत्।

युध्—युयुधे , युयुधिषे।

वृध्—ववृधे , ववृधिषे।

व्यध्—विव्याध, विविधतु , विव्यधित विव्यद्ध।

सिध्—सिषेध, सिषिधतु , सिषेधिथ सिषेद्ध। (गति और निष्पत्त्यर्थमें 'इट्' नित्य)।

जन्—जज्ञे , जज्ञिषे।

मन्—मेने , मेनिषे।

क्षिप्—चिक्षेप, चिक्षिपतु , चिक्षेपिथ। चिक्षिपे , चिक्षिपिषे।

गुप्—गोपायाञ्चकार इत्यादि , गोपायाम्बभूवतु इत्यादि ; गोपायाम्बभूविथ। (पक्षे) जुगोप, जुगुपतु , जुगोपिथ जुगोप्थ।

तप्—तताप, तेपतु , तेपिथ ततप्थ।

तृप्—ततर्प, ततृपतुः, ततर्पिथ तत्रप्थ ततर्प्थ ।

दृप्—'तृप्'-धातुवत् ।

दीप्—दिदीपे, दिदीपिषे ।

लुप्—लुलोप, लुलुपतुः, लुलोपिथ । लुलुपे ।

वप्—उवाप, ऊपतुः, उवपिथ उवप्थ ।

वेप्—विवेपे, विवेपिषे ।

शप्—शशाप, शेपतुः, शेपिथ शशप्थ । शेपे ; शेपिषे ।

स्वप्—सुष्वाप, सुषुपतुः, सुष्वपिथ सुष्वप्थ ।

स्तम्भ्—तस्तम्भे, तस्तम्भिषे ।

क्षुभ्—चुक्षोभ, चुक्षुभतुः, चुक्षोभिथ । चुक्षुभे, चुक्षुभिषे ।

रभ्—रेभे, रेभिषे ।

लभ्—'रभ्' धातुवत् ।

शुभ्—शुशुभे, शुशुभिषे ।

कम्—कामयाम्बभूव, कामयामास, कामयाञ्चक्रे ; कामयाम्बभूविथ, कामयामासिथ, कामयाञ्चकृषे । (पक्षे) चकमे, चकमिषे ।

क्रम्—चक्राम, चक्रमतुः, चक्रमिथ ।

नम्—ननाम, नेमतुः, नेमिथ ननन्थ ।

भ्रम्—बभ्राम, भ्रेमतुः बभ्रमतुः, भ्रेमिथ बभ्रमिथ ।

वम्—'भ्रम्'-धातुवत् ।

यम्—ययाम, येमतुः ; येमिथ ययन्थ ।

रम्—रेमे ; रेमिषे ।

शम्—शशाम, शेमतुः ; शेमिथ ।

भ्रम्—बभ्राम, बभ्रमतु , बभ्रमिथ ।

चर्—चचार, चेरतु , चेरिथ ।

त्वर्—तत्वरे , तत्वरिषे ।

पूर्—पुपूरे , पुपूरिषे ।

स्फुर्—पुस्फोर, पुस्फुरतु , पुस्फोरिथ ।

चल्—चचाल, चेलतु , चेलिथ ।

ज्वल्—जज्वाल, जज्वलतु , जज्वलिथ ।

जीव्—जिजीव, जिजीवतु , जिजीविथ ।

दिव्—दिदेव, दिदिवतु , दिदेविथ ।

धाव्—दधाव, दधावतु , दधाविथ ।

सेव्—सिषेवे , सिषेविषे ।

अश्—आनशे ; आनशिषे आनक्षे , आनशिढ्वे आनड्ढ्वे ।

काश्—काशाम्बभूव, काशामास, काशाञ्चक्रे , काशाम्बभूविथ, काशामासिथ, काशाञ्चकृषे । (पक्षे) चकाशे , चकाशिषे ।

क्लिश्—चिक्लेश, चिक्लिशतु , चिक्लेशिथ चिक्लेष्ठ ।

दृश्—ददर्श, ददृशतु ददृशतु , ददृशिथ ददर्शिथ दद्रष्ठ ।

दिश्—दिदेश, दिदिशतु , दिदेशिथ । दिदिशे ; दिदिशिषे ।

नश्—ननाश, नेशतु , नेशिथ ननंष्ठ , नेशिव नेश्व ।

भ्रंश्—बभ्रंश, बभ्रशतु बभ्रंशतु , बभ्रंशिथ ।

विश्—विवेश, विविशतु , विवेशिथ ।

स्पृश्—पस्पर्श, पस्पृशतु , पस्पर्शिथ ।

ईश्—ईशाम्बभूव, ईशामास, ईशाञ्चक्रे , ईशाम्बभूविथ, ईशामासिथ,

ईक्षाञ्चकृषे ।

काङ्क्ष्—चकाङ्क्ष, चकाङ्क्षतु , चकाङ्क्षिथ ।

चक्ष्—चख्यौ , चख्ये चचक्षे ।

कृष्—चकर्ष, चकृषतु , चकर्षिथ ।

घृष्—जघर्ष, जघृषतु , जघर्षिथ ।

तुष्—तुतोष, तुतुषतु , तुतोषिथ ।

दुष्—'तुष्' धातुवत् ।

द्विष्—दिद्वेष, दिद्विषतु , दिद्वेषिथ । दिद्विषे ।

पिष्—पिपेष, पिपिषतु , पिपेषिथ ।

पुष्—'पिष्' धातुवत् ।

भाष्—बभाषे , बभाषिषे ।

मृष्—ममर्ष, ममृषतु , ममर्षिथ । (दिवादि—उभयपदी) ममृषे ; ममृषिषे ।

रक्ष्—ररक्ष, ररक्षतु , ररक्षिथ ।

शुष्—शुशोष, शुशुषतु , शुशोषिथ ।

श्लिष्—शिश्लेष, शिश्लिषतु , शिश्लेषिथ ।

हृष्—जहर्ष, जहृषतु ; जहर्षिथ ।

अस्—बभूव इत्यादि । (दिवादि) आस, आसतु आसिथ ।

आस्—आसाम्बभूव, आसामास, आसाञ्चक्रे, आसाम्बभूविथ, आसामासिथ, आसाञ्चकृषे ।

वस्—(अदादि) ववसे ; ववसिषे ।

शंस्—शशंस, शशंसतु , शशंसिथ ।

शास्—शशास, शशासतु ; शशासिथ ।

गाह्—जगाहे ; जगाहिषे जघाक्षे ।
दह्—ददाह, देहतु , देहिथ ददग्ध ।
दुह्—दुदोह, दुदुहतु , दुदोहिथ । दुदुहे , दुदुहिषे ।
मुह्—मुमोह, मुमुहतु , मुमोहिथ ।
रुह्—रुरोह, रुरुहतु , रुरोहिथ । रुरुहे , रुरुहिषे ।
लिह्—लिलेह, लिलिहतु । लिलिहे , लिलिहिषे ।
वह्—उवाह, ऊहतु , उवहिथ उवोढ । ऊहे, ऊहिषे ।
सह्—सेहे , सेहिषे ।

अनुवाद करो—भीमने दुर्योधनका ऊरु भग्न किया था । हमने कभी इसे नहीं खाया । उसने क्रोधाक्रान्त होकर (सन्) भर्त्सना की थी । प्राचीन कालमें छात्रलोग प्राणपणसे गुरुका वाक्य पालन करते थे । व्यासदेवजी महाभारतका वृत्तान्त जानते थे । भीमने दुःशासनका रक्त पान किया था । राम और लक्ष्मण पिताकी आज्ञासे वनमें गये थे । लक्ष्मणने इन्द्रजित्को मारा था । वानर किष्किन्ध्यामें रहते थे । शिबिने दूसरेके लिये प्राण दान किया था । देवताओंने असुरोंके भयसे विष्णुका स्तव किया था ।



लुङ् ।

[इस प्रकरणमें २६७, २६०, २६१, २६२, २८०, २९८, २९९, ३००, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३१४, ३१६, ३२४, ३२५, ३२७, ३२८, ३३४ सूत्र, और इट्विधान, आशीर्लिङ् तथा अन्यान्य प्रकरणके स्टार(*)-चिन्हित सूत्रोंका यथासम्भव कार्य्य होगा ।]

४२२ । लुङ्-विभक्ति परे रहनेसे, धातुके उत्तर 'सि' (सिच्) होता है, इकार इत, 'स' रहता है, यथा—भू + द् = अभू (२६१ सू०) + स् + द्—

४२३ । परस्मैपदकी विभक्ति परे रहनेसे, भू, स्था, दा, धा, (पानार्थ) पा और [redacted] धातुके उत्तर विहित 'सि' का लोप होता है ; यथा—अभूद् = अभूत् (२६० सू०), (ताम्) अभूताम् ।

४२४ । लुङ्-विभक्तिका स्वरवर्ण परे रहनेसे, भू—भूव् होता है ; यथा—भू + अन् = अभूवन् ।

४२५ । 'सि' के परस्थित 'अन्'—'उस्' होता है, 'उस्' परे आकारान्त धातुका आकार लुप्त होता है, यथा—स्था + अन् = अस्था + स् + अन् = अस्था + उस् = अस्थु ।

४२६ । आत्मनेपदमे स्था, दा और धा धातुका 'आ'—'इ' होता है, यथा—दा + त = अदा + स् + त = अदित (४३१ सू०), (ताम्) अदिषाताम् ।

४२७ । लुङ् परे रहनेसे, 'इ'—'गा' होता है, यथा—इ + द् = अगा + स् + द् = अगात्, (ताम्) अगाताम्, (अन्) अगु ।

४२८ । परस्मैपदकी विभक्ति परे रहनेसे, घ्रा, धे, छो, शो और सो धातुके उत्तर विहित 'सि' का विकल्पमे लोप होता है, यथा—घ्रा + द् = अघ्रा + स् + द् = अघ्रात्, (पक्षे) अघ्रा + स् + द्—

४२९ । लुङ्के 'द्' और 'स्' परे रहनेसे, धातुके उत्तर विहित 'सि' के पश्चात् 'ई' (ईट्) होता है ; यथा—अघ्रा + स् + ई + द् = अघ्रासीत् ।

४३० । द्, स् भिन्न विभक्तिमे परस्मैपदी आकारान्त धातुके उत्तर

विहित 'सि' के पूर्वमें 'स्' और 'इट्' होते हैं, यथा—ज्ञा + ताम् = अज्ञा + स् + ताम् = अज्ञा + स् + इ + स् + ताम् = अज्ञासिष्टाम्।

४३१। त, थ, ध परे रहनेसे, ह्रस्वस्वर तथा वर्गके पञ्चमवर्ण और य, र, ल, व भिन्न व्यञ्जनवर्णके परस्थित 'सि' का लोप होता है, और 'ई' परे रहनेसे, 'इट्' के परस्थित 'सि' का लोप होता है; यथा—कृ + त = अकृ + स् + त = अकृत, (आताम्) अकृषाताम्, (अन्त) अकृषत (२८० सू०)।

४३२। 'सि' परे रहनेसे, परस्मैपदमें स्वरान्त धातुके अन्त्यस्वर, और अनिट् व्यञ्जनान्त धातुके उपधा लघुस्वरकी वृद्धि होती है, किन्तु णिजन्त धातु, श्वि और जागृ धातुका गुण होता है; यथा—नु + द् = अनु + स् + द् = अनु + इ + स् + ई + द् = अनौ + इ + ई + द् = अनावीद्, (पक्षे) अनौषीत्। श्वि + द् = अश्वि + स् + द् = अश्वि + इ + स् + ई + द् = अश्वे + इ + ई + द् = अश्वयीत्।

४३३। लुङ् विभक्ति परे रहनेसे, परस्मैपदमें उपधा लघुस्वरका, और आत्मनेपदमें अन्त्यस्वर तथा उपधा लघुस्वरका गुण होता है; यथा—सिध् + द् = असिध् + स् + ई + द् = असिध् + इ + स् + ई + द् = असेधीत्, (पक्षे) असिध् + स् + ई + द् = असैत्सीत् (३०० सू०)। (आत्मनेपदमें) शी + त = अशी + इ + स् + त = अशयिष्ट, द्युत + त = अद्योतिष्ट।

४३४। 'सि' परे रहनेसे, आत्मनेपदमें अनिट् ऋकारान्त धातुका गुण नहीं होता, यथा—कृ + आताम् = अकृ + स् + आताम् = अकृषाताम्।

४३५। 'सि' परे रहनेसे, परस्मैपदमें व्रज्, वद्, 'अर्' अन्त और

'अर्'-अन्त धातुके उपधा अकारको वृद्धि होती है, यथा—मज्+द्= अमज्+स्+द्=अवज्+इ+स्+ई+द्=अवाजीत्, (ताम्) अवाजिष्टाम्। वद्+द्=अवादीत्, (ताम्) अवादिष्टाम्। चर्+द्=अचारीत्, (ताम्) अचारिष्टाम्। चल्+द्=अचालीत्, (ताम्) अचालिष्टाम्।

४३६। 'सि' परे रहनेसे, परस्मैपदमें व्यञ्जनादि अर्थात् जिसके आदिमें व्यञ्जनवर्ण रहे ऐसे सेट् धातुका उपधा अकार विकल्पसे वृद्धि प्राप्त होता है, किन्तु हान्त, मान्त, यान्त, क्षण्, श्वस्, वध् और एकार इत् (एदित्) धातुका नहीं होता, यथा—गद्+द्=अगादीत्, अगदीत्। (हान्त) ग्रह्+द्=अग्रहीत्, (मान्त) क्रम्+द्=अक्रमीत्। (यान्त) हर्य्+द्=अहर्यीत्, क्षण्+द्=अक्षणीत्, श्वस्+द्=अश्वसीत्, वध्+स्=अवधीत्, हन्+द्=अवधीत् (लुङ् परे हन्—वध् होता है), (एकार-इत् *) हस्+द्=अहसीत्।

४३७। लुङ् विभक्ति परे रहनेसे, परस्मैपदमें यम्, रम्, नम् धातुके उत्तर विहित 'सि' के पूर्वमें 'स्' और 'इट्' होते हैं, यथा—यम्+द्=अयम्+स्+इ+स्+ई+द्=अयंसीत् (६३ सू०), (ताम्) अयंसिष्टाम्। नम्+द्=अनंसीत्, (ताम्) अनंसिष्टाम्। रम्+द्=अरंसीत्, (ताम्) अरंसिष्टाम्।

४३८। लुङ्-विभक्ति परे रहनेसे, (अध्ययनार्थ) अधि+इ धातुके स्थानमें विकल्पसे 'गी' होता है, यथा—अधि+इ+त=अध्यगीष्ट, (पक्षे) अध्यैष्ट।

---

* एकार-इत् धातु—कट्, चट्, चत्, रग्, लग्, हस् इत्यादि।

४३९। लुङ्-विभक्तिका परस्मैपद परे रहनेसे, शास्, लृकार-इत्,* द्युतादि† और पुषादि‡ धातुके उत्तर 'ङ' (अङ्) होता है, 'अ' अवशिष्ट रहता है, यथा—शास्+द्=अशिषत् (लुङ्मे शास्—शिष् होता है), (लृकार इत्) गम्+द्=अगमत्, (द्युत्) अद्युतत् (लुङ्-विभक्तिमें द्युत् उभयपदी), (आत्मनेपदमें) अद्योतिष्ट, (पुष्) अपुषत्।

४४०। लुङ् विभक्तिका परस्मैपद परे रहनेसे, 'जॄ' प्रभृति§ और 'इर्' इत्|| धातुके उत्तर विकल्पसे 'ङ' होता है, यथा—जॄ+द्=अजरत्, (पक्षे) अजारीत् ('ङ' परे, जॄ—जर् होता है)। ('इर्' इत्) च्युत्+द्=अच्युतत्, (पक्षे) अच्योतीत्, भिद्+द्=अभिदत्, (पक्षे) अभैत्सीत्, (ताम्) अभिदताम्, अभैत्ताम्, (अन्) अभिदन्, अभैत्सुः।

---

* लृकार इत् (लृदित्) धातु—गम्, नश्, आप्, शस्, पत्, पिष्, शद्, मुच् इत्यादि।

† द्युतादि—द्युत्, श्वित्, स्विद् (भ्वादि), रुच्, घुट्, शुभ्, क्षुभ् (भ्वादि), ध्वस्, भ्रश् (भ्वादि), वृत्, वृध्, स्यन्द्, कृप् (कॢप्), लुट् इत्यादि। लुङ् परे, द्युतादि उभयपदी।

‡ पुषादि—पुष्, तुष्, शुष्, शक्, क्लिष्, दुष्, क्षुध्, क्रुध्, स्विद्, तृष्, हृष्, द्रुह्, मुह्, स्निह्, क्षम्, क्लम्, मद्, भ्रम्, तम्, शम्, दम्, श्रम्, कुप्, लुप्, लुभ्, सिध् इत्यादि।

§ आदि—जॄ, श्वि, स्तम्भ् इत्यादि।

|| 'इर्'-इत् धातु—च्युत्, स्कन्द्, रिच्, विच्, रुज्, रुद्, निज्, युज् (रुधादि), भिद्, छिद्, दृश्, तृद्, श्च्युत्, शुच् इत्यादि।

४४१। कर्तृवाच्यमें लुङ्-विभक्तिमें, (अदादि) वच्, (दिवादि) अस्, ख्या और लिप्, सिच्, ह्वे धातुके उत्तर 'ङ' होता है; और आत्मनेपदमें लिपादि धातुके उत्तर विकल्पसे 'ङ' होता है।

४४२। लुङ्-विभक्तिमें श्रि, स्रु, द्रु और कम् धातुके उत्तर 'अङ्' होता है, श्वि और धेट् धातुके उत्तर विकल्पसे 'अङ्' (चङ्) होता है, 'अ' अवशिष्ट रहता है।

४४३। 'ङ' परे रहनेसे, नश्—विकल्पसे नेश्, वच् और ब्रू—वोच्, अस्—अस्थ्, ख्या—ख्य्, ह्वे—ह्व्, पत्—पप्त्, अद्—घस् होता है, यथा—नश्+द्=अनेशत्, अनशत्, (वच् और ब्रू) अवोचत्; (अस्) आस्थत्; (ख्या) अख्यत्, (ह्वे) अह्वत्, (पत्) अपप्तत्; (अद्) अघसत्।

(आत्मनेपदमें लिपादि) लिप्+त=अलिपत, अलिप्त, (सिच्) असिचत, असिक्त, (ह्वे) अह्वत, अह्वास्त।

४४४। 'अङ्' परे रहनेसे, द्रु—दुद्रु, स्रु—सुस्रु, श्रि—शिश्रिय्, कम्—चीकम् और चकम् होता है; यथा—(द्रु) अदुद्रुवत्; (स्रु) असुस्रुवत्; (श्रि) अशिश्रियत्; (कम्) अचीकमत्, अचकमत।

४४५। लुङ् विभक्ति परे रहनेसे, सृ और ऋ धातुके उत्तर विकल्पसे 'ङ' होता है; 'ङ' परे गुण होता है; यथा—सृ+द्=असरत्, असार्षीत्, (ऋ) आरत्, आर्षीत्।

४४६। लुङ्-विभक्ति परे रहनेसे, दृश् धातुके उत्तर विकल्पसे 'ङ' होता है; 'ङ' परे गुण होता है; यथा—दृश्+द्=अदर्शत्।

४४७। 'सि' परे रहनेसे, दृश्—द्राश्, और सृज्—स्राज् होता है; यथा—दृश्+द्=अद्राक्षीत् (३८५ सू०); (सृज्) अस्राक्षीत्।

४४८। लुङ् परे दुहादि* धातुके उत्तर 'स' (क्स) होता है, 'स' परे गुण, इट् कुछभी नहीं होता, और आत्मनेपदमें दुह्, गुह्, दिह्, लिह् धातुके उत्तर विकल्पसे 'स' होता है, यथा—दुह्+द्= अदुह्+स+द्=अधुक्षत् (२०९ और ३३४ सू०), (आत्मनेपदमें) दुह्+त=अदुह्+स+त=अधुक्षत, अदुग्ध, (अन्त) अधुक्षन्त।

४४९। लुङ् परे रहनेसे, कृष्, मृष्, स्पृश्, दिश्, द्विष्, श्लिष् और आलिङ्गनार्थ श्लिष् धातुके उत्तर विकल्पसे 'स' होता है, यथा—कृष्+द्=अकृष्+स+द्=अकृक्षत्।

४५०। 'सि' परे रहनेसे, कृष्—क्राष्, मृश्—म्राश्, तृप्—त्राप्, दृप्—द्राप्, सृप्—स्राप् और स्पृश्—स्प्राश् होता है—विकल्पसे; यथा— (कृष्) अक्राक्षीत्, (पक्षे) अकार्क्षीत् (४३२ सू०)।

४५१। लुङ्के आत्मनेपदके 'त' और 'थास्' परे, तनादि धातुके उत्तर 'सि' का विकल्पसे लोप होता है, और लोप होनेसे नकार लुप्त होता है, यथा—तन्+त=अतत, अतनिष्ट, (थास्) अतथाः, अतनिष्ठाः।

४५२। लुङ्के आत्मनेपदका 'त' परे रहनेसे, पद् धातुके उत्तर 'इण्' होता है, 'इण्' का 'ण्' इत्, 'इ' रहता है, और उस 'इण्' के परस्थित 'त' लुप्त होता है, यथा—पद्+त=अपद्+इ+त=अपादि, (ताम्) अपत्साताम्।

४५३। 'त' परे रहनेसे, प्याय्, ताय्, दीप्, पूर्, जन् और बुध्

---

* उपधामें इकार और उकार रहे ऐसे अनिट् दुह्, मिह् प्रभृति हान्त धातु।

धातुके उत्तर विकल्पसे 'इण्' होता है, यथा—प्याय्+त=अप्यायि, अप्यायिष्ट, बुध्+त=अबोधि*, अबुद्ध, (ताम्) अभुत्साताम्; (अन्त) अभुत्सत ।

(लुङ्-रूप)

परस्मैपदी ।

भू धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
मध्यमपुरुष	अभूः	अभूतम्	अभूत
उत्तमपुरुष	अभूवम्	अभूव	अभूम

श्रु धातु ।

प्रथमपुरुष	अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः
मध्यमपुरुष	अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट
उत्तमपुरुष	अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म

तृ धातु ।

प्रथमपुरुष	अतारीत्	अतारिष्टाम्	अतारिषुः
मध्यमपुरुष	अतारीः	अतारिष्टम्	अतारिष्ट
उत्तमपुरुष	अतारिषम्	अतारिष्व	अतारिष्म

वद् धातु ।

प्रथमपुरुष	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषुः

* 'इण्' परे बुध्—बोध् होता है ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अवादीः	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
उत्तमपुरुष	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादिष्म

वस् धातु।

प्रथमपुरुष	अवात्सीत्	अवात्ताम्	अवात्सुः
मध्यमपुरुष	अवात्सीः	अवात्तम्	अवात्त
उत्तमपुरुष	अवात्सम्	अवात्स्व	अवात्स्म

रुद् धातु।

प्रथमपुरुष	{ अरुदत् { अरोदीत्	{ अरुदताम् { अरोदिष्टाम्	{ अरुदन् { अरोदिषुः
मध्यमपुरुष	{ अरुदः { अरोदीः	{ अरुदतम् { अरोदिष्टम्	{ अरुदत { अरोदिष्ट
उत्तमपुरुष	{ अरुदम् { अरोदिषम्	{ अरुदाव { अरोदिष्व	{ अरुदाम { अरोदिष्म

गम् धातु।

प्रथमपुरुष	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
मध्यमपुरुष	अगमः	अगमतम्	अगमत
उत्तमपुरुष	अगमम्	अगमाव	अगमाम

क्रम् धातु।

प्रथमपुरुष	अक्रमीत्	अक्रमिष्टाम्	अक्रमिषुः
मध्यमपुरुष	अक्रमीः	अक्रमिष्टम्	अक्रमिष्ट
उत्तमपुरुष	अक्रमिषम्	अक्रमिष्व	अक्रमिष्म

नम् धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अनंसीत्	अनंसिष्टाम्	अनंसिषुः
मध्यमपुरुष	अनंसीः	अनंसिष्टम्	अनंसिष्ट
उत्तमपुरुष	अनंसिषम्	अनंसिष्व	अनंसिष्म

दृश् धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अदर्शत् / अद्राक्षीत्	अदर्शताम् / अद्राष्टाम्	अदर्शन् / अद्राक्षुः
मध्यमपुरुष	अदर्शः / अद्राक्षीः	अदर्शतम् / अद्राष्टम्	अदर्शत / अद्राष्ट
उत्तमपुरुष	अदर्शम् / अद्राक्षम्	अदर्शाव / अद्राक्ष्व	अदर्शाम / अद्राक्ष्म

स्पृश् धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अस्पृक्षत् / अस्प्राक्षीत् / अस्पार्क्षीत्	अस्पृक्षताम् / अस्प्राष्टाम् / अस्पार्ष्टाम्	अस्पृक्षन् / अस्प्राक्षुः / अस्पार्क्षुः
मध्यमपुरुष	अस्पृक्षः / अस्प्राक्षीः / अस्पार्क्षीः	अस्पृक्षतम् / अस्प्राष्टम् / अस्पार्ष्टम्	अस्पृक्षत / अस्प्राष्ट / अस्पार्ष्ट
उत्तमपुरुष	अस्पृक्षम् / अस्प्राक्षम् / अस्पार्क्षम्	अस्पृक्षाव / अस्प्राक्ष्व / अस्पार्क्ष्व	अस्पृक्षाम / अस्प्राक्ष्म / अस्पार्क्ष्म

आत्मनेपदी।

शी धातु।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत
मध्यमपुरुष	अशयिष्ठाः	अशयिषाथाम्	अशयिढ्वम् (ध्वम्)
उत्तमपुरुष	अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्महि

सेव् धातु।

प्रथमपुरुष	असेविष्ट	असेविषाताम्	असेविषत
मध्यमपुरुष	असेविष्ठाः	असेविषाथाम्	असेविढ्वम् (ध्वम्)
उत्तमपुरुष	असेविषि	असेविष्वहि	असेविष्महि

जन् धातु।

प्रथमपुरुष	अजनि / अजनिष्ट	अजनिषाताम्	अजनिषत
मध्यमपुरुष	अजनिष्ठाः	अजनिषाथाम्	अजनिढ्वम्
उत्तमपुरुष	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि

पद् धातु।

प्रथमपुरुष	अपादि	अपत्साताम्	अपत्सत
मध्यमपुरुष	अपत्थाः	अपत्साथाम्	अपद्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अपत्सि	अपत्स्वहि	अपत्स्महि

अधि+इ धातु।

प्रथमपुरुष	अध्यगीष्ट / अध्यैष्ट	अध्यगीषाताम् / अध्यैषाताम्	अध्यगीषत / अध्यैषत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अध्यगीष्ठाः अध्यैष्ठाः	अध्यगीषाथाम् अध्यैषाथाम्	अध्यगीढ्वम् अध्यैढ्वम्
उत्तमपुरुष	अध्यगीषि अध्यैषि	अध्यगीष्वहि अध्यैष्वहि	अध्यगीष्महि अध्यैष्महि

उभयपदी ।

दा धातु ।

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अदात्	अदाताम्	अदुः
मध्यमपुरुष	अदाः	अदातम्	अदात
उत्तमपुरुष	अदाम्	अदाव	अदाम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	अदित	अदिषाताम्	अदिषत
मध्यमपुरुष	अदिथाः	अदिषाथाम्	अदिढ्वम्
उत्तमपुरुष	अदिषि	अदिष्वहि	अदिष्महि

ज्ञा धातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषुः
मध्यमपुरुष	अज्ञासीः	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट
उत्तमपुरुष	अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म

(आत्मनेपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अज्ञास्त	अज्ञासाताम्	अज्ञासत
मध्यमपुरुष	अज्ञास्थाः	अज्ञासाथाम्	अज्ञाध्वम्
उत्तमपुरुष	अज्ञासि	अज्ञास्वहि	अज्ञास्महि

कृ धातु।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः
मध्यमपुरुष	अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
उत्तमपुरुष	अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
मध्यमपुरुष	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
उत्तमपुरुष	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि

भिद् धातु।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	अभिदत् / अभैत्सीत्	अभिदताम् / अभैत्ताम्	अभिदन् / अभैत्सुः
मध्यमपुरुष	अभिदः / अभैत्सीः	अभिदतम् / अभैत्तम्	अभिदत / अभैत्त
उत्तमपुरुष	अभिदम् / अभैत्सम्	अभिदाव / अभैत्स्व	अभिदाम / अभैत्स्म

(आत्मनेपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अभित्त	अभित्साताम्	अभित्सत
मध्यमपुरुष	अभित्थाः	अभित्साथाम्	अभिद्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अभित्सि	अभित्स्वहि	अभित्स्महि

दुह् धातु।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	अधुक्षत्	अधुक्षताम्	अधुक्षन्
मध्यमपुरुष	अधुक्षः	अधुक्षतम्	अधुक्षत
उत्तमपुरुष	अधुक्षम्	अधुक्षाव	अधुक्षाम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	{ अधुक्षत अदुग्ध	अधुक्षाताम्	अधुक्षन्त
मध्यमपुरुष	{ अधुक्षथाः अदुग्धाः	अधुक्षाथाम्	{ अधुक्षध्वम् अधुग्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अधुक्षि	{ अधुक्षावहि अदुह्वहि	{ अधुक्षामहि अदुह्महि

* * *

आकारान्त-प्रभृति-क्रमसे कुछ प्रचलित धातुओंके लुङ् प्रथमपुरुष एकवचन, द्विवचन, बहुवचनके रूप दिखलाये जाते हैं। इनके जाननेसेही अवशिष्ट पद ज्ञात होंगे।

या—अयात् अयासीत्, अयाताम् अयासिष्टाम्, अयुः अयासिषुः।

पा—अपात्, (रक्षार्थमें) अपासीत्।

भा—अभासीत्, अभासिष्टाम्, अभासिषुः।

या, हा—'भा'-धातुवत्।

इ—अगात्, अगाताम्, अगुः।

जि—अजैषीत्, अजैष्टाम्, अजैषुः।

क्री—अक्रैषीत्, अक्रैष्टाम्, अक्रैषुः। अक्रेष्ट, अक्रेषाताम्, अक्रेषत।

नी—'क्री'-धातुवत्।

भी—'जि'-धातुवत्।*

स्तु—अस्तावीत् अस्तौषीत्, अस्ताविष्टाम् अस्तौष्टाम्, अस्ताविषुः अस्तौषुः। अस्तोष्ट।

द्रु—'स्तु'-धातुवत्।

पू—अपावीत्, अपाविष्टाम्, अपाविषुः। अपविष्ट।

सू—असविष्ट असोष्ट, असविषाताम् असोषाताम्।

जागृ—अजागरीत्, अजागरिष्टाम्, अजागरिषुः।

मृ—अमृत, अमृषाताम्, अमृषत।

वृ—अवारीत्, अवारिष्टाम्, अवारिषुः। अवृत अवरिष्ट अवरीष्ट, अवृषाताम् अवरिषाताम् अवरीषाताम्।

स्मृ—अस्मार्षीत्, अस्मार्ष्टाम्, अस्मार्षुः।

हृ—अहार्षीत्। अहृत।

कॄ—अकारीत्, अकारिष्टाम्, अकारिषुः।

जॄ—अजरत् अजारीत्, अजरताम् अजारिष्टाम्, अजरन् अजारिषुः।

* 'मा'-शब्दके योगसे—मा भैः, मा भैषीः—ये दो पद होते हैं।

दृ—'दृ'-धातुवत्।

गै—अगासीत्, अगासिष्टाम्, अगासिषुः।

त्रै—अत्रास्त, अत्रासाताम्।

शास्—अशासत्, अशासताम्, अशासन्।

शड्ड्—अशड्डिष्ट, अशड्डिषाताम्।

लिख्—अलेखीत्, अलेखिष्टाम्, अलेखिषुः।

श्लाघ्—अश्लाघिष्ट, अश्लाघिषाताम्।

पच्—अपाक्षीत्, अपाक्ताम्, अपाक्षुः। अपक्त, अपक्षाताम्।

मुच्—अमुचत्, अमुचताम्, अमुचन्। अमुक्त, अमुक्षाताम्।

याच्—अयाचीत्, अयाचिष्टाम्, अयाचिषुः। अयाचिष्ट।

वच् और ब्रू—अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन्।

शुच् (भ्वादि)—अशोचीत्, अशोचिष्टाम्, अशोचिषुः।

सिच्—असिचत्, असिचताम्, असिचन्। असिचत असिक्त, असिचेताम् असिक्षाताम्, असिचन्त असिक्षत।

प्रच्छ्—अप्राक्षीत्, अप्राष्टाम्, अप्राक्षुः।

अर्ज्—आर्जीत्, आर्जिष्टाम्, आर्जिषुः।

त्यज्—अत्याक्षीत्, अत्याक्ताम्, अत्याक्षुः।

भञ्ज्—अभाङ्क्षीत्, अभाङ्क्ताम्, अभाङ्क्षुः।

भुज्—अभौक्षीत्, अभौक्ताम्, अभौक्षुः। अभुक्त, अभुक्षाताम्।

मस्ज्—अमाङ्क्षीत्, अमाङ्क्ताम्, अमाङ्क्षुः।

युज्—अयुजत् अयौक्षीत्, अयुजताम् अयौक्ताम्, अयुजन् अयौक्षुः। अयुक्त, अयुक्षाताम्, अयुक्षत।

राज्—अराजीत्, अराजिष्टाम्, अराजिषु। अराजिष्ट।
लस्ज्—अलज्जिष्ट, अलज्जिषाताम्।
सृज्—अस्राक्षीत्, अस्राष्टाम्, अस्राक्षुः।
घट्—अघटिष्ट, अघटिषाताम्, अघटिषत।
चेष्ट्—अचेष्टिष्ट, अचेष्टिषाताम्, अचेष्टिषत।
वेष्ट्—'चेष्ट्'-धातुवत्।
पठ्—अपाठीत् अपठीत्, अपाठिष्टाम् अपठिष्टाम्।
क्रीड्—अक्रीडीत्, अक्रीडिष्टाम्, अक्रीडिषुः।
कृत्—अकर्त्तीत्, अकर्त्तिष्टाम्, अकर्त्तिषुः।
नृत्—अनर्त्तीत्, अनर्त्तिष्टाम्, अनर्त्तिषुः।
पत्—अपप्तत्, अपप्तताम्, अपप्तन्।
यत्—अयतिष्ट, अयतिषाताम्, अयतिषत।
वृत्—अवृतत्, अवृतताम्, अवृतन्। अवर्त्तिष्ट, अवर्त्तिषाताम्।
अद्—अघसत्, अघसताम्, अघसन्।
क्रन्द्—अक्रन्दीत्, अक्रन्दिष्टाम्, अक्रन्दिषुः।
खाद्—अखादीत्, अखादिष्टाम्, अखादिषुः।
छिद्—'भिद्'-धातुवत्।
विद्—अवेदीत्, अवेदिष्टाम्, अवेदिषुः। (दिवादि) अवित्त, अवित्साताम्। (तुदादि) अविदत्, अवेदिष्ट अवित्त।
क्रुध्—अक्रुधत्, अक्रुधताम्, अक्रुधन्।
बन्ध्—अभान्त्सीत्, अबान्धाम्, अभान्त्सुः।
बुध्—(भ्वादि) अबुधत् अबोधीत्, अबोधिष्ट। (दिवादि) अबो-

धि अबुद्ध, अभुत्साताम्, अभुत्सत ।

युध्—अयुद्ध, अयुत्साताम्, अयुत्सत ।

वृध्—अवृधत्, अवृधताम्, अवृधन् । अवर्द्धिष्ट, अवर्द्धिषाताम् ।

व्यध्—अव्यात्सीत्, अव्याद्धाम्, अव्यात्सुः ।

जन्—अजनि अजनिष्ट, अजनिषाताम्, अजनिषत ।

मन्—अमंस्त, अमंसाताम्, अमंसत ।

हन्—अवधीत्, अवधिष्टाम्, अवधिषुः ।

आप्—आपत्, आपताम्, आपन् ।

क्षिप्—अक्षैप्सीत्, अक्षैप्ताम्, अक्षैप्सुः, अक्षिप्त, अक्षिप्साताम्, अक्षिप्सत ।

तप्—अताप्सीत्, अताप्ताम्, अताप्सुः ।

दीप्—अदीपि अदीपिष्ट, अदीपिषाताम्, अदीपिषत ।

लुप्—अलुपत्, अलुपताम्, अलुपन् । अलुप्त, अलुप्साताम्, अलुप्सत ।

लभ्—अलब्ध, अलप्साताम्, अलप्सत ।

शुभ्—अशुभत्, अशुभताम्, अशुभन् । अशोभिष्ट, अशोभिषाताम्, अशोभिषत ।

क्षम्—(दिवादि) अक्षमत् अक्षमीत् । (भ्वादि) अक्षमिष्ट अक्षंस्त ।

भ्रम्—(भ्वादि) अभ्रमत् अभ्रमीत्; (दिवादि) अभ्रमीत् ।

यम्—अयंसीत्, अयंसिष्टाम्, अयंसिषुः ।

रम्—अरंस्त, अरंसाताम्, अरंसत ।

दम्—अदमत् । ('अदमत् अदमीत्' इति वोपदेव ।)

श्रम्—अश्रमत् ।

चर्—अचारीत्, अचारिष्टाम्, अचारिषुः ।

त्वर्—अत्वरिष्ट, अत्वरिषाताम् ।

पूर्—अपूरि अपूरिष्ट, अपूरिषाताम् ।

स्फुर्—अस्फुरीत्, अस्फुरिष्टाम्, अस्फुरिषुः ।

ज्वल्—अज्वालीत्, अज्वालिष्टाम्, अज्वालिषुः ।

जीव्—अजीवीत्, अजीविष्टाम्, अजीविषुः ।

दिव्—अदेवीत्, अदेविष्टाम्, अदेविषुः ।

धाव्—अधावीत्, अधाविष्टाम्, अधाविषुः । अधाविष्ट, अधावि-षाताम्, अधाविषत ।

अश्—आशिष्ट आष्ट, आशिषाताम् आक्षाताम्, आशिषत आक्षत ।
(क्र्यादि) आशीत्, आशिष्टाम् ।

भ्रस्ज्—अभ्राक्षीत्, अभ्राष्टाम्, अभ्राक्षुः ।

दिश्—अदिक्षत्, अदिक्षताम्, अदिक्षन् । अदिक्षत, अदिक्षाताम् ।

विश्—अविक्षत्, अविक्षताम्, अविक्षन् ।

इष्—ऐषीत्, ऐषिष्टाम्, ऐषिषुः ।

ईक्ष्—ऐक्षिष्ट, ऐक्षिषाताम्, ऐक्षिषत ।

काङ्क्ष्—अकाङ्क्षीत्, अकाङ्क्षिष्टाम्, अकाङ्क्षिषुः ।

कृष्—'स्पृश्'-धातुवत् ।

तुष्—अतुषत्, अतुषताम्, अतुषन् ।

पुष्, शिष्—'तुष्' धातुवत् ।

द्विष्—अद्विक्षत्, अद्विक्षताम्, अद्विक्षन् । अद्विक्षत, अद्विक्षाताम्,

अह्विक्षन्त ।

माप्—अमापिष्ट, अमापिषाताम्, अमापिषत ।

सृप्—(भ्वादि) असर्पीत् । (दिवादि) असृपत्, असृपताम्, असृपन्, असर्पिष्ट, असर्पिषाताम्, असर्पिषत ।

रक्ष्—अरक्षीत्, अरक्षिष्टाम्, अरक्षिषुः ।

वृष्—अवर्षीत्, अवर्षिष्टाम्, अवर्षिषुः ।

अस्—(अदादि) 'भू' धातुवत् । (दिवादि) आस्थत्, आस्थताम्, आस्थन् ।

आस्—आसिष्ट, आसिषाताम्, आसिषत ।

वस्—(अदादि) अवसिष्ट, अवसिषाताम्, अवसिषत ।

शंस्—अशंसीत्, अशंसिष्टाम्, अशंसिषुः ।

शास्—अशिषत्, अशिषताम् अशिषन् ।

श्वस्—अश्वसीत्, अश्वसिष्टाम्, अश्वसिषुः ।

हस्—अहसीत्, अहसिष्टाम्, अहसिषुः ।

हिंस्—अहिंसीत्, अहिंसिष्टाम्, अहिंसिषुः ।

गाह्—अगाहिष्ट अगाढ, अगाहिषाताम् अघाक्षाताम्, अगाहिषत अघाक्षत ।

ग्रह्—अग्रहीत्, अग्रहीष्टाम्, अग्रहीषुः । अग्रहीष्ट, अग्रहीषाताम्, अग्रहीषत ।

दह्—अधाक्षीत्, अदाग्धाम्, अधाक्षुः ।

रह्—अरक्षत् ।

वह्—अवाक्षीत्, अवोढाम्, अवाक्षुः । अवोढ, अवक्षाताम्, अवक्षत ।

✕अङ्गरेजी 'Present perfect', 'past' or 'past perfect' इनके बीचमें जिस किसीका संस्कृतमें अनुवाद करना हो, उसीमें लङ्, लुङ् अथवा लिट् विभक्तिका प्रयोग करना होगा, अर्थात् इन तीनोंके बीचमें जहाँ जिसके प्रयोगसे सुननेमें अच्छा लगता, वहाँ उसीका प्रयोग करना चाहिये। यद्यपि पूर्वकालमें 'लङ्—ह्यस्तनी, लुङ्—अद्यतनी, और लिट्—परोक्षा'—ऐसे विशिष्ट नामोंसे इनका अभिधान हुआ था, तथापि साहित्यादिग्रन्थोंमें उसका व्यभिचार दृष्ट होनेसे, सम्प्रति तद्विषयक कोई निर्दिष्ट नियम नहीं किया जा सकता। यथा—

(1) I have done my duty—अहमकरवं मदीयं कृत्यम्।

(2) I did my duty—मत्कार्यमहमकार्षम्।

(3) He had done his duty before I came—प्रागेव ममाभ्यागमात् स तत्कर्त्तव्यं चकार।

प्रत्ययान्त धातु।

णिच्, सन्, यङ् प्रभृति प्रत्ययोंसे कई धातु निष्पन्न होते हैं, उनको 'प्रत्ययान्त धातु' कहते हैं। प्रत्ययान्त धातु भ्वादिगणीयमें गण्य होते हैं (केवल 'यङ्लुगन्त धातु' अदादिगणीयके तुल्य)। प्रत्ययान्त धातुके बीचमें कई एकको 'नामधातु' कहते हैं, विशेष विशेष अर्थमें नाम अर्थात् शब्दके उत्तर 'क्य, क्यङ्' प्रभृति प्रत्यय द्वारा वे निष्पन्न होते हैं।

णिजन्त धातु (Causative verb)।

४५४। 'प्रेरण'-अर्थमें धातुके उत्तर 'णिच्' होता है। एक

कर्त्ताके अन्य कर्त्ताको कार्य्यमे नियुक्त करनेका नाम 'प्रेरण'। 'णिच्' का 'इ' रहता है। 'णिच्'-प्रत्यय करके जो धातु निष्पन्न होता है, उसको 'णिजन्त धातु' कहते हैं। णिजन्त धातु उभयपदी। यथा—(कर्त्तुं प्रेरयति=कराता है) कारयति।

चि+इ=चायि (२९२ सू०)—चाययति, नी+इ=नायि—नाययति, कृ और कॄ=कारि—कारयति, धु+इ=धावि—धावयति; भू+इ=भावि—भावयति। (उपधा 'अ') वद्+इ=वादि—वादयति। (उपधा 'उ') नुद्+इ=नोदि—नोदयति, (उपधा 'इ') लिख्+इ=लेखि—लेखयति, सिध्+इ=सेधि—सेधयति*, (उपधा 'ऋ') दृश्+इ=दर्शि—दर्शयति। (उपधा 'आ') खाद्+इ=खादि—खादयति, (उपधा 'ई') जीव्+इ=जीवि—जीवयति।

इत्-कार्य्य।

४१५। प्रकृति, आगम और प्रत्ययके जो जो वर्ण नहीं रहते, उन्हें 'इत्' कहते हैं; यथा—'णिच्' के 'ण्' और 'च्' इत्।

कई 'इत्' के विशेष विशेष कार्य्य हैं, सो प्रदर्शित किये जाते हैं—

(१) उ—'उ' इत् (उदित्) होनेसे, स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' होता है; यथा—बुद्धि+मतु=बुद्धिमत्—बुद्धिमती।

(२) ऋ—'ऋ' इत् (ऋदित्) होनेसे, स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' होता है। यथा—रुद्+शतृ=रुदत्—रुदती।

(३) क—'क्'-इत् (कित्) होनेसे, गुण नहीं होता; यथा—

---

* दिवादि 'सिध्'-धातुके स्थानमें विकल्पमें 'साध्' होता है।

बुध्+क्ति=बुद्धि, कृ+क्त=कृत ।

यज्, व्यध् और व्ये धातुके स्वरसहित 'य' के स्थानमे 'इ' होता है, यथा—यज्+क्त=इष्ट ।

वच्, वद्, वप्, वश्, (स्वादि) वस्, वह्, वे, श्वि, स्वप् और ह्वे धातुके स्वरसहित 'व' के स्थानमे 'उ' होता है, यथा—वच्+क्त=उक्त ।

ग्रह्, प्रच्छ् और भ्रस्ज् धातुके स्वरसहित 'र' के स्थानमे 'ऋ' होता है, यथा—ग्रह्+क्त=गृहीत* ।

शास्-धातुके स्थानमे 'शिष्' होता है, यथा—शास्+क्त=शिष्ट ।

(४) ख—'ख्' इत् (खित्) होनेसे, स्वरान्त उपपदके उत्तर अर्थात् धातु और तत्पूर्ववर्त्ती शब्दके बीचमे 'म्' आगम होता है, यथा—भय+कृ+ख=भयङ्कर, भुज+गम्+ख=भुजङ्गम ।

(५) घ—'घ्'-इत् (घित्) होनेसे, प्रकृतिके 'च्' स्थानमे 'क्', और 'ज्' के स्थानमे 'ग्' होता है, यथा—पच्+घञ्=पाक, त्यज्+घञ्=त्याग ।

(६) ङ—'ङ्' इत् (ङित्) होनेसे, गुण नहीं होता, यथा—भिद्+अङ्=भिदा ।

(७) ञ—'ञ्'-इत् (ञित्) होनेसे, धातुके अन्त्यस्वर और उपधा अकारकी वृद्धि होती है, यथा—हृ+घञ्=हार; नश्+घञ्=नाश ।

---

* स्वरसहित 'य' के स्थानमे 'इ', 'व' के स्थानमे 'उ', और 'र' के स्थानमे 'ऋ' होनेको 'सम्प्रसारण' कहते हैं ।

उपधा लघुस्वरका गुण होता है, यथा—शुच्+घञ्=शोक ।

आकारान्त धातुके उत्तर 'य' होता है; यथा—दा+घञ्=दाय ।

(८) ट—'ट्'-इत् (टित्) होनेसे, स्त्रीलिङ्गमें 'ईप्' होता है; यथा—अनु+चर्+ट=अनुचर—अनुचरी ।

(९) ड—'ड्' इत् (डित्) होनेसे, 'टि' अर्थात् प्रकृतिके अन्त्यस्वर और तत्परवर्ती व्यञ्जनवर्णका लोप होता है, यथा—द्वि+जन्+ड=द्विज ।

(१०) ण—'ण्'-इत् (णित्) होनेसे, 'ञ्'-इत्के तुल्य कार्य्य होता है; यथा—कृ+णक=कारक ।

तद्धितका 'ण्' इत् होनेसे प्रातिपदिकके आदिस्वरकी वृद्धि होती है; यथा—विष्णु+ष्ण=वैष्णव ।

(११) प—'प्'-इत् (पित्) होनेसे, ह्रस्वस्वरान्त धातुके उत्तर 'त्' होता है; यथा—प्र+कृ+यप्=प्रकृत्य, विश्व+जि+क्विप्=विश्वजित्।

(१२) श—'श्' इत् (शित्) होनेसे, लट्के तुल्य कार्य्य होता है, यथा—गम्+शतृ=गच्छत्, दृश्+शतृ=पश्यत्।

(१३) ष—'ष्' इत् (षित्) होनेसे, स्त्रीलिङ्गमें 'ईप्' होता है; यथा—विष्णु+ष्ण=वैष्णव—वैष्णवी ।

४०६ । णिच् परे, ञ्, आय, घटादि* और 'अम्'-भागान्त† धातुकी

---

* घटादि—घट्, व्यथ्, त्वर्, ज्वर्, प्रथ्, जन्, नट् (नट्), रग् इत्यादि ।

† किन्तु कम्, चम्, अम् धातुकी वृद्धि होती है ।

वृद्धि नहीं होती, यथा—(जॄ) जरयति, (जागृ) जागरयति, (घट्) घटयति, (गम्) गमयति।

४६७। णिच् परे, आकारान्त धातुके उत्तर 'प' होता है*; यथा—(स्था) स्थापयति।

४६८। कई णिजन्त धातुओंकी विशेष आकृति।—भू—भावि, भावयति। इ—गमि, गमयति। अधि+इ—(अध्ययनार्थे) अध्यापि, (स्मरणार्थे) अध्यायि, अध्यापयति, अध्याययति। प्रति+इ—(ज्ञानार्थे) प्रत्यायि, प्रत्याययति। ऋ—अर्पि, अर्पयति। क्री—क्रापि, क्रापयति। गे—गापि, गापयति। चल्—(कम्पनार्थे) चलि, (स्थानान्तर-प्रापणार्थे) चालि, यथा—चलयति तरून् समीरण, चालयति हस्तिनं यन्ता। चि—चापि, चायि, चापयति, चाययति। जि—जापि, जापयति। ज्वल्—ज्वलि, ज्वालि, (उपसर्गयुक्त) ज्वलि, ज्वलयति, ज्वालयति, प्रज्वलयति। दुष्—दूषि, दूषयति,—'चित्तविकार'-अर्थमें विकल्पसे होता है, यथा—दूषयति दोषयति चित्त काम। धू—धूनि, धूनयति,—धावि इति केचित्, धावयति। नम्—नमि, नामि, (उपसर्गयुक्त) नमि; नमयति, नामयति, प्रणमयति। पा—(पानार्थे) पायि, (रक्षार्थ) पालि; पाययति, पालयति। प्री—प्रीणि, प्रायि, प्रीणयति, प्राययति। ब्रू, वच्—वाचि, वाचयति। भी—भीषि, भापि, (करण-कारक रहनेसे) भायि, भीषि, भापि आत्मनेपदी होते हैं, यथा—सर्प शिशुं भीषयते, भापयते वा—यहां सर्प अन्यकी अपेक्षा न करके स्वयं भयका जनक है, पुरुषः सर्पेण शिशुं भाययति—यहां पुरुष सर्प-द्वारा शिशुका भय उत्पादन

* 'प' परे 'ज्ञा'-धातुका ह्रस्वभी होता है।

करता है, अन्यनिरपेक्ष होकर स्वयं नहीं । रुह्—रोहि, रोपि ; रोहयति, रोपयति । लभ्—लम्भि ; लम्भयति । ली—लापि, लायि, (द्रवद्रार्थे कर्म होनेसे) लालि, लीनि ; यथा—लौहं विलापयति, जतु विलाययति = विलालयति विलीनयति विलापयति विलाययति वा घृतम् । वन्—वनि, वानि, (उपसर्गयुक्त) वनि ; वनयति, वानयति, उद्वनयति । शद्—(गत्यर्थे) शादि, (पतनार्थे) शाति ; यथा—गाः शादयति गोपालः (गमयतीत्यर्थः), पत्र शातयति तुषार (पातयति इत्यर्थः) । शम्—शामि, (दर्शनार्थे) शमि ; यथा—शमयति रोगं भिषक् ; निशामयति रूपम् (पश्यतीत्यर्थः) । सिध्—(दिवादि) साधि ; साधयति । स्ना—स्नापि, स्नापि, (उपसर्गयुक्त) स्नपि , स्नपयति, स्नापयति, प्रस्नापयति । स्मि—स्मापि, (करण कारक रहनेसे) स्मायि ; स्मापि आत्मनेपदी होता है , यथा—मुण्ड शिशुं विस्मापयते ; प्रेतो रूपेण मां विस्माययति । हन्—घाति ; घातयति । ह्री—ह्रेपि , ह्रेपयति । स्फुर्—स्फारि, स्फोरि ; स्फारयति, स्फोरयति ।

णिजन्त धातुके रूप ।

भावि धातु ।

लट्—भावयति । लोट्—भावयतु । लङ्—अभावयत् । विधिलिङ्—भावयेत् । लृट्—भावयिष्यति । लुट्—भावयिता । लृङ्—अभावयिष्यत् । आशी—(आशीर्लिङ् परस्मैपदमें णिजन्त धातुके 'इ' का लोप होता है) भाव्यात्, भाव्यास्ताम्, भाव्यासुः ।

लिट्—

५५० । लिट्-विभक्तिमें णिजन्त धातुके उत्तर 'आम्' होता है, और

'आम्' के उत्तर भू, कृ, अस्—इन तीन धातुओंका प्रयोग होता है; यथा—शाययाम्बभूव, शाययाञ्चकार, शाययामास।

लुङ्—अशिश्रयत्, अशुश्रवत्।

४६०। लुङ्-विभक्ति परे रहनेसे, णिजन्त धातुके उत्तर 'अङ्' होता है; 'ङ' इत्, 'अ' रहता है, यथा—सेचि+द्=असेचि+अ+द्—

४६१। 'अङ्' परे रहनेसे, णिजन्त धातु अभ्यस्त होता है, और 'णिच्'के इकारका लोप होता है, यथा—असेच् सेच्+अ+द्=असिसेच्+अ+द् (३१३ सूत्रानुसार ह्रस्व)—

४६२। 'अङ्' परे, अकारान्त (अदन्त) चुरादि और शास् भिन्न अभ्यस्त धातुके परभागका दीर्घस्वर ह्रस्व होता है, और अकार भिन्न पूर्वभागका ह्रस्वस्वर दीर्घ होता है, यथा—असीसिच्+अ+द्=असीषिचद्, मोचि+द्=अमूमुचद्।

४६३। अभ्यस्त धातुका परभाग गुरुस्वर युक्त होनेसे, पूर्वभागका ह्रस्वस्वर दीर्घ नहीं होता, यथा—निन्दि+द्=अनिनिन्दद्।

४६४। परभाग लघुस्वर-युक्त होनेसे, पूर्वभागका अकार—ईकार होता है, यथा—पाति+द्=अ+पात् पात्+अ+द्=अपपत्+अ+द्=अपीपतद्।

४६५। अनेकस्वरविशिष्ट धातुके पूर्वभागका 'अ' विकल्पसे ईकार होता है, यथा—चकासि+द्=अचीचकासद्, अचचकासद्। (परभाग गुरुस्वर युक्त) शासि+द्=अशशासद्, (भक्षि) अबभक्षत्।

४६६। णिजन्त स्मृ, दृ, त्वर्, स्तृ, प्रथ् भिन्न संयुक्तवर्ण परे रहनेसे, पूर्वभागके अकारके स्थानमें इकार होता है, यथा—व्यथि+द्=

अजिज्ञपत्- (ज्ञापि) अजिज्ञिपत्। स्मारि+द्=असस्मरत्; (दारि) अददरत्; (त्वरि) अतत्वरत्; (स्तारि) अतस्तरत्; (प्रथि) अपप्रथत्।

णिजन्त वेष्ट् और चेष्ट् धातुका उक्त कार्य विकल्पसे होता है; यथा—(वेष्टि) अविवेष्टत्, अववेष्टत्; (चेष्टि) अचिचेष्टत्, अचचेष्टत्।

४६७। णिजन्त भ्राजादि* धातुके उपधाका अथवा गुरुस्वर विकल्पसे लघु होता है; यथा—भ्राजि+द्=अबिभ्रजत्, अबभ्राजत्; (दीपि) अदीदिपत्, अदिदीपत्।

४६८। जिन धातुओंकी उपधामें ऋकार रहता है, णिजन्त करनेसे, वे 'लुङ्' परे विकल्पसे धातुकी आकृति धारण करते हैं; यथा—वर्ति+द्=अवर्ति+अ+द्=अ+वृत् वृत्+अ+द्=अवीवृतत्; (पक्षे) अववर्तत्।

४६९। 'लुङ्' परे, स्वापि—सुषुप्, स्थापि—तिष्ठिप्, और (पानार्थे) पायि—पीप्य होते हैं; यथा—स्वापि+द्=असूषुपत्; (स्थापि) अतिष्ठिपत्; (पायि) अपीप्यत्।

४७०। 'लुङ्' परे, णिजन्त स्रु, श्रु, द्रु, प्रु, प्लु और च्यु धातुके पूर्वभागके अकारके स्थानमें विकल्पसे इकार होता है; यथा—श्रावि+द्=असिश्रवत्, अशुश्रवत्; (द्रु) अदिद्रवत्, अदुद्रवत्।

४७१। 'लुङ्' परे रहनेसे, अकारान्त चुरादिके पूर्वभागके अकारके स्थानमें इ नहीं होता; यथा—रचि+द्=अररचत्।

---

* भ्राजादि—भ्राज्, दीप्, भास्, भाष्, जीव्, मील्, पीड्, कण्, रण्, वण्, भण्, श्रण्, लुप्, हेठ् इत्यादि।

४७२। 'अङ्' परे, गण और कथ धातुके पूर्वभागका अकार विकल्प से 'ई' होता है, यथा—गणि+द्=अजीगणत्, अजगणत्, (कथि) अचीकथत्, अचकथत्।

गण धातु।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अजीगणत्	अजीगणताम्	अजीगणन्
मध्यमपुरुष	अजीगणः	अजीगणतम्	अजीगणत
उत्तमपुरुष	अजीगणम्	अजीगणाव	अजीगणाम

४७३। णिजन्त धातुके प्रयोगमे, जो अन्य कर्त्ताको किसी कार्य्यमे प्रवर्त्तित (प्रेरण) करता है (अर्थात् अन्यद्वारा कोई काम कराता है), उसे 'प्रयोजक कर्त्ता' कहते हैं। कर्त्तृवाच्यमे प्रयोजक कर्त्तामे प्रथमा होती है, और प्रयोजक कर्त्ताके अनुसार क्रियाके पुरुष और वचन होते हैं। प्रयोजक कर्त्ता जिसको क्रियामे नियुक्त करता है, अर्थात् प्रेरित होकर जो काम करता है, उसको 'प्रयोज्य कर्त्ता' कहते हैं। प्रयोज्य कर्त्तामे तृतीया विभक्ति होती है। यथा—गुरु छात्रेण लेखयति (लिखन्तं छात्रं प्रेरयति—गुरु छात्र द्वारा लिखाता है)—यहाँ 'गुरु'—प्रयोजक कर्त्ता, 'छात्रेण'—प्रयोज्य कर्त्ता।

किसी किसी धातुके प्रयोगसे प्रयोज्य कर्त्ता कर्म होता है। जिस जिस धातुके प्रयोगसे प्रयोज्य कर्त्ता कर्म होता है, सो नीचे दिखाया जाता है।

४५४। गत्यर्थ*, प्राप्त्यर्थ†, ज्ञानार्थ‡, कथनार्थ, पठनार्थ, भोजनार्थ (अद्, खाद्-भिन्न) और अकर्मक धातुओंकी अणिजन्तावस्थामें जो कर्ता (प्रयोज्य कर्ता), वह उनकी णिजन्तावस्थामें कर्म होता है§, (तब उसे 'प्रयोज्य कर्म' कहते हैं, प्रयोज्य कर्ममें द्वितीया होती है), यथा—

(गत्यर्थ) पुत्र विद्यामन्दिर गच्छति—पिता पुत्रं विद्यामन्दिरं गमयति।

(प्राप्त्यर्थ) दरिद्र धन प्राप्नोति—आढ्य दरिद्रं धन प्रापयति।

(ज्ञानार्थ) शिष्य शास्त्र बुध्यते जानाति वा—गुरु शिष्यं शास्त्रं बोधयति ज्ञापयति वा।

(कथनार्थ) छात्र पाठं वक्ति—गुरुश्छात्रं पाठं वाचयति।

(पठनार्थ) ब्रह्मचारी वेद पठति—आचार्य्यो ब्रह्मचारिणं वेदं पाठयति।

(ग्रहणार्थ) विप्र दक्षिणां गृह्णाति—यजमान विप्रं दक्षिणां ग्राहयति।

(दर्शनार्थ) बालश्चन्द्रं पश्यति—जननी बालं चन्द्र दर्शयति।

(श्रवणार्थ) सभ्या पुराण शृण्वन्ति—वाचक सभ्यान् पुरा-

---

* प्रवेश, आरोहण, तरणभी गत्यर्थ ॥ 'नी'-धातुका नहीं होगा।

† 'ग्रह्'-धातुभी प्राप्त्यर्थ।

‡ दर्शन, श्रवण, घ्राण, स्पर्श इत्यादिभी ज्ञानार्थ।

§ गमनाहारबोधार्थ शब्दार्थाकर्मधातुषु।
अणिजन्तेषु य कर्ता, स्याण्णिजन्तेषु कर्म तत् ॥

ण श्रावयति ।

(भोजनार्थ) ब्राह्मणा अन्न भुञ्जते—व्रती ब्राह्मणान् अन्न भोजयति ।

(अकर्मक) शिशु शेते—माता शिशु शाययति ।

४७५ । हृ और कृ धातुकी अणिजन्तावस्थामे कर्त्ता (प्रयोज्य कर्त्ता) णिजन्तावस्थामे विकल्पसे कर्म होता है , विकल्पपक्षमे तृतीया , यथा—

(हृ) चौर धन हरति—चौर चौर चौरेण वा धन हारयति ।
भृत्य भार हरति—प्रभु भृत्य भृत्येन वा भार हारयति ।
(कृ) दास कर्म करोति—प्रभु दास दासेन वा कर्म कारयति ।

सनन्त धातु (Desiderative verb) ।

[यथासम्भव पूर्व पूर्व प्रकरणोके स्टार (*)-चिह्नित सूत्रोका कार्य्य और लिट्के तुल्य अभ्यस्त कार्य होगा ।]

४७६ । 'इच्छा'-अर्थमे धातुके उत्तर 'सन्'-प्रत्यय होता है , 'सन्' का 'स' रहता है । 'सन्' प्रत्ययान्त धातुको 'सनन्त धातु' कहते है । यथा—(कर्तुम् इच्छति—करनेकी इच्छा करता है) चिकीर्षति ।

४७७ । स्वार्थमे कितादि* धातुके उत्तर 'सन्' प्रत्यय होता है , यथा—कित् + स—

* कितादि—कित्, तिज्, गुप्, बध्, मान् ।
गुपो वधेश्च निन्दायां, क्षमायाञ्च तथा तिज ।
सशये च प्रतीकारे कित सन्नभिधीयते ॥

४७८। 'सन्'-प्रत्यय होनेसे, वे पुन स्वतन्त्र सनन्त धातुओंमें परिगणित होकर, रूपकारसे भ्वादिगणीय धातुके तुल्य रूप धारण करते हैं; और जिसके धातुके उत्तर 'सन्' होता है, पश्चात्-भी सनन्त धातु उभयपदीही रहता है।

४७९। 'सन्' परे रहनेसे, धातु अभ्यस्त होता है; यथा—कित् कित्+स=चिकित्+स (३८८। ३८९। ३९३ सू०)—

४८०। 'सन्' परे रहनेसे, कितादि धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता; यथा—चिकित्स+ति—

४८१। अनिट् 'सन्' परे रहनेसे, गुण नहीं होता; यथा—चिकित्सति। तिज्+स=तितिक्षते, (गुप्) जुगुप्सते।

४८२। अभ्यस्त बध् और मान् धातुके पूर्वभागके अकारके स्थानमें 'ई' होता है, यथा—बध्+स+ते=बबध्+स+ते=बीभत्सते (२६८ सू०); (मान्) मीमांसते।

४८३। 'सन्' परे रहनेसे, सेट् धातुके उत्तर 'इट्' होता है; यथा—पठ्+स+ति=पपठि+स+ति—

४८४। अभ्यस्त सनन्त धातुके पूर्वभागका 'अ'—'इ' होता है;

कित्'-धातुके उत्तर रोगापनयन और सन्देह अर्थमें, 'तिज्'-धातुके उत्तर क्षमा अर्थमें, 'गुप्' और 'बध्' धातुके उत्तर निन्दा-अर्थमें, और 'मान्'-धातुके उत्तर विचार-अर्थमें 'सन्' होता है; यथा—चिकित्सति व्याधिम्; विचिकित्सति मे मन; तितिक्षते साधु; जुगुप्सते बीभत्सते वा विषयं योगी; मीमांसते शास्त्रम्। 'श्रु'-धातुके उत्तर सेवा अर्थमेंभी 'सन्' होता है, यथा—शुश्रूषते पितरम्।

यथा—पिपठि + स + ति = पिपठिषति, (जीव्) जिजीविषति, (सेव्) सिसेविषते ।

गुणकी सम्भावना न रहनेसे, अथवा अन्य किसी विशेष नियम द्वारा बाधित न होनेसे, यावतीय सेट्-धातुका रूप ऐसा होगा ।

अनिट्-धातुका रूप, यथा—नम् + स + ति = निनसति (६३ सू०); दह् + स + ति = दिधक्षति (३३४ सू०), (भिद्) बिभित्सति, (बुध्) बुभुत्सते (३६० सू०), (पा) पिपासति, (स्था) तिष्ठासति । किसी विशेष नियमसे बाधित न होनेसे, समस्त अनिट्-धातुका रूप इसप्रकार ।

४८५ । 'सन्' परे रहनेसे, वृतादि* धातुके उत्तर परस्मैपदमें 'इट्' नहीं होता, यथा—वृत् + स + ति = विवृत्सति, (स्यन्द्) सिस्यन्त्सति, (आत्मनेपद) सिस्यन्दिषते ।

४८६ । 'सन्' परे रहकर 'इट्' होनेसे, उस 'इट्' परे उपधा ऋवर्ण-का गुण होता है, किन्तु विदादि धातुका गुण नहीं होता, यथा—वृत् + स + ते = विवर्त्तिषते । विदादि—(विद्) विविदिषति, (रुद्) रुरुदिषति, (मुष्) मुमुषिषति ।

४८७ । आदिमें व्यञ्जनवर्ण और उपधामें 'उ' अथवा 'इ' रहनेसे, सेट् धातुका विकल्पसे गुण होता है, किन्तु अन्तमें 'व' रहनेसे, नित्य गुण होता है, यथा—(व्यञ्जनादि उपधा 'इ') लिख्—लिलेखिषति, लिलिखिषति, (उपधा 'उ') रुच्—रुरोचिषति, रुरुचिषति, (वान्त) दिव्—दिदेविषति ।

४८८ । 'सन्' परे रहनेसे, उवर्णान्त धातु, गुह् और ग्रह् धातुके

---

* वृत्, वृध्, शृध्, स्यन्द्, कृप्

उत्तर 'इट्' नहीं होता, यथा—हु+स+ति=जुहु+स+ति—

४८९। 'सन्' परे रहनेसे, अन्त्यस्वर दीर्घ होता है; और हन् धातु तथा इङ् (अधि+इ) के स्थानमें जात गम्-धातुका उपधा अकार आकार होता है, यथा—जुहूषति।

४९०। 'सन्' परे रहनेसे, ग्रह्—गृह्, स्वप्—सुप्, प्रच्छ्—पृच्छ्, जि—गि, हन्—घन्, इण्—गमि, और अधि+इङ्—गम् होता है; यथा—(ग्रह्) जिघृक्षति* (३३८ सू०), (स्वप्) सुषुप्सति; (जि) जिगीषति (हन्) जिघांसति, (इण्) जिगमिषति; (अधि+इङ्) अधिजिगांसते।

४९१। 'सन्' परे रहनेसे, स्मि, पू, कृ, गृ, दृ, धृ, रञ्ज्, गम् और प्रच्छ् धातुके उत्तर 'इट्' होता है, यथा—(स्मि) सिस्मयिषते; (कृ) चिकरिषति, (गृ) जिगरिषति, (दृ) दिदरिषते; (धृ) दिधरिषते; (रञ्ज्) रिरञ्जिषते, (गम्) जिगमिषति, (प्रच्छ्) पिपृच्छिषति।

४९२। य, र, ल और पवर्ग परे रहनेसे, सनन्त अभ्यस्त धातुके पूर्वभागके उकारके स्थानमें इकार होता है; यथा—पू+स+ते=पू पू+स+ते=पु पू+स+ते=पिपविषते।

४९३। 'सन्' परे रहनेसे, भ्रस्जादि† धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है, यथा—भ्रस्ज्+स+ति=बिभर्जिषति, बिभ्रज्जि-

---

* विभक्तिका 'स' परे रहनेसे, हान्त और चतुर्थवर्णान्त धातुके आदिस्थित तृतीयवर्णके स्थानमें चतुर्थवर्ण होता है।

† भ्रस्ज्, श्रि, स्तृ, यु, ऊर्णु, भृ (भ्वादि), दरिद्रा, सन्, तन्, पत् इत्यादि।

यति*, बिभ्रक्षति, (श्रि) शिश्रयिषति, शिश्रीषति, (सन्) सिषनिषति, सिषासति†, (पत्) पिपतिषति ।

४९४। 'सन्' परे रहनेसे, धातुके अन्तस्थित ऋवर्णके स्थानमें 'ईर्' होता है, किन्तु ऋवर्ण ओष्ठ्यवर्णसे युक्त होनेसे 'ऊर्' होता है; यथा—(कृ) चिकीर्षति, (सृ) सुसूर्षते ।

४९५। 'सन्' परे, अभ्यस्त मा—मित्, दा—दित्, धा—धित्, रभ्—रिभ्, लभ्—लिप्, शक्—शिक्, पद् और पत्—पित्, आप्—ईप् होता है, यथा—(मा) मित्सति, (दा) दित्सति, (धा) धित्सति, (रभ्) रिप्सते, (लभ्) लिप्सते, (शक्) शिक्षति, (पद्) पित्सते, (पत्) पित्सति, (आप्) ईप्सति ।

४९६। 'सन्' परे, अभ्यस्त अद्—जिघत्, दिव्—दुद्यू, (छिद्) तुट्यू, सिव्—सुस्यू होता है, यथा—(अद्) जिघत्सति; (दिव्) दुद्यूषति, (छिद्) तुट्यूषति, (सिव्) सुस्यूषति ।

सनन्त धातुके रूप ।

चिकीर्ष धातु ।

लट्—चिकीर्षति । लोट्—चिकीर्षतु । लङ्—अचिकीर्षत् । विधिलिङ्—चिकीर्षेत् । लृट्—चिकीर्षिष्यति । लिट्—चिकीर्षामास, चिकीर्षांबभूव, चिकीर्षांचकार (चिकीर्षांचक्रे) । लुङ्—अचिकीर्षीत् । लुट्—चिकीर्षिता । लृङ्—अचिकीर्षिष्यत् । आशी—चिकीर्ष्यात् ।

---

* 'इट्' परे, भ्रस्ज्—भर्ज् और भ्रज् होता है ।

† अनिट् 'सन्' परे, सन्—सिषा होता है ।

यङन्त धातु (Frequentative verb) ।

[पूर्व पूर्व प्रकरणोक्त स्टार(*)-चिह्नित सूत्र यथासम्भव प्रयुक्त होंगे ।]

४९७ । पौनःपुन्य वा अतिशय अर्थमें एकस्वरविशिष्ट व्यञ्जनादि धातुके उत्तर 'यङ्'-प्रत्यय होता है । 'यङ्'का 'य' रहता है । 'यङ्'-प्रत्ययान्त धातुको 'यङन्त धातु' कहते हैं । यङन्त धातु आत्मनेपदी होता है । यथा—(पुनः पुनः अतिशयेन वा करोति—बारबार अथवा अत्यन्त करता है) चेक्रीयते ।

४९८ । 'यङ्' परे रहनेसे, धातु अभ्यस्त होकर यावतीय अभ्यस्त कार्य्य प्राप्त होता है, अभ्यस्त होनेसे, समस्तभाग धातुसंज्ञा प्राप्त होकर स्वतन्त्र यङन्त धातुमें गण्य होता है, और चतुष्कालमें भ्वादिगणीय धातुके तुल्य रूप धारण करता है ।

४९९ । यङन्त होनेसे, अभ्यस्त धातुके पूर्वभागके अन्त्यस्वरका गुण, और अकारकी वृद्धि होती है, यथा—(पुनः पुनः शोचति) शुच्+य+ते=शोशुच्यते (३८९ सू०); (लुप्) लोलुप्यते; (रुद्) रोरुद्यते, (भिद्) बेभिद्यते; (लप्) लालप्यते ।

५०० । 'यङ्' परे रहनेसे, अभ्यस्त नकारान्त और मकारान्त धातुके पूर्वभागके स्वरवर्णके पश्चात 'म्' होता है; परन्तु लान्त, वान्त और यान्त धातुका विकल्पसे होता है, यथा—(मन्) मम्मन्यते, (भ्रम्) बम्भ्रम्यते (६४ सू०) । (चल्) चञ्चल्यते, चाचल्यते ।

५०१ । जिस जिस धातुकी उपधामें ऋकार रहता है, अभ्यस्त

उस उस धातुके पूर्वभागके पश्चात् 'री' होता है, यथा—(नृत्) नरीनृत्यते।

६०२। यङन्त होनेसे, अभ्यस्त ऋकारान्त धातुके पूर्वभागका 'ऋ'—'ए', और परभागका 'ऋ'—'री' होता है, यथा—(कृ) चेक्रीयते; (स्तृ) तेस्तीर्यते।

६०३। 'यङ्' परे रहनेसे, अभ्यस्त चर्—चञ्चूर्, फल्—पम्फुल्, हन्—जङ्घन् और जेघ्नी, दह्—दन्दह्, जप्—जञ्जप्, भञ्ज्—बम्भञ्ज् होता है; यथा—(चर्) चञ्चूर्य्यते, (फल्) पम्फुल्यते, (हन्) जङ्घन्यते, जेघ्नीयते, (दह्) दन्दह्यते, (जप्) जञ्जप्यते, (भञ्ज्) बम्भज्यते।

६०४। 'यङ्' परे रहनेसे, अभ्यस्त स्रंस्—सनीस्रंस्, पत्—पनीपत्, पद्—पनीपद्, वञ्च्—वनीवञ्च्, ध्वंस्—दनीध्वंस् होता है, यथा—(स्रंस्) सनीस्रस्यते, (पत्) पनीपत्यते; (पद्) पनीपद्यते; (वञ्च्) वनीवच्यते, (ध्वंस्) दनीध्वस्यते।

६०५। 'यङ्' परे रहनेसे, अभ्यस्त गॄ—जेगिल्, ध्मा—देध्मी, जन्—जाजन् और जञ्जन्, शी—शाशय्, स्वप्—सोषुप्, घ्रा—जेघ्री, दंश्—दन्दश्, स्था—तेष्ठी, अट्—अटाट् होता है, यथा—(गॄ) जेगिल्यते, (ध्मा) देध्मीयते, (जन्) जाजन्यते, जञ्जन्यते, (शी) शाशय्यते, (स्वप्) सोषुप्यते; (घ्रा) जेघ्रीयते, (दंश्) दन्दश्यते, (स्था) तेष्ठीयते; (अट्) अटाट्यते।

६०६। 'यङ्' परे रहनेसे, अभ्यस्त व्ये—वेवी, और चाय्—चेकी होता है, यथा—(व्ये) वेवीयते, (चाय्) चेकीयते।

यङन्त धातुके रूप ।

चेक्रीय धातु ।

लट्—चेक्रीयते । लोट्—चेक्रीयताम् । लङ्—अचेक्रीयत । विधिलिङ्—चेक्रीयेत । लृट्—चेक्रीयिष्यते । लिट्—चेक्रीयामास, चेक्रीयाम्बभूव, चेक्रीयाञ्चक्रे । लुङ्—अचेक्रीयिष्ट । लुट्—चेक्रीयिता । लृङ्—अचेक्रीयिष्यत । आशी—चेक्रीयिषीष्ट ।

उपर्युक्त भिन्न विभक्तियोंमें व्यञ्जनवर्णके परस्थित 'यङ्' का लोप होता है, यथा—

दन्द्रम्य धातु ।

लट्—दन्द्रम्यते । लोट्—दन्द्रम्यताम् । लङ्—अदन्द्रम्यत । विधिलिङ्—दन्द्रम्येत । लृट्—दन्द्रमिष्यते । लिट्—दन्द्रमामास । लुङ्—अदन्द्रमिष्ट । लुट्—दन्द्रमिता । लृङ्—अदन्द्रमिष्यत । आशी—दन्द्रमिषीष्ट ।

यङ्लुगन्त धातु (Frequentative verb rejecting यङ्) ।

५०७ । कई धातुओंके उत्तर विकल्पसे 'यङ्' का लोप होता है । लोप होनेसे उनको 'यङ्लुगन्त धातु' कहते हैं । यङ्लुगन्त धातु परस्मैपदी होता है । यथा—(लिह्—लेलिह—लेलिह्) लेलेढि । (लप्) लालपीति, लालप्ति, (सिच्) सेसेचीति, सेसेक्ति, (दीप्) देदीपीति, देदीप्ति; (शुच्) शोशोचीति, शोशोक्ति; (भू) बोभवीति, बोभोति; (नृत्) नरीनर्त्ति, नर्नर्त्ति; (वृत्) वरीवर्त्ति, वर्वर्त्ति ।

यङ्लुगन्त धातुके रूप।

लेलिह् धातु।

लट्—लेलेढि। लोट्—लेलेढु। लङ्—अलेलेट्। विधिलिङ्—लेलिह्यात्। लृट्—लेलेहिष्यति। लिट्—लेलिहामास, लेलिहाम्बभूव, लेलिहाञ्चकार। लुङ्—अलेलेहीत्। लुट्—लेलेहिता। लृङ्—अलेलेहिष्यत्। आशी—लेलिह्यात्।

नामधातु (Nominal verb)।

५०८। काम्य (काम्यच्)—आत्मसङ्क्रान्त (अपनी) इच्छा समझानेसे, शब्दके उत्तर 'काम्य' प्रत्यय होता है, 'काम्य'-प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी। यथा—(आत्मनः पुत्रमिच्छति—अपना पुत्र इच्छा करता है) पुत्रकाम्यति, धनकाम्यति, यशः काम्यति।

आत्मसङ्क्रान्त इच्छा न समझाकर अन्यसङ्क्रान्त इच्छा समझानेसे नहीं होता; यथा—गुरोः पुत्रमिच्छति—इस स्थलमे 'गुरोः पुत्रकाम्यति'—ऐसा प्रयोग नहीं होगा।

'काम्य'-प्रत्ययान्त धातुके रूप।

लट्—पुत्रकाम्यति। लोट्—पुत्रकाम्यतु। लङ्—अपुत्रकाम्यत्। विधिलिङ्—पुत्रकाम्येत्। लृट्—पुत्रकाम्यिष्यति। लिट्—पुत्रकाम्यामास, पुत्रकाम्याम्बभूव, पुत्रकाम्याञ्चकार। लुङ्—अपुत्रकाम्यीत्। लुट्—पुत्रकाम्यिता। लृङ्—अपुत्रकाम्यिष्यत्। आशी—पुत्रकाम्यात्*।

---

* 'य' परे रहनेसे, व्यञ्जनवर्णके परवर्त्ती यकारका लोप होता है।

५०२। क्य (क्यच्)—आत्मसम्बन्धि इच्छा (निजेच्छा) समझानेसे, मकारान्त और अव्यय-भिन्न शब्दके उत्तर 'क्य'-प्रत्यय होता है; 'च्' इत्, 'य' रहता है; 'क्य'-प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी; यथा—(आत्मनः पुत्रमिच्छति) पुत्र+य+ति—

(क) 'क्य'-प्रत्ययका 'य' परे रहनेसे, पूर्व अवर्णके स्थानमें 'ई' होता है; यथा—पुत्रीयति। (मान्त) किंकाम्यति, (अव्यय) स्वःकाम्यति;—यहाँ 'क्य' नहीं हुआ।

(ख) 'क्य' और 'क्यङ्' परे रहनेसे शब्दके अन्तस्थित ह्रस्वस्वर दीर्घ होता है।

(ग) 'आचरण' (पोषण सम्मानादिरूप व्यवहार) अर्थमें उपमान* कर्म और अधिकरण-कारकके उत्तर 'क्य' होता है। यथा—(शिष्यं पुत्रमिव आचरति—शिष्यके प्रति पुत्रके तुल्य आचरण करता है He treats his pupil like a son) पुत्रीयति शिष्यम् (पोषयति इत्यर्थः); (भृत्यं सम्राजमिव आचरति) सम्राजीयति भृत्यम्; (मित्रं रिपुमिव आचरति) रिपूयति मित्रम् (पश्यतीत्यर्थः); (उपाध्यायं पितरमिव आचरति) पित्रीयति उपाध्यायम् (सम्मानयति इत्यर्थः); (कुट्यां प्रासादे इव आचरति—कुटीमें प्रासादके तुल्य आचरण करता है) प्रासादीयति कुट्याम्।

(घ) भोजनेच्छा अर्थमें 'अशना'-शब्दके उत्तर, पानेच्छा-अर्थमें

---

* जिसके साथ उपमा दी जाती है, वह 'उपमान'; और जिसको उपमा दी जाती है, वह 'उपमेय'।

† 'क्य' और 'यङ्' परे अन्तस्थित 'ऋ'—'री' होता है।

'उदक'-शब्दके उत्तर, और आकाङ्क्षा अर्थमें 'धन'-शब्दके उत्तर 'क्य' होना है, 'क्य' परे रहनेसे, अशन—अशना, उदक—उदन्, और धन—धना होना है, यथा—(अन्नं भोक्तुम् इच्छति—अन्न खानेको इच्छा करता है) अशनायति अन्नम्, (जलं पातुम् इच्छति—जल पीनेको इच्छा करता है) उदन्यति जलम्, (धनम् अभिकाङ्क्षति—धन आकाङ्क्षा करता है) धनायति धनम्।

(ख) 'करण'-अर्थमें नमस्, तपस् और वरिवस् (सेवार्थं) शब्दके उत्तर 'क्य' होता है, यथा—(देव नमस्करोति—देवताको नमस्कार करता है) नमस्यति देवम्, (तापस तप करोति—चरति) तपस्यति तापस, (गुरून् शुश्रूषते—परिचरति, सेवते) वरिवस्यति गुरून् (वरिव —परिचर्य्या—करोति = वरिवस्यति)।

'क्य'-प्रत्ययान्त धातुके रूप।

पुत्रीय धातु।

लट्—पुत्रीयति। लोट्—पुत्रीयतु। लङ्—अपुत्रीयत्। विधिलिङ्—पुत्रीयेत्। लृट्—पुत्रीयिष्यति। लिट्—पुत्रीयामास, पुत्रीयाम्बभूव, पुत्रीयाञ्चकार। लुङ्—अपुत्रीयीत्। लुट्—पुत्रीयिता। लृङ्—अपुत्रीयिष्यत्। आशी—पुत्रीय्यात्।

५१०। (क्यङ्)—'आचरण'-अर्थमें उपमान कर्त्तृकारकके उत्तर 'क्यङ्'-प्रत्यय होता है, 'क्यङ्' का 'य' रहता है, 'क्यङ्'-प्रत्ययान्त धातु आत्मनेपदी, यथा—(दण्ड इव आचरति) दण्डायते, (पुत्र इव आचरति) पुत्रायते, (विष्णुरिव आचरति) विष्णूयते।

(क) 'क्यङ्' परे रहनेसे, व्यञ्जनान्त सकारका विकल्पसे लोप

होता है, यथा—(पय इव आचरति) पयायते, पयस्यते ।

(ख) 'करण' (करना) अर्थमें—शब्द, वैर और कलह शब्दके उत्तर 'क्यङ्' होता है, यथा—(शब्द करोति) शब्दायते, (वैरं करोति) वैरायते, (कलह करोति) कलहायते ।

(ग) 'अनुभव'-अर्थमें—सुख, दुःख और कृच्छ्र शब्दके उत्तर 'क्यङ्' होता है, यथा—(सुखम् अनुभवति) सुखायते, (दुःखमनुभवति) दुःखायते, (कृच्छ्रमनुभवति) कृच्छ्रायते ।

(घ) 'उद्वमन' (उद्गिरण) अर्थमें—वाष्प, फेन, धूम और उष्मन् शब्दके उत्तर 'क्यङ्' होता है, यथा—(वाष्पम् उद्वमति) वाष्पायते, (फेनमुद्वमति) फेनायते, (धूम मुद्वमति) धूमायते, (उष्माणमुद्वमति) उष्मायते* ।

(ङ) 'उद्गार पूर्वक चर्वण' अर्थमें रोमन्थ-शब्दके उत्तर 'क्यङ्' होता है, यथा—रोमन्थायते गौ (उद्गीर्य्य—उगालकर—चर्वयति इत्यर्थः) ।

(च) भृश, शीघ्र, चपल, मन्द, पण्डित, उत्सुक, सुमनस्, दुर्मनस्, उन्मनस्—इन शब्दोंके उत्तर 'अभूततद्भाव'†-अर्थमें 'क्यङ्' होता है, यथा—(अभृशो भृशो भवति) भृशायते, (अशीघ्र शीघ्रो भवति) शीघ्रायते, (अचपलश्चपलो भवति) चपलायते, (अमन्दो मन्दो भवति) मन्दायते, (अपण्डित पण्डितो भवति) पण्डितायते,

---

* 'क्यङ्' परे, अन्त्य नकारका लोप होता है ।

† पूर्वमें जैसा नहीं था, वैसा होना ।

(अनुत्सुकः उत्सुको भवति) उत्सुकायते, (असुमना सुमना भवति) सुमनायते*; (अदुर्मना दुर्मना भवति) दुर्मनायते, (अनुन्मना उन्मना भवति) उन्मनायते ।

'क्यङ्'-प्रत्ययान्त धातुके रूप ।

दण्डाय धातु ।

लट्—दण्डायते । लोट्—दण्डायताम् । लङ्—अदण्डायत । विधिलिङ्—दण्डायेत । लृट्—दण्डायिष्यते । लिट्—दण्डायामास, दण्डायाम्बभूव, दण्डायाञ्चक्रे । लुङ्—अदण्डायिष्ट । लुट्—दण्डायिता । लृङ्—अदण्डायिष्यत । आशी—दण्डायिषीष्ट ।

५११ । क्विप्—'आचरण' अर्थमें उपमान कर्त्तृकारकके उत्तर 'क्विप्'-प्रत्यय होता है, 'क्विप्' का कुछभी नहीं रहता; 'क्विप्'-प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी, यथा—(सुजन इव आचरति) सुजनति, (शिष्य इव आचरति) शिष्यति, (सखा इव आचरति) सखयति, (कविरिव आचरति) कवयति, (बन्धुरिव आचरति) बन्धवति, (गुरुरिव आचरति) गुरवति, (पितेव आचरति) पितरति, (मातेव आचरति) मातरति।

'क्विप्'-प्रत्ययान्त धातुके रूप ।

सुजन धातु ।

लट्—सुजनति । लोट्—सुजनतु । लङ्—असुजनत् । विधिलिङ्—सुजनेत् । लृट्—सुजनिष्यति । लिट्—सुजनामास, सुजनाम्बभूव, सुजनाञ्चकार । लुङ्—असुजनीत् । लुट्—सुजनिता । लृङ्—असुजनिष्यत् ।

---

* सुमनस् प्रभृति शब्दके सकारका लोप होता है ।

आशी —सृजन्यात् ।

५१२ । णिच्—'करण'-अर्थमें शब्दके उत्तर 'णिच्'-प्रत्यय होता है, 'णिच्' होनेसे, णिच् प्रकरणमें जैसा कार्य्यविधान है, यहाँभी वैसा होगा, यथा—(प्रश्न करोति) प्रश्नयति; (शब्द करोति) शब्दयति, (पवित्र करोति) पवित्रयति ।

(क) 'णिच्' परे रहनेसे, पृथु—प्रथ्, मृदु—म्रद्, दृढ—द्रढ्, स्थूल—स्थव्, दूर—दव्, अन्तिक—नेद्, बहुल—बंह्, दीर्घ—द्राघ् होता है, यथा—(पृथु करोति) प्रथयति, (मृदु करोति) म्रदयति, (दृढ करोति) द्रढयति, (स्थूल करोति) स्थवयति, (दूर करोति) दवयति, (अन्तिक करोति) नेदयति, (बहुल करोति) बंहयति, (दीर्घं करोति) द्राघयति ।

(ख) शब्दविशेषके उत्तर अर्थविशेषमेंभी 'णिच्' होता है, यथा—(रूपं गृह्णाति) रूपयति, (पाशं विमोचयति) विपाशयति; (वर्म समाच्छादयति) संवर्मयति, (वर्मणा सन्नह्यति) सन्नवर्मयति । (मुण्डं करोति) मुण्डयति,—एवं हलङ्गयति, कलयति । (सत्यं करोति, आचष्टे वा) सत्यापयति, (वेदमाचष्टे) वेदापयति । (वीणया उपगायति) उपवीणयति, (श्लोकैरुपस्तौति) उपश्लोकयति, (सेनया अभियाति) अभिषेणयति, (पुच्छम् उदस्यति) उत्पुच्छयते ।

५१३ । य (यक्)—'कण्डू'-प्रभृति धातुओंके* उत्तर स्वार्थमें 'य'

---

* इनको 'नामधातु' कहते हैं । कण्डूञ् गात्रविघर्षणे (खुजलाना); असु उपतापे; भिषज् चिकित्सायाम्, चिरङ् आश्चर्य्ये, महीङ् पूजायाम्; हृणीङ् लज्जायाम् ।

होता है, यथा—कण्डूयति, कण्डूयते, "मृगीमकण्डूयत कृष्णसार" कु० ३ ३६ ।

कण्ड्वादि ।

असू—असूयति (असूया—दोषदर्शन—करता है, असन्तुष्ट वा विरक्त होता है, पराङ्मुख होता है)। प्राय चतुर्थ्यन्त व्यक्ति वा वस्तु के साथ प्रयुक्त होता है, "असूयन्ति मह्य प्रकृतय" विक्रमो० ४ ; "असूयन्ति सचिवोपदेशाय" काद० ।

भिषज्—भिषज्यति (चिकित्सा करता है)।

चित्री—चित्रीयते (विस्मय—आश्चर्य—उत्पादन करता है), "चित्रीयते हेमकूट" ।

महीं—महीयते (पूजा लभते—पूजित, सम्मानित होता है, सुखी, समृद्ध होता है)।

हृणी—हृणीयते (लज्जित होता है), "त्वयाद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथ न पत्या धरणी हृणीयते ? " नै० १ १३३ ।



परस्मैपद और आत्मनेपद-विधान ।

भ्वादिगणीय धातु ।

९१४ । क्रम्—उपसर्गहीन क्रम् धातु विकल्पसे आत्मनेपदी होता है यथा—क्रमते, क्रामति । किन्तु उत्साह, अप्रतिबन्ध और वृद्धि अर्थमे नित्य आत्मनेपदी होता है, यथा—(उत्साह) व्याकरणाध्ययनाय क्रमते (उत्सहते इत्यर्थ), (अप्रतिबन्ध) शास्त्रेषु क्रमते बुद्धि (न प्रतिहन्यते, अप्रतिहता भवतीत्यर्थ), (वृद्धि) सना श्री क्रमते (वर्द्धते

इत्यर्थ)।

(क) ग्रहनक्षत्रादि ज्योति पदार्थका उर्द्धगमन समझानेसे, 'आ'-पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—आक्रमते भानु (नभोमण्डलम् आरोहतीत्यर्थ)। ज्योतिर्भिन्न अन्य पदार्थका ऊर्द्धगमन समझानेसे, नहीं होता, यथा—आक्रामति धूमो गगनम्, शैल्मात्रामति।

(ख) 'आरम्भ'-अर्थमें, प्र और उप पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—भोक्तुं प्रक्रमते, उपक्रमते (आरभते इत्यर्थ)।

(ग) 'पादविक्षेप' अर्थमें, 'वि' पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—साधु विक्रमते वाजी। अन्य अर्थमें नहीं होता, यथा—विक्रामति राजा (विक्रमं प्रकाशयतीत्यर्थ)।

६१५। क्रीड्—आ, अनु और परि पूर्वक क्रीड् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—आक्रीडते, अनुक्रीडते, परिक्रीडते माणवक।

(क) 'सम्' पूर्वक क्रीड् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—"सङ्क्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्या" मेघ० ६८। किन्तु 'कूजन' (अव्यक्तध्वनि) अर्थमें नहीं होता, यथा—सङ्क्रीडति रथ; सङ्क्रीडन्ति विहङ्गमा।

६१६। गम्—कर्म न रहनेसे, 'सम्' पूर्वक गम् धातु (मिलनार्थ) आत्मनेपदी होता है, यथा—"धृते भगवत्यौ कलिन्दकन्या-मन्दाकिन्यौ सङ्गच्छेते" अनर्घ० ७, "अक्षधूर्तै समगंसि" दशकु०। कर्म रहनेसे, नहीं होता, यथा—सङ्गच्छति मित्रम् (प्राप्नोतीत्यर्थ)।

'सम्'-पूर्वक अकर्मक ऋ (ऋच्छ्) धातुभी आत्मनेपदी होता है, यथा—समृच्छते; "समारन्त ममाभीष्टा सङ्कल्पा" म० ८, १९।

६१७। चर्—सकर्मक होनेसे, 'उत्' पूर्वक चर् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—गुरुवचनमुच्चरते (उल्लङ्घयतीत्यर्थ)। अकर्मक होनेसे, नहीं होता, यथा—उच्चरति धूम (उपरिष्टात् गच्छतीत्यर्थ)।

(क) तृतीयाविभक्त्यन्त पदके योगसे 'सम्'-पूर्वक चर् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—पादेन सञ्चरते, रथेन सञ्चरते, "क्वचित् पथा सञ्चरते सुराणाम्" रघु० १३ १९।

६१८। जि—वि और परा पूर्वक जि धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—विजयते, पराजयते।

६१९। तप्—कर्म न रहनेसे, अथवा अपना अङ्ग (अवयव) कर्म होनेसे, उत् और वि पूर्वक तप् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—उत्तपते, वितपते रवि (दीप्यते इत्यर्थ), उत्तपते, वितपते पाणिम्। स्वाङ्ग कर्म न होनेसे नहीं होता; यथा—वितपति भुवं सविता।

६२०। नी—कर्त्तामे अवस्थित किन्तु कर्त्ताके अङ्गसे भिन्न कर्म होनेसे, अपनयन अर्थमे 'वि' पूर्वक नी धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—क्रोध विनयते (शमयतीत्यर्थ)। कर्त्तृगत न होनेसे नहीं होता, यथा—गुरो क्रोध विनयति। अङ्ग होनेसे नहीं होता, यथा—व्रण विनयति।

'शिक्षा'-अर्थमे 'वि+नी' परस्मैपदी, यथा—"विनिन्युरेन गुरवो गुरुप्रियम्" र० ३ २९।

६२१। यम्—अकर्मक होनेसे, 'आ' पूर्वक यम् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—आयच्छते (दीर्घो भवति इत्यर्थ)। सकर्मकमे नहीं होता, यथा—आयच्छति कूपाद्रज्जुम् (आकर्षति, उद्धरति इत्यर्थ)। अपना अवयव कर्म होनेसे आत्मनेपदी होता है, यथा—आयच्छते पाद-

मात्मानम् (दीर्घीकरोतीत्यर्थः)।

(ख) 'विवाह'-अर्थ समझानेसे, 'उप'-पूर्वक यम् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—कृष्णः कन्यामुपयच्छते; "भैमीं विधिनोपयेमे" कु० ७, ६८।

६२२। रम्—वि, आ और परि-पूर्वक रम् धातु परस्मैपदी होता है; यथा—"हा हन्त किमिति चित्त विरमसि नाद्यापि विषयेभ्यः ?" भामिनी० ४ २६, आरमति उद्याने "भृशं पर्य्यरमत् कुम्भ दर्शनात्" (तुष्टोऽभवदित्यर्थः) भ० ८, ६३।

(क) 'उप'-पूर्वक रम् धातु विकल्पसे परस्मैपदी होता है; यथा—इन्दुदत्तोपरराम; "यत्रोपरमते चित्तम्" गीता ६ २०; "नात्र सीतेत्युपारंस्त" भ० ८, ६६।

६२३। वद्—मतभेद, कलह अर्थमें 'वि'-पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—तत्त्वे विवदन्ते मुनयः (नानामतं प्रकटयन्तीत्यर्थः); क्षेत्रे विवदन्ते कर्षकाः (विप्रतिपद्यमाना विविधं वदन्तीत्यर्थः)।

(क) बहुत आदमियोंका मिलकर स्पष्ट शब्दोच्चारण (कथन) अर्थमें 'सम्+प्र'-पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—सम्प्रवदन्ते विप्राः (सम्भूय—मिलित्वा—स्पष्टं वदन्तीत्यर्थः)। मनुष्यभिन्न अन्यत्र नहीं होता; यथा—"वरतनु! सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः" महाभाष्यम्।

(ख) कर्म न रहनेसे, 'अनु'-पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—गुरोरनुवदते शिष्यः (यथा गुरुर्वक्ति, तथा शिष्यो वदतीत्यर्थः)। कर्म रहनेसे नहीं होता, यथा—वाक्यम् अनुवदति; "गिरम् अनुवदति

शुक्ले'' र० ९ ७४ ।

(ग) अनेक मनुष्योंका एकत्र होकर परस्पर विरुद्ध वाक्यकथन अर्थमें 'वि + प्र'-पूर्वक वद् धातु विकल्पमें आत्मनेपदी होता है, यथा—विप्रवदन्ते विप्रवदन्ति वा वैद्याः (एको यादृक् वदति, तद्विरुद्धमपरो वदति इत्येवं सम्भूय विरुद्धमन्योन्य वदन्तीत्यर्थः)।

(घ) निन्दा, तिरस्कार अर्थमें 'अप'-पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—न्यायमपवदते।

६२४। स्था—किसी सन्दिग्ध विषयमें निर्णयके लिये किसीका आश्रय ग्रहण (accepting as umpire) समझानेसे, स्था धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—"संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः" (कर्णादीन् निर्णेतृत्वेन आश्रयति इत्यर्थः—संशय दूर करनेके लिये कर्णप्रभृतिका आश्रय ग्रहण करता है) भा० ३ १४—तिष्ठतेरत्र अवस्थानमेवार्थः ।

(क) 'अभिप्राय प्रकाश' अर्थमें स्था धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—रामाय तिष्ठते सीता (स्वाभिप्राय प्रकाशयतीत्यर्थः)।

(ख) 'प्रतिज्ञा' (अङ्गीकार) अर्थमें 'आ' पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—शब्द नित्यमातिष्ठते (शब्दो नित्य इति प्रतिजानीते, अभ्युपगच्छति, अङ्गीकरोतीत्यर्थः)।

(ग) सम्, अव, प्र और कहीं वि उपसर्गके परवर्त्ती स्था धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—"दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते" मृच्छ० १ ३६, "क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ" र० ८ ८७, "हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे" माघ० ३ १, "पदैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम्" माघ० ४ ४ ।

(घ) 'उत्' पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—मुक्तौ उत्तिष्ठते (उद्युङ्क्ते, उद्यम करोतीत्यर्थ)। किन्तु 'उत्थान'-अर्थमें नहीं होता, यथा—आसनात् उत्तिष्ठति ।

(ङ) देवपूजा, मिलन, मैत्रीकरण और मार्गगमन (lead to—as a way) अर्थमें, 'उप' पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—(देवपूजा) विष्णुमुपतिष्ठते वैष्णव (पूजयतीत्यर्थ); (मिलन) यमुनामुपतिष्ठते गङ्गा (यमुनया सह सङ्गच्छते, मिलतीत्यर्थ); (मैत्रीकरण) साधुमुपतिष्ठते साधु (मैत्रीकरोतीत्यर्थ); (मार्गगमन) अयं पन्था काशीमुपतिष्ठते (प्राप्नोतीत्यर्थ —यह मार्ग काशीको जाता है This way leads to Benares)।

(च) 'मन्त्र द्वारा आराधना' अर्थमें 'उप' पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—गायत्र्या सूर्यमुपतिष्ठते ।

(छ) 'लाभेच्छा' समझानेसे, 'उप'-पूर्वक स्था धातु विकल्पमें आत्मनेपदी होता है, यथा—धनिनमुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा भिक्षु (धनलाभेच्छया धनिसमीपं गच्छतीत्यर्थ)।

(ज) अकर्मक 'उप'-पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—भोजनकाले उपतिष्ठते (सन्निहितो भवतीत्यर्थ)। सकर्मक होनेसे नहीं होता, यथा—शिष्यो गुरुमुपतिष्ठति ।

५२८ । ह्वे—स्पर्द्धा अर्थात् युद्धार्थ आह्वान अर्थमें 'आ' पूर्वक ह्वे धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—कृष्ण कंसमाह्वयते (स्पर्द्धमान —परिभवेच्छया—आह्वान करोतीत्यर्थ)। स्पर्द्धा-भिन्न अर्थमें नहीं होता, यथा—पिता पुत्रमा—

अदादिगणीय धातु ।

६२६ । विद्—'पहचानना' अर्थमे 'सम्' पूर्वक विद् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—"पितरावपि मा न प्रतिसंविद्राते" दशकु० ।

(क) 'जानना' अर्थमे अकर्मक होनेसे, 'सम्'-पूर्वक विद् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—"के न संविद्रते वायोर्मैनाकाद्रियथा सखा ?" म० ८ १७ ।

६२७ । हन्—आत्म-अवयव (अपना अङ्ग) कर्म होनेसे, 'आ'-पूर्वक हन् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—आहते स्व शिर (ताडयतीत्यर्थ) । स्वाङ्ग कर्म न होनेसे नहीं होता, यथा—आहन्ति चोरम् ।

ह्लादि और स्वादिगणीय धातु ।

६२८ । दा—'आ' पूर्वक दा धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—विद्यामादत्ते, धनमादत्ते । किन्तु 'विस्तार'-अर्थमे नहीं होता ; यथा—मुख व्याददाति सिंह (विस्तारयतीत्यर्थ), नदी कूल व्याददाति ; वैद्यो विस्फोटं व्याददाति ।

६२९ । श्रु—कर्म न रहनेसे, 'सम्'-पूर्वक श्रु धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—"मशृणुष्व कपे !" भ० ८ १६ । "हितान्न य संशृणुते स किंप्रभु" (हितात्+न) भा० १ ५ —यहाँ कर्मकी विवक्षा नहीं, इसलिये आत्मनेपद ।

तुदादिगणीय धातु ।

६३० । कृ—चतुष्पद जन्तु अथवा पक्षी कर्त्ता होनेसे, हर्ष-हेतु अथवा आहारान्वेषणके या वासग्रहणके लिये भूमिविलेखन (पाँवसे मिट्टी खोदकर बिखेरना) अर्थमे, 'अप'-पूर्वक कृ धातु आत्मनेपदी होता है, और आदिमे

'सुट्' का आगम होता है, 'सुट्' का 'स्' रहता है, यथा—अपस्किरते वृषभ (हृष्टः भूमिमालिखति इत्यर्थः), अपस्किरते मयूरः (भक्षार्थी भूमिं विलिख्य विक्षिपति इत्यर्थः), अपस्किरते सारमेयः (वासार्थी, शयनार्थी भूमिं विदारयति इत्यर्थः)।*

किन्तु—अपकिरति कुसुमम् ।

६३१ । गॄ—'अव'-पूर्वक गॄ धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—अवगिरतेऽन्नम् ।

(क) 'प्रतिज्ञा'-अर्थमें, 'सम्'-पूर्वक गॄ धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—सङ्गिरते (प्रतिजानीते इत्यर्थः), "शतं समगिरताम्" दशकु० ।

किन्तु—सङ्गिरति ग्रासम् ।

६३२ । प्रच्छ्—'विदा लेना' अर्थमें (taking leave of, bidding adieu to) 'आ'-पूर्वक प्रच्छ् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—"आपृच्छस्व प्रियसखममुम्" मेघ० १२. ।

६३३ । विश्—'नि'-पूर्वक विश् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—"किष्किन्ध्याद्रिं न्यविशत" (प्रविवेश इत्यर्थः) भ० ६ १४३. ।

रुधादिगणीय धातु ।

६३४ । भुज्—पालन (रक्षा) भिन्न अन्य अर्थमें, भुज् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—ओदनं भुङ्क्ते (अभ्यवहरतीत्यर्थः), "सद्य बुभुजे स मेदिनीम्" (भुक्तवान् enjoyed), वयो भुङ्क्ते (अनुभवतीत्यर्थः)।

---

* "छायापस्किरमाणविष्किर॰" (अपस्किरमाणा—भक्षार्थं चञ्च्वा भूमिं लिखन्त इत्यर्थः) उत्तर० २ ९, "गर्तैरपस्कीर्णमहत्तटीभुवां ककुद्मताम्" (अपस्कीर्ण—आलेखित) माघ० १२ ७४. ।

('पालन' अर्थमें) "भुनक्ति स्वाराज्यम्" अनर्घ० ३।

६३५। युज्—स्वरादि और स्वरान्त उपसर्ग-पूर्वक युज् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—(स्वरादि उपसर्ग) उद्युङ्क्ते, (स्वरान्त उपसर्ग) प्रयुङ्क्ते, नियुङ्क्ते, अनुयुङ्क्ते, उपयुङ्क्ते। यज्ञपात्र कर्म होनेसे नहीं होता; यथा—स्रुव प्रयुनक्ति।

तनादिगणीय धातु।

६३६। कृ—'अनु' और 'परा' पूर्वक कृ धातु परस्मैपदी होता है; यथा—"अनुकरोति भगवतो नारायणस्य" काद०, पराकरोति शत्रुम् (निरस्यतीत्यर्थ)।

क्र्यादिगणीय धातु।

६३७। क्री—वि, परि और अव पूर्वक क्री धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—"यथा ज्ञानसहस्रेण विक्रीणीषे धनं यदि" रामा०, परिक्रीणीते, अवक्रीणीते।

६३८। ज्ञा—'अपह्नव (अपलाप, गोपन) अर्थमें 'अप' पूर्वक ज्ञा धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—शतम् अपजानीते (अपलपतीत्यर्थ)।

(क) स्मरण भिन्न अर्थमें सम् और प्रति-पूर्वक ज्ञा धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—सञ्जानीते (अवेक्षते इत्यर्थ), "इत्थापारोपितेन कन्यादान प्रतिजानीते" (अङ्गीकरोतीत्यर्थ)। ('स्मरण'-अर्थमें) गुरुः शिष्य शिष्यस्य वा सञ्जानाति (स्मरतीत्यर्थ)।

(ख) 'अनु' पूर्वक ज्ञा धातु उभयपदी होता है, यथा—"अनुजानीहि मां गमनाय" उत्तर० ३, "तनोऽनुजज्ञे गमनं सुतस्य" रघु० ३ ३३।

६३९। णिजन्त बुध्, युध्, नश्, जन् और अधि+इ (अध्ययनार्थ)

धातु परस्मैपदी होता है; यथा—बोधयति पद्मम्; योधयति सैनिकम्; नाशयति दुःखम्; जनयति सुखम्; अध्यापयति शिष्यम्।

णिजन्त धातु।

५४०। णिजन्त भोजनार्थ और चलनार्थ धातु परस्मैपदी होता है; यथा—भोजयति, आशयति, चलयति, कम्पयति। किन्तु अद् धातु नहीं होता; यथा—आदयते।

५४१। अणिजन्त अवस्थामें प्राणी अर्थात् चेतन पदार्थ कर्ता होनेसे अकर्मक णिजन्त धातु परस्मैपदी होता है, यथा—

अणिजन्त	णिजन्त
बालः शेते	माता बालं शाययति।
शिशुः जागर्ति	माता शिशुं जागरयति।

प्राणी कर्ता न होनेसे नहीं होता; यथा—जलं शुष्यति—चूर्णो जलं शोषयति, शोषयते; नदी वर्द्धते—वर्षाकाले नदीं वर्द्धयति, वर्द्धयते।

सन्नन्त धातु।

५४२। सन्नन्त ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् धातु आत्मनेपदी होता है; यथा—धर्मं जिज्ञासते; गुरुं शुश्रूषते, नष्टं सुस्मूर्षते; चन्द्रं दिदृक्षते।

'अनु' पूर्वक ज्ञा धातु नहीं होता; यथा—अनुजिज्ञासति।

* * * *

५४३। लुङ् विभक्तिमें द्युतादि* धातु विकल्पसे परस्मैपदी होता है, यथा—अद्युतत्, अद्योतिष्ट।

---

* ४३९ पृष्ठ टिप्पनी।

५४४। 'स्य' और 'सन्' परे रहनेसे, 'वृत्' आदि * धातु विकल्पसे परस्मैपदी होता है, यथा—वृत्+ऌट्=वर्त्स्यति, वर्तिष्यते, वृत्+सन्=विवृत्सति, विवर्तिषते।

५४५। लुट्-विभक्तिमेभी क्लृप् धातु विकल्पसे परस्मैपदी होता है, यथा—कल्प्तासि, कल्पितासे।

५४६। लिट्, लुट्, लट् और ऌङ् विभक्तिमें 'मृ' धातु परस्मैपदी होता है, यथा—(लिट्) ममार, (लुट्) मर्त्ता, (ऌट्) मरिष्यति, (ऌङ्) अमरिष्यत्।



कर्मवाच्य और भाववाच्य†।

५४७। कर्मवाच्य और भाववाच्यमें समस्त धातुओंके उत्तरही आत्मनेपद होता है।

५४८। कर्मवाच्य और भाववाच्यमें, चतुर्लकार परे रहनेसे, धातुके उत्तर 'यक्' होता है, 'यक्'का 'य' रहता है, 'यक्' प्रत्यय होनेसे, सब धातुओंके रूप चतुर्लकारमें दिवादिगणीय आत्मनेपदी धातुके तुल्य, यथा—गम्+य+ते=गम्यते।

---

* वृतादि—वृतु वृधु शृधु स्यन्दु कृपु एष वृतादयः।

† कर्मवाच्य और भाववाच्यमें—चतुर्लकारमें, और लुङ्के प्रथमपुरुष के एकवचनमें धातुरूपकी विभिन्नता है। अन्यान्य विभक्तियोंमें कर्तृवाच्यकेही तुल्य।

गम् धातु ।

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	गम्यते	गम्येते	गम्यन्ते
मध्यमपुरुष	गम्यसे	गम्येथे	गम्यध्वे
उत्तमपुरुष	गम्ये	गम्यावहे	गम्यामहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	गम्यताम्	गम्येताम्	गम्यन्ताम्
मध्यमपुरुष	गम्यस्व	गम्येथाम्	गम्यध्वम्
उत्तमपुरुष	गम्यै	गम्यावहै	गम्यामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अगम्यत	अगम्येताम्	अगम्यन्त
मध्यमपुरुष	अगम्यथाः	अगम्येथाम्	अगम्यध्वम्
उत्तमपुरुष	अगम्ये	अगम्यावहि	अगम्यामहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	गम्येत	गम्येयाताम्	गम्येरन्
मध्यमपुरुष	गम्येथा	गम्येयाथाम्	गम्येध्वम्
उत्तमपुरुष	गम्येय	गम्येवहि	गम्येमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	गंस्यते	गस्येते	गस्यन्ते
मध्यमपुरुष	गंस्यसे	गस्येथे	गस्यध्वे
उत्तमपुरुष	गंस्ये	गस्यावहे	गस्यामहे

लिट्।

प्रथमपुरुष	जग्मे	जग्माते	जग्मिरे
मध्यमपुरुष	जग्मिषे	जग्माथे	जग्मिढ्वे
उत्तमपुरुष	जग्मे	जग्मिवहे	जग्मिमहे

लुट्—गन्ता। लृङ्—अगंस्यत। आशीः—गंसीष्ट।

(३७३ सूत्रानुसार) जि+य+ते=जीयते, श्रु—श्रूयते। (३७५ सू०) क्षि—क्षियते। (३७६ सू०) स्मृ—स्मर्य्यते, जागृ—जागर्य्यते। (३७७ सू०) कॄ—कीर्य्यते; तॄ—तीर्य्यते (पॄ—पूर्य्यते)। दा—दीयते, धा, धे—धीयते, (पानार्थ) पा—पीयते, मा—मीयते, हा—हीयते, स्था—स्थीयते, गै—गीयते, सो—सीयते*। दिव्—दीव्यते, ष्ठिव्—ष्ठीव्यते। (३७८ और ३७९ सू०) ग्रह्—गृह्यते, प्रच्छ्—पृच्छ्यते, व्यध्—विध्यते, यज्—इज्यते, ह्वे—हूयते, ब्रू, वच्—उच्यते, वद्—उद्यते, वप्—उप्यते, वस्—उष्यते, वह्—उह्यते, स्वप्—सुप्यते। (३८० सू०) दन्श्—दश्यते। (३२४ सू०) शास्—शिष्यते। अस्—भूयते, चक्ष्—ख्यायते। वे—ऊयते। कथि—कथ्यते†, कारि—कार्य्यते, स्थापि—स्थाप्यते।

५४९। * अगुण 'य' परे रहनेसे, जन् धातुके स्थानमे विकल्पसे 'जा', खन् धातुके स्थानमे विकल्पसे 'खा', और शी-धातुके स्थानमे 'शय्' होता है, यथा—(जन्) जायते, जन्यते, (खन्) खायते, खन्यते, (शी)

---

* 'यक्' परे रहनेसे, दा, धा, (पानार्थ) पा, मा, हादि हा, स्था, गै और सो धातुका अन्त्यस्वर 'ई' होता है।

† 'य' परे णिचका 'इ' लुप्त होता है।

दाय्यते ।

५६० । 'यक्'-प्रत्यय परे रहनेसे, तन् धातुके स्थानमें विकल्पसे 'ता' होता है, यथा—(तन्) तायते, तन्यते ।

५६१ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमें—लुट्, लृट्, लृङ् और आशीर्लिङ्,—तथा लुङ्-विभक्तिमें धातुके उत्तर जात 'सि' परे रहनेसे, स्वरान्त धातु, ग्रह्, दृश् और हन् धातुके उत्तर विकल्पसे 'इण्' होता है। 'इण्'-का 'इ' अवशिष्ट रहता है। 'इ' परे, हन्—घन्, और णित्-कार्य्य अर्थात् धातुके अन्त्यस्वर और उपधा अकारकी वृद्धि, तथा उपधा लघुस्वरका गुण होता है। विकल्पपक्षमें—कर्मवाच्यके नियमसेही धातुके रूप होंगे, केवल आत्मनेपद होगा, यही विशेष। हन्—आशीर्लिङ्में 'वध्' होता है। यथा—

	लुट्	लृट्	लृङ्	आशीर्लिङ्
कृ—	कारिता कर्त्ता	कारिष्यते करिष्यते	अकारिष्यत अकरिष्यत	कारिषीष्ट कृषीष्ट
दृश्—	दर्शिता द्रष्टा	दर्शिष्यते द्रक्ष्यते	अदर्शिष्यत अद्रक्ष्यत	दर्शिषीष्ट दृक्षीष्ट
हन्—	घानिता हन्ता	घानिष्यते हनिष्यते	अघानिष्यत अहनिष्यत	घानिषीष्ट वधिषीष्ट
ग्रह्—	ग्राहिता ग्रहीता	ग्राहिष्यते ग्रहीष्यते	अग्राहिष्यत अग्रहीष्यत	ग्राहिषीष्ट ग्रहीषीष्ट

५६२ । * चिन् (ण् इट्) और णित् (ण्-इट्) प्रत्यय परे रहनेसे, आकारान्त धातुके उत्तर 'य' होता है, यथा—दायिता ; (पक्षे) दाता ।

५६३ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमें लुट्के 'ता' के स्थानमें 'इण्'

(चिण्) होता है, 'इण्' का 'इ' रहता है, 'इण्' परे, पूर्वोक्त 'इण्' के तुल्य कार्य्य होता है, यथा—श्रु + लुङ्-त = अश्रावि, (आताम्) अश्राविषाताम्, अश्रोषाताम्, (अन्त) अश्राविषत, अश्रोषत।

अनुतापार्थक 'अनु + तप्' धातुके उत्तर 'इण्' नहीं होता, यथा—अन्वतप्त।

लुङ्का 'त' परे रहनेसे, हन्—वध् और घत् होता है, अन्यत्र विकल्पसे होता है, यथा—(लुङ् प्रथमपुरुष) अवधि अघानि, अवधिषाताम् अहसाताम् अघानिषाताम्, अवधिषत अहसत अघानिषत।

९६४। * 'इण्' और 'इन्'-का 'णम्' (णमुल्) परे रहनेसे, भञ्ज् और लभ् धातुके नकारका विकल्पसे लोप होता है, यथा—भञ्ज् + लुङ्-त = अभाजि, अभञ्जि, (लभ्) अलाभि, अलम्भि। (उपसर्ग) प्रालम्भि।

९६५। लुट्, लृट्, लृङ्, आशीर्लिङ् विभक्तिमे पूर्वोक्त स्वरान्त-प्रभृति-धातु-भिन्न यावतीय धातुके रूप कर्त्तृवाच्यके नियमसे होंगे, केवल आत्मनेपद होगा, यही विशेष, यथा—

	लुट्	लृट्	लृङ्	आशीर्लिङ्
त्यज्—	त्यक्ता	त्यक्ष्यते	अत्यक्ष्यत	त्यक्षीष्ट
	त्यक्तारौ	त्यक्ष्येते	अत्यक्ष्येताम्	त्यक्षीयास्ताम्
	त्यक्तारः	त्यक्ष्यन्ते	अत्यक्ष्यन्त	त्यक्षीरन्

९६६। लिट्मे और कोई विशेष नहीं है, कर्त्तृवाच्यके नियमानुसार धातुके रूप होंगे, केवल आत्मनेपद होगा, यही विशेष, यथा—

सिच्—	सिषिचे सिषिचाते सिषिचिरे	भुज्—	बुभुजे बुभुजाते बुभुजिरे	दा—	ददे ददाते ददिरे

५५७। कर्मवाच्यमें—कर्त्तामें तृतीया, और कर्ममें प्रथमा होती है, और क्रियापद कर्मके अनुसार बैठता है, अर्थात् कर्ममें जो पुरुष जो वचन रहता है, क्रियाकाभी वही पुरुष वही वचन होता है, यथा—

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
स बालकं पश्यति	तेन बालको दृश्यते।
त्वं बालकौ पश्यसि	त्वया बालकौ दृश्येते।
अहं बालकान् पश्यामि	मया बालकाः दृश्यन्ते।
वयं त्वां पश्यामः	अस्माभिः त्वं दृश्यसे।
ते युवां पश्यन्ति	तै युवां दृश्येथे।
तौ युष्मान् पश्यतः	ताभ्यां यूयं दृश्यध्वे।
युवां मां पश्यथः	युवाभ्याम् अहं दृश्ये।
यूयम् आवां पश्यथ	युष्माभिः आवां दृश्यावहे।
स अस्मान् पश्यति	तेन वयं दृश्यामहे।
अहं तम् अपश्यम्	मया स. अदृश्यत।
अहं त्वां द्रक्ष्यामि	मया त्वं द्रक्ष्यसे।
स चन्द्रं पश्यतु	तेन चन्द्रो दृश्यताम्।
कः सूर्यं पश्येत्?	केन सूर्यो दृश्येत?

जिन धातुओंका एक कर्म, उनका वाच्यान्तर ऐसा होगा ।*

परन्तु दुहादि और न्यादि † धातुके दो कर्म रहते हैं—एक, मुख्य अथवा प्रधान कर्म, दूसरा, गौण अथवा अप्रधान कर्म ‡ ।

५५८ । कर्मवाच्यमें—दुहादि-धातुके गौण कर्ममें, और न्यादि-धातुके मुख्य कर्ममें प्रथमा होती है § । अन्य कर्म द्वितीयान्तही रहता है । जिस कर्ममें प्रथमा हो, कर्मवाच्यकी क्रिया उसी कर्मके अनुसार होगी, यथा—

दुहादि—(कर्तृवाच्यमें) गोपः गां दुग्धं दोग्धि (यहाँ 'गाम्' गौण कर्म, क्योंकि वक्ताकी इच्छासे इसमें अपादान-कारकभी हो सकता था), (कर्मवाच्यमें) गोपेन गौः दुग्धं दुह्यते । दरिद्रः राजानं धनं याचते—दरिद्रेण राजा धनं याच्यते । शिक्षकः मां हितं वदति—शिक्षकेण अहं हितम् उच्ये । पूजकः वृक्षं पुष्पं चिनोति—

---

* कर्मवाच्यप्रयोगे तु तृतीया कर्तृकारके ।
कर्मणि प्रथमा प्रोक्ता, कर्माधीनं क्रियापदम् ॥

† २०८ सूत्र (क) टिप्पनी द्रष्टव्य ।

‡ क्रियाके साथ जिसका निकट-सम्बन्ध रहता है, उसे 'मुख्य कर्म', और क्रियाके साथ जिसका दूर-सम्बन्ध (और जिसमें अन्य कारकभी हो सकता है), उसे 'गौण कर्म' कहते हैं । 'भिक्षुक मुझे (मेरे पास—अधिकरण) वस्त्र मांगता है' कहनेसे, जिस वस्तुको मांगता है, उसके साथही क्रियाका निकट-सम्पर्क होनेसे, 'वस्त्र' मुख्यकर्म, और जिसके पास मांगता है, उसके साथ क्रियाका दूर सम्पर्क होनेसे, 'मुझे' गौणकर्म ।

§ गौणे कर्मणि दुह्यादेः, प्रधाने नी-हृ-कृष्-वहाम् ।

पूजकेन वृक्ष पुष्प चीयते। राजा चौरं शत दण्डयति—राज्ञा चौरः शत दण्डयते। शिष्य गुरुं धर्म पृच्छति—शिष्येण गुरुः धर्म पृच्छयते। देवा जलधिम् अमृत ममन्थु—देवै जलधि अमृत ममन्थे। गुरु शिष्यं धर्मम् अनुशास्ति—गुरुणा शिष्य धर्मम् अनुशिष्यते।

न्यादि–भृत्य भार गृह नयति, हरति, कर्षति, वहति वा (कर्तृवाच्य)।
भृत्येन भार गृह नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते वा (कर्मवाच्य)।

५५९। णिजन्त-धातुके कर्मवाच्यमें—प्रयोज्यकर्ममें प्रथमा होती है, और प्रयोज्यकर्मानुसार क्रिया होती है; यथा—(कर्तृवाच्यमें) प्रभु भृत्यं ग्राम प्रेषयति, (कर्मवाच्यमें) प्रभुणा भृत्य ग्रामं प्रेष्यते।

५६०। भाववाच्य*—तिङन्त-क्रियाके सकर्मक धातुका भाववाच्य नहीं होता। भाववाच्यमें—कर्त्तामें तृतीया विभक्ति, और क्रिया सवत्रही प्रथमपुरुषके एकवचनकी होती है†। कर्मवाच्यके कर्त्ताके तुल्य भाववाच्यमेंभी क्रियाके साथ कर्त्ताका कोई सम्पर्क नहीं रहता। यथा—मया, युवाभ्याम, तै वा अत्र स्थीयते।‡

---

* 'भाव' शब्दका अर्थ—धात्वर्थ वा कर्म (कार्य)। कर्म—नाम, क्लीवलिङ्ग और एकवचन।

† प्रयोगे भाववाच्यस्य तृतीया कर्तृकारके।
प्रथम पुरुषैकवचन स्यात् क्रियापदे॥

‡ कृदन्त क्रिया कर्तृवाच्यमें कर्त्ताका विशेषण, कर्मवाच्यमें कर्मका विशेषण, और भाववाच्यमें क्लीवलिङ्ग तथा एकवचनान्त होती है; यथा—स युष्मान् उक्तवान्, तेन यूयम् उक्ता, तेन उक्तम्।

कर्मकर्तृवाच्य।

९६१। कार्य्य करनेके समय जो कर्मकारक कर्त्ताके सुखकर निजगुणोंसे स्वयही सिद्ध होता है, उसको 'कर्मकर्त्ता' कहते हैं।*

वस्तुतः कर्मही यदि कर्त्ता हो, अर्थात् क्रियाका कर्तृत्व यदि कर्ममें आरोपित हो, तो 'कर्म-कर्त्ता' होता है। कर्मकर्तामें प्रथमा विभक्ति होती है, अन्य कर्मपद नहीं रहता। कर्मकर्तृवाच्यमें क्रियाका रूप कर्मवाच्यकी क्रियाके तुल्य। यथा—(कर्तृवाच्य) भृत्य काष्ठं भिनत्ति, (कर्म-कर्तृवाच्य) काष्ठं भिद्यते (स्वयमेव)—लकड़ी फटती है (आपसे आप)।

अनुवाद करो—(कर्तृवाच्य और भाववाच्यमें) राजा था। गायें चरती हैं। लड़के नाचते हैं। फल गिरता है। सुख होगा। वह मरा। तुमलोग जाओ। तुम मत रोओ। हमलोगोंने वहाँ वास किया था। वे नहीं रहेंगे। वह हंसा था।

(कर्तृवाच्य और कर्मवाच्यमें) बच्चे बिछौनेमें सोते हैं। मैंने धन पाया है। वे धन पायेंगे। सब कोई सुखको (कर्म) इच्छा करते हैं। तुम नक्षत्रोंको देखो। वह सत्य कहता है। हम काम करेंगे। मैं पुस्तक पढ़ता हूँ। हम दोनों काशी गये थे। तुम फलोंको ग्रहण करो। राजाने शत्रुओंको जीता है। तुम इसको पीछे जानोगे। असत्सङ्गका (कर्म) परित्याग करो। हनुमान्‌ने लङ्काको जलाया था। उसको मैंने पाठ पूछा था। जो परिश्रम करता है, वह सुख पाता है। प्राणियोंकी (कर्म) हत्या मत करो। परद्रव्य हरण नहीं करना। बिडाल दुग्ध पान करता है। मैं

---

* क्रियमाणन्तु यत् कर्म स्वयमेव प्रसिध्यति।
सुकरैः स्वैर्गुणैः कर्तुः, कर्म-कर्त्तेति तद्विदुः॥

जल पीऊगा । उसका नाम पूछो । मैं उसे जानता हूं । तू क्या सोचता है ? मैं तुम्हारे साथ जाऊगा । तुमलोग कहां रहोगे ? सदा सत्य कहो । वे क्यो हसते हैं ? मेरा हाथ पकड़ो* ।

वाच्यान्तर-प्रणाली ।

जिस वाच्यका प्रयोग रहता है, उसको अन्य वाच्यमे परिवर्तित करना हो, तो समापिका क्रिया और उसके कर्त्ता और कर्मको परिवर्तित करना होगा। उस कर्त्ता और कर्मका यदि विशेषण रहे, तो वहभी बदल जायेगा, अन्यान्य पद नहीं बदलेगा। यथा—

कर्त्ता	कर्म	समापिका क्रिया	वाच्य
(१) अहं	चन्द्र	पश्यामि	(कर्तृ)
मया	चन्द्र	दृश्यते	(कर्म)

कर्त्ता	कर्म	असमापिका क्रिया	समापिका क्रिया	वाच्य
(२) शिशु	वाद्य	श्रुत्वा (सुनकर)	नृत्यति	(कर्तृ)
शिशुना	वाद्य	श्रुत्वा	नृत्यते	(भाव)

कर्त्ता	कर्तृविशेषण	समापिका क्रिया	वाच्य
(३) स	दु खित	भवति	(कर्तृ)
तेन	दु खितेन	भूयते	(भाव)

कर्त्ता	कर्म विशेषण	कर्म	समापिका क्रिया	वाच्य
(४) त्वया	पूर्ण	चन्द्र	दृश्यताम्	(कर्म)
त्व	पूर्ण	चन्द्र	पश्य	(कर्तृ)

---

* यह दो प्रकारसे लिखा जा सकता है—'मेरा हाथ पकड़ो' अथवा 'मुझे हाथमे पकड़ो'।

कर्त्ता	अन्यकारक	समापिका क्रिया	वाच्य
(५) मया	गृहे	स्थीयते	(भाव)
अहं	गृहे	तिष्ठामि	(कर्त्तृ)
कर्त्ता	कर्म	कृदन्त क्रिया	वाच्य
(६) स	०	गतवान्*	(कर्त्तृ)
तेन	०	गतम्	(भाव)
(७) तै	दुग्ध	पीतम्	(कर्म)
ते	दुग्ध	पीतवन्त	(कर्त्तृ)
(८) मया	०	गन्तव्यम्	(भाव)
अहं	०	गमिष्यामि	(कर्त्तृ)
(९) अस्माभि	सत्य	वक्तव्यम्	(कर्म)
वय	सत्य	ब्रूयाम	(कर्त्तृ)

कर्त्ता	क्रिया विशेषण	विधेयविशेषण	क्रिया	वाच्य
(१०) राम	अत्यन्त	सुशील	†	(कर्त्तृ)
रामेण	अत्यन्तं	सुशीलेन	भूयते	(भाव)

* तिङन्त क्रिया-द्वाराही तिङन्त क्रियाका वाच्यान्तर, और कृदन्तक्रिया द्वाराही कृदन्त क्रियाका वाच्यान्तर करना । किन्तु कृदन्त क्रियाका अभाव होनेसे (अर्थात् वर्त्तमानकालके 'क्त' प्रत्यय, और तव्य, अनीय, य प्रत्ययके स्थलमें) तिङन्तपदद्वारा वाच्यान्तर करना होगा, यथा—तस्य मतम्—स मन्यते, मया गन्तव्यम्—अहं गमिष्यामि ।

† जहाँ क्रियापदका प्रयोग नहीं रहता, वहाँ 'अस्'-धातुके 'लट्' का रूप ऊह्य (Understood) करना होता है । इसलिये यहाँ 'अस्ति'

वाक्यान्तर करो—अहं गच्छामि। ते गच्छन्ति। युवां गां पश्यतम्। आवां जलं पास्यावः। युष्माभिः कथं स्थीयते? नगरे बहवो धनिनो वसन्ति। वर्षासु नद्यः प्रबला भवन्ति। पूजनीया हि गुरवः। अहं मन्त्रैः पशुभिः भवत्सकाशे प्रस्थापितः। यद्येष छागः केनाप्युपायेन लभ्येत (अस्माभिः)। अस्ति मालवदेशे पद्मगर्भनामधेयं सरः। दशरथो नाम राजा आसीत्। मद्वचनं शृणु। कश्चिद्बालको हसति। धर्मात्मा राजा धर्मेण प्रजाः पालयति।

संक्षिप्त कृत्-प्रकरण।*

(Verbal affix)

सगुण प्रत्यय।

६६२। कित् (क् इत्) और ङित् (ङ् इत्) भिन्न—तुम्, शतृ, शान, स्यतृ, स्यमान, तव्य, अनीय, य, ण्यत्, घ्यण्,† तृच्, णिच्, अण्, घञ्, ण, ण्वल्, णल्, अच्, अनट्, अन, णिन्, घिनुण्, इन, अम्, वस्, इष्णु, उ, णमुल्, णक, वक, ट, खि, आलु इत्यादि।

क्रिया कर्त्ता है। कर्तृवाच्यमेंही यह नियम।

* रचनादिकी सुविधाके लिये कई नितान्त प्रयोजनीय 'कृत्'-प्रत्यय यहाँ अलग दिये जाते हैं। परिशिष्ट 'कृत्'-प्रत्यय समासके पश्चात् लिखे जायेंगे।

† व्याकरणान्तरमें ण्यत्, घ्यण्—इन दो प्रत्ययोंके स्थलमें एक 'ण्यत्'-प्रत्ययही विहित है, परन्तु सहजमें समझानेके लिये यहाँ ण्यत्, घ्यण्—दो अलग दिये गये।

अगुण प्रत्यय ।

५६३ । क्ति्—क्त, क्तवतु, क्त्वा, क्ति, क्यप्, कान, क्विप्, क्वनिप्, कि, टक्, क्यप्, 'क्त्वा' के स्थानमे जात 'यप्' इत्यादि, ङित्—अङ्, नङ् इत्यादि ।

५६४ । तव्य, अनीय, य, ण्यत्, ड्यण्, क्यप्, केलिम*—इन प्रत्ययोंको 'कृत्य-प्रत्यय' कहते हैं ।

५६५ । क्त और क्तवतु प्रत्ययको 'निष्ठा-प्रत्यय' कहते हैं ।

५६६ । धातुके उत्तर तुम्, क्त्वा, कृत्य, निष्ठा-प्रभृति कई प्रत्यय करनेसे शब्द उत्पन्न होता है, उनको 'कृत् प्रत्यय' कहते हैं ।

[कृत् प्रकरणमेंभी विशेष विशेष सूत्रोंसे बाधित न होनेसे तिङन्त प्रकरणके स्टार (*) चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

५६७ । कृत् प्रत्यय होनेसे, धातुके अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वर-का गुण होता है । किन्तु क् अथवा ङ् इत् होनेसे नहीं होता ।

[४५९ (४) (६) (७) (१०) (११) सूत्रानुसार कृत् प्रत्ययका 'इट्' कार्य होगा ।]

५६८ । कृत् प्रत्यय परे रहनेसे, 'णिच्'-का लोप होता है । किन्तु आलु, इष्णु प्रभृति कई प्रत्यय और श् इत् (शित्) प्रत्यय परे, तथा 'इट्'-व्यवधानसे नहीं होता । यथा—उद्धारनम् ।

५६९ । कृत् प्रत्ययका 'य' परे रहनेसे, धातुके अन्तस्थित 'ओ' के

---

* कर्मकर्तृवाच्यमे धातुके उत्तर 'केलिम' (केलिमर्) प्रत्यय होता है, 'क्' इत्, 'एलिम' रहता है, यथा—(पच्) पचेलिम (स्वय पक्व), "ददर्श माद्धरफल पचेलिमम्" नै० १ ९५, (भिद्) भिदेलिम (भङ्गुर) ।

स्थानमे—अव्, और 'औ' के स्थानमे—आव् होता है ।

तुमुन् (तुम्) । (Infinitive mood)

५७० । यदि उभय क्रियाका कर्त्ता एक हो, तो निमित्तार्थमे भविष्यत्कालमे धातुके उत्तर 'तुमुन्' प्रत्यय होता है, 'तुमुन्'-का—'उ' और 'न्' इत्, 'तुम्' रहता है, यथा—भोक्तु याति (भोजनके निमित्त—लिये—अर्थात् भोजन करनेको जाता है) ।

तुमन्त-क्रिया अव्यय, इसको 'असमापिका क्रिया' कहते हैं ।

लुट् का 'ता' परे जैसा कार्य्य हुआ है, 'तुमुन्' परेभी वैसा कार्य्य होगा, यथा—(दृश्) द्रष्टु याति, (श्रु) श्रोतुम् अभिलषति, (अधीङ्) अध्येतुम् इच्छति ।

दा—दातुम् ।	गै—गातुम् ।	क्रीड्—क्रीडितुम् ।
स्था—स्थातुम् ।	पच्—पक्तुम् ।	गम्—गन्तुम् ।
जि—जेतुम् ।	प्रच्छ्—प्रष्टुम् ।	क्षम्—क्षन्तुम्, क्षमितुम् ।
नी—नेतुम् ।	त्यज्—त्यक्तुम् ।	मुह्—मोहितुम्, मोग्धुम्,
कृ—कर्त्तुम् ।	भुज्—भोक्तुम् ।	मोढुम् ।
श्रु—श्रोतुम् ।	अद्—अत्तुम् ।	सह्—सहितुम्, सोढुम् ।

कारि—कारयितुम् । कथि—कथयितुम् ।

५७१ । कालवाचक शब्द और समर्थार्थक शब्दके योगमे धातुके उत्तर 'तुमुन्' होता है । यथा—भोक्तुं कालोऽयम्, गन्तु समयोऽयम्, शयितु वेलेयम् । बोद्धुं समर्थः, भोक्तुं पटु, वक्तुं निपुण, कारयितुं

कुशल , योजयितु प्रयोग , "पर्य्याप्तोऽसि प्रजा पातुम्" र० १। २९ ।

※ हिन्दीमे जहाँ 'खानेको, जानेको'—ऐसी क्रियाका व्यवहार होता है, वहाँ उसके अनुवादमे 'तुमुन्' का प्रयोग करना चाहिये, यथा—(मै खानेको जाऊगा) अहं खादितु गमिष्यामि, वा भोक्तु गमिष्यामि । परन्तु 'मुझे खानेको दो'—ऐसे स्थलमे विभिन्न कर्त्ता होनेसे—भोजनका कर्त्ता एक, और दानका कर्त्ता दूसरा—'भोजन'-शब्दके उत्तर चतुर्थी-द्वारा अनुवाद करना होगा, यथा—मह्य भोजनाय देहि ।

अनुवाद करो—माधव स्नान करनेको गया था । तू खानेको जा । हमलोग विवाह देखनेको आयेंगे । ग्वाला गाय दोहनेको गया । वह आखोंसे देख नहीं सकता । मुझे वह पुस्तक पढनेको दो । पचास आध घण्टेमे (होरा) तीन चार पत्र लिख सकता है । पांवोंसे चल नहीं सकूंगा । मै उसे यह सवाद कहनेको जाऊगा । यहा खेलनेका समय । मै पैरनेको असमर्थ । वह कुछ कहना चाहता है ।

(१) क्त्वा ।

[किसी विशेष सूत्र द्वारा बाधित न होनेसे, तिङन्तप्रकरणमे स्यादि और अद्यादिमे 'त' परे क्यजन्त धातुका जैसा कार्य्य हुआ है, 'क्त्वा'-

---

* 'तुमुन्'-प्रत्ययान्त शब्द कभी क्रियावाचक विशेष्यभी होता है, यथा—एव कर्त्तुम् उचितम् (करणम् इत्यर्थ) । क्रियावाचक विशेष्यके उत्तर निमित्तार्थमे चतुर्थीकी प्राप्ति होनेसे, उसके स्थानमे 'तुमुन्'-प्रत्ययान्त पदकाभी प्रयोग हो सकता है, यथा—पाठाय उपविशति, अथवा पठितुम् उपविशति ।

प्रत्यय देखो प्राय वैसाही कार्य्य, और अन्यान्य सूत्रोंका कार्य्य यथा सम्भव होगा ।]

५५२ । उभय क्रियाका एकही कर्त्ता होनेसे*, पूर्व-कालिक-क्रिया-बोधक धातुके उत्तर† अनन्तर-अर्थमें 'क्त्वा'-प्रत्यय होता है, 'क्' इत्, 'त्वा' अवशिष्ट रहता है, यथा—भुक्त्वा व्रजति (भोजनके अनन्तर—पश्चात्, पीछे—अर्थात् भोजन करके जाता है)।

'क्त्वा'-प्रत्ययान्त क्रिया अव्यय, इसको 'असमापिका क्रिया' कहते हैं।

५५३ । निषेधार्थक 'अलम्' और 'खलु' शब्दके योगसे 'क्त्वा' होता है; यथा—अलं भुक्त्वा, खलु गत्वा (भोजन-गमने निषिद्धे—न भोक्तव्यम्, न गन्तव्यम् इत्यर्थः)। "निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम्" माघ० २ ७०।

५५४ । क् इत् (कित्) अगुण, किन्तु 'इट्' होनेसे गुण होता है। एकाच्, श्रि, उवर्णान्त, वृ और ऋदन्त धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता। ज्ञा—ज्ञात्वा, स्ना—स्नात्वा, जि—जित्वा; श्रि—श्रित्वा; नी—नीत्वा; श्रु—श्रुत्वा; भू—भूत्वा; हृ—हृत्वा, वृ—वृत्वा; स्तृ—स्तृत्वा।

---

* किसी किसी स्थलमें (शिष्टप्रयोगमें) 'स्थित'-पदके अध्याहारसे एक-कर्तृकता होती है, यथा—चन्द्रं दृष्ट्वा [स्थितस्य जनस्य] मनसि महान् हर्षो जायते।

† किसी किसी स्थलमें परवर्ती धातुके उत्तरभी होता है; यथा—ददर्श पूर्वमिव मुक्ते, मुखं व्यादाय स्वपिति; चक्षुः सम्मील्य हसति; टीकिते कृत्वा पतति कुम्भ।

अनिट्—(चान्त) पच्—पक्त्वा, सिच्—सिक्त्वा, मुच्—मुक्त्वा। (जान्त) त्यज्—त्यक्त्वा; भुज्—भुक्त्वा, सृज्—सृष्ट्वा। (दान्त) भिद्—भित्त्वा, छिद्—छित्त्वा। (धान्त) युध्—युद्ध्वा; बुध्—बुद्ध्वा, क्रुध्—क्रुद्ध्वा। (पान्त) क्षिप्—क्षिप्त्वा, तप्—तप्त्वा, आप्—आप्त्वा। (भान्त) रभ्—रब्ध्वा, लभ्—लब्ध्वा। (शान्त) स्पृश्—स्पृष्ट्वा, दृश्—दृष्ट्वा। (षान्त) कृष्—कृष्ट्वा, पिष्—पिष्ट्वा, द्विष्—द्विष्ट्वा। (हान्त) दह्—दग्ध्वा, दुह्—दुग्ध्वा, नह्—नद्ध्वा।

७७५। * कित् प्रत्यय परे रहनेसे, दा—दत्, धा—हि, स्था—स्थि, मा—मि, गै—गी, (पानार्थ) पा—पी, (त्यागार्थ) हा—हि, शो—शि, सो—सि, धाव्—विकल्पसे धौ होता है, यथा—(दा) दत्त्वा, (धा) हित्वा (स्था) स्थित्वा, (मा) मित्वा, (गै) गीत्वा, (पा) पीत्वा; (हा) हित्वा।

* ७७६। कित् 'कृत्'-प्रत्यय परे रहनेसे, हन्, मन्, तन्, गम्, नम्, यम्, रम्, क्षण् प्रभृति धातुके अन्त्यवर्णका लोप होता है। 'क्त्वा'-के स्थानमें जो 'ल्यप्' होता है, उसमेंभी यही नियम, किन्तु 'ल्यप्' परे, गम्-आदिके अन्त्यवर्णका विकल्पसे लोप होता है, यथा—(हन्) हत्वा, (मन्) मत्वा, (गम्) गत्वा, (नम्) नत्वा, (रम्) रत्वा इत्यादि।

७७७। 'क्त्वा' परे रहनेसे, उदित् (उकार-इत्) धातु* और पू धातु-

---

* उदित् धातु—अञ्च्, (तुदादि) इष्, क्रम्, भ्रम्, क्लम्, श्रम्, शम्, दम्, रम्, क्षम्, वृत्, वृध्, क्लिश्, शाम्, भ्रम्, मृष्, ध्वन्स्, भ्रन्श्, सिव्, क्षण्, कम्, याव्, लुप्, सिध्, हप्, तन् इत्यादि।

में उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है, यथा—(अञ्च्) अञ्चित्वा, अक्त्वा, (इष्) एषित्वा, इष्ट्वा ; (दिव्) देवित्वा, द्यूत्वा, (सिव्) सेवित्वा, स्यूत्वा ; (धाव्) धावित्वा, धौत्वा ; (पू) पवित्वा, पूत्वा । अञ्च् धातुके पूजा भिन्न अन्य अर्थमें नहीं होता।

६७८। * क्त्वा, क्ति, क्त और क्तवतु परे रहनेसे, क्रम्, भ्रम्, क्षम्, श्रम्, शम्, दम्, वम् और क्षम् धातुके उपधा अकारके स्थानमें 'आ' होता है, यथा—(क्रम्) क्रमित्वा, क्रान्त्वा, (भ्रम्) भ्रमित्वा, भ्रान्त्वा, (शम्) शमित्वा, शान्त्वा, (वम्) वमित्वा, वान्त्वा, (क्षम्) क्षमित्वा, क्षान्त्वा।

(३७८ सूत्र) ग्रह्—गृहीत्वा, प्रच्छ्—पृष्ट्वा, व्यध्—विद्ध्वा यज्—इष्ट्वा।

(३७९ सूत्र) वद्—उदित्वा, वच्—उक्त्वा, वस्—उषित्वा वह्—ऊढ्वा ; स्वप्—सुप्त्वा।

(३८० सूत्र) दृश्—दृष्ट्वा।

६७९। 'क्त्वा' परे रहनेसे, जान्त, थान्त, फान्त धातु, और वञ्च् तथा लुञ्च् धातुके उपधा नकारका विकल्पसे लोप होता है। यथा—(जान्त) भञ्ज्—भक्त्वा, भङ्क्त्वा, रञ्ज्—रक्त्वा, रङ्क्त्वा। (थान्त) ग्रन्थ्—ग्रथित्वा, ग्रन्थित्वा, मन्थ्—मथित्वा, मन्थित्वा। (फान्त) गुम्फ्—गुफित्वा, गुम्फित्वा। वञ्च्—वचित्वा, वञ्चित्वा, लुञ्च्—लुचित्वा, लुञ्चित्वा।

६८०। 'इट्' परे रहनेसे, मृड्, मृद्, रुद्, विद्, मुष् और क्लिश् धातुका गुण नहीं होता, यथा—मृडित्वा, मृदित्वा ; रुदित्वा, विदित्वा ;

मुषित्वा, क्लिशित्वा, क्लिष्ट्वा ।

५८१। 'इट्' परे रहनेसे, 'मिल्-आदि'* धातुके उत्तर विकल्पसे गुण होता है, यथा—(मिल्) मिलित्वा, मेलित्वा, (लिख्) लिखित्वा, लेखित्वा, (कुप्) कुपित्वा, कोपित्वा, (द्युत्) द्युतित्वा, द्योतित्वा इत्यादि। सेट् धातु—(शी) शयित्वा, (कारि) कारयित्वा ।

(अद् + क्त्वा = जग्ध्वा ।)

※ हिन्दीमे 'खाके खाकर, जाके जाकर' प्रभृति प्रचलित क्रियाओंका अनुवाद संस्कृतमे प्रायशः 'क्त्वा'-निष्पन्न-क्रिया-द्वारा करना होता है, यथा—(वे खाकर जायेंगे) ते भुक्त्वा यास्यन्ति, (मैं स्नान करके खाऊंगा) अहं स्नात्वा भक्षयिष्यामि ।

अनुवाद करो—पुष्प चयन करके ला। जल सींचकर पड़को बढ़ा। लड़के विद्यालयसे पढ़कर आते हैं। दयालु दरिद्रको धन देकर सुखी होता है। लड़के खेलकर घर लौटते हैं। बैल रस्सी तोड़कर भागा। धार्मिक बालक प्रतिदिन ईश्वरका (कर्म) स्मरण और नमस्कार करके पाठ आरम्भ करता है।

(२) ल्यप् (यप्) ।

५८२। 'नञ्'-भिन्न† अव्यय पदके साथ समास होनेसे धातुके उत्तर 'क्त्वा' के स्थानमे 'ल्यप्' होता है, 'ल्' और 'प्' इत्, 'य' रहता है। 'प्'-इत् का कार्य्य होता है। यथा—आ +

---

* मिल्, लिख्, स्तिम्, कुप्, क्षुध्, रुद्, द्युत्, रुच्, स्फुट्, कृश्, तृप्, मृष्।

† 'नञ्'-अव्ययके योगसे 'ल्यप्' नहीं होता, यथा—(न गत्वा) अगत्वा।

दा + ल्यप् = आदाय, (वि + जि) विजित्य ; (वि + नी) विनीय, (प्र + हृ) प्रहृत्य, (आ + दृ) आदृत्य, (वि + हा) विहाय, (नि + पा—पानार्थ) निपाय*।

'ल्यप्' प्रत्ययान्त क्रिया अव्यय, इसको 'असमापिका क्रिया' कहते हैं।

(३७७ सू०) प्र + कॄ—प्रकीर्य्य, आ + पॄ—आपूर्य्य।

सम् + त्यज्—सन्त्यज्य, वि + श्रम्—विश्रम्य, सम् + दह्—सन्दह्य, प्र + विश्—प्रविश्य ; आ + क्षिप्—आक्षिप्य, सम् + भू—सम्भूय।

(५७६ सू०) आ + हन्—आहत्य, आ + गम्—आगत्य, आगम्य, प्र + नम्—प्रणत्य, प्रणम्य, नि + यम्—नियत्य, नियम्य, वि + रम्—विरत्य, विरम्य इत्यादि।

(५४१ सू०) सम् + शी—सशय्य।

(३७८ सू०) सम् + प्रच्छ्—सम्पृच्छ्य ; सम् + ग्रह्—सङ्गृह्य ; आ + ह्वे—आहूय।

(३७९ सू०) सम् + स्वप्—संसुप्य ; प्र + वच्—प्रोच्य, सम् + वह्—समुह्य।

(३८० सू०) प्र + खन्—प्रखन्य ; प्र + मन्थ्—प्रमथ्य इत्यादि।

५८३। 'ल्यप्' परे रहनेसे, 'णिच्'का लोप होता है। यदि 'णिच्'-का पूर्ववर्ती स्वर लघु हो, तो 'णिच्'का लोप न होकर 'णिच्'के 'इ'के

* निपीय—नि + पी (पानार्थ—दिवादि, आत्मने०) + ल्यप्, "निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथाम्" नै० १ १।

स्थानमें 'अय्' होता है । यथा—(वि + चारि) विचार्य्य , (प्र + काशि) प्रकाश्य । (पूर्वस्वर लघु) वि + गणि—विगणय्य , वि + रचि—विरचय्य ।

(क) 'ल्यप्' परे रहनेसे, 'आपि'-धातुका 'इ' विकल्पसे 'अय्' होता है , यथा—(प्र + आपि) प्रापय्य, प्राप्य ।

※ 'ल्यप्-प्रत्ययान्त क्रियाका व्यवहार 'क्त्वा' प्रत्ययान्त क्रियाके तुल्य ।

कृत्य-प्रत्यय (Potential passive paticiple) ।

(१) तव्य ।

५८४ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमें धातुके उत्तर 'तव्य'-प्रत्यय होता है ।

'लुट्'का 'ता' परे धातुका जैसा कार्य्य हुआ है, 'तव्य'-प्रत्यय परे भी वैसा कार्य्य होता है , यथा—दा + तव्य = दातव्य , (शी) शयितव्य , (नी) नेतव्य , (श्रु) श्रोतव्य , (भू) भवितव्य , (कृ) कर्त्तव्य ; (हन्) हन्तव्य , (गम्) गन्तव्य , (प्रच्छ्) प्रष्टव्य , (श्रस्) श्रसितव्य , (वह्) वोढव्य , (सह्) सोढव्य , (विश्) वेष्टव्य, (स्पृश्) स्प्रष्टव्य , (कारि) कारयितव्य , (भोजि) भोजयितव्य इत्यादि ।

(२) अनीय (अनीयर्) ।

५८५ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमें धातुके उत्तर 'अनीय'-प्रत्यय होता है ।

'अनीय' परे रहनेसे, अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है, यथा—पा+अनीय=पानीय, (भुज्) भोजनीय, (श्रु) श्रवणीय, (कृ) करणीय; (हृ) हरणीय, (रम्) रमणीय; (शी) शयनीय इत्यादि।

(३) यत् (य)।

५८६। कर्मवाच्य और भाववाच्यमें स्वरान्त (इवर्णान्त और उवर्णान्त), पवर्गान्त*, और शक्, सह्-प्रभृति धातुके उत्तर 'यत्' होता है, 'त्' इत्, 'य' रहता है।†

'यत्' परे रहनेसे, अन्त्यस्वरका गुण होता है। यथा—(स्वरान्त) चि+यत्=चेय, (जि) जेय; (नी) नेय, (श्रु) श्रव्य (लू) लव्य। (पवर्गान्त) जप्+यत्=जप्य; (लभ्) लभ्य; (गम्) गम्य; (नम्) नम्य; (रम्) रम्य। (शक्) शक्य; (सह्) सह्य।

५८७। 'यत्' परे रहनेसे, आकारान्त धातु और खन्-धातुके 'टि' के स्थानमें 'ए' होता है; यथा—(दा) देय; (मा) मेय; (स्था) स्थेय, (खन्) खेय।

५८८। उपसर्गविहीन गद्, मद्, यम् और चर् धातुके उत्तर

---

* रप्, लप्, चम् भिन्न।

† स्थलविशेषमें कर्तृवाच्यमें तव्यादि होते हैं; यथा—वसतीति, वसन्त्यस्मिन्निति वा वास्तव्य (ऐसे स्थलमें 'तव्य'-प्रत्यय परे वस् धातुकी वृद्धि होती है); जायते इति जन्य, स्नाति अनेनेति स्नानीयम्; दीयते अस्मै इति दानीय, बिभेति अस्मात् इति भेतव्य; रमते अस्मिन्निति रमणीयम्, रम्यम्।

'यत्' होता है, यथा—(गद्) गद्य, (मद्) मद्य, (यम्) यम्य ; (चर्) चर्य्य। किन्तु 'आ' पूर्वक चर् धातुके उत्तर 'यत्' होता है, यथा—आचर्य्य।

(४) ण्यत्।

५८९। कर्मवाच्य और भाववाच्यमे उवर्णान्त धातुके उत्तर '*आवश्यक*'-अर्थमे 'ण्यत्' होता है, 'ण्' और 'त्' इत्, 'य' रहता है, यथा—(स्तु) स्ताव्य (अवश्यस्तवनीय)।

५९०। कर्मवाच्य और भाववाच्यमे ऋकारान्त और व्यञ्जनान्त धातुके उत्तर 'ण्यत्' होता है। यथा—(ऋकारान्त) कृ—कार्य्य, (हृ) हार्य्य, (स्मृ) स्मार्य्य। (व्यञ्जनान्त) वह्—वाह्य, हन्—घात्य ('ण्यत्' परे 'हन्'—'घात्' होता है), (जन्) जन्य, (वध्) वध्य, (त्यज्) त्याज्य, (यज्) याज्य, (बुध्) बोध्य*, (भुज्) भोज्य, (वच्) वाच्य इत्यादि।

(५) घ्यण्।

५९१। कर्मवाच्य और भाववाच्यमे, 'शब्द'-अर्थमे—वच्, 'भोग'-अर्थमे—भुज्, और 'अर्ह' (औचित्य, सामर्थ्य) अर्थमे—युज् धातुके उत्तर 'घ्यण्' होता है, 'घ्' 'ण्' इत्, 'य' रहता है, यथा—(वच्) वाक्यम् (पदसङ्घात), (भुज्) भोग्य, (युज्) योग्य।

(क) 'क'-प्रत्ययमे अनिट्, ऐसे पच्, रुज् प्रभृति धातुके उत्तरभी

---

* णित्-प्रत्यय परे उपधा लघुस्वरका गुण होता है।

'ण्यत्' होता है, यथा—(पच्) पाक्य, (रुज्) रोग्य।

(९) क्यप्।

५९२। कर्मवाच्य और भाववाच्यमे इ, दृ, भृ, कृ, जुष्, शास्, स्तु धातु, और उपधामे ऋकार-विशिष्ट धातुके उत्तर 'क्यप्' होता है, 'क्' और 'प्' इत्, 'य' रहता है; यथा—(इ) इत्य, (दृ) आदृत्य, (भृ) भृत्य, (कृ) कृत्य (पक्षान्तरे 'ण्यत्'—कार्य्य), (जुष्) जुष्य, (शास्) शिष्यः (३२४ सू०), (स्तु) स्तुत्य (४५५ (११) सू०), (दृश्) दृश्य।

५९३। कर्मवाच्य और भाववाच्यमे सुबन्त पदके परवर्ती वद् धातुके उत्तर 'क्यप्' और 'यत्' होते हैं, 'क्यप्'-पक्षमे 'व' के स्थानमें 'उ' होता है; यथा—ब्रह्म + वद् + क्यप् = ब्रह्मोद्यम्, ब्रह्म + वद् + यत् = ब्रह्मवद्यम्, वेदवाक्य ब्रह्मज्ञान वा इत्यर्थ। "ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्य्यात्" मनु० २ २३१. ('परमात्मनिरूपणपरा कथाश्च कुर्य्यात्' इति टीका)।

'मृषा'-शब्दके परवर्ती होनेसे केवल 'क्यप्' होता है; यथा—मृषा + वद् + क्यप् = मृषोद्यम् (मिथ्यावचनम् इत्यर्थ)। मृषोद्य—मिथ्यावादी (विशेषण)।

५९४। भाववाच्यमे सुबन्त पदके परवर्ती भू धातुके उत्तर 'क्यप्' होता है; यथा—ब्रह्मन् + भू = ब्रह्मभूयम् (ब्रह्मत्वम्), देवभूयम् (देवत्वम्), विप्रभूयम् (विप्रत्वम्)।

५९५। भाववाच्यमे सुबन्त पदके परवर्ती हन् धातुके उत्तर 'क्यप्' होता है; और 'न्' के स्थानमे 'त', तथा स्त्रीलिङ्ग होता है; यथा—

स्त्रीहत्या, गोहत्या, ब्रह्महत्या ।

✕ भविष्यत्-कालमे और औचित्य, अनुज्ञा प्रभृति अर्थमे 'कृत्यप्रत्यय' होता है ।

कर्मवाच्यमे—कृत्यप्रत्ययनिष्पन्न शब्द जब क्रियाके तुल्य व्यवहृत होता है, तब कर्मका विशेषण होता है, अर्थात् कर्मका जो लिङ्ग, जो विभक्ति, जो वचन, 'कृत्य'-निष्पन्न शब्दकाभी वही लिङ्ग, वही विभक्ति, वही वचन होता है, और कर्ममे—प्रथमा विभक्ति, कर्त्तामे—तृतीया अथवा षष्ठी विभक्ति होती है । यथा—भविष्यत्-कालमे—(तू अवश्य इसका फल पायेगा) त्वया नूनमस्य फल प्राप्तव्यम् , (मै काशी जाऊगा) मया मम वा वाराणसी गन्तव्या । 'औचित्य'-अर्थमे—(असत्सङ्ग परित्याग करना चाहिये) असत्सङ्ग परिहर्त्तव्य , (सबसमय मातापिताकी सेवा करनी चाहिये) सर्वदा मातापितरौ सेवनीयौ , (दुष्टोंको सर्वप्रकारसे दण्ड देना चाहिये) दुर्वृत्ता सर्वथा दण्डनीया , (दूसरेकी निन्दा नहीं करना) परनिन्दा न कर्त्तव्या , (सब स्त्रियोंको माताके तुल्य देखना) सर्वा स्त्रियो मातृवत् दर्शनीया , (शत्रुकेभी गुण कहना, और गुरुकेभी दोष कहना) "शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि" ।

"कन्याऽप्येव पालनीया शिक्षणीयाऽतियत्नत ।
देया वराय विदुषे धनरत्नसमन्विता ॥"

'अनुज्ञा'-अर्थमे—(प्रात कालमे तुझे पाठशालाको जाना होगा) त्वया प्रात पाठशाला गन्तव्या , (ब्राह्ममुहूर्त्तमे तुझे वेद पढ़ना

होगा) माझे मुहूर्त्ते त्वया वेदोऽध्ययनीय ।

भाववाच्यमे—कृत्यप्रत्ययनिष्पन्न शब्द जब क्रियाके तुल्य व्यवहृत होता है, तब क्लीवलिङ्ग प्रथमाका एकवचन होता है; और कर्त्तामे तृतीया अथवा षष्ठी होती है, यथा—(हम स्नान करेंगे) अस्माभि अस्माक वा स्नातव्यम् ।

✕ कृत्यप्रत्ययनिष्पन्न शब्द जब विशेषण होता है, तब विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होता है, यथा—गन्तव्यो ग्राम,* गन्तव्य ग्रामम, गन्तव्येन ग्रामेण इत्यादि, दृश्या नदी†, दृश्यां नदीम्, दृश्यया नद्या इत्यादि, पानीय जलम् ‡, पानीयेन जलेन, पानीयस्य जलस्य इत्यादि ।

अनुवाद करो—दोनोको धन देना चाहिये । भूलकरभी मिथ्या नहीं बोलना । सर्वत्र गुणका आदर करना चाहिये । दुष्ट बालकका (कर्म) शासन करना चाहिये । तू तेरे गन्तव्य स्थानमें जाना । कल मेरे यहाँ भोजन करना ।

(Present participle)

(१) शतृ ।

५९६ । कर्तृवाच्यमे परस्मैपदी धातुके उत्तर वर्त्तमानकालमे 'शतृ' प्रत्यय होता है । 'श्' और 'ऋ' इत्, 'अत्' रहता है ।

५९७ । अभ्यस्त धातु भिन्न स्वादि प्रभृति धातुके 'लट्'की "अन्ति"-

---

* जो जाया जायेगा—ऐसा गाँव ।

† जो देखी जायेगी, अथवा देखनेके योग्य—ऐसी नदी ।

‡ जो पीया जा सकता—ऐसा जल ।

विभक्तिमें जो रूप होता है, उसमें 'न्' और 'इ' निकाल देनेसेही 'शतृ'-प्रत्ययान्त शब्द बनता है ; यथा—(धाव्) धावन्ति—धावत्, (दृश्) पश्यन्ति—पश्यत्, (मुच्) मुञ्चन्ति—मुञ्चत्, (दिव्) दीव्यत्, (अस्) असत्, (श्रु) शृण्वत्, (हिन्स्) हिंसत्, (कथि) कथयत्, (कारि) कारयत्, (चोरि) चोरयत् ।

५९८ । अभ्यस्त धातुके 'अन्ति'के रूपसे केवल 'इ' निकाल देनेसेही 'शतृ'-प्रत्ययान्त शब्द होता है, यथा—(दा) ददति—ददत्, (भी) बिभ्यति—बिभ्यत्, (हा) जहति—जहत् ।

५९९ । अदादिगणीय विद्-धातुके उत्तर 'शतृ'के स्थानमें विकल्पसे 'क्वसु' (वस्) होता है, यथा—विद्वस्, विदत् ।

(२) शानच् (शान) ।

६०० । कर्तृवाच्यमें आत्मनेपदी धातुके उत्तर वर्त्तमान-कालमें 'शानच्'-प्रत्यय होता है, 'श्' 'च्' इत्, 'आन' रहता है ।

६०१ । 'आन' परे रहनेसे, लट्की 'आते'-विभक्तिका समस्त कार्य्य होता है। भ्वादि, दिवादि और तुदादिगणीय धातुके उत्तर विहित 'आन'-के स्थानमें 'मान' होता है । यथा—(भ्वादि) सेव्—सेवमान , (वृत्) वर्त्तमान । (दिवादि) जन्—जायमान , विद्—विद्यमान । (तुदादि) मृ—म्रियमाण , धृ—ध्रियमाण । (अदादि) शी—शयान , अधि+इ—अधीयान । (तनादि) मन्—मन्वान । (ह्वादि) मा—मिमान ।

६०२ । अदादिगणीय आस् धातुके परस्थित 'आन'—'ईन' होता है, यथा—(आस्) आसीन ।

६०३ । कर्तृवाच्यमें उभयपदी धातुके उत्तर वर्त्तमानकालमें 'शतृ'

और 'शानच्'—दोनों होते हैं। यथा—(भ्वादि) श्रि—श्रयत्, श्रयमाण, यज्—यजत्, यजमान। (अदादि) स्तु—स्तुवत्, स्तुवान; दुह्—दुहत्, दुहान। (ह्वादि) दा—ददत्, ददान; भृ—बिभ्रत्, बिभ्राण। (रुधादि) रुध्—रुन्धत्, रुन्धान। (तनादि) तन्—तन्वत्, तन्वान, कृ—कुर्वत्, कुर्वाण। (क्र्यादि) क्री—क्रीणत्, क्रीणान, ग्रह्—गृह्णत्, गृह्णान।

६०४। कर्मवाच्यमें धातुके उत्तर वर्तमानकालमें 'शानच्' होता है। 'शानच्' परे रहनेसे, कर्मवाच्यमें लट्की 'अन्ते' विभक्तिपर यावतीय कार्य होता है, और 'आन'के स्थानमें 'मान' होता है, यथा—(कृ) क्रियमाण, (वच्) उच्यमान, (दा) दीयमान, (पा) पीयमान, (ग्रह्) गृह्यमाण, (सेव्) सेव्यमान, (वह्) उह्यमान, (दृश्) दृश्यमान, (कृष्) कृष्यमाण, (सृज्) सृज्यमान, (ज्ञा) ज्ञायमान।

६०५। लक्षण और हेत्वर्थमेंभी 'शतृ' 'शानच्' होते हैं, यथा—स पशुना वधं कुर्वन्नासीत् (वधक्रियया लक्षित इत्यर्थः), फलान्याहरन् वनं याति (फलाहरणाद्धेतोरित्यर्थः)।

(क) शील (स्वभाव) और शक्ति अर्थमें परस्मैपदी धातुके उत्तरभी 'शानच्' होता है, यथा—हसमान शिशु, करिणं निघ्नान—द्विरद, अभिभवमान—सिंह।

✕ 'शतृ' और 'शानच्' प्रत्यय-द्वारा जो शब्द निष्पन्न होता है, वह विशेषण, इसलिये विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होता है। यथा—(कर्तृवाच्य) पश्यन् पुरुष,* पश्यन्तं पुरुषम्, पश्यता

* जो देखता है, ऐसा पुरुष।

पुरुषेण, गच्छन्ती स्त्री, गच्छन्तीं स्त्रियम्, गच्छन्त्या स्त्रिया; पतत् फलम्, पतता फलेन, पततः फलस्य। (कर्मवाच्य) दृश्यमान (जो देखा जाता है—ऐसा) पुरुष, क्रियमाणौ घटौ, छिद्यमानानि फलानि, तीर्यमाणा नदी।

※ 'करके' या 'करते करते' अथवा 'जो करता है, करता था, या करता रहेगा—ऐसा' इत्यादिरूप अर्थमें धातुके उत्तर 'शतृ' वा 'शानच्' होता है।

'जाते जाते गाता है', 'खाते खाते हँसता है'—ऐसे वाक्योंके अनुवादमें—अर्थात् जहाँ एक समय दो क्रियायें चलती हैं, उसके अनुवादमें—पूर्व क्रिया 'शतृ' वा 'शानच्'-प्रत्ययान्त होगी, यथा—(लड़के जाते जाते गाते हैं) बालका गच्छन्तो गायन्ति, (पथ देखते देखते जा) पन्थानं पश्यन् व्रज, (वह खाते खाते बात करता था) स भुञ्जान आलपति स्म।

विभिन्न कर्त्ता होनेसे, अनेक स्थलोंमें 'खाते' 'जाते'—ऐसी क्रियाओंकी संस्कृत उक्त 'शतृ' अथवा 'शानच्'-द्वारा की जाती है, यथा—(मैंने उसे खाते देखा है) अहमम् भक्षयन्तम् अपश्यम्,—यहाँ दर्शनका कर्त्ता—'मैं', और भक्षणका कर्त्ता—'वह',

---

समापिका क्रियाके साथ प्रयोग करनेसे, उसके प्राधान्य-हेतु, तदनुसारही वर्तमानकालमेंभी अतीत और भविष्यत्कालका अर्थ प्रकाश करता है, यथा—उद्यन्त चन्द्रम् अहमपश्यम् (उठता था जो चन्द्र, उसे मैंने देखा); उद्यन्त चन्द्रम् अहं द्रक्ष्यामि (उठेगा जो चन्द्र, उसको मैं देखूंगा)।

इसलिये विभिन्न कर्त्ता । †

'सुनते सुनते कथा समाप्त हुई'—इस वाक्यका अर्थ ऐसा है, कि—हम सुनते हैं, कथाभी समाप्त होती है, इसलिये इसकी संस्कृतमें पूर्व-क्रियाको कर्मवाच्यमें 'शानच्' प्रत्ययान्त करके 'कथा'-का विशेषण कर लेना होगा, यथा—श्रूयमाणा कथा समाप्तिं याति ।

अनुवाद करो—वहाँ लड़के खेलते खेलते लड़ते थे । मैंने हसते हसते कहा था । पढ़ते पढ़ते बूढ़ा हुआ हूँ । वह चिड़िया उड़ते उड़ते पृथ्वीमें गिरी । छात्रलोग अध्ययन करते करते थक रहे हैं । जटायु रावणको सीताहरण करते देखा ।

निष्ठा-प्रत्यय (Past participle) ।

(१) क्त ।

६०६ । अतीतकालमें धातुके उत्तर कर्मवाच्य और भाववाच्यमें 'क्त'-प्रत्यय होता है ; 'क्' इत्, 'त्' रहता है ।

६०७ । निष्ठा प्रत्यय परे रहनेसे, 'सेट्'-धातुके उत्तर 'इट्' होता है । तिङन्त प्रकरणमें जो धातु 'अनिट्' बोलके निर्दिष्ट हुए हैं, 'क्त'-प्रत्यय परे रहनेसे, उन धातुओंके उत्तर 'इट्' नहीं होता ।

[तिङन्तप्रकरणमें जो समस्त स्टार (*) चिह्नित साधारण सूत्र

---

† क्रियाका अविच्छेद (Continuation) समझानेसे, 'शतृ' वा 'शानच्'के साथ 'आस्' अथवा 'स्था' धातु व्यवहृत होता है, यथा—"गीतसमाप्त्यवसरं प्रतीक्षमाणस्तस्थौ" काद॰ (गीत समाप्त होनेका अवसर देखता रहा) ।

हैं, निष्ठा प्रत्यय परेभी यथासम्भव उन सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

६०८ । अकर्मक धातुके उत्तर कर्तृवाच्य और भाववाच्यमें 'क्त' होता है ।

६०९ । गत्यर्थ और प्राप्त्यर्थ धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमेंभी 'क्त' होता है, यथा—ग्राम गत, गृह प्रस्थित, गङ्गा प्राप्त, विद्यामधिगत ।

६१० । उपसर्गके योगसे सकर्मक होनेपरभी शी (अधि + शी), स्था (अधि + स्था, उप + स्था), आस् (अधि + आस्, अनु + आस्, उप + आस्), वस् (अधि + वस्, उप + वस्), जन् (अनु + जन्), श्लिष् (आ + श्लिष्) और रुह् (आ + रुह्, अधि + रुह्) धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमेंभी 'क्त' होता है, यथा—शय्यामधिशयित, आसनमधिष्ठित, गुरुमुपस्थित, आश्रमभ्यासित, पितरमन्वासित, शिवमुपासित, शिलातलमध्युषित, हरिवासरमुपोषित, अग्रजमनुजात, शिशुमाश्लिष्ट, तुरगमारूढ, योगमधिरूढ । (यथा) "वागीश्वर पितरमेव तमागतोऽस्मि" बाणभट्ट ।

६११ । पूजार्थ, इच्छार्थ, ज्ञानार्थ और ञीत् (ञि इत्) धातुके* उत्तर वर्त्तमानकालमेंभी 'क्त' होता है, यथा—मम देव पूजित (पूज्यते इत्यर्थ) ।

६१२ । निष्ठा प्रत्यय परे रहनेसे,—जिन धातुओंके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है, उन धातुओंके उत्तर, और श्रि, उवर्णान्त, वृ, ऋदन्त

---

* ञीत् धातु—(मिदार्थ) फल, मी, मिद्, स्विद्, स्वप्, त्वर्, तृष्, दृष् इत्यादि ।

तथा ईदित (ईकार इत्) धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता।

६१३। निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, दिव्—द्यू, सिव्—स्यू, ष्ठिव्—ष्ठ्यू, प्याय्—पी और प्या, स्फाय्—स्फी और स्फा, व्ये—वी, ह्वे—हू, ह्ला—ह्लो, जन्—जा, सन्—सा, खन्—खा, श्रि—श्रु होता है।

६१४। 'मद्' भिन्न दान्त, रान्त और ओदित‡ (ओकार-इत्) धातु, तथा म्लै, ग्लै, द्रा, स्त्यै धातुके परस्थित निष्ठा-प्रत्ययका 'त'—'न' होता है; 'न' परे रहनेसे, दान्त धातुके 'द्' के स्थानमेंभी 'न्' होता है।

६१५। ह्री, घ्रा, त्रै, नुद् और विन्द् धातुके उत्तर निष्ठा-प्रत्ययका 'त' विकल्पसे 'न' होता है।

६१६। निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, क्षुध्, वस् और लुभ् धातुके उत्तर 'इट्' होता है, किन्तु 'लिप्सा'-अर्थमें लुभ्-धातुका 'इट्' नहीं होता; यथा—लुभित (विमोहित, आकुलीकृत), (लिप्सार्थे) लुब्ध।

६१७। निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, अद्, वम्, क्लिश्, रुष्, तुष्, रप्, 'सम्'-पूर्वक घुष्, 'वि' और 'आ'-पूर्वक श्वस् धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है।

६१८। निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, छादि और ज्ञापि के स्थानमें विकल्पसे छद् और ज्ञप् होता है; यथा—छन्न, छादित; ज्ञप्त, ज्ञपित।

---

† ईदित धातु—कृत्, घृष्, जन्, त्रस्, दीप्, धुष्, प्याय्, मद् इत्यादि।

‡ ओदित धातु—डी, मस्ज्, मसृज्, रुज्, विज्, भुज् (तुदादि), लग्, स्मृज, दिव, हा इत्यादि।

६१९। निष्ठा प्रत्यय परे रहनेसे, दा धातुके स्थानमे 'दत्' होता है।

(क) 'आ' और 'प्र' उपसर्ग पूर्वमे रहनेसे, 'दा' धातुके स्थानमे विहित 'दत्' के दकारका विकल्पसे लोप होता है, यथा—(आ + दा) आदत्त, आत्त, (प्र + दा) प्रदत्त, प्रत्त।

६२०। 'इट्'-युक्त निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, पू, शी, धृष्, स्विद्, जागृ और (क्षमार्थं) मृष् धातुका गुण होता है, यथा—(पू) पवित, (शी) शयित, (धृष्) धर्षित, (स्विद्) स्वेदित, (जागृ) जागरित, (मृष्) मर्षित।

६२१। क्षै, पच् और शुष् धातु—परस्थित निष्ठाप्रत्ययके तकारमे मिलकर, यथाक्रम—क्षाम, पक्व और शुष्क होते हैं।

६२२। 'इट्-युक्त निष्ठा प्रत्यय परे रहनेसे, 'णिच्' का लोप होता है, यथा—(कथि) कथित, (कारि) कारित, (पालि) पालित, (स्थापि) स्थापित, (श्रावि) श्रावित।

(उदाहरण)

'क्त'-निष्पन्न पद।

अनिट्—(आकारान्त) ख्या—ख्यात, घ्रा—घ्राण, घ्रात, ज्ञा—ज्ञात, दा—दत्त, आ + दा—आदत्त, आत्त, प्र + दा—प्रदत्त, प्रत्त, द्रा—द्राण, धा—हित, पा—पीत, मा—मित, या—यात, स्था—स्थित, स्ना—स्नात, हा—हीन।

(इकारान्त) क्षि—क्षीण, चि—चित, जि—जित, श्रि—श्रित, श्वि—शून।

(ईकारान्त) क्री—क्रीत, क्षी—क्षीण, डी—डीन, दी—दीन;

नी—नीत, प्री—प्रीत, भी—भीत, ली—लीन; ह्री—ह्रीण, ह्रीत।

(उकारान्त) च्यु—च्युत, दु—दून; द्रु—द्रुत, नु—नुत, यु—युत, रु—रुत, श्रु—श्रुत, स्नु—स्नुत, हु—हुत।

(ऊकारान्त) लू—लून, धू—धूत, पू—पूत, ब्रू—उक्त, भू—भूत, दू—दून, सू—सून।

(ऋकारान्त) कृ—कृत, हृ—हृत, धृ—धृत, मृ—मृत, वृ—वृत।

(ॠकारान्त) कॄ—कीर्ण, गॄ—गीर्ण, जॄ—जीर्ण, तॄ—तीर्ण; दॄ—दीर्ण, पॄ—पूर्त्त, शॄ—शीर्ण, स्तॄ—स्तीर्ण।

(एकारान्त) वे—ऊत, व्ये—वीत, ह्वे—हूत।

(ऐकारान्त) क्षै—क्षाम, गै—गीत, ग्लै—ग्लान, त्रै—त्राण, त्रात; ध्यै—ध्यात, म्लै—म्लान, श्यै—श्यान (शुष्क), शीन (द्रवावस्थाया कठिनीभूत, घनीभूत, यथा—शीन घृतम्, स्पर्शार्थे—शीत, यथा—शीत समीरण), स्त्यै—स्त्यान।

(ओकारान्त) दो—दित, शो—शित, शात, सो—सित।

(कान्त) शक्—शक्त।

(चान्त) पच्—पक्व, पृच्—पृक्त, मुच्—मुक्त, रिच्—रिक्त, वच्—उक्त; सिच्—सिक्त।

(छान्त) प्रच्छ्—पृष्ट, मूर्च्छ्—मूर्त्त।

(जान्त) त्यज्—त्यक्त, भज्—भक्त, भञ्ज्—भग्न, भुज्—भुक्त,* मस्ज्—मग्न, सृज्—सृष्ट। यज्—इष्ट, युज्—युक्त, रञ्ज्—

---

* तुदादिगणीय कौटिल्यार्थक 'भुज्'—भुग्न। कौटिल्यम्—वक्रीकरणम् (टेढ़ा करना)।

रक्त, रुज्—रुग्ण, सञ्ज्—सक्त, सृज्—सृष्ट ।

(णान्त) क्षण्—क्षत ।

(तान्त) वृत्—वृत्त ।

(दान्त) अद्—जग्ध (भक्ष्यार्थे—अन्नम्), क्लिद्—क्लिन्न, क्षुद्—क्षुण्ण, खिद्—खिन्न, तुद्—तुन्न, तुत्त, पद्—पन्न, भिद्—भिन्न (खण्डार्थे—भित्तम्), मद्—मत्त, विन्द्—विन्न, वित्त (ख्यात), सद्—सन्न ।

(धान्त) क्रुध्—क्रुद्ध, बन्ध्—बद्ध, बुध्—बुद्ध, युध्—युद्ध, रुध्—रुद्ध, व्यध्—विद्ध, शुध्—शुद्ध, सिध्—सिद्ध ।

(नान्त) खन्—खात, जन्—जात, तन्—तत, मन्—मत, सन्—सात, हन्—हत ।

(पान्त) आप्—आप्त, क्षिप्—क्षिप्त, गुप्—गुप्त, तप्—तप्त तृप्—तृप्त, दीप्—दीप्त, दृप्—दृप्त, लिप्—लिप्त, लुप्—लुप्त, वप्—उप्त, स्वप्—सुप्त ।

(भान्त) रभ्—रब्ध, लभ्—लब्ध, लुभ्—लुब्ध, स्तम्भ्—स्तब्ध ।

(मान्त) कम्—कान्त, क्रम्—क्रान्त, क्लम्—क्लान्त, क्षम्—क्षान्त, गम्—गत, चम्—चान्त, तम्—तान्त, दम्—दान्त, नम्—नत, भ्रम्—भ्रान्त, यम्—यत, रम्—रत, शम्—शान्त, श्रम्—श्रान्त ।

(यान्त) प्याय्—पीन, प्यान, स्फाय्—स्फीत, स्फात ।

(रान्त) चूर्—चूर्ण, पूर्—पूर्ण ।

(वान्त) दिव्—द्यून ; ष्ठिव्—ष्ठ्यूत , सिव्—स्यूत ।

(शान्त) क्रुश्—क्रुष्ट , दन्श्—दष्ट , दिश्—दिष्ट , दृश्—दृष्ट , नश्—नष्ट , भ्रन्श्—भ्रष्ट , विश्—विष्ट स्पृश्—स्पृष्ट ।

(षान्त) इष्—इष्ट (दिवादि—इषित) , कृष्—कृष्ट ; तुष्—तुष्ट ; दुष्—दुष्ट , पुष्—पुष्ट , घृष्—घृष्ट , शिष्—शिष्ट शुष्—शुष्क ; श्लिष्—श्लिष्ट ।

(सान्त) अस्—भूत (दिवादि—अस्त) , ग्रस्—ग्रस्त ; त्रस्—त्रस्त ; ध्वन्स्—ध्वस्त , शन्स्—शस्त , शास्—शिष्ट , स्रन्स्—स्रस्त ।

(हान्त) गाह्—गाढ , गुह्—गूढ , दह्—दग्ध , दिह्—दिग्ध ; नह्—नद्ध , मुह्—मुग्ध, मूढ , रुह्—रूढ , लिह्—लीढ ; वह्—ऊढ सह्—सोढ , स्निह्—स्निग्ध ।

सेट्—(भ्रम्) भ्रमित , (ईक्ष्) ईक्षित ; (क्षुध्) क्षुधित (ग्रह्) गृहीत , (जागृ) जागरित ; (निन्द्) निन्दित ; (पठ्) पठित , (पत्) पतित ; (मुद्) मुदित , (लक्ष्) लक्षित ; (लिख्) लिखित , वद्—उदित ; वप्—उपित , (शी) शयित , (सेव्) सेवित , (हस्) हसित ।

वेट्—(क्लिश्) क्लिष्ट, क्लिशित , सम्+घुष्—सङ्घुष्ट, सङ्घुषित (जप्) जप्त , जपित ; (क्षुप) क्षुष्ट, क्षुपित ; (रुष्) रुष्ट, रुषित (वम्) वान्त, वमित , आ+श्वस्—आश्वस्त, आश्वसित , वि+श्वस्—विश्वस्त, विश्वसित , (हृष्) हृष्ट, हृषित ।

☞ सकर्मक-धातुके उत्तर कर्मवाच्यमें 'क्त' होता है ; इसलिये कर्मवाच्यमें 'क्त'-प्रत्यय-निष्पन्न शब्द कर्मका विशेषण, सुतरां

कर्मके लिङ्ग, विभक्ति और वचन प्राप्त होता है, यथा—ईश्वरेण जगत् सृष्टम्, मया गुरव समुपास्तिता, रामेण देवी आराधिता, मित्रेण पत्र्यौ लिखिते, मालिना पुष्पाणि चितानि।

※ 'किया गया, किया गया है, किया गया था'—इत्यादि सर्वप्रकार अतीत-कालकी क्रियाओंका अनुवाद 'क्त'-प्रत्ययान्त क्रिया-द्वारा निष्पन्न हो सकता है, यथा—(हमने अन्न खाया) अस्माभिरन्नं भुक्तम्, (रावणसे सीता हरी गयी थी) रावणेन सीता हृता, (मैंने वेदान्तशास्त्र पढ़ा है) मया वेदान्तशास्त्रं पठितम्, (श्राद्धमें शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंको प्रचुर दक्षिणा दी गयी) श्राद्धे शास्त्रविद्भ्यो विप्रेभ्य प्रभूता दक्षिणा दत्ता।

※ कर्तृवाच्यमें 'क्त'-प्रत्यय निष्पन्न शब्द कर्त्ताका विशेषण, यथा—स जागरित, सा भीता, जलं शुष्कम्, शिशु शयित, वृद्धो मृत।

※ भाववाच्यमें 'क्त'-प्रत्यय निष्पन्न शब्द जब समापिका क्रियाके तुल्य व्यवहृत होता है, तब सदाही क्लीवलिङ्ग प्रथमाका एकवचन होता है, यथा—शिशुना हसितम्; कन्यकया रुदितम्, श्रोतृभिरुपविष्टम्, ताभ्यामेकासने स्थितम्।

और जब विशेष्यशब्दके तुल्य व्यवहृत होता है, तब उसके रूप क्लीवलिङ्ग शब्दके समान, यथा गतम्, गते, गतानि रुदितम्, रुदिते, रुदितानि।

(२) क्तवतु।

६२३। कर्तृवाच्यमे धातुके उत्तर अतीत-कालमे 'क्तवतु'-प्रत्यय होता है, 'क्' और 'उ' इत्, 'तवत्' रहता है।

'क्त' प्रत्यय परे धातुका जैसा कार्य्य हुआ है, 'क्तवतु' परेभी ठीक वैसा कार्य्य होगा, यथा—(कृ) कृतवान्, (स्था) स्थितवान्, (भुज्) भुक्तवान् इत्यादि।

☞ 'क्तवतु'-प्रत्यय-निष्पन्न शब्द कर्त्ताका विशेषण, इसलिये कर्त्ताके लिङ्ग, बिभक्ति, वचन प्राप्त होता है, यथा—स पुस्तकं पठितवान्, तौ पुस्तकं पठितवन्तौ, ते पुस्तकं पठितवन्त, सा चन्द्रं दृष्टवती, ते चन्द्रं दृष्टवत्यौ, ताश्चन्द्रं दृष्टवत्य, वृक्षात् फलं पतितवत्, वृक्षात् फले पतितवती, वृक्षात् फलानि पतितवन्ति।

☞ हिन्दीमे व्यवहृत 'हुआ, हुआ है, हुआ था' 'किया, किया है, किया था' इत्यादि समस्तप्रकार अतीतकालकी क्रियाका अनुवाद संस्कृतमे 'क्तवतु' प्रत्यय द्वारा किया जा सकता है; यथा—(श्याम घरसे गया) श्यामः गृहात् गतवान्, (हनुमान्ने लङ्का जलायी थी) हनुमान् लङ्कां दग्धवान्, (अगस्त्यने समुद्रका पान किया) अगस्त्यः समुद्रं पीतवान्, (उसकी एक कन्या हुई थी) तस्यैका कन्या जातवती।

☞ 'क्तवतु' और 'क्त'-प्रत्यय-निष्पन्न शब्द समापिका क्रियाके तुल्य प्रयुक्त न होकर, केवल विशेषण-स्वरूप व्यवहृत होनेसे, विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होता है। यथा—अधीतवान्

छात्र *, अधीतवन्त छात्रम्, अधीतवता छात्रेण, अधीतवते छात्राय इत्यादि। भीत शिशु, भीत शिशुम्, भीतेन शिशुना इत्यादि।

※ 'क'-प्रत्ययान्त क्रिया भविष्यत् और वर्त्तमान कालकी क्रियाके साथ युक्त होनेसे, भविष्यत् और वर्त्तमानका अर्थ प्रकाश करती है, यथा—(वेद पढा गया था) वेद पठित अभवत्, (शत्रु आहत होगा) शत्रु आहत भविष्यति, (धन लब्ध होता है) धन लब्ध भवति।

अनुवाद करो—गरमीमें सब जल सूख गया था। समस्त फल गिर गये। अभी वह खानेको गया। हमलोग नदीमें थे। तुम कहाँ थे? कथा तू कल आया था? कुम्भकर्णने सीताको नहीं देखा। लक्ष्मणने इन्द्रजित् को मारा था। युधिष्ठिरने भीष्मको बहुत प्रश्न पूछे।

(Perfect participle)

(१) क्सु।

६२४। कर्तृवाच्यमें परस्मैपदी धातुके उत्तर अतीतकालमें 'क्सु'-प्रत्यय होता है, 'क्' और 'उ' इत्, 'वस्' रहता है।

लिट्का 'उ' परे धातुका जो जो कार्य्य होता है, 'वस्' परेभी वही कार्य्य होगा, यथा—(भू) बभूवस्, (श्रु) शुश्रुवस्, (स्तु) तुष्टुवस्, (विद्) विविद्वस्।

६२५। 'क्सु' परे, घस्, इण् और आकारान्त धातुके उत्तर 'इट्' होता है, यथा—(घस्) जक्षिवस्, (इण्) ईयिवस्; (स्था) तस्थिवस्, (दा) ददिवस्, (पा) पपिवस्।

* जिसने अध्ययन किया था—ऐसा छात्र।

६२६ । अभ्यस्त-कार्य्यके पश्चात् जो धातु एकस्वर-विशिष्ट रहते हैं, 'क्वसु'-प्रत्यय परे, उन धातुओंके उत्तर 'इट्' होता है ; यथा—(पच्) पेचिवस्, (पत्) पेतिवस्, (वच्) ऊचिवस्, (वस्) ऊषिवस्, (यज्) ईजिवस्, (सद्) सेदिवस् ।

६२७ । 'क्वसु'-प्रत्यय परे रहनेसे, गम्, हन्, विश्, दृश् और तुदादि विद् (विन्द्) धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है ; यथा—(गम्) जग्मिवस्,* जगन्वस्, (हन्) जघ्निवस्, जघन्वस्, (विश्) विविशिवस्, विविश्वस्, (दृश्) ददृशिवस्, ददृश्वस्, (विन्द्) विविदिवस्, विविद्वस् ।

(२) कानच् (कान) ।

६२८ । अतीतकालमें आत्मनेपदी धातुके उत्तर 'कानच्'-प्रत्यय होता है, 'च्' इत्, 'आन' रहता है ।

लिट्की 'आते' विभक्तिमें जो जो कार्य्य होता है, 'आन' परेमें वही कार्य्य होगा ; यथा—(बुध्) बुबुधान, (रच्) ररचान ; (वन्द्) ववन्दान, (शिक्ष्) शिशिक्षाण · (व्यथ्) विव्यथान ; (सह्) सेहान ; (सेव्) सिषेवाण ;† (कृ) चक्राण, (वच्) ऊचान ।

☞ 'किया है जिसने—ऐसा'—इस अर्थमें धातुके उत्तर 'क्वसु' और 'कानच्' होते हैं ।

'क्वसु' और 'कानच्' प्रत्यय-द्वारा जो शब्द निष्पन्न होते हैं, वे विशेषण, सुतरां विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होते हैं ;

---

* तीर्थं जग्मिवान् वृद्ध—जो तीर्थमें गया था, ऐसा वृद्ध ।

† पितर सिषेवाण पुत्र—जिसने पिताकी सेवा की थी, ऐसा पुत्र ।

यथा—शुश्रुवान् (सुना है जिसने—ऐसा) पुरुष , शुश्रुवांस पुरुषम् , शुश्रुवुषा पुरुषेण , विविदुषी कन्या, विविदुषीं कन्याम्, विविदुष्या कन्यया , पेतिव पत्रम्, पेतुषा पत्रेण इत्यादि।

※ कर्मवाच्यमेभी 'कानच्'-प्रत्यय होता है , यथा—सिषेवाण (जिसकी सेवा की गयी थी—वह)।

(Future participle)

(१) स्यतृ ।

६२९ । कर्त्तृवाच्यमे परस्मैपदी धातुके उत्तर भविष्यत्का-लमे 'स्यतृ'-प्रत्यय होता है , 'ऋ' इत्, 'स्यत्' रहता है ।

'लृट्' परे धातुका जो जो कार्य्य होता है, 'स्यत्' प्रत्यय परेभी वही कार्य्य होगा , यथा—(भू) भविष्यत्, (गम्) गमिष्यत्, (श्रु) श्रोष्यत्, (जि) जेष्यत्, (कारि) कारयिष्यत्।

(२) स्यमान ।

६३० । कर्त्तृवाच्यमे आत्मनेपदी धातुके उत्तर भविष्यत्-कालमे 'स्यमान' प्रत्यय होता है ।

'स्यमान' परेभी 'लृट्' विभक्तिका समुदाय कार्य्य होता है , यथा—(सेव्) सेविष्यमाण , (वृत्) वर्त्तिष्यमाण , (जन्) जनिष्यमाण , (पद्) पत्स्यमान , (सह्) सहिष्यमाण ।

६३१ । कर्त्तृवाच्यमे उभयपदी धातुके उत्तर भविष्यत्-कालमे 'स्यतृ' और 'स्यमान'—दोनो होते हैं , यथा—(स्तु) स्तोष्यत्, स्तोष्य-माण , (दा) दास्यत्, दास्यमान , (धा) धास्यत्, धास्यमान , (ग्रह्) ग्रहीष्यत्, ग्रहीष्यमाण , (कृ) करिष्यत्, करिष्यमाण ।

६३२ । कर्मवाच्यमें धातुके उत्तर भविष्यत्-कालमें 'स्यमान' होता है ; यथा—(ज्ञा) ज्ञास्यमान, ज्ञापयिष्यमाण ; (श्रु) श्रोष्यमाण, श्राविष्यमाण , (कृ) करिष्यमाण, कारिष्यमाण ; (दृश्) द्रक्ष्यमाण, दर्शयिष्यमाण , (दह्) धक्ष्यमाण , (वच्) वक्ष्यमाण ।

※ 'करेगा जो—ऐसा'—यह अर्थ समझानेमें, धातुके उत्तर 'स्यतृ' और 'स्यमान' होते हैं ।*

'स्यतृ' और 'स्यमान' प्रत्यय-द्वारा जो शब्द निष्पन्न होते हैं, वे विशेषण, इसलिये विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होते हैं । यथा—(कर्तृवाच्य) गमिष्यन् (जायेगा जो—ऐसा) पुरुष , गमिष्यन्तौ पुरुषौ, गमिष्यन्तः पुरुषाः , गमिष्यन्तं पुरुषम् , गमिष्यता पुरुषेण , जनिष्यमाणा कन्या, जनिष्यमाणां कन्याम् , जनिष्यमाणया कन्यया , पतिष्यत् पत्रम् , पतिष्यता पत्रेण, पतिष्यतः पत्रस्य इत्यादि । (कर्मवाच्य) करिष्यमाणं कर्म,† करिष्यमाणे कर्मणी, करिष्यमाणानि कर्माणि, करिष्यमाणेन कर्मणा, करिष्यमाणात् कर्मणः , करिष्यमाणे कर्मणि; वक्ष्यमाण (जो कहा जायेगा—

* उद्देश्य या अभिप्राय समझानेमेंभी 'स्यतृ' और 'स्यमान' होते हैं ; यथा—"कस्मात् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान् स दाव विचचार" र० २ ८. (दुष्ट वन्यजन्तुओंको वश करनेके उद्देश्यसे) ; "करिष्यमाणः सशरं शरासनम्" र० ३ ५२ (धनुषको शरयुक्त करनेके अभिप्रायसे) ।

† जो किया जायेगा—ऐसा काम ।

'गम्'-धातुके उत्तर 'स्यमान' करनेसे 'गम्यमान' होता है ('गमिष्यमाण' नहीं होता) ।

ऐसा) वचनम्, वक्ष्यमाणेन वचनेन, वक्ष्यमाणात् वचनात्, वक्ष्यमाणस्य वचनस्य, वक्ष्यमाणेषु वचनेषु इत्यादि ।

णमुल् (णम्) Gerund in अम् ।

६३३ । 'पौन पुन्य'-अर्थमे 'क्त्वा' के स्थानमे पूर्वकालिक-क्रियाबोधक धातुके उत्तर 'णमुल्' प्रत्यय होता है, 'ण्' और 'उल्' इत्, 'अम्' रहता है ।

'णमुल्' प्रत्ययान्त क्रिया असमापिका और अव्यय ।

प्रयोगकालमे यह द्विरुक्त होकर व्यवहृत होती है, यथा—(स्मृ) स्मार स्मार * नमति (स्मृत्वा स्मृत्वा—पुन पुन स्मृत्वा इत्यर्थ) ।

(पा) पायम्, (श्रु) श्रावम्, (स्तु) स्तावम्, (नम्) नामम्, (ग्रह्) ग्राहम्, (भुज्) भोजम्, (भिद्) भेदम्, (क्षिप्) क्षेपम्, (मृश्) मर्शम्, (स्पृश्) स्पर्शम्, (हस्) हासम्, (गाह्) गाहम् ।

(क) 'णमुल्' प्रत्यय परे रहनेसे, 'हन्' धातुके स्थानमे 'घात्' होता है, यथा—घातम् ।

६३४ । कथम्, इत्थम्, एवम् और अन्यथा शब्दके परस्थित 'कृ'-धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है,—यदि इसप्रकार 'णमुल्'-प्रत्यय निष्पन्न पदोंका अर्थ उन शब्दोंकेही समान हो, यथा—कथङ्कारम् (कथमित्यर्थ —कैसे), "कथङ्कारमनालम्ब्य कीर्त्तिर्द्यामधिरोहति ?" माघ० २ ५२, इत्थङ्कारम् (इत्थमित्यर्थ —ऐसे), एवङ्कारम् (एवमित्यर्थ —ऐसे),

* 'णित्' कार्य्य होता है ।

अन्यथाकारम् (अन्यथा इत्यर्थ —अन्यप्रकारेण) ,—यहाँ 'कृ'-धातु निरर्थक है।

६३५। 'साकल्य' अर्थ समझानेसे, कर्मपदके परवर्ती दृश् और विद् धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है, यथा—दरिद्रदर्शं ददाति (दरिद्र दरिद्र दृष्ट्वा—य य दरिद्र पश्यति, त त ददाति—सर्वान् दरिद्रान् इत्यर्थ), विप्रवेदं भोजयति (विप्र विप्र विदित्वा—य य विप्र वेत्ति विन्दति विचारयति वा, तं त भोजयति—सर्वान् विप्रानित्यर्थ.)।

६३६। 'यावत्' शब्दके परवर्ती 'जीव्'-धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है, यथा—यावज्जीवम् अधीते (यावत् जीवति, तावत् इत्यर्थ)।

६३७। कर्मवाचक 'उदर' शब्दके परवर्ती 'पूरि'-धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है, यथा—उदरपूरं भुङ्क्ते (उदर पूरयित्वा इत्यर्थ —पेट भरके)।

६३८। 'त्वरा' समझानेसे, अपादानवाचक पदके परवर्ती धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है, यथा—शय्योत्थायं धावति (शय्यायाः शीघ्रम् उत्थायेत्यर्थ)।

६३९। कर्मवाचक 'नाम'-शब्दके परवर्ती 'ग्रह्' धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है, यथा—नामग्राहम् आह्वयति (नाम गृहीत्वा इत्यर्थ)।

६४०। तृतीयान्त और सप्तम्यन्त पदके परवर्ती 'उप'-पूर्वक 'पीड्' और 'उप'-पूर्वक 'रुध्' धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है; यथा—पार्श्वोपपीडं शेते (पार्श्वाभ्यां पार्श्वेन पार्श्वयोर्वा उपपीड्य इत्यर्थ); "स्तनोपपीडं परिरब्धुकामा" (स्तनयोरुपपीड्य इत्यर्थ) मा० ३. ५४; व्रजोपरोधं गा स्थापयति (व्रजेन व्रजे वा उपरुध्य इत्यर्थ)।

६४१। किसी अवयवका परिक्लेश अर्थात् सम्पूर्णरूपसे पीडा

समझानेसे, उस अवयववाचक द्वितीयान्त पदके परवर्त्ती धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है, यथा—"स्तनसन्नाहमुरो जघान च" (स्तनौ सन्नाह्य इत्यर्थं) कु० ४ २६, "उरोविदार प्रतिचस्कारे नखै" (नखै उरो विदार्य्य हत इत्यर्थं) माघ० १ ४७ ।

६४२ । क्रियाविशेषणवाचक 'समूल' शब्दके परवर्त्ती 'कष्' (हिंसायाम्) और 'हन्' धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है, यथा—समूलकाषं कषति, समूलघातं हन्ति (समूल कषति, हन्ति इत्यर्थं) ।*

६४३ । 'जीव'-शब्दके परवर्त्ती 'ग्रह्'-धातुका 'णमुल्' होता है, यथा—जीवग्राहं गृह्णाति (जीव गृह्णाति—जीवन्त गृह्णातीत्यर्थ —जीवतीति जीव, जीव्+क—जीता पकड़ता है) ।

६४४ । करणबोधक शब्दके परवर्त्ती 'हन्' और 'पिष्' धातुका 'णमुल्' होता है, यथा—पादघातं भूमिं हन्ति (पादेन हन्तीत्यर्थं), "सूत्रधारो दारुवर्मा येनोधकपुरं मरे पद्मतिलेबैसौधघात हत" मुद्रा० २, दृषेण पिनष्टि (दृषेन पिनष्टीत्यर्थ) ।

६४५ । हस्तवाचक करणपदके परवर्त्ती 'ग्रह्' धातुका 'णमुल्' होता है, यथा—हस्तग्राहं गृह्णाति (हस्तेन गृह्णातीत्यर्थं), पाणिग्राहम्, करग्राहम् ।

६४६ । कर्तृविशेषण 'ऊर्द्ध'-शब्दके परवर्त्ती 'शुष्'-धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है; यथा—ऊर्द्धशोषं शुष्यति तरु (तरु ऊर्द्ध—उन्नत —

---

* इस सूत्रसे लेकर परवर्त्ती सूत्रोंमे जिन धातुओंके उत्तर 'णमुल्' विहित होगा, उनका पुन प्रयोग करना होगा । इसीलिये सब उदाहरणोंमेही उन धातुओंका पुन प्रयोग दृष्ट होगा ।

एव तिष्ठन् शुष्यतीत्यर्थ —खड़ा खड़ा सूख जाता है)।

६५७। उपमानवाचक कर्तृपद और कर्मपदके परवर्ती धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है। यथा—(कर्त्ता) विद्युत्प्रणाशं प्रनष्ट (विद्युदिव क्षणेनैव विनष्ट इत्यर्थ), शलभनाशं नश्यति (शलभ इव अविमृश्यकारी पुरुषो नश्यतीत्यर्थ), पार्थसञ्चारं चरति (पार्थ इव सशौर्यं चरतीत्यर्थ); "चित्तिचिन्ताश्रविलायं वा विलीने नगमूर्द्धनि"(चित्तिचिन्तामिव विलीने इत्यर्थ) भा० ११ ७१। (कर्म) पितृवेदं वेत्ति गुरम् (गुरुं पितरमिव जानाती त्यर्थ), पुत्रदर्शं पश्यति शिष्यम् (शिष्यं पुत्रमिव स्नेहेन पश्यती- त्यर्थ), रत्ननिधायं निदधाति (रत्नमिव सयत्न निदधातीत्यर्थ); सैकतभेदं भिनत्ति शैलम् (सैकतमिव अनायासेनैव भिनत्तीत्यर्थ); धन चायं चिनोति धर्मम् (धनमिव यत्नेन अवधानेन च चिनोतीत्यर्थ), "अहं येनेदिपशुमारं मारितः, सोऽनन स्वागतेनाभिनन्द्यते।" शकु० ६।

(अन्य उदाहरण)

चौरङ्कारम् आक्रोशति (चौरं कृत्वा*—चौरोऽसीत्युक्त्वा इत्यर्थ ; 'मु'-आगम)। स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते, लवणङ्कारं भुङ्क्ते (स्वादु कृत्वा, लवण कृत्वा इत्यर्थ)। पुष्पवर्जम् (पुष्पं वर्जयित्वा इत्यर्थ.)।

'कृत्'-विषयक प्रश्नमाला।

निम्नलिखित धातुओंके उत्तर शतृ वा शानच्, क्वसु वा कान, स्यतृ वा स्यमान, क्त, क्तवतु, तव्य, अनीय, य, तुम्, क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय करनेसे कौन कौन पद होगा, कहो—

अस्, आप्, आस्, इष्, ईक्ष्, कथ्, कृ, क्री, क्षिप्, गम्, घ्रा, चर्,

---

* करोतिरत्र भाषणार्थं।

जन्, जागृ, जि, ज्ञा, त्यज्, दह्, दा, दृश्, नम्, नी, नृत्, पठ्, पत्, पा, प्रच्छ्, ब्रू, भुज्, भू, मृ, या, रक्ष्, रुद्, रुह्, लभ्, लिख्, वद्, वस्, शक्, शी, श्रु, सद्, सृज्, सेव्, स्था, स्पृश्, स्मृ, हन्, हस्, हृ ।



कारक-प्रकरण ।

हे मित्र, राजा कोशसे पुत्रके जन्मदिनमे दरिद्रोंको स्वहस्तसे धन देता है—इस वाक्यमे,

कौन देता है ?—राजा ,

क्या देता है ?—धन ,

किससे देता है ?—स्वहस्तसे ,

किनको देता है ?—दरिद्रोंको ,

कहाँसे देता है ?—कोशसे ,

किस दिनमे देता है ?—जन्मदिनमे ,—इस रीतिसे राजा, धन, स्वहस्त, दरिद्र, कोश और जन्मदिन, इन छ पदोंका क्रियाके साथ अन्वय है। पर 'मित्र' और 'पुत्र'—इन दोनो पदोंका क्रियाके साथ अन्वय नहीं है, क्योंकि 'हे मित्र देता है', अथवा 'पुत्रके देता है'—ऐसा वाक्य नहीं हो सकता। ('मित्र'—सम्बोधनपद, 'पुत्रके'—सम्बन्धपद)।

६४८। क्रियाके साथ जिसका अन्वय अर्थात् सम्बन्ध रहता है, उसको 'कारक' कहते हैं।*

---

* क्रियोपयोगि क्रियान्वयि कारकम्।

कारक छ-प्रकार—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण।

कर्त्ता।

६४९। क्रियासम्पादन-विषयमें जो स्वतन्त्र (स्वाधीन), अर्थात् प्रधानभावसे विवक्षित होता है, (जो अन्य किसी कारकके अधीन न होकर स्वयं क्रिया-निष्पादन करता है), वह 'कर्तृकारक'।* यथा—सूदः पचति—यहाँ पाकक्रियामें सूपकारका व्यापार अन्यके व्यापारके अधीन नहीं। रामेण स्थीयते।

कर्म।

६५०। कर्त्ताकी क्रिया-द्वारा जो आक्रान्त होता है, उसे 'कर्म-कारक' कहते हैं, † यथा—बाल॰ चन्द्रं पश्यति, हरिं भजति साधु॰।

६५१। 'अधि'-पूर्वक—शी, स्था, आस् धातु, और 'अधि' तथा 'आ' पूर्वक—वस् धातुमें अधिकरण कारकको कर्मसंज्ञा होती है। यथा—(अधि + शी) शय्यायां शेते = शय्याम् अधिशेते, 'भोग्मोऽधिशिश्ये किल' धामशय्याम्'। (अधि + स्था) गृहे तिष्ठति = गृहम् अधितिष्ठति; "भर्द्यासन गोत्रभिदोऽधितष्ठौ" र० ६. ७३। (अधि + आस्) आसने आस्ते = आसनम् अध्यास्ते, 'मम्याववमध्यास्ते चन्द्रे न वन वनम्'। (अधि + वस्) नगरे वसति = नगरम् अधिवसति, 'मुक्ति मुक्ताऽधि-

---

* स्वतन्त्र कर्त्ता। † क्रियाव्याप्य कर्म।

वसति'। (आ+वस्) गुरोरालये वसति=गुरोरालयम् आवसति।*

६६२। दुह्, याच्, चि, प्रच्छ्, नी, मन्थ् प्रभृति † कई धातुओंके दो कर्म रहते हैं, एकका नाम 'मुख्य' वा 'प्रधान' (Direct object), अपरका नाम 'गौण' वा 'अप्रधान' (Indirect object)। क्रियाके साथ प्रधानभावसे जिसका अन्वय होता है, उसको 'प्रधान कर्म', और अप्रधानभावमें जिसका अन्वय होता है, उसको 'अप्रधान कर्म' कहते हैं। यथा—गोपो गां दुग्धं दोग्धि, दरिद्रो राजानं धनं याचते, मालाकारो वृक्षं पुष्पं चिनोति, शिष्यो गुरुं धर्मं पृच्छति; पिता पुत्रं गृहं नयति, देवा जलनिधिमृतं ममन्थु,—यहाँ दुग्ध, धन, पुष्प, धर्म, पुत्र, अमृत 'प्रधान कर्म', और गो, राजा, वृक्ष, गुरु, गृह, जलधि 'अप्रधान कर्म'। इस अप्रधान कर्मकोही 'अकथित और अविवक्षित कर्म' कहते हैं, अर्थात् दोनो कर्मोंके वाचक जिसमें अन्य कारककी प्रवृत्तिकी सम्भावना रहती है, पर वक्ताकी इच्छाके अभावसे इन सब कारकोंकी प्रवृत्ति न होकर कर्म-कारक प्रवृत्त होता है, वेसेही 'अकथित, अविवक्षित और अप्रधान कर्म' कहते हैं। पूर्वोक्त उदाहरणोंमें 'गो'-प्रभृतिकी कर्म-संज्ञा हुई है, परन्तु विवक्षा रहनेसे,—गोर्दुग्धं दोग्धि, राज्ञो धनं याचते, वृक्षात् पुष्पं चिनोति, गुरोर्धर्मं पृच्छति; पुत्रं गृहे नयति; जलधेरमृतं ममन्थु —इसप्रकार यथासम्भव अपादानादिकारक प्रवृत्त हो सकते।

---

* इन सब उपसर्गोंके साथ वे सब धातु कृत्प्रत्यय-योगसे क्रियावाचक विशेष्य होनेपर, उनका अधिकरणकारक कर्म नहीं होता, यथा—शय्या-याम् अधिशयनम् इत्यादि।

† २०८ सूत्र (क) टिप्पनी द्रष्टव्य।

अवशिष्ट द्विकर्मक धातुके उदाहरण, यथा—

पुत्र नीतिं मूते, वदति वा, तण्डुलान् ओदनं पचति, शत्रुं राज्य जयति; दुष्टान् शतं दण्डयति राजा, धार गृहं रुणद्धि, साधून् धन मुष्णाति चोर, शिष्यं धर्मं शास्ति, ग्रामम् अजा कर्षति, हरति, वहति वा ।

करण ।

६५३ । कर्त्ताकी क्रियासिद्धिमे जो अत्यन्त उपकारक, उसे 'करण कारक' कहते हैं,* यथा—दात्रेण लुनाति, "सञ्चूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू ।" वेणी० १ १५ ।

सम्प्रदान ।

६५४ । दानकर्मके उद्देश्यभूत जो कारक, अर्थात् कर्त्ता जिसको उद्देश करके स्वत्वत्यागपूर्वक कोई वस्तु दान करता है, उसे 'सम्प्रदान-कारक' कहते हैं,† यथा—विप्राय गां ददाति, शिष्याय विद्या ददाति ।

६५५ । जिसको उद्देश करके, अथवा जिसको प्रीति उत्पादनके लिये किसी क्रियाका अनुष्ठान किया जाता है, उसकोभी सम्प्रदान संज्ञा होती है । यथा—युद्धाय सन्नह्यते राजा (युद्धम् उद्दिश्य, अभिप्रेत्य इत्यर्थ); पत्ये शेते (पतिम् उद्दिश्य इत्यर्थ) । पुत्राय क्रीडनकम् आनयति (पुत्र प्रीणयितुम् इत्यर्थ), गुरवे दक्षिणामाहरति; 'दर्शयते शिवाय शशिबिम्बम्', 'नृपायोपहार प्रजा प्रेरयन्ति',

---

* साधकतमं करणम् ।

† दानकर्मणा यमभिप्रैति, स सम्प्रदानम् ।

"तत्तद्भूमिपति पत्न्यै दर्शयन् प्रियदर्शनः ।
अपि लङ्घितमध्वानं बुबुधे न बुधोपम ॥" र० १ ४७. । *

६६६ । रुच्यर्थक (रुचि अर्थविशिष्ट) धातुका कर्ता जिसकी प्रीति उत्पादन करता है, उसकी सम्प्रदान-संज्ञा होती है , यथा—मोदक शिशवे रोचते , साधवे रोचते धर्म , 'कदाचिदाटुवचन सुजनेभ्यो न रोचते' ; "यत् प्रभविष्णवे रोचते" शकु० २ , इदं मह्यं स्वदते , सद्यो स्वदते तस्वम् ।

६६७ । 'स्पृहि'-धातुके प्रयोगमें, कर्त्ताका जो ईप्सित अर्थात् अभिलषित विषय, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है , यथा—धर्माय स्पृहयति , "परिक्षीणो यवाना प्रसृतये स्पृहयति" भर्तृ० ।

६६८ । 'धारि' धातुके प्रयोगमें, जो उत्तमर्ण (धन स्वामी—जिसके पास ऋण लिया जाता है), उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है , यथा—स मह्यं शतं धारयति (वह मेरे पास सौ रुपये धारता है) , "वृक्षसेचने द्वे धारयसि मे" शकु० १ ।

---

* कोशलाधिपतये पुरोधसं प्राहिणोत् , "भोजेन दूतो रघवे विसृष्ट" र० ५ ३९ , "रक्षस्तस्मै महोपलं प्रजिघाय" र० १५ २१ , "राममिष्वसनदर्शनोत्सुकं मैथिलाय कथयाम्बभूव स" र० ११ ३७ , "ते रामाय यथोपायमाचख्युर्विबुधाद्विषः" र० १५ ५ , "तस्मै शशास प्रणिपत्य नन्दी" कु० ३. ६० , "वर्णाश्रमाणां गुरवे प्रस्तुतमाचचक्षे" र० ५ १९ , "उपस्थितां होमवेला गुरवे निवेदयामि" शकु० ४ , "याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ" उत्तर० ४ ९ , "यस्मै मुनिर्वैश्च परं विवव्रे" महावीर० २ ४२ ,—इत्यादिस्थलोंमेंभी इसी सूत्रके अनुसार 'उद्दिश्य वा अभिप्रेत्य' अर्थमें सम्प्रदानत्व समझना ।

६५९ । क्रोधार्थक, द्रोहार्थक, ईर्ष्यार्थक और असूयार्थक* धातुके प्रयोगमें, क्रोधादिका जो उद्देश्य, अर्थात् जिसके प्रति क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या-प्रभृति होता है, उसको सम्प्रदान-संज्ञा होती है, यथा—भृत्याय कुप्यति ; शत्रवे द्रुह्यति ; प्रतिवेशिने ईर्ष्यति ; प्रतिद्वन्द्विने असूयति । †

६६० । 'प्रति'-पूर्वक 'श्रु' और 'आ'-पूर्वक—'श्रु' धातुके प्रयोगमें, जो याच्ञा करता है, अथवा जिसके पास अङ्गीकार किया जाता है, उसको सम्प्रदान-संज्ञा होती है, यथा—भिक्षुकाय वस्त्रं प्रतिशृणोति, आशृणोति वा (वस्त्रं याचमानाय भिक्षुकाय वस्त्रं दातुम् अङ्गीकरोतीत्यर्थः) ; "प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम्" र० १५. ४. ।

अपादान ।

६६१ । अपाय अर्थात् विश्लेष (विभाग, वियुक्त होना, अलग होना, दूर जाना) समझानेसे, जो ध्रुव (निश्चल), अर्थात् जिससे विश्लेष अथवा दूरगमन सम्पन्न होता है,‡ उसे 'अपादान-कारक' कहते हैं ;* यथा—भिन्नभाण्डात् पयः स्रवति ; विभीषणो लङ्कायाः रामान्तिकं ययौ ।

---

* द्रोह—अनिष्टचिन्ता, ईर्ष्या—असहना (किसीकी भलाई न सह सकना), असूया—गुणमें दोषारोप ।

† क्रुध् और द्रुह् धातु उपसर्गयुक्त होनेसे, सम्प्रदानको कर्म-संज्ञा होती है, यथा—भृत्यमभिक्रुध्यति, शत्रुमभिद्रुह्यति ।

"मया पुनरेष्य एकाकिनोऽभिद्रोग्धुमर्हेनाप्युपधारितमिदं कृतं" उत्तर० ६ ; "नाभिद्रुह्यति भूतेभ्यः" भागवतम् ।

‡ यतोऽपायः ।

६६२। भयार्थ और रक्षार्थ धातुके प्रयोगमें, भय हेतुकी* अपादान-संज्ञा होता है। यथा—(भयार्थ) 'बिभेति दुर्जनात् साधु', पापात् त्रस्यति सज्जन, "तीक्ष्णादुद्विजते श्री" मुद्रा० ३ ५, (ऐसे—"लोकापवादाद्भयम्" भर्तृ० २, "तृणबिन्दो परिशङ्कित" र० ८. ७९)। (रक्षार्थ) भल्लूकात् रक्षति, आतपात् त्रायते।

६६३। उत्पत्तिका जो कारण,† वह अपादान संज्ञक होता है, यथा—बीजाऽङ्कुरो जायते, मृदो घटो जायते, सुवर्णात् कुण्डल जायते, दुग्धात् घृतमुत्पद्यते, पितु पुत्रो जायते, धर्मात् सुख भवति अधर्मात् दु ख-मुत्पत्ति। §

---

* ध्रुवमपायेऽपादानम्। † यतो भी। यतस्त्राणम्। ‡ यतो भू।

§ "जनिकर्तु प्रकृति" [जनिरुत्पत्ति, तस्या कर्तु (य खलु उत्पद्यते, स एव उत्पत्ते कर्ता, तस्य) उत्पद्यमानस्य पदार्थस्येत्यर्थ, प्रकृति उपादानम् अपादानसंज्ञिका भवति]—इत्यस्मिन् पाणिनिसूत्रे उपादानकारणवाचित्वेन प्रसिद्धस्य 'प्रकृति'-शब्दस्य उपादानात् उपादानकारणस्यैव अपादानत्व व्यक्त प्रतिपाद्यते। अत एव हि शारीरकमीमांसाभाष्यकारेण (१ ४ २३ सूत्रे) ब्रह्मण उपादानकारणत्वे सूत्रमिद प्रमाणतया उपन्यस्तम्, यथा—"'यत' इतीय पञ्चमी 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यत्र 'जनिकर्तु प्रकृति' इति विशेषस्मरणात् प्रकृतिलक्षण एवापादाने द्रष्टव्या" इति।

काशिकावृत्तिकृता तु 'प्रकृति कारण हेतु' इत्येव व्याचक्षाणेन कारणमात्रस्यैव अपादानत्वमभिप्रेयत इति प्रतिभाति। तत सङ्क्षिप्तसारटीकाया गोयीचन्द्रेणापि—"अत्र 'प्रकृति'-ग्रहण सर्वकारणोपसङ्ग्रहणार्थम्" इति स्फुट मुल्लिखितम्।

६६४ । 'भू'-धातुके प्रयोगमें, आविर्भावभूमि अर्थात् आद्यप्रकाश स्थानकी अपादान संज्ञा होती है ; यथा—हिमवतो गङ्गा प्रभवति (तत्र प्रथमत उपलभ्यते, प्रकाशते इत्यर्थ), "वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनु:-खण्डमाखण्डलस्य" (आविर्भवतीत्यर्थ) मेघ० १६ ।

६६५ । विरामार्थक धातुके प्रयोगमें, जिससे विराम होता है,* उसकी अपादान-संज्ञा होती है, यथा—अध्ययनात् विरमति, कलहात् निवर्त्तते ; "यस्मैतस्माद् विरम" उत्तर० १, "प्राणाघातान्निवृत्ति" भर्तृ० २ ।

६६६ । जुगुप्सार्थक धातुके प्रयोगमें, जिससे जुगुप्सा होती है,† उसकी अपादान संज्ञा होती है, यथा—पापात् जुगुप्सते ; नरकात् बीभत्सते ।

६६७ । प्रमादार्थक धातुके प्रयोगमें, जिस विषयमें प्रमाद होता है, ‡ उसकी अपादान संज्ञा होती है , यथा—पाठात् प्रमाद्यति , अध्ययनात् अनवधानम् , "स्वाधिकारात् प्रमत्त" मेघ० १ , धर्मात् मुह्यति ।

६६८ । 'अन्तर्धान' (पोशीदगी) समझानेसे, जिससे अपनेको छिपाना चाहता है, § उसकी अपादान संज्ञा होती है ; यथा—गुरो अन्तर्धत्ते, पितु निलीयते, दस्यो लुकायते (गुरु पिता दस्युर्वा मा मा द्राक्षीत् इति लज्जया भयेन वा तद्दर्शनपथात् अपसरतीत्यर्थ) ।

---

* यतो विराम ।

† यतो जुगुप्सा । ("गर्हायाश्चित्तनिवृत्तिर्जुगुप्सा) ।

‡ यत्र प्रमाद । (विहितार्थात् निवृत्ति प्रमाद) ।

§ यतोऽन्तर्द्धि ।

६६९। वारणार्थक-धातुके प्रयोगमे, निवार्य्यमाणका (जिसका निवारण किया जाता है, उसका) जो ईप्सित (अभिलषित) पदार्थ, अर्थात् जिससे निवारण किया जाता है,* उसका अपादान संज्ञा होती है, यथा—यवेभ्यो गां वारयति, अन्नेभ्य काकं निषेधति, व्यसनात् पुत्रं निवारयति।

६७०। जिसके पास नियम-पूर्वक अध्ययन किया जाता है, जिसके पास सुना जाता है, और जिससे लिया† अथवा पाया जाता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है, यथा—गुरो शास्त्रम् अधीते, पठति, कस्मात् श्रुतं भवता?—मया श्रुतमिदं तातात्, धनाम्य करम् आदत्ते, गृह्णाति, गुरो ज्ञानं लभते, प्राप्नोति।

अधिकरण।

६७१। कर्त्ता और कर्म-द्वारा व्यवहित क्रियाका जो आधार, अर्थात् क्रियाश्रयभूत कर्त्ता और कर्म जिसमे अवस्थान करते हैं, उसे 'अधिकरण कारक' कहते हैं।

आधार चतुर्विध—(१) आश्लेष (अर्थात् एकदेश सम्बन्ध),‡ (२) विषय, (३) व्याप्ति (सर्वांश सम्बन्ध) और (४) सामीप्य बोधक।§ यथा—(१) वने व्याघ्र प्रतिवसति (वनैकदेशे इत्यर्थ), गृहे स्वपिति (गृहैकदेशे इत्यर्थ), 'गृहे चेन्मधु विन्देत, किमर्थं पर्वतं व्रजेत्?', नद्यां स्नाति (नद्या एकदेशे इत्यर्थ)। (२) विद्यायाम्

---

* यतो वारणम्। † यत आदानम्।

‡ आश्लेषको 'अवच्छेद'-भी कहते हैं, यथा—स शिरसि अताडयत्; स मां करे जग्राह।

§ सामीप्याश्लेषविषयैर्व्याप्त्याऽऽधारश्चतुर्विध।

अनुराग (विद्याविषये इत्यर्थ), भोगे अभिलाप. (भोगविषये इत्यर्थ); 'सदा धर्मे मतिं कुर्यात्' (धर्मविषये इत्यर्थ)। (३) तिलेषु तैल विद्यते (तिलस्य सर्वान् अवयवान् व्याप्य इत्यर्थ), दुग्धे माधुर्यमस्ति (दुग्धस्य सर्वानवयवान् व्याप्येत्यर्थ), वह्नौ दाहिका शक्तिरस्ति (वह्नेः सर्वानवयवान् व्याप्येत्यर्थ), 'महता चेतसि दया, तरौ रस इव स्थिता'। (४) गङ्गायां घोष * (गङ्गाया समीप इत्यर्थ), 'आश्रम कपिलस्यासीद्गङ्गासागरसङ्गमे' (तत्समीप इत्यर्थ)।

कालकीभी अधिकरण संज्ञा होती है, यथा—"आषाढस्य प्रथमदिवसे" मेघ० २, "शैशवेऽभ्यस्तविद्याना, यौवने विषयैषिणाम्। वार्द्धके मुनिवृत्तीना, योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥" र० १ ८, 'वर्षासु दर्दुरा एव रुवन्ति, न तु कोकिला'।

६७२। जिन स्थलमें जिस कारकका विधान हुआ है, वक्ताकी इच्छाके अनुसार उसका अन्यथाभाव लक्षित होता है,† यथा—गृह गच्छति, गृहं गच्छति, गृह प्रविशति, गृहे प्रविशति, पुष्पेभ्य स्पृहयति, पुष्पाणि स्पृहयति, पुष्पेभ्य स्पृहा, पुष्पेषु स्पृहा, "स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी" र० ३ ५, "तपोवनेषु स्पृहयालुरेव" र० १४. ४९, अश्व कुप्यति, अश्वे कुप्यति, गा दुग्ध दोग्धि, गोभ्यो दुग्ध दोग्धि इत्यादि, शिष्याय विद्या वितरति, शिष्ये विद्या वितरति, ("भगवान् मारीचस्ते दर्शन वितरति" शकु० ७, "वितरति गुरु प्राज्ञे विद्यां यथैव, तथा जडे" उत्तर० २ ४), हिमवतो गङ्गा प्रभवति, हिमवति गङ्गा

* "घोष आभीरपल्ली स्यात्" इत्यमर.।

† विवक्षावशात् कारकाणि।

प्रभवति, "न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः" मनु० २ २१३, "मा प्रयच्छेश्वरे धनम्" हितो० १. १४ (Cf To carry coals to Newcastle)।

६७३। एक पदमे अनेक कारक होनेका सन्देह होनेसे, 'अपादान, सम्प्रदान, करण, अधिकरण, कर्म, कर्त्ता'—इस क्रमके अनुसार परवर्त्ती कारक होता है,* यथा—दरिद्रोको बुलाकर धन देता है—इस वाक्यमे 'दरिद्र' यह पद 'बुलाकर' क्रियाका कर्म, और 'देता है' इस क्रियाका सम्प्रदान, अब उसमे कर्मकी विभक्ति, अथवा सम्प्रदानकी विभक्ति होगी—ऐसा सन्देह उठता है, इसलिये उपरिलिखित क्रमके अनुसार सम्प्रदानके पश्चात् कर्म रहनेके कारण उसमे सम्प्रदान न होकर कर्मकारककी विभक्ति ही होगी, यथा—दरिद्रम् आहूय धन ददाति। गङ्गा गत्वा स्नाति (अधिकरण न होकर कर्म), गृह प्रविश्य नि सरति (अपादान न होकर कर्म)।

विभक्ति-निर्णय (Case endings)।

प्रथमा।

६७४। कर्त्तृकारकमे (अर्थात् उक्त-कर्त्तामे) प्रथमा-विभक्ति होती है,† यथा—'सृजति पाति हरते च परेश'।

---

* अपादान सम्प्रदान करणाधार-कर्मणाम्।
कर्त्तुश्चान्योन्यसन्देहे परमेक प्रवर्त्तते॥

† कर्त्तृवाच्यकी क्रियाके कर्त्ताको 'उक्त कर्त्ता' कहते हैं। तिङ्, कृत्, तद्धित और समासमे जो वाच्य होता है (अर्थात् वे जिसको समझाते है),

६७५। अभिधेयमात्रमे (अर्थात् जिस स्थलमे क्रियापद-प्रभृति नहीं रहने, केवल अभिधेय * समझानेके लिये शब्द-प्रयोग किया जाता है, उस स्थलमे उस शब्दके उत्तर) प्रथमा होती है, यथा—वृक्षः, लता, पुष्पम्, 'नभः क्षितिर्वारि समीर-वह्नी'।

६७६। सम्बोधनमे (Vocative case or Case of Address) प्रथमा होती है, यथा—जगदीश! विभो! भव-पालयित!।

६७७। 'इति'-†प्रभृति अव्यय-शब्दके योगसे प्रथमा होती है। यथा—दशरथ इति ‡ राजा बभूव ('दशरथ' इस नामसे),

उसकोभी 'उक्त कारक' कहते हैं। समस्त उक्त-कारकमेंही प्रथमा होती है। यथा—(तिङ्) स गच्छति (उक्त कर्त्तरि प्रथमा), स नम्यते (उक्त-कर्मणि प्रथमा)। (कृत्) स गतः, ग्रामो गतः, दृश्यते येन तत् दर्शनं चक्षुः, सम्प्रदीयते यस्मै स सम्प्रदानं विप्रः, प्रभवति यस्मात् स प्रभवः जनकः, आस्यते यस्मिन् तत् आसनम्। (तद्धित) सभायां साधुः सभ्यो नरः। (समास) कृता विद्या येन स कृतविद्यः पुरुषः।

* जिस शब्दसे जो अर्थ समझा जाता है, वही उसका 'अभिधेय'।

† इति=नामसे, इसरूपसे, इसलिये, बोलके। दरिद्र बोलके—दरिद्र इति।

‡ दशरथो नाम ('नाम'-शब्द अव्यय), अथवा—नाम्ना दशरथः ('नामन्' शब्दके उत्तर क्रियाविशेषणमे तृतीया)—ऐसाभी लिखा जाता है। 'नाम' और 'नामन्' शब्दके योगसे कारक-विभक्तिकी बाधा नहीं होती; यथा—दशरथो नाम राजा आसीत्, दशरथं नाम राजानम् उवाच इत्यादि;

मानवाश्चन्द्र सुधाकर इति वदन्ति, 'वलिर्दातेति विख्यात'। अपराधिनो दण्ड: साम्प्रतम् (उचित), पापात्मना सङ्ग परित्यक्त साम्प्रतम् (पापियोका सङ्ग छोड़ना चाहिये), "विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्" (विषवृक्षकोभी बढ़ाकर स्वय छेदन करना उचित नहीं) कु० २ ५५।

द्वितीया।

६७८। कर्मकारकमे (अर्थात् अनुक्त-कर्ममे) द्वितीया विभक्ति होती है, यथा—'पुष्प मा च्छिन्धि मा च्छिन्धि, फल चेद्भोक्ष्यसे शिशो!'।

६७९। 'व्याप्ति' अर्थमे* कालवाचक और अध्ववाचक (पथके परिमाणवाचक—क्रोशादि) शब्दके उत्तर द्वितीया होती है। यथा—(कालवाचक) मास व्याकरणमधीते (मास व्याप्य इत्यर्थ —महीनाभर), दिवसम् उपवसति (दिवस व्याप्य इत्यर्थः—सारा दिन), क्षणमवतिष्ठस्व (Wait a moment), "न ववर्ष वर्षाणि द्वादश दशशताक्ष" दशकु०, 'वने न्यूषु पाण्डवा द्वादशाब्दान्'। (अध्ववाचक) गिरिरिव क्रोशं स्थित (क्रोशं व्याप्य इत्यर्थ —कोसभर), योजन भूत्वेन अनुगत (योजन व्याप्य इत्यर्थ), "सभा वैश्रवणी राजन्! शतयोजनमायता" महाभा०, 'बहून् क्रोशान् राजते विन्ध्यशैल'।

नाम्ना दशरथो राजा आसीत्, नाम्ना दशरथं राजानम् उवाच इत्यादि।

* इसको 'अत्यन्तसयोग'-भी कहते हैं।

६८० । समया, निकषा,* धिक्, प्रति, अनु, अन्तरा,† अन्तरेण, यावत् (अवधि, पर्यन्त, तक), अभित,‡ परित, सर्वत, उभयत शब्दके योगसे द्वितीया होती है । यथा—पर्वत समया नदी वहति (पर्वतस्य समीपे इत्यर्थ), "समया सौधभित्तिम्" (सौधभित्तेः समीपे इत्यर्थं) दशकु०, "शिखरीन्द्रं समया" माघ० ६ ७३ । ग्राम निकषा वनम् (ग्रामस्य समीपे इत्यर्थ), "लङ्का निकषा" माघ० १. ६८, 'द्वारकां निकषा सिन्धु' । मूर्खं धिक्, 'धिगस्तु कृपण जनम्' । दीनं प्रति दया उचिता, 'भक्ति विधेहि ननत मातर पितर प्रति' । रामम् अनु जातो लक्ष्मण (रामस्य पश्चात् इत्यर्थ), 'मृतमनु धावति धर्माधर्मम्' । स त्वां मां च अन्तरा उपविष्ट (तव मम च मध्ये इत्यर्थं), 'हिमालयं विन्ध्यगिरिञ्चान्तरा पुण्यभूमय' । धर्ममन्तरेण न वै सुखम्, 'न पूज्यते गौरवमन्तरेण' । वनं यावत् अनुसरति (वनपर्यन्तम् इत्यर्थं), "स्तन्यत्यागं यावत् पुत्रयोरवेक्षस्व" उत्तर० ७, 'मृत्यु यावत् क्लेशमाप्नोति मूर्ख' (मृत्युम् अभिव्याप्य इत्यर्थ) । "परिजनो राजानम् अभित स्थित" मालविका० १, "त्रिपथगाम् अभित" (त्रिपथगाया अभिमुखम्—सम्मुखे, सामने—इत्यर्थ) मा० ६ १, 'दिनमणिमभित मुनोऽन्धकार ?' । 'पृथिवीं

* "समया निकषा शब्दौ सामीप्ये स्वरूपे मतौ" हलायुध ।

† "अन्तरा तु विनार्थे स्यान्मध्यार्थेऽन्तिकार्थयो" मेदिनी ।

‡ "समीपोभयत शीघ्र साकल्याभिमुखेऽभित" अमर ।

परितः सिन्धुः' (पृथिव्याः चतुर्दिक्षु इत्यर्थः)। महीं सर्वतः जीवा वसन्ति (मह्याः समन्तात् इत्यर्थः), 'प्रदेशं सर्वतो निन्द्रा कृपणस्य प्रजायते'। पन्थानम् उभयतः महीरुहा राजन्ते (पथ उभयोः पार्श्वयोः इत्यर्थः—मार्गकी दोनों तरफ); 'नदीमुभयतः स्थानं जनेन तदमुच्यते'।

८८१। क्रियाके विशेषणमें द्वितीया होती है, और वह क्लीवलिङ्ग एकवचनान्त होता है,* यथा—स सुखं तिष्ठति, त्वं तु खं स्थापयसि, अधिकं भ्रमे, मृदु हसति, साधु भाषते, 'शङ्काशते शून्यपात्रमधिकं, न तु पूरितम्', रामः अत्यन्तं सुशील †।

तृतीया।

८८२। करणकारक और अनुक्त-कर्त्तामें तृतीया विभक्ति होती है, यथा— (करणे)

'गावो घ्राणेन पश्यन्ति, वेदैः पश्यन्ति पण्डिताः।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः॥'

(अनुक्त-कर्त्तरि) 'प्रसार्य्यते तेन करः कृशानौ'। ‡

---

* स्तोक, कृच्छ्र अल्प और कतिपय शब्दके उत्तर तृतीया और पञ्चमी भी होती है, यथा—स्तोकेन वा स्तोकात् (थोड़ा थोड़ा करके) धीनम् अनुभूयते।

† ऐसे स्थलमें 'भवति' वा 'स्यात्' क्रिया ऊह्य रहती है, इसलिए वह उस क्रियाका विशेषण होता है, यथा—अत्यन्तं यथा भवति वा यथा स्यात् तथा सुशीलः।

‡ यह कर्मवाच्यका प्रयोग है, इसलिये इसकी क्रिया कर्मकेही मतसे

६८३। सहार्थ-शब्दके योगसे तृतीया होती है; यथा—'सुजनैः सह सवसेत्', केनापि सार्द्धं विरोधो न कर्त्तव्यः, 'क्रूरेण सार्द्धं न विधेहि मैत्रीम्', 'केनापि साकं कलह न कुर्य्यात्', 'सन्दुष्टाचारिणा समम्'।

'सह'-शब्दका प्रयोग न रहनेसे सहार्थमेभी तृतीया होती है, यथा—व्यञ्जनेन अन्न भुङ्क्ते (व्यञ्जनेन सह इत्यर्थः), 'भूपो मन्त्रयतेऽमात्यैः' (अमात्यैः सह इत्यर्थः)।

६८४। हीनार्थ, निषेधार्थ और प्रयोजनार्थ शब्दके योगसे तृतीया होती है। यथा—(हीनार्थ) विद्यया हीन, 'ज्ञानेन हीना पशुभिः समाना', 'एकेन ऊना गणिता दशग्रहाः'। अहङ्कारेण शून्यः। (निषेधार्थ) अलं विवादेन (विवादं मा कुरु, विवादो निष्प्रयोजन इत्यर्थः), 'संसारयात्रानिर्वाहेणालं पापेन कर्मणा', कलहेन किम्? (कलहो व्यर्थं इत्यर्थः), 'धनेन किं, यो न ददाति नाश्नुते?', कृत बहुजल्पनेन (बहुजल्पनं न कार्य्यम् इत्यर्थः)। (प्रयोजनार्थ) न मे धनेन प्रयोजनम्; कोऽर्थ * कलहेन?, "किं तया दृष्टया?" शकु० २, तृणेन

है, कर्त्ताको नहीं, सुतरां क्रिया-द्वारा कर्म उक्त, और कर्त्ता अनुक्त।

क्रीडार्थ 'दिव्'-धातुके करण-कारकमें विकल्पसे द्वितीया होती है, यथा—पाशकेन पाशक वा दीव्यति।

* 'अर्थिन्'-शब्दके योगसेभी तृतीया होती है; यथा—"तृषेरार्थिन." दशकु०, "छाययाऽर्थी जनोऽयम्" वेणी० ६ २६, "को वधेन ममार्थः स्यात्?" महाभा०।

कार्य्यं भवतीश्वराणाम्" पञ्च० १ १, "अप्राज्ञेन सानुरागेण भृत्येन को गुणः ?" मुद्रा० १ ।

६८५ । जो अङ्ग विकृत (Defective) होनेसे, अङ्गी अर्थात् शरीरका विकार (Defect) लक्षित होता है, उस विकृत अङ्गके वाचक शब्दके उत्तर तृतीया होती है, यथा—चक्षुषा काणः, श्रोत्रेण बधिरः, पादेन खञ्जः, 'पृष्ठेन कुब्जोऽयमधर्मकारी' ।

६८६ । जिस लक्षण अर्थात् चिह्न द्वारा कोई व्यक्ति सूचित होता है, उस लक्षणके बोधक शब्दके उत्तर 'विशिष्ट'-अर्थमे तृतीया होती है,* यथा—जटाभिः तापसम् अपश्यम् (जटाभि उपलक्षितम्—जटाविशिष्टम् इत्यर्थः), भूषाभि शिशुम् अदर्शम्, छात्रेण उपाध्यायम् अद्राक्षम्, 'मयैको बालको दृष्टः सौन्दर्य्येण गुणेन च', "जटाभि स्निग्धताम्राभिराविरासीद् वृषध्वजः", "त्रिवर्णराजिभि कण्ठैरेते मञ्जुगिरः शुकाः" ।

६८७ । 'अपवर्ग' अर्थात् क्रियासमाप्ति और फलप्राप्ति समझानेसे, कालवाचक और अध्ववाचक शब्दके उत्तर तृतीया होती है । यथा—(कालवाचक) त्रिभिः अहोभिः कृतम्, 'त्रिभिर्वर्षैः शब्दशास्त्रं पपाठ' । (अध्ववाचक) क्रोशेन अधीत

* इसको 'उपलक्षणे', 'विशेषणे' अथवा 'इत्थम्भूतलक्षणे'—तृतीया कहते हैं ।

'अभेद'-अर्थमेभी तृतीया होती है, यथा—धान्येन धनवान् (धान्याभिन्नधनवान्—धान्यरूपधनवान् इत्यर्थ), ईश्वरेण वसुमान् ।

ग्रन्थाध्याय ।

मास व्याकरणम् अधीतम्, न तु स्फुरति—यहां अध्ययनकी फलप्राप्ति न समझानेके कारण 'मास' शब्दके उत्तर तृतीया नहीं हुई। (६७९ सू०)।

६८८ । स्थलविशेषमें, क्रियाविशेषणके तुल्य व्यवहृत 'प्रकृति'-प्रभृति शब्दके उत्तर तृतीया होती है, यथा—प्रकृत्या दर्शनीय, 'भूयामि किं सुन्दरो य प्रकृत्या ?', स्वभावेन सरल., आकृत्या सुन्दर, जात्या ब्राह्मण, गोत्रेण शाण्डिल्य, नाम्ना शिव, वयसा अधिक, प्रायेण दुःखित; वेगेन गच्छति, त्वरया धावति, यत्नेन लिखति, सुखेन स्वपिति; दुःखेन याति, क्लेशेन वदति, क्रमेणायाति, विधिना पूजयति।

६८९ । निम्नलिखित स्थलोंमें भी तृतीया विभक्ति होती है, यथा—

(क) जिस मूल्यमें कोई वस्तु क्रय की जाती है; यथा—कियता मूल्येन क्रीत पुस्तकम् ? (कितने मूल्यमें पुस्तक मोल ली है ?)—रूप्यकत्रयेण।

(ख) गत्यर्थक धातुके योगसे, वाहन (सवारी) वाचक शब्दके उत्तर, यथा—धूमशकटेन पुरुषोत्तमपुरीं प्रयाति, विष्णुपद विमानेन विगाहते।

(ग) 'वह्' धातुके योगसे, जिसके द्वारा वहन किया जाता है; यथा—"स्कन्धेन वहाति" हितो० ४। "भर्तुराज्ञा मूर्ध्ना आदाय" (कु० ३. २२)—ऐसे स्थलोंमें तृतीया होती है।

(घ) 'शपथ' वाचक शब्दके योगसे, जिसके सामने शपथ किया जाता है, यथा—जीवितेनैव शपामि ते।

(ङ) जिस दिशा वा मार्गमें जाया जाता है, यथा—"कतमेन दिग्विभागेन गतः स जाल्म ?" विक्रमो० १ ।

चतुर्थी।

६९० । सम्प्रदानकारकमें चतुर्थी विभक्ति होती है, यथा—'दीनेभ्यो दीयतामन्नं, यदि धर्ममभीप्ससि' ।

६९१ । 'तादर्थ्य' (निमित्तार्थ*) समझानेमें—अर्थात् जिसके निमित्त कोई वस्तु वा क्रिया अभिप्रेत होती है, उसके उत्तर—चतुर्थी होती है, यथा—यूपाय दारु (यूपनिमित्तम् इत्यर्थः), कुण्डलाय हिरण्यम्, अश्वाय घास (अश्वनिमित्तम् इत्यर्थः), रन्धनाय स्थाली (रन्धननिमित्तम् इत्यर्थः), स्नानाय नदीं याति (स्नाननिमित्तम् इत्यर्थः), पाकाय अग्निम् आहरति, 'खलस्य विद्या चातुर्यं नोपकाराय कस्यचित्',

"विद्या विवादाय, धनं मदाय, शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य, साधोर्विपरीतमेतज्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥"

६९२ । 'निवृत्ति' समझानेसे, निवर्त्तनीय अर्थात् जिसकी निवृत्ति की जाय, उसके उत्तर चतुर्थी होती है, यथा—मशकाय धूमः (मशकनिवृत्तये इत्यर्थः), आतपाय छत्रम् (आतपनिवृत्तये इत्यर्थः), पिपासायै जलम् (पिपासानिवृत्तये इत्यर्थः), तापाय स्नानम् (तापनिवृत्तये इत्यर्थः), 'रोगायौषधमाहरेत्' (रोगनिवृत्तये इत्यर्थः), पापाय प्राय-

* अनित्य कारणको 'हेतु', और भावि कारणको 'निमित्त' कहते हैं।

श्चित्तम् आचरेत् (पापनिवृत्तये इत्यर्थः)।

६९३ । 'तुम्' प्रत्ययान्त असमापिका क्रिया ऊह्य (Understood) रखनेसे, उसके कर्मकारकमे चतुर्थी होती है, यथा—काष्ठाय याति (काष्ठम् आहर्त्तुम् इत्यर्थः), वनाय सज्जो भवति (वन गन्तुम् इत्यर्थः)। (६५५ सूत्र द्रष्टव्य)।

६९४ । क्लृप्त्यर्थ धातु (क्लृप् धातु और तदर्थक 'सम्'-पूर्वक पद्, भू, जन्-प्रभृति धातु)-के प्रयोगमे, सम्पद्यमान अर्थात् जो फल उत्पन्न होता है, उसके उत्तर चतुर्थी होती है, यथा—भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते (ज्ञानरूपेण परिणमति इत्यर्थः); ज्ञान सुखाय सम्पद्यते, धर्मः स्वर्गाय भवति, धन्याय जायते दान ।

६९५ । नमस्,* स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, वषट् और हित शब्दके योगसे चतुर्थी होती है, यथा—गुरवे नम, 'नम'

* 'नमस्'-शब्द 'कृ'-धातुके साथ युक्त होनेसे, उसके योगमे द्वितीया और चतुर्थी—दोनो होती हैं, यथा—मुनित्रय नमस्कृत्य, नमस्कुर्मो नृसिंहाय ।

प्र+नि+पत्, प्र+नम् प्रभृति प्रणामार्थक धातुके योगसे द्वितीया और चतुर्थी—दोनो होती हैं। यथा—"धातार प्रणिपत्य" कु० २ ३, "तस्मै प्रणिपत्य नन्दी" कु० ३ ६० । "तां भक्तिप्रवणेन चेतसा प्रणनाम" काद०, "तां कुलदेवताभ्य प्रणमय्य" कु० ७ २७, "प्रणम्य त्रिलोचनाय" काद० ।

"मूर्ध्ना प्रणाम वृषभध्वजाय चकार" कु० ३ ६२, "तस्मै दण्डप्रणामम् अकरवम्" दशकु०—यहाँ केवल चतुर्थी ।

श्रीपरमेशाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे'; स्वस्ति भवते, 'स्वस्ति प्रजाभ्यो विदधाति राजा', अग्नये स्वाहा; पितृभ्यः स्वधा (दान), इन्द्राय वषट्, सर्वस्मै हितम्।

(क) समर्थार्थक-शब्दके योगसे चतुर्थी होती है, यथा—भोजनाय समर्थः; 'सदा शठः शठायालम्' (शठ शठेन सार्द्धं प्रतिद्वन्द्विता कर्त्तुं समर्थ इत्यर्थः), मैत्राय शक्तो मैत्र.।

समर्थार्थक-क्रियाके योगसेभी चतुर्थी होती है, यथा—'मल्लो मल्लाय प्रभवति', "नमस्तत् कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्य प्रभवति" शान्तिशतकम्।

६१६। 'अवज्ञा' समझानेसे, दिवादिगणीय मन्-धातुके अवज्ञा सूचक कर्मसे (गौणकर्ममे) विकल्पसे चतुर्थी होती है, यथा—अहं त्वां तृणाय (तृणं वा) मन्ये (मैं तुझे तृण ज्ञान करता हूँ), तृणाय मन्यते मोगान् (पक्षे—तृणम्), 'तृणाय विश्व कुधियो न मन्यते', नाहं त्वां कुकुराय मन्ये।

काकादि* कर्म होनेसे नहीं होती, यथा—काक मन्यते याचकम्, त्वामहं शृगाल मन्ये।

६१७। 'चेष्टा' (Physical motion) समझानेसे, गमनार्थक धातुके कर्ममे विकल्पसे चतुर्थी होती है, यथा—ग्रामाय गच्छति, ग्रजाय व्रजति। पक्षे—द्वितीया। चेष्टा (यथार्थ गमन) न समझानेसे नहीं होती, यथा—मनसा मथुरां गच्छति। 'पथ' वाचक शब्द कर्म होनेसे नहीं होती, यथा—पन्थानं याति, अध्वानं गच्छति।

---

* काक, शुक, शृगाल प्रभृति।

पञ्चमी।

६९८। अपादानकारकमें पञ्चमी विभक्ति होती है, यथा— 'पापी स्वर्गात् पतत्यधः'।

६९९। जिससे उत्कर्ष वा अपकर्ष (आधिक्य वा न्यूनता) निर्द्धारित होता है, उसके उत्तर 'अपेक्षा' अर्थमें पञ्चमी होती है। यथा—धनात् विद्या गरीयसी (धनापेक्षया इत्यर्थः,—धनकी अपेक्षा), 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी', "सत्यादप्यनृतं श्रेयः" वेणी० ३ ४८, भीमो दुःशासनात् बलीयान्, 'दारिद्र्यान्मरणं वरम्', "मोहादभूत् कष्टतरः प्रबोधः" र० १४ ५६, "चैत्ररथादनूने वृन्दावने" र० ६. ५०, "अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते" हितो० ४; "श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते" मनु० ३ २७८। वैश्याः क्षत्रियेभ्यः हीनबलाः, "कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः सङ्गमात् किञ्चिदूनः" मेघ० १००।

७००। 'ल्यप्'-प्रत्ययान्त असमापिका क्रिया ऊह्य रहनेसे (अर्थात् उसका प्रयोग न रहनेसे), उसके कर्म और अधिकरण कारकमें पञ्चमी होती है,* यथा—प्रासादात् प्रेक्षते (प्रासादम् आरुह्य इत्यर्थः), श्वशुरात् जिह्रेति (श्वशुरं वीक्ष्य इत्यर्थः), आसनात् अवलोकयति (आसने उपविश्य इत्यर्थः), 'रथादृयः पश्यति वीरसिंहः' (रथे उपविश्य इत्यर्थः)।

७०१। अन्यार्थ शब्दके योगसे, पञ्चमी होती है, यथा—

* इसको 'ल्यब्लोपे पञ्चमी' कहते हैं।

'धर्मादन्य कोऽस्ति दुःखापहारी ?', तस्मात् इद भिन्नम्; घट पटात् इतर, "अव्यतिरिक्तेयम् अस्मच्छरीरात्" काद०, "आत्मा देहाद्विलक्षणः" अपरोक्षानुभूति ३८।

अन्यार्थ बोधक, क्रियाके योगसेभी पञ्चमी होती है, यथा—स्वर्णं रजतात् भिद्यते।

(क) आरभ्यार्थ* शब्दके योगसे पञ्चमी होती है, यथा—"मालाया प्रथमावलोकदिवसादारभ्य" मालती० ६-३, "दिग्विजयात् आरभ्य सर्वम् आचचक्षे" काद०, जन्मन-प्रभृति सेव्यता हरिः, "अद्यभवति सर्वेव आत्मसम्पत् अभिजनात् प्रभृति अन्यूनैव लक्ष्यते" दशकु०।

(ख) 'आरात्'† और 'बहिः'‡ शब्दके योगसे पञ्चमी होती है, यथा—ग्रामात् आरात् वनम् (ग्रामस्य समीपे, दूरे वा इत्यर्थः), 'शिक्षेत शिक्षकादाद्वाल्यात् प्रभृति सञ्चयम्' (शिक्षकस्य अन्तिके इत्यर्थः), 'पुराद्बहिर्दुर्जनान् विवासयेत्'।

(ग) दिग्वाचक, देशवाचक और कालवाचक शब्दके योगसे पञ्चमी होती है। यथा—(दिग्वाचक) ग्रामात् पूर्व-पर्वत, गृहात् उत्तर सर०। (देशवाचक) वसति चैत्रो मैत्रात्

---

* 'आरभ्य' और 'प्रभृति' शब्द अव्यय। 'आरभ्य' शब्द असमापिका क्रिया होनेसे उसके कर्ममें द्वितीया होती है।

† "आराद्दूर-समीपयोः" इत्यमर०।

‡ क्रमदीश्वरने 'बहिः'-शब्दके योगसे पञ्चमी और षष्ठी—इन दोनो विभक्तियोंकाही विधान किया है, यथा—"बहिर्युक्तात् षष्ठी-पञ्चम्यौ" इति।

पूर्वदेशे । (कालवाचक) माघात् पूर्वः पौषः, माघात् उत्तरः (परो वा) फाल्गुनः; "बाल्यात् परं साऽथ वयः प्रपेदे" कु० १ ३१, भोजनात् प्राक्, शयनात् पूर्वम्, "अस्मात् परम्" शकु० ६ २५, उत्थानात् परतः, प्रस्थानात् अनन्तरम्, "ऊर्द्धं म्रिये मुहूर्त्ताद्धि" भ० १८ ३६ ।*

(घ) 'आ' और 'आहि'-प्रत्ययान्त शब्दके योगसे, पञ्चमी होती है, यथा—उद्यानात् उत्तरा गृहम्, गृहात् उत्तराहि सरः (उत्तरस्यां दिशि इत्यर्थः), हिमालयात् दक्षिणा भारतवर्षम्, प्रयागात् दक्षिणाहि विन्ध्यः (दक्षिणस्यां दिशि इत्यर्थः) ।

७०२ । 'ऋते'-शब्दके योगसे पञ्चमी और द्वितीया होती हैं । यथा—"विजिक्तात् ऋते अन्यत् शरणं नास्ति" विक्रमो० ७, 'उपदेशादृते विद्या न कदाऽपि समुद्भवेत्' । 'ऋते सुषुप्तिं विश्रामं लभते न मनः क्वचित्' ।

७०३ । 'पृथक्' (Without) और 'विना' शब्दके योगसे पञ्चमी, द्वितीया और तृतीया होती हैं । यथा—विद्यायाः पृथक् (विद्यां, विद्यया वा पृथक्) सुखं न स्यात् (विद्याव्यतिरेकेण सुखं न भवति—विद्यामात्रसाध्यं सुखम् इति भावः) । 'धर्माद् विना को लभते विजेयम् ?', 'स्वाधीनता विना किञ्चिदन्यत् सुखकरं न हि', 'सहायेन विना नैव कार्य्यं किमपि सिध्यति' ।

---

* कहीं कहीं 'परम्' अनन्तरम्' इत्यादि शब्द लुप्त रहता है, यथा—"चिरोदृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदम्" (बहो कालात् परं दृष्टम् इत्यर्थः—Seen after a long time) उत्तर० २ २७ ।

७०४। 'अभिविधि' (व्याप्ति The limit inceptive, from, ever since) और 'मर्य्यादा'* (सीमा The limit exclusive or conclusive, till, until, up to, as far as) अर्थमें, 'आ' (आङ्)—इस अव्ययशब्दके योगसे पञ्चमी होती है। यथा—(अभिविधि) "आ मूलात् श्रोतुमिच्छामि" शकु० १ (मूलात् आरभ्य इत्यर्थ —आदिसे From the beginning), "आ जन्मनः" शकु० ५ २५. (जन्मन आरभ्य इत्यर्थः—जन्मसे लेकर Ever since (her) birth), 'आ बाल्याद्धार्मिको भवेत्', "आ मनोः" र० १ १७ (मनुम् आरभ्य इत्यर्थ)। (मर्य्यादा) "आ परितोषाद्विदुषाम्" शकु० १ २ (परितोष मर्य्यादीकृत्य ; यावत् परितोषो भवति इत्यर्थं —Till the learned are satisfied), "आ कैलासात्" मेघ० ११ (कैलासपर्य्यन्तम् इत्यर्थ — Up to or as far as Kailâsa),

"दद्यादवसरं कश्चित् कामादीनां मनागपि।
आ सुप्तेरा मृते कालं नयेद्वेदान्तचिन्तया॥"

"आ विन्ध्यादा हिमाद्रेर्विरचितविजयः" (विन्ध्यात् आरभ्य हिमाद्रिपर्य्यन्तम् इत्यर्थ)।

७०५। 'हेतु' समझानेसे, हेतु बोधक शब्दके उत्तर पञ्चमी और तृतीया होती हैं, यथा—अज्ञानात् अज्ञानेन वा बन्धः, ज्ञानात् ज्ञानेन वा मुक्तिः, अधर्माज्जनो दुःखं, धर्मेण सुखमश्नुते।

---

* तेन विना मर्य्यादा, तत्सहितोऽभिविधिः।

"सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्य्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥" हितो० ।

षष्ठी ।

७०६ । जिसके साथ किसीका किसीप्रकार सम्बन्ध प्रतीत होता है, उसमे षष्ठी-विभक्ति होती है,* यथा—राज्ञो धनम् (स्व-स्वामि-भाव सम्बन्ध), मम हस्त (अवयवावयवि-भाव-सम्बन्ध), तस्य पुत्र. (जन्य-जनक-भाव सम्बन्ध); पृथिव्या गन्ध (गुण-गुणि भाव-सम्बन्ध), श्रुते अर्थः (वाच्य वाचक भाव-सम्बन्ध), नद्या उदकम् (आधारा-धेय-भाव-सम्बन्ध), 'मूर्खाणा बहवो दोषा, विदुषां बहवो गुणा ' (विषय-विषयि भाव-सम्बन्ध)।

७०७ । 'कृत्'-प्रत्ययके प्रयोगमे, अनुक्त कर्त्ता और कर्ममें† षष्ठी होती है । यथा—(कर्त्तामे) मम भोजनम् (मेरा भोजन अर्थात् मत्कर्त्तृक भोजन), शिशो शयनम्, अश्वस्य गति., तव पिपासा, तस्य बुभुक्षा, विशाखदत्तस्य कृति. (Work), "शृणुत जना अवधानात् क्रियामिमां कालिदासस्य" विक्रमो० १ ०, 'नास्तिकस्य कुतो भक्तिर्नृशंसस्य कुतो दया ?', "भर्तु"

---

* 'सम्बन्धे षष्ठी' को 'शेषे षष्ठी' भी कहते है । अर्थात् जहाँ अन्य कोई विभक्ति होनेका सूत्र नहीं है, वहाँ षष्ठीही होगी, यथा—रजकस्य वस्त्र ददाति, एवं वेदा ते प्रतिभास्यन्ति इत्यादि ।

† अर्थात् भाववाच्यविहित 'कृत्' प्रत्ययान्त पदके (कृदन्त विशेष्य-पदके) कर्त्तामे और कर्ममे।

प्रणाशात्" र० १४ १, सूदस्य पाक। (कर्ममे) पयस पानम् (दुग्ध वा जल पान करना), अन्नस्य भोजनम्, सुखस्य भोग, "शास्त्राणां परिचय." का०, धनस्य दाता, धर्मस्य प्रणेता, भूभृतां भेत्ता, "आहर्त्ता क्रतूनाम्" का०, वृक्षस्य छेदक, 'गुरु शिष्यस्योपकर्त्ता, सत्पथस्य च दर्शक', 'आवृत्ति सर्वशास्त्राणां बोधादपि गरीयसी'।

७०८। कर्त्ता और कर्म दोनोंमे षष्ठीप्राप्तिकी सम्भावना रहनेसे, केवल कर्ममे षष्ठी होती है, यथा—गोपेन गवां दोह, शिशुना पयस पानम्, नृपेण धनस्य दानम्, सूर्येण जलस्य शोषणम्, चौरेण अर्थस्य हरणम्, छात्रेण ग्रन्थस्य पाठ।

(क) स्त्रीलिङ्ग विहित 'कृत्' प्रत्ययके प्रयोगमे, कर्त्तामे विकल्पसे षष्ठी होती है, यथा—कुलालस्य कुलालेन वा घटस्य कृति।

(ख) स्त्रीलिङ्ग-विहित 'अ' प्रत्ययके प्रयोगमे, कर्त्ता और कर्म उभयत्र षष्ठी होती है, यथा—छात्रस्य शास्त्रस्य पिपठिषा, राज्ञ ग्रामस्य जिगमिषा, तन्तुवायस्य वस्त्रस्य चिकीर्षा, मम चन्द्रस्य दिदृक्षा, गुरो शिष्यस्य प्रशंसा।

७०९। 'कृत्य'-प्रत्ययके प्रयोगमे, कर्त्तामे विकल्पसे षष्ठी होती है, पक्षे तृतीया, यथा—मम (मया वा) कर्त्तव्यम्, तव (त्वया वा) गुरुरर्चनीय, तस्य (तेन वा) पुस्तक पाठ्यम्, "न श्राव्य मत्सुतानान्तु रोदनं मातृतातयो।"; "नास्ति असाध्य नाम मनोभुव"का०, "न वयमनुग्राह्या प्रायो दैवतानाम्" का०, "न वञ्चनीया प्रभवोऽनुजीविभि" भा० १ ४, "राक्षसेन्द्रस्य संरक्ष्य मया लङ्घ्यमिदं वनम्" भ० ८. १२९।

७१० । भाववाच्यविहित 'क्त'-प्रत्ययके प्रयोगमें, कर्त्तामें विकल्पसे षष्ठी होती है; यथा—मम (मया वा) आगतम्; मम शयितम्; मम जागरितम्।

७११ । वर्त्तमानकालमें विहित 'क्त'-प्रत्ययके प्रयोगमें, कर्त्तामें नित्य षष्ठी होती है; यथा—राज्ञां मतः (राजभिर्मन्यते इत्यर्थः); सतां पूजितः (सद्भिः पूज्यते इत्यर्थः), "अहमेव मतो महीपतेः" (महीपतिना मन्यमान इत्यर्थः) र० ८ ८, "विदितं तप्यमानञ्च तेन मे भुवनत्रयम्" (मया ज्ञायते इत्यर्थः) र० १० ३९।

७१२ । शतृ, शानच्, क्वसु, कानच्, स्यतृ और स्यमान प्रत्ययके प्रयोगमें, षष्ठी नहीं होती। यथा—(शतृ) गृहं गच्छन्; जलं पिबन्।* (शानच्) अन्नं भुञ्जानः, व्याकरणमधीयानः। (क्वसु) ओदनं पेचिवान्, ग्रामं जग्मिवान्। (कानच्) गुरुं ववन्दानः, शास्त्रं शिशिक्षाणः। (स्यतृ) गृहं गमिष्यन्, वेदं पठिष्यन्। (स्यमान) गुरुं सेविष्यमाणः; धनं दास्यमानः।

(क) तुमुन्, क्त्वा, ल्यप् और णमुल् प्रत्ययके प्रयोगमें, षष्ठी नहीं होती। यथा—(तुमुन्) गृहं गन्तुम्, चन्द्रं द्रष्टुम्। (क्त्वा) अन्नं पक्त्वा; फलं गृहीत्वा। (ल्यप्) गृहम् आगत्य; व्याकरणम् अधीत्य। (णमुल्) रामं स्मारं स्मारम्, शास्त्रं श्रावं श्रावम्।

(ख) उकारान्त 'कृत्' प्रत्ययके प्रयोगमें षष्ठी नहीं होती; यथा—जलं पिपासुः, रिपून् जिष्णुः, गिरं क्षिप्नुः; विश्वं निराकरिष्णुः; फलं

* 'द्विष्'-धातुके 'शतृ'के योगमें विकल्पसे, यथा—मुरं द्विषन्, मुरस्य द्विषन्।

गृहयालुः ।

(ग) 'उक' और शीलार्थ 'तृन्' प्रत्ययके प्रयोगमे, षष्ठी नहीं होती । यथा—(उक) गृहं गामुकः, जलं वर्षुकः, शत्रुं घातुकः* । (तृन्) परापवादं वक्ता खलः, "पितरम् आराधयिता भव" विक्रमो० ५, "सम्भावयिता बुधान्, न्यग्भावयिता शत्रून्" दशकु० ।

(घ) भविष्यत् कालमे विहित 'णक' और 'णिन्' प्रत्ययके प्रयोगमे, षष्ठी नहीं होती, यथा—(णक) भक्तं भोजको व्रजति, (णिन्) गृहं गामी ।

(ङ) खलर्थ-प्रत्ययके प्रयोगमे,† षष्ठी नहीं होती । यथा—नैतत् सुकरं भवता, नैतत् दुष्करं तेन, सर्वम् ईषत्करं सुधिया । मया दुर्मर्षण. शत्रुः, त्वया दुःशासनो रिपुः ।

(च) 'निष्ठा' प्रत्ययके प्रयोगमे, षष्ठी नहीं होती । यथा—(क्त) तेन व्याकरणम् अधीतम्, मया जलं पीतम्, त्वया चन्द्रो दृष्टः । (क्तवतु) स गृहं गतवान्, त्वं चन्द्रं दृष्टवान्, अहं वेदम् अधीतवान् ।

७१३ । स्मरणार्थ धातु (स्मृ, अधि+इ—इक्), दय् धातु और ईश् धातुके कर्ममे विकल्पसे षष्ठी होती है । यथा—(स्मृ) माता पुत्रस्य स्मरति, "स्मर्तुं दिशन्ति न दिवः सुरसुन्दरीभ्यः" भा० ५ ३८, "कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके ! त्वं हि तस्य प्रियेति ?" मेघ० ८५, (अधि

* 'कामुक' शब्दके प्रयोगमे होती है, यथा—विद्यायाः कामुकः ।

† सु, दुर् और ईषत् शब्दके योगमे धातुके उत्तर जो 'अ' और 'अन' प्रत्यय होते हैं, उनको 'खलर्थ प्रत्यय' कहते हैं ।

+ इ) "अध्येति तव लक्ष्मण" भ० ८ ११९ (त्वा स्मरति इत्यर्थ)।* (दय्) दाता दरिद्रस्य दयते। (ईश्) पिता पुत्रस्य ईष्टे (यथेष्ट विनियुङ्क्ते इत्यर्थ —यथेच्छ नियोग करता है)।† पक्षे—द्वितीया।

७१४। 'हिंसा'-अर्थ समझानेसे, जासि, पिष्, और 'नि' तथा 'प्र' पूर्वक हन् धातुके कर्ममे विकल्पसे षष्ठी होती है। यथा—(उत्+जासि) चौरस्य उज्जासयति (चौर हिनस्ति इत्यर्थ); "निजौजसो-ज्जासयितु जगद्द्रुहाम्" माघ० १ ३७। (पिष्) शत्रो पिनष्टि, "प्रवृत्त

---

* षष्ठी-पक्ष— उत्कण्ठापूर्वकस्मरणम् (Remembering with regret, to think of) एव अर्थ प्रतीयते। साधारण अर्थमे प्राय द्वितीयाही होती है, यथा—"स्मरसि तान्यहानि, स्मरसि गोदावरी वा ?" उत्तर० १ २६।

† अपि च—"श्वापदानुसरणैर्मम गात्राणाम् अनीशोऽस्मि संवृत्त" शकु० २।

'प्र' पूर्वक भू धातुके योगसेभी षष्ठी होती है, यथा—"ननु प्रभवत्यार्य' शिष्यजनस्य" (Why, your honour has mastery over your pupil—क्यों, शिष्यके उपर आपका प्रभुत्व है) मालविका० १, "हा धिक्, हा धिक् ! एकाकिनी प्रसुप्ता माम् उज्झित्वा कुत्र गतो नाथः ? भवतु तस्मै कोपिष्यामि, यदि त प्रेक्षमाणा आत्मन प्रभविष्यामि।" उत्तर० १.। ('प्र'-पूर्वक भू धातुके योगसे सप्तमीभी होती है, यथा—"तत् प्रभवति अनुशासने देवी" वेणी० २। 'सामर्थ्य' (सकना) अर्थमे प्र+भू धातु तुमन्त क्रियाके साथ प्रयुक्त होता है, यथा—"कोऽन्यो हुतवहात् दग्धु प्रभविष्यति ?" शकु० ४।)।

एव स्वयमुज्झितश्रम क्रमेण पेष्टुं भुवनद्विषामसि” माघ० १ ४० । ‘नि’ और ‘प्र’ व्यस्त (पृथक्), समस्त (एकत्र) और विपर्य्यस्त (विपरीत)-रूपसे विन्यस्त होनेपरभी होती है, यथा—निहन्ति प्रहन्ति निप्रहन्ति प्रणिहन्ति वा चौरस्य, “नि प्रहन्तुममरेशविद्विषाम्” माघ० १४. ८२. । षष्ठी—द्वितीया ।

७१५ । तृप्त्यर्थ धातुके करणकारकमे विकल्पसे षष्ठी होती है, यथा—मन्नस्य (अन्नेन वा) तृप्त , “अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादु सुगन्धि स्वदते तुषारा” नै० ३ ९३,

“नाग्निस्तृप्यति काष्ठाना, नापगाना महोदधि ।
नान्तक सर्वभूताना, न पुंसा वामलोचना ॥” पञ्च०१ १४८. ।

७१६ । ‘कृत्वसुच्’ और ‘सुच्’ प्रत्ययके प्रयोगमे, कालवाचक शब्दके अधिकरणमे विकल्पसे षष्ठी होती है । यथा—(कृत्वसुच्) पञ्चकृत्वो दिवसस्य ईश्वरम् उपास्ते (दिनमे पांच वार ईश्वरकी उपासना करता है), सप्तकृत्वो दिनस्यागच्छति, “शतकृत्वस्तवैकस्या स्मरत्यह्नो रघूत्तम ” भ० ८ १२२ । (सुच्) द्विरह्नो भुङ्क्ते , त्रिर्वत्सरस्य स्वपिति । पक्षे—सप्तमी , यथा—द्विरह्नि भुङ्क्ते इत्यादि ।

७१७ । अस्तात्, असि, आति और अतस् प्रत्ययके प्रयोगमे, षष्ठी होती है । यथा—(अस्तात्) पुरस्तात् उद्यानस्य, उपरिष्टात् मन्नस्य* । (असि) पुरो नगरस्य, अधो वृक्षस्य † । (आति) उत्तरात् समुद्रस्य;

---

* ‘उपरि’-शब्दके योगमेभी षष्ठी होती है, यथा—हर्म्यस्योपरि राष्ट्रपताका ।

† शिष्टप्रयोगमे ‘अधस्’ शब्दके योगसे पञ्चमीभी होती है, यथा—“कफोणि कूर्परादध ” अमर ।

दक्षिणात् हिमालयस्य। (अतस) उत्तरतो गृहस्य, दक्षिणतो ग्रामस्य।

७१८। 'एनप्'-प्रत्ययान्त शब्दके योगसे षष्ठी और द्वितीया होती हैं, यथा—दक्षिणेन पुष्पवाटिकायाः सरः, (अथवा) दक्षिणेन पुष्पवाटिकां सरः, "तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयम्" मेघ० ७६।

७१९। तुल्यार्थ-शब्दके योगसे, षष्ठी और तृतीया होती हैं। यथा—मम तुल्य, मया तुल्य, "पितुरेव तुल्य" र० १८ ३८, 'नान्यो गुण स्याद्विनयेन तुल्य'। तव समः, त्वया समः, "गुणयुक्तो दरिद्रोऽपि नेश्वरैरगुणैः समः"। तस्य सदृश, तेन सदृश, 'युधिष्ठिरस्य सदृशो न जातः सत्यभाषण', "श्रुतस्य किं तत् सदृशं* कुलस्य?" र० १४ ६१। †

---

* यहाँ 'सदृश' शब्दका अर्थ—योग्य, अनुरूप। इस अर्थमें प्रायः षष्ठीही होती है। ऐसे—"सखे पुण्डरीक! नैतत् अनुरूप भवत" काद०।

† "तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्" [अतुलोपमाभ्यां तुला च उपमा च इत्येताभ्यां शब्दाभ्यां विना, एतौ शब्दौ वर्जयित्वा इत्यर्थ, तुल्यार्थैः तुल्यशब्दस्य अर्थ इव अर्थो येषा तैस्तथाविधैः शब्दैर्योगे अन्यतरस्यां विकल्पेन इत्यर्थ, तृतीया भवति]—इत्यस्मिन् सूत्रे पाणिनिना तुलोपमाशब्दयोर्योगे तृतीया प्रतिषिध्यते। किन्तु नैतत् महाकविप्रयोगसंवादि, तत्र भूयसा व्यभिचारदर्शनात्, यथा—"तुलां यदारोहति दन्तवाससा" कु० ५. ३४, "नमसा तुला समारुरोह" र० ८ १५; "स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना" माघ० १ ४, "तस्वन्त कनकावलीमिवापमा सौदामनीदामभिः" माघ० १७ ६९ इति।

मल्लिनाथस्तु तत्र तत्र—"सदृशार्थवाचिनोरेव तुलोपमाशब्दयोर्योगे

न दैवतं ह्यस्ति गुरो समानम्, "धर्मेण हीना पशुभिः समाना"।

७२० । 'आशीर्वाद' समझानेसे, आयुष्य, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित शब्द, और एतदर्थक शब्दके योगमे षष्ठी और चतुर्थी होती हैं, यथा—पुत्रस्य पुत्राय वा आयुष्यम् (आयुरित्यर्थः), चिरजीवनम्, भद्रम्, शुभम्, क्षेमम्, कुशलम्, मङ्गलम्, सुखम्, शर्म, अर्थ, फलम्, हितम्, पथ्य वा भूयात्, अस्तु, जायताम्, सम्पद्यता वा ।

७२१ । दूरार्थ और अन्तिकार्थ शब्दके योगसे, षष्ठी और पञ्चमी होती है । यथा—ग्रामस्य दूरम्, ग्रामात् दूरम् । नगरस्य अन्तिकम्; नगरात् अन्तिकम् ।*

७२२ । 'हेतु'-शब्दका प्रयोग रहनेसे, निमित्तबोधक शब्दके उत्तर षष्ठी होती है, यथा—अन्नस्य हेतो वसति (अन्नके लिये), 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम्' इत्यत्र तृतीयाप्रतिषेध, न तु सादृश्यार्थवाचिनोरपि' इत्येव पाणिनिसूत्रविरोध परिहर्त्तुम्

एहिष्ट । तत्स्वारस्य सुधीभिर्विचारणीयम् ।

तुल्यार्थक धातुके योगसे तृतीया होती है, यथा—"अस्य मुखं सीतायाः मुखचन्द्रेण संवदति" उत्तर॰ ४. । निभ, सङ्काश, नीकाश, प्रतीकाश प्रभृति शब्द समासमे उत्तरपद होनेसेही तुल्यार्थ होते हैं, अत एव उनके योगमे तृतीया वा षष्ठी नहीं होती, देवनिभ —देव इव निभ (उपमान कर्मधारय), देवोपम —देव॰ उपमा यस्य स (बहुव्रीहि)।

* साधारणत षष्ठीकाही प्रयोग होता है, यथा—"तस्याश्रमपदस्य नातिदूरे" काद॰, "अन समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः" शकु॰ ५. १७, "प्रयामि तस्या सकाशम्" काद॰, 'न त्यजन्त ममान्तिकम्" हितो॰ १ ४७ ।

हेतोर्जननी सहते क्लेशमुत्कटम्"; "अलभ्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढ प्रतिभासि मे त्वम्" र० २ ४७ ।

(ङ) 'हेतु' शब्दका प्रयोग रहनेसे, निमित्तबोधक सर्वनाम शब्दके उत्तर षष्ठी और तृतीया होती हैं, यथा—कस्य हेतोः स आगतः ?, केन हेतुना स आगतः ?।*

७२३। शिष्टप्रयोगमें धातुओंके कर्मादि कारक रहनेपरभी, उनकी कर्मत्वादि विवक्षा न करनेसे, 'सम्बन्ध विवक्षा' में षष्ठी होती है, यथा—स मम अस्मरत्, "अनुकरोति भगवतो नारायणस्य" काद०, "सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम्" कि० ७ २८, "किमिव हि दुष्करमकरुणानाम् ?" काद०, "तत्र उपसर्जनं भरतस्य" उत्तर० ४, "जयसेनायास्तावत् कथय गच्छ" मालविका० ४, "तावद् भयस्य भेतव्यम्" हितो० १ ५८, "स्त्रीणां विश्वासो नैव कर्त्तव्यः" हितो० १। इत्यादि।

७२४। जब किसी घटनाके पश्चात् कोई समय व्यतीत होना कहा जाता है, तब उस घटना-सूचक शब्दके उत्तर षष्ठी होती है, यथा—"अद्य

---

* निमित्तार्थक शब्दके योगसे प्रायः सभी विभक्तियाँ होती हैं, यथा—किं निमित्तम्, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, कस्मात् निमित्तात्, कस्य निमित्तस्य, कस्मिन् निमित्ते वा वसति ? ऐसे—किं कारणम्, किं प्रयोजनम् इत्यादि।

किन्तु सर्वनाम भिन्न अन्य स्थलमें प्रथमा और द्वितीया नहीं होतीं यथा—ज्ञानेन निमित्तेन इत्यादि।

परस्पर विशेष्य-विशेषण-भावापन्न होनेके कारण निमित्तार्थ-शब्दमेंभी यहाँ वहाँ विभक्ति होती है।

दशमो मास तातस्य उपरतस्य" (पिताजीकी मृत्यु हुई आज दश महीने हो गये) मुद्रा० ६ , "कतिपये सवत्सरा तस्य तप तप्यमानस्य" उत्तर० ४ (उनके तप करते कई वर्ष हुए) ।

सप्तमी ।

७२५ । अधिकरण कारकमे सप्तमी विभक्ति होती है , यथा—आसने उपविशति , स्थाल्याम् ओदन पचति ।

७२६ । जिस कारकको (कर्त्ता वा कर्मकी) क्रियाके काल-द्वारा अन्य क्रियाका काल निरूपित होता है, (अर्थात् जिस क्रियाकी निष्पत्तिके साथ अन्य क्रिया उत्पन्न होती है), उसके उत्तर सप्तमी होती है ,* यथा—विधौ उदिते स आगत (विधूदयसमकालम् आगत इत्यर्थ —चन्द्रमा उठते-उठनेके साथ—वह आया)—यहाँ विधु (कर्त्ता) के उदयके काल-द्वारा उसके आगमनका काल निरूपित होनेसे 'विधु'-शब्दके उत्तर सप्तमी हुई, और 'उदिते' यह पद उसका विशेषण होनेके कारण सप्तम्यन्त हुआ , रजन्या प्रभातायां प्रस्थित (रजनीप्रभात-समकालं प्रस्थित इत्यर्थ.) , गोषु दुह्यमानासु गत (गाय—कर्म—के दोहनकालमें), तयो सुप्तयोः स जजागार , जनेषु जागरितेषु चौरा पलायिता , "वचस्यवसिते तस्मिन् ससर्ज गिरमात्मभू " कु० २ ५३ , "क पौरवे वसुमतीं शासति अविनयमाचरति ?" शकु० १ २१ , "क एष मयि स्थिते

---

* इसको 'भावे सप्तमी' कहते हैं (Locative absolute) ।

चन्द्रगुप्तम् अभिभवितुम् इच्छति ?" मुद्रा० १ ।*

७२७ । क्रिया-द्वारा 'अनादर' समझानेसे, अनादरके कर्ममें (अर्थात् जिसका अनादर किया जाता है, उसके उत्तर) सप्तमी और षष्ठी होती है,† यथा—रुदति बाले, रुदतो बालस्य वा, बहिर्गता माता (रुदन्त बालम् अनादृत्य इत्यर्थ), पश्यत ते मरिष्यामि (पश्यन्तं त्वाम् अनादृत्य इत्यर्थं), "नन्दा पशव इव हता पश्यतो राक्षसस्य" (पश्यन्तं राक्षसम् अनादृत्य इत्यर्थं) मुद्रा० ३ २७, "पश्यतो मे श्येनेनापहृत शिशु" पञ्च० १ कथा २१ ।

७२८ । जाति, गुण, क्रिया अथवा संज्ञा-द्वारा समुदायसे (समग्र सजातीयसे) एकदेशके (एकके) पृथक् करनेका नाम 'निर्द्धारण' । जिससे निर्द्धारण किया जाता है, उसके उत्तर सप्तमी और षष्ठी होती हैं,‡ यथा—(जाति-द्वारा) मनुष्येषु

---

* 'भावे सप्तमी' समझानेके लिये, 'सत्' शब्दको उसका विशेषण करके उसके साथ प्रयोग किया जाता है ('सत्'—अस्+शतृ—शब्दका अर्थ 'होना'), यथा—विधौ उदिते सति (चन्द्रके उठनेपर), रजन्यां प्रभातायां सत्याम् (रात्रिके प्रभात होनेपर), गोषु दुह्यमानासु सतीषु (गायोंके दुही जाती रहनेपर), तयोः प्राप्तयोः सतोः (उन दोनोंके भी आनेपर), जनेषु जागरितेषु सत्सु (आदमियोंके जागनेपर) । "अभ्रेषु सत्सु धावत्सु सोमो धावति" अपरोक्षानुभूति ८४ ; "सति सकलदृश्यबाधे" स्वात्मनिरूपणम् २२ ।

† इसको 'अनादरे षष्ठी' कहते हैं (Genitive-absolute) ।

‡ इसको 'निर्द्धारे सप्तमी वा षष्ठी' कहते हैं ।

(मनुष्येषु मध्ये) क्षत्रियः शूरः, (अथवा) मनुष्याणां (मनुष्याणां मध्ये) क्षत्रियः शूरः (मनुष्योंमें—मनुष्योंके बीचमें), (गुण-द्वारा) गोषु कृष्णा बहुक्षीरा, गवां कृष्णा बहुक्षीरा; (क्रिया-द्वारा) अध्वगेषु धावन्तः शीघ्रगामिनः, अध्वगानां धावन्तः शीघ्रगामिनः, (संज्ञा द्वारा) कविषु कालिदासः श्रेष्ठः, कवीनां कालिदासः श्रेष्ठः ।

"भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्त्तृषु ब्रह्मवादिनः ॥" मनु० १. ९६–९७।*

७२९। 'प्रशंसा' समझानेमें, 'साधु' और 'निपुण' शब्दके योगमें सप्तमी होती है, यथा—व्याकरणे साधुः, साहित्ये निपुणः ।

७३०। 'इनि' प्रत्यय सहित 'क्त' प्रत्ययके प्रयोगमें, कर्ममें सप्तमी होती है, यथा—"अधीती चतुर्ष्वाम्नायेषु" दशकु० (अधीतिन्—अधीतम् अनेन, अधीत+इनि Versed or proficient in), "गृहीती षट्स्वङ्गेषु" दशकु० (गृहीतिन्—गृहीतम् अनेन, गृहीत+इनि Who has grasped, comprehended or mastered) ।

शिष्टप्रयोगमें निर्द्धारणे पञ्चमीभी होती है, यथा—"अजातमृत-मूर्खेभ्यो मृताजातौ सुतौ वरम्" पञ्च० १, "यतः कौशलेयुतादेकतवर्धी ... नवोढ़ितम्" रघु० ।

* "नराणां नापितो धूर्त्तः, पक्षिणाञ्चैव वायसः ।
चतुष्पदां शृगालस्तु, स्त्रीणां धूर्त्ता च मालिनी ॥" चाणक्य ।

७३१। 'अन्तर्' और 'अधीन' शब्दके योगसे सप्तमी होती है। यथा—उरे अन्तः (उसके बीचमें), "निवसन्नन्तर्दारुणि लङ्घ्यो वह्निर्न तु ज्वलितः" पञ्च० १ ३२.।* "त्वयि अधीनम्" (तेरे अधीन) कु० ४. १० टीकायां मल्लिनाथ।

७३२। 'प्रसित' और 'उत्सुक' शब्दके योगसे सप्तमी और तृतीया होती हैं, यथा—सत्कार्य्ये सत्कार्य्येण वा प्रसितः (आसक्त), विद्यायां विद्यया वा उत्सुकः।

७३३। दो क्रियाओंके मध्यवर्ती कालवाचक और अध्ववाचक शब्दके उत्तर सप्तमी और पञ्चमी होती हैं, यथा—(कालवाचक) अयम् अद्य भुक्त्वा त्र्यहे त्र्यहात् वा भोक्ता (आज खाकर यह तीन दिन पीछे खायेगा), (अध्ववाचक) अयम् इह स्थित्वा क्रोशे क्रोशात् वा लक्ष्यं विध्येत् (यहाँ रहकर यह एक कोसपर लक्ष्य विद्ध कर सकता है)।

७३४। दूरार्थ और अन्तिकार्थ शब्दके उत्तर सप्तमी, और द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी होती हैं; यथा—ग्रामस्य दूरे, दूरम्, दूरेण, दूरात् वा; गृहस्य अन्तिके, अन्तिकम्, अन्तिकेन, अन्तिकात् वा।†

७३५। साक्षिन्, प्रतिभू, कुशल, स्वामिन्, ईश्वर, अधिपति, प्रसूत और आयुक्त शब्दके योगसे सप्तमी और षष्ठी होती हैं; यथा—विवादे

---

* 'अन्तर्'-शब्दके योगमें षष्ठी भी होती है, यथा—"अन्तः कञ्चुकि कञ्चुकस्य" रत्ना० २ ३; "प्रतिबटङ्कवेरन्तर्विवर्त्तमाने" वेणी० ३. ७, "बहिरन्तश्च भूतानाम्" गीता. १३. १५.।

† दूरार्थ और अन्तिकार्थ शब्द विशेषण होनेसे विशेष्यधीन होता है; यथा—दूरः ग्रामः; दूरा पन्थाः।

विवादस्य वा साक्षी, व्यवहारे व्यवहारस्य वा प्रतिभू, मीमांसायां मीमांसायां वा कुशल, गोषु गवां वा स्वामी, ब्राह्मण्यां ब्राह्मण्या वा प्रसूत, ग्रन्थरचने ग्रन्थरचनस्य वा आयुक्त (व्यापृत, तत्पर इत्यर्थ)।

७३६। निमित्तबोधक शब्द कर्मकारकसे समवेत (अर्थात् अवयव-रूपसे सम्बद्ध) रहनेसे, उसमें सप्तमी होती है, यथा—"चर्मणि द्वीपिन हन्ति, दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्। केशेषु चमरीं हन्ति, मानेषु हरिणो हत.॥" (चर्मणि—चर्मनिमित्तम् इत्यर्थ)।

विधेय विशेषण।

७३७। जिसके विषयमें कुछ कहा जाता है, उसको 'उद्देश्य' (Subject) कहते हैं, और जो कुछ कहा जाता है, उसे 'विधेय' (*Predicate*) कहते हैं, *यथा—सुशील बालक* आदरणीय होता है—इस वाक्यमें बालकके विषयमें कहा जाता है, इसलिये 'बालक' उद्देश्य, 'सुशील' उद्देश्य विशेषण, 'आदरणीय' विधेय विशेषण, और 'होता है' क्रियाभी विधेय। विधेय-विशेषण विशेष्यके पश्चात् बैठता है, यथा—ईश्वरो दयालु, सूर्य्य तेजोमय, पृथिवी सुविस्तीर्णा, जल शीतलम्, फल मधुरम्, धर्म परमो बन्धु।

(क) विशेष्यपद विधेय विशेषण होनेसे, तदनुसारही सर्वनाम और क्रियापद बैठते हैं; यथा—"शैत्य हि यत्, सा प्रकृतिर्जलस्य" र० ५ ५४ "दरिद्रस्य यत् मरणम्, सोऽस्य विश्राम", "मातुस्तु यौतक यत्, स्यात् कुमारीभाग एव स" मनु० ९ १३१, "सन्त तृतीया गति उक्ता"।*

---

* विधेय विशेषण रूपसे व्यवहृत पात्र, पद, आस्पद, स्थान, भाजन

(ख) उद्देश्य और विधेय पदका उल्लेख रहनेसे, विधेयके अनुसार क्रिया बैठती है , यथा—भवन्त प्रमाणं भवति ।

(ग) प्रकृति और विकृतिका उल्लेख रहनेसे, प्रकृतिके अनुसारही क्रिया बठती है , यथा—एको वृक्ष पञ्च नौका भवति ।

अनुवाद करो—तू कौन ? लड़का, तुम क्या करते हो ? वह अच्छा पढ़ता है । हमारे प्रति कृपा कीजिये । विना परिश्रम कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता । मने सारी रात जागी थी । अर्जुनने उसकी अङ्गुली छिन्न हो गयी । वह शोक हेतु क्रन्दन करता है । हमारे साथ सूआ आ । मूर्ख पुत्रसे क्या प्रयोजन ? वृथालापसे प्रयोजन नहीं । पिताके तुल्य कौन पूजनीय है ?

और प्रमाण शब्द सर्वदा क्लीबलिङ्ग एकवचनान्त होते हैं, (उद्देश्य अर्थात् कर्त्ताके लिङ्ग वचन चाहे जो हों), और क्रिया कर्त्ताके अनुसार होती है, विधेय-विशेष्यपदके अनुसार नहीं । यथा—"विविधमद्भुतभूत पात्रमालोकिकानाम्" मालती॰ १ ३० । "अविवेक परमापदां पदम्" (स्थानम्, कारणमित्यर्थ) भा॰ २, ३०, "सम्पद पदमापदाम्" हितो॰ १ १२२ ; "के वा न स्यु परिभवपदं निष्फलारम्भयत्ना ?" मेघ॰ ५४ । "निर्धनता सर्वापदामास्पदम्" मृच्छ॰ १ १४, "करिष्य काव्यशारदम्" भामिनी॰ १ १, "आस्पदं त्वमसि सर्वसम्पदाम्" भा॰ १३ ३९ । "गुणा पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वय " उत्तर॰ ४ ११ । "स श्रियो भाजनं नर " पञ्च॰ १ २९६, "कल्याणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्ते !" मालती॰ १ ५ । व्याकरणे पाणिनि प्रमाणम्, "धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति " मनु॰ २ १३, "आर्य्यमिश्रा प्रमाणम्" मालवि॰ १, "एतदाकर्ण्य देव प्रमाणम्" (कार्य्याकार्य्यनिर्णेता इति भाव) काद॰ ।

पिताजीको प्रणाम। हम अध्ययनके लिये विद्यालयमें आये हैं। घरसे निकले। मित्र विना कौन हित करता है? आजसे मैं पाठमें मनोयोगी हूआ। नगरसे बाहर रहना अच्छा। चन्द्रकी अपेक्षा सूर्य बृहत्तर। तेरा निवास कहाँ? पृथिवीके नीचे और सात लोक हैं। उसके ऊपर पुष्पवृष्टि गिरी। हमलोगोंमें कौन पुरस्कार पावेगा? मेघ गरजनेपर (गर्ज्जति) मयूर नाचते हैं। युद्धमें जानेको तैयार (सज्ज) होता है। पहाड़में चढ़कर गाँव देखता है। पर्वतोंके बीचमें हिमालय उच्चतम। प्रजालोग राजाके अधीन। वह घरके भीतर दीपक जलाकर पढ़ता है। इस गाँवको चारों ओर निबिड़ वन। मैं दरिद्र, इसलिये (दरिद्र इति) सभीके अवज्ञा-भाजन। भीमके पीछे अर्ज्जुनका जन्म हुआ। तेरा पढ़नेपर मैं पढ़ूँगा। जिस विद्यासे धर्मज्ञान हो, वही श्रेष्ठ।

शुद्ध करो—अरण्येऽधिवस्तु पशव इच्छन्ति। सन्न्यासी बहवो दिना-न्येकस्थाने नावसेत्। यद्रामादरण्यगायोध्या शून्या दृश्यते, तत् कैकेयी-वचनस्य परिणाम। अत्र गिरिभिरो बहवोऽश्मान सन्ति। अस्य वर्णस्य पतित पलाशवृक्षा दृश्यन्ते। हा विद्वेऽन्यायाचरण कुर्वेन्। स सकला रात्रिस्य विचारयन्तस्थौ। दुर्योधन पाण्डवानाम्भिन्नात्। मम वचन स न विश्वसिति। सर्वेभ्य पुत्रेभ्यो गोपाल शिशु श्रेष्ठ। सर्वाभ्यो नदीभ्यो भागीरथी द्राघिष्ठा। स भोजनाद्‌तु बहिरगच्छत्। सपारमुखानि केवल दु सम्पादनम्भवीति साधोरन्तरेण को जानाति? इय नगरी अत्र शोभा सायन्त। धनिन द्रव्य याचिन भिक्षुकै। सम्भोर्निधिमुख समन्वे द्वे। तेषा मे च सख्यमस्ति। अय वित्तमन्वयन्त एव। ता वाऽऽनय, मा वा तत्र नय। हे जगन्नाथ! मे सर्वाणि पापानि क्षमस्व। क्रुद्ध पुरुष

शिलायामध्यशेते । पथिक उदिते सति, तस्य सार्द्धमहमगच्छम् । ममागतेषु बालेषु, तान् फलानि दातुमारभस्व । दम्भश्च पैशुन्यञ्च सदा गर्हणीयौ । पिता च माता च वार्द्धक्ये परिपालनीय । अनावृष्टे क्षेत्र नीयमानासु, सा शस्यमखादयत् । भार्य्यया आक्रोशन्त्या सा भर्त्रा प्रतिषिद्धा । रूपवती भार्य्या सदा प्रीतिपात्रा भवति । यत् स एवम् उवाच, तत् तस्य दोष एव । यत् कौर्य्यमित्याचक्षते, तत् प्रकृतिरेव मन्तव्याम् । त्वं मम प्राणानामपि प्रियतरा, अतस्त्वां सर्वं कथयामि । अहं वा त्वं नचचार । राज्ञाऽपराधिन शतं रूपका दण्डता । इन्द्रः स्वयश क्षिप्रमिषुर्गोपयामास । प्रासादस्य पतितोऽमात्य भिक्षुकान् स्थापयति राजा । क्षुधितेन वत्सेन पय पायय, तमन्नं वा खादय । राज्ञी वनात् पुष्पाणि दासीरानायवत् । अहं मम मित्र मा पारितोषिकमग्राहयम् । तस्या भार्य्या अवलोकनस्य पार्श्वे ते गता बभूव । अत्र विषये देवतो न दोषास्पद । सा तपस्विनी मत्कृपापात्र जातम् । गोविन्दस्तस्य भार्य्या च स्तुत्यचरिते स्त । शमो दमो निस्पृहता च सर्वे धर्मो यतिषु प्रशस्या । अन्ये राम जनक कमपि नृपं शिवधनुर्भञ्जयितु न शशाक । अथ पर्वतोऽस्य ग्रामस्योत्तर । रामस्य पूर्व गोविन्द आगच्छतु । अ दिवसमारभ्य मम मन पर्य्याकुल जातम् । पुत्रविरहदुःखानन्तरं पिता ग्रामस्य बहिरावसथेऽभ्युवास । स शिष्येणोपनिषदं वेदयामास । स्वामिना भृत्येन धेनुं पयो दोग्धने । भिक्षुः श्रेष्ठिनं धन याचयति । स नर पदस्य कस्त्, अयन्तु नयनस्य काण । स जम्बूद्वीप नावि गत, शकटे च प्रत्यागत । यज्ञदत्त कुविन्दपुराय प्रेषित ; स मासद्वये प्रत्यागमिष्यति । गोविन्दो यूयमेतद्कुरुताम् । अहं ते चौराञ्च शत्रून् पराजयन्त । त्वमहं गोपालस्तुन्दश्च तत् कृत्यं कुर्य्यं । अयं दद्भस्ते

ब्राह्मणा वा ग्रामं गच्छन्तु । यूयं वयं वा नदीं गमिष्यामः । अतस्त्वा दूराद्वन्दे नमः । यदि [redacted] त्वया पाठं नाध्यापयति, तर्हि मां तन्निवेदय । अयं नरः चौराणामतीव बिभेति । ममागमनस्य प्रागेव स गतः । अलं त्वं बहु ताडयितुम्, सोऽत्यशक्तः । अस्य पुस्तकस्य रामाय प्रयोजनं नास्ति । ये शतशोऽरण्येऽधिवसन्ति, तेभ्यो नृपानुग्रहस्य क उपयोगः ? भक्षिकेभ्यो रोचते । अहं देवदत्तस्य शतं रूपकान् धारयामि । स मयि क्रुध्यति, नाहं तस्मा अभिद्रुह्यामि । न किमपि त्वामधुना प्रतिशृणोमि । राज्यस्योपरि चण्डवर्मा शास्ति । रामो रावणं हत्वा विभीषणो लङ्काराज्ये स्थापितः । त्वया प्रातरेव गां पयो दोग्धव्यमिति तमादिशन् रामोऽस्मागतवान् । रामाय द्वौ पुत्रावास्ताम् । प्रभवति निजाय कन्यकाजनाय महाराजः । वासुकिः पातालतलमध्येष्टे । मामपि किं तिष्ठसि ? अस्य पर्वतस्य पूर्वं महावारी वर्तते । अस्मादुत्तरतस्तु रौद्रं श्मशानम् । उपवनाद्दक्षिणेनार्त्तरवं श्रुत्वा दुःखितान् वारणं प्रत्यश्रृणोत् । अधुना सुरहितैर्भवति चेत्, सुभिक्षं सर्वत्राऽऽनन्दि । अहं ह्यः पथि महान्तं भुजगं ददर्श । अत्र विषये तव सन्देहो मा भूत् । मा चौरानभैष्ट । आत्मना सार्द्धं मा कलहमकृथाः । अशीतिदिवसान् यावत् [redacted] भृत्यो मामसेविष्ट । ते रथे कुसुमपुराय यातवन्तः । यावद्धनमोधरेणास्मान् दीयते, तस्मिन् सन्तोषः कार्य्यः । अयं मम चिरन्तनो वयस्यो भवितव्यः । इदव्यस्मान् शास्ति, कथमस्माभिरभिभूतं भाव्यम् ? कुमन्त्रिणा नृपसभा [redacted] प्रवेष्टव्यम् । जितोऽसौ मया षोडशसहस्राणां रूपकाणाम् । त्वं चेन्मम कार्य्यं करोषि, त्वामहं मुद्रिकाशतं दास्यामि । त्वामत्रावस्थाप्य कथमहमनुमस्ये ? अहं त्वामेतत् कर्तुमिच्छामि । इमं ग्रन्थं वाचयितुं न शक्यते । इमस्माद्वृक्षमधः पातयितुं न साम्प्रतम् । विजयतु भवान्, [redacted] एवं जनानानन्दय ।

समास-प्रकरण (Compound)।

पहले कहा गया, कि विभक्तियुक्त शब्द और धातुको 'पद' कहते हैं। इसलिये 'जगत पति'—इस स्थलमें 'जगत्'-शब्दको षष्ठीके एकवचनमें—'जगतः', और 'पति' शब्दको प्रथमाके एकवचनमें—'पतिः' होनेसे, ये दो पद हैं। कभी कभी 'जगत्पति'—ऐसा प्रयोगभी किया जाता है। तब 'जगत्' शब्दमें विभक्ति नहीं है, केवल 'पति'-शब्दमेंही विभक्ति है, इसलिये 'जगत्पति' एक पद हुआ। इसप्रकार, 'कन्द मूल फलम्' इन तीन पदोंको लेकर 'कन्द मूल फलानि' ऐसा एकपद किया जाता है।

७३८। दो अथवा बहु पदोंके एकपदीकरणको* 'समास'† कहते हैं।

समास छः प्रकार—(१) तत्पुरुष, (२) कर्मधारय, (३) द्विगु, (४) द्वन्द्व, (५) बहुव्रीहि और (६) अव्ययीभाव।

परस्पर अन्वय (अर्थात् अर्थसङ्गति वा आकाङ्क्षा) न रहनेसे किसी पदका समास नहीं होता; यथा—राज इन्द्र पुत्र—यहां 'राज' और 'पुत्र' इन दोनों पदोंका, तथा 'इन्द्र' और 'पुत्र' इन दोनों पदोंका परस्पर अन्वय है, इसलिये उन्हींका समास हो सकता, 'राज' और 'इन्द्र' इन दोनों पदोंका परस्पर अन्वय न रहनेके कारण समास नहीं हो सकता (अर्थात् 'इन्द्र राजपुत्र' वा 'राज इन्द्रपुत्र' अथवा

---

* जो पूर्वमें एकपद नहीं थे उनको एकपद करना।

† समसनं संक्षेपणम्। परस्परापेक्षयोः पूर्वोत्तरपदयोरैकपद्येन न्यसनं समासः।

'सुन्दर-राजपुत्र' हो सक्ता है, किन्तु 'राजसुन्दर पुत्र'—ऐसा नहीं होगा)।*

नित्यसमास-भिन्न सब समासही विकल्पसे होता है। समासविच्छेदके वाक्यको 'व्यास वाक्य' अथवा 'विग्रह-वाक्य' कहते हैं †। जिन पदोंका समास किया जाता है, उनको 'समस्यमान पद' कहते हैं। समासनिष्पन्न पदको 'समस्त-पद' कहते हैं। समस्यमान पदोंके बीचमें सर्वप्रथम पदको 'पूर्वपद', और सर्वशेष पदको 'उत्तरपद' कहते हैं।

७३९। समासके अन्तर्गत पदोंकी विभक्तिका लोप होता है।‡

---

* "श्रुतदेहविसर्जन पितुः" र० ८ २५, "रतिगृहीतानुनयेन" र० ६. २, "अप्रविष्टविषयस्य रक्षसाम्" र० ११ १८, "अवेदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम्" कु० १ २०, "हातविशेष ! पुंसाम् ! कु० ३ १, "मरुताम् आकृष्टलीलान् नरलोकपालान्" र० ६ १, "बाणेन भिन्नहृदय"—ऐसे स्थलोंमें "सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः" कहते हैं, अर्थात् कारक और सम्बन्धपदके साथ आकाङ्क्षा रहनेपरभी यदि अनायास अर्थबोध हो, तो उनको पृथक् रखकर समास किया जा सकता है। विशेषणपद पृथक् नहीं रहता, यथा—धार्मिकब्राह्मणपुत्र — ऐसा समास होगा, धार्मिकस्य ब्राह्मणपुत्र — ऐसा नहीं होगा।

† वृत्त्यर्थ (समासार्थ)-बोधक वाक्य विग्रह ।

‡ समास प्रभृति-कारणसे (अर्थात् समास होनेसे, और प्रत्यय परे रहनेसे) जिन शब्दोंके उत्तर विभक्तिका लोप होता है, वेभी पदमें गिने जाते हैं, इसलिये वे पदान्तविहित कार्य्य प्राप्त होते हैं। (इसका तात्पर्य्य यह है, कि जिनके उत्तर विभक्तिका लोप होता है, वे वास्तवमें पद नहीं,

७२० । कृदन्त, तद्धितान्त और समस्त (समासनिष्पन्न) शब्द प्रातिपदिक होते हैं, इसलिये इनके उत्तर फिर नूतन विभक्ति होती है ।

(१) तत्पुरुष समास ।

(Determinative Compound)

७२१ । जिस समासमें उत्तरपदका अर्थ प्रधान होता है,

किन्तु पदके तुल्य कार्य्य प्राप्त होते हैं)। यथा—'जगत् ईश्वर'—इन दोनों पदोंके समासमें 'जगत्-ईश्वर' होता है, समास-विधिके अनुसार 'जगत्'-शब्दकी विभक्तिके लोपमें दोनों मिलके एकपद होनेपरभी, 'जगत्'-शब्द पदमें गण्य होनेके कारण पदान्तकार्य्य प्राप्त होगा, अर्थात् व्यञ्जन-सन्धिके नियमानुसार पदान्तस्थित 'त्' के स्थानमें 'द्' होगा, सुतरां 'जगदीश्वर' यह पद सिद्ध होगा । इसप्रकार, 'मृदो विकार' इस वाक्यमें 'मृद्'-शब्दके उत्तर 'मयट्' प्रत्यय करनेसे, 'मृद्-मय' होगा; और 'मृद्'-शब्दके विभक्तिलोपसे वह पदमें गण्य होनेके कारण 'द्' के स्थानमें 'द्', तत्पश्चात् 'द्' के स्थानमें 'न्' होगा, और णत्वविधानानुसार 'न्' मूर्द्धन्य नहीं होगा, सुतरां 'मृन्मय' सिद्ध होगा ।

किन्तु तद्धितके 'य' और स्वरवर्ण परे रहनेसे, लुप्तवैभक्तिक शब्द पदमें गण्य नहीं होता; यथा—जगत्+इक (ठिक) जागतिक । मत्वर्थ-प्रत्यय परे रहनेसेभी तकारान्त और सकारान्त शब्द पदमें गण्य नहीं होते, यथा—तडित्+मतुप्=तडित्वत्, रजस्+वल=रजस्वल । किन्तु भवदीय, अहंयु, शंयु, शुभंयु—इन स्थलोंमें पद होता है । चतुर्थ, षष्ठ इत्यादि स्थलोंमें पद नहीं होता ।

उसे 'तत्पुरुष समास' कहते हैं ।*

(प्रथमा-तत्पुरुष)

७४२ । षष्ठ्यन्त एकदेशीके (अर्थात् अवयवीके) साथ प्रथमान्त एकदेशके (अर्थात् अवयवके) समासको 'प्रथमा तत्पुरुष' कहते हैं † ।

(क) एकवचनान्त अवयवीके साथ पूर्व, अपर, अधर, उत्तर—इनका समास होता है, यथा—(पूर्वं कायस्य) पूर्वकाय ,‡ अपरकाय , अधरकाय , उत्तरकाय । एकवचन न होनेसे नहीं होता , यथा—पूर्वं छात्राणाम् आमन्त्रयस्व ।

(ख) कालवाचक पदके साथ समस्त एकदेशवाचक पदका समास होता है । यथा—(पूर्वम् अह्नः) पूर्वाह्ण , (अपरम् अह्नः) अपराह्ण , (मध्यम् अह्नः) मध्याह्न , (सायं सायम् वा अह्नः) सायाह्न § । (पूर्वं रात्रेः) पूर्वरात्र , (मध्यं रात्रेः) मध्यरात्र , (अपरं रात्रेः) अपररात्र । (८२१ सूत्र) ।

---

* तत्पुरुषसमासनिष्पन्न शब्द उत्तरपदके लिङ्ग और वचन प्राप्त होता है ।

† इसको 'एकदेशि-समास' कहते हैं । इसमें पूर्वपद प्रथमान्त होता है, इसलिये यहाँ इसे 'प्रथमा-तत्पुरुष' कहा गया ।

‡ यहाँ 'पूर्वम्' और 'कायस्य' इन दोनों पदोंकी विभक्तिका लोप होनेसे 'पूर्वकाय' यह समस्त शब्द उत्पन्न होता है , पश्चात् उसके उत्तर यथासम्भव प्रथमादि विभक्ति होती है ।

§ 'सायम्' शब्दके मकारका लोप होता है ।

(ग) एकवचनान्त अवयवोंके साथ क्लीवलिङ्ग 'अर्द्ध'-शब्दका* समास होता है, (यथा—अर्द्धम् आसनस्य) अर्द्धासनम्, (अर्द्धं पिप्पल्या) अर्द्धपिप्पली, (अर्द्धं कोशातक्या) अर्द्धकोशातकी। एकवचन न होनेसे नहीं होता, यथा—अर्द्धं पिप्पलीनाम्।

(द्वितीया-तत्पुरुष)

७४३। प्रथमान्त पदके साथ द्वितीयान्त पदके समासको 'द्वितीया-तत्पुरुष' कहते हैं।

(क) 'श्रित' प्रभृति शब्दो उत्तरपद होनेसेही द्वितीया-तत्पुरुष होता है, यथा—(वृक्ष श्रित) वृक्षश्रित., (दुःखम् अतीत.) दुःखातीत, (गृह गत) गृहगत, (सुख प्राप्त) सुखप्राप्त, (कूप पतित) कूपपतित, (मरणम् आपन्न) मरणापन्न, (ग्राम गामी) ग्रामगामी, (शुभम् इच्छु) शुभेच्छु., (धनम् ईप्सु) धनेप्सुः, (अन्न बुभुक्षु) अन्नबुभुक्षु। (वेदं विद्वान्) वेदविद्वान्।

---

* "भित्त शकल-खण्डे वा पुंस्यर्धोऽर्धं समेंऽशके" अमर। क्लीवलिङ्ग 'अर्द्ध' शब्दका अर्थ—समान अंश अर्थात् तुल्यार्द्ध (आधा टुकड़ा), और पुंलिङ्ग 'अर्द्ध'-शब्दका अर्थ—खण्ड अर्थात् असमान अंश (टुकड़ा)। पुंलिङ्ग 'अर्द्ध' शब्दका षष्ठी तत्पुरुष समास होता है, यथा—(चन्द्रस्य अर्द्ध) चन्द्रार्द्ध, "कोशार्द्धं प्रकृतिपुरःसरेण गत्वा [पुष्पकेण]" र० १३ ७९ (कोशैकदेशमित्यर्थ)।

† श्रितादि—श्रितातीत-गत प्राप्त पतितापन्न-गामिनः।
'उ'-प्रत्ययान्तशब्दश्च विज्ञेयैते श्रितादयः॥

७४४। निन्दा समझानेमें, 'क्त' प्रत्ययान्त पदके साथ 'खट्वा'-शब्दका द्वितीया तत्पुरुष होता है, यथा—(खट्वाम् आरूढ) खट्वारूढ (उत्पथप्रस्थित इत्यर्थः)। "खट्वारूढोऽविनीत स्यात्" त्रिकाण्डशेष। नित्यसमासोऽयम्।

७४५। 'व्याप्ति' अर्थमें द्वितीया-विभक्त्यन्त कालवाचक पदका द्वितीया-तत्पुरुष होता है, यथा—(क्षणं सुखम्) क्षणसुखम्, (मुहूर्तं दुःखम्) मुहूर्तदुःखम्, (मासं गम्य) मासगम्य, (वर्षं भोग्य) वर्षभोग्य,—(क्षण, मुहूर्त, मास, वर्ष व्याप्य इत्यर्थः)।

(तृतीया-तत्पुरुष)

७४६। प्रथमान्त पदके साथ तृतीयान्त पदके समासको 'तृतीया-तत्पुरुष' कहते हैं।

(क) कृत्प्रत्ययनिष्पन्न पदके साथ कर्त्तामें और करणमें विहित तृतीया-विभक्त्यन्त पदका तृतीया तत्पुरुष होता है। यथा—(कर्त्तामें)—(व्याघ्रेण हत) व्याघ्रहत, (अहिना दष्ट) अहिदष्ट, (व्यासेन रचित.) व्यासरचित, (पाणिनिना प्रणीतम्) पाणिनिप्रणीतम्, (नारदेन प्रोक्तम्) नारदप्रोक्तम्, (राज्ञा पालितम्) राजपालितम्, (द्विजेन भक्ष्यम्) द्विजभक्ष्यम्। (करणमें)—(नखैः भिन्न) नखभिन्न, (असिना छिन्न) असिच्छिन्न, (अग्निना दग्ध) अग्निदग्ध, (जलेन सिक्त) जलसिक्त, (अञ्जलिना पेयम्) अञ्जलिपेयम्, (शिरसा धार्य्यम्) शिरोधार्य्यम्।*

* दात्रेण लूनवान्, परशुना छिन्नवान्—इत्यादिस्थलोंमें समास नहीं होता।

७४७ । ऊनार्थ पदके साथ तृतीया-तत्पुरुष होता है ; यथा—(एकेन ऊन) एकोन , (विद्यया हीन) विद्याहीन , (स्नेहेन रहित) स्नेह-रहित , (गर्वेण शून्य) गर्वशून्य ; (मदेन विरुद्ध) मद्विरुद्ध ।

७४८ । 'पूर्व'-प्रभृति पदके साथ तृतीया-तत्पुरुष होता है ; यथा—(मासेन पूर्व) मासपूर्व (वर्षेण अवर) वर्षावर ; (मात्रा सदृश) मातृसदृश , (पित्रा सम) पितृसम , (वाचा कलह) वाक्कलह ; (गुडेन मिश्र) गुडमिश्र , (आचारेण श्लक्ष्ण—मनोहर इत्यर्थ) आचारश्लक्ष्ण , (धनेन अर्थ) धनार्थ ।

(चतुर्थी-तत्पुरुष)

७४९ । प्रथमान्त पदके साथ चतुर्थ्यन्त पदके समासको 'चतुर्थी-तत्पुरुष' कहते हैं , यथा—(विप्राय दत्तम्) विप्रदत्तम् ।

७५० । बलि, हित और सुख शब्दके साथ चतुर्थी-तत्पुरुष होता है , यथा—(भूताय बलि) भूतबलि ; (पुत्राय हितम्) पुत्रहितम् , (आत्मने सुखम्) आत्मसुखम् ।

७५१ । प्रकृति विकृति-*भाव समझानेसे, तादर्थ्यमें विहित चतुर्थी-विभक्त्यन्त पदका चतुर्थी तत्पुरुष होता है ; यथा—(कुण्डलाय हिरण्यम्) कुण्डलहिरण्यम् , (यूपाय दारु) यूपदारु ;—यहाँ 'हिरण्य' और 'दारु'—प्रकृति, 'कुण्डल' और 'यूप'—विकृति । प्रकृति विकार-भिन्न अन्य स्थलमें चतुर्थी तत्पुरुष नहीं होता ; यथा—रन्धनाय स्थाली—यहाँ समास नहीं होगा ।†

---

* स्वतः सिद्ध वस्तु प्रकृति , रूपान्तरितं विकृति ।

† 'रन्धनस्थाली'—यहाँ षष्ठी-तत्पुरुष समास होगा ।

(पञ्चमी-तत्पुरुष)

७५२ । प्रथमान्त पदके साथ पञ्चम्यन्त पदके समासको 'पञ्चमी-तत्पुरुष' कहते हैं ।

(क) 'भय'-प्रभृति पदके साथ पञ्चमी तत्पुरुष होता है, यथा—(व्याघ्रात् भयम्) व्याघ्रभयम्, (व्याघ्रात् भीत) व्याघ्रभीतः, (व्याघ्रात् भी) व्याघ्रभी, (व्याघ्रात् भीति) व्याघ्रभीति, (गृहात् निर्गतः) गृहनिर्गतः, (अधर्मात् विरत) अधर्मविरत, (स्वाध्यायात् प्रमत्त) स्वाध्यायप्रमत्त, (सुखात् अपेत) सुखापेत, (बन्धनात् मुक्त) बन्धनमुक्त, (रथात् पतित) रथपतितः, (तरङ्गात् अपत्रस्त) तरङ्गापत्रस्तः, (विदेशात् आगत) विदेशागतः, (सितात् इतर) सितेतरः ।

(षष्ठी तत्पुरुष)

७५३ । प्रथमान्त पदके साथ षष्ठ्यन्त पदके समासको 'षष्ठी तत्पुरुष' कहते हैं, यथा—(गङ्गाया जलम्) गङ्गाजलम्, (तरो छाया) तरुच्छाया, (अग्ने शिखा) अग्निशिखा, (वायो वेग) वायुवेग, (जलस्य प्रवाह) जलप्रवाहः, (सुखस्य भोग.) सुखभोग, (पयस पानम्) पय पानम्, (कन्यायाः दानम्) कन्यादानम्, (गवां दोह) गोदोह, (आज्ञाया भङ्ग) आज्ञाभङ्ग, (दशाया अन्त) दशान्त, (सूर्य्यस्य उदय.) सूर्य्योदय.; (वृष्टे पातः) वृष्टिपात., (शिरसः छेदः) शिरश्छेद., (गवां वध.) गो

वधः; (पितुः गृहम्) पितृगृहम्, (राज्ञः भवनम्) राजभवनम्, (मनोः वचनम्) मनुवचनम्; (अर्थस्य नाशः) अर्थनाशः, (कूपस्य उदकम्) कूपोदकम्।

७६४। 'निर्द्धारण'-अर्थमे विहित षष्ठी विभक्त्यन्त पदका समास नहीं होता, यथा—धर्मभृतां वरः, क्षत्रियो नराणां शूरतमः, ब्राह्मणो वर्णानां पूज्यतमः।

(क) पूरणार्थ पदके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता; यथा—राज्ञां प्रथमः, पुत्रयोः द्वितीयः, भ्रातृणां तृतीयः, शिष्याणां चतुर्थः, छात्राणां पञ्चमः।

(ख) गुणवाचक पदके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता, यथा—पटस्य शौक्ल्यम्, कोकनदस्य लौहित्यम्, आकाशस्य नीलिमा; द्राक्षाया माधुर्यम्।

किसी किसी स्थलमे होता है; यथा—(अर्थस्य गौरवम्) अर्थगौरवम्, (बुद्धेः मान्द्यम्) बुद्धिमान्द्यम्, (अर्थस्य कार्द्यम्) अर्थकार्द्यम्, अङ्गमार्दवम्, वचनकौशलम्।

(ग) तृप्त्यर्थ पदके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता, यथा—अपां तृप्तः, फलानां सुहितः।

(घ) कर्त्तामे विहित 'तृच्' और 'णक' (अक) प्रत्ययके योगसे निष्पन्न पदके साथ कर्ममे विहित षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता। यथा—(तृच्) जगतः स्रष्टा, सुखस्य दाता, दुःखस्य हर्त्ता। (अक) प्रजानां पालकः, वृक्षाणां छेदकः, शत्रूणां घातकः।

याजकादि शब्दके साथ समास होता है; यथा—(शूद्राणां याजकः)

शूद्रयाजक, देवपूजक; राजपरिचारक, अन्नपरिवेषक, जलपरिषेचक; वेदाध्यापक, अनर्थोत्पादक, पुराणवाचक, मुक्तिप्रयोजक, भुवनभर्त्ता; हविर्होता, गुणग्रहीता; गुणग्राहक ।

(सप्तमी-तत्पुरुष)

७५५ । प्रथमान्त पदके साथ सप्तम्यन्त पदके समासको 'सप्तमी-तत्पुरुष' कहते हैं ।

(क) 'शौण्ड'-प्रभृति शब्द उत्तरपद होनेसेही सप्तमी-तत्पुरुष होता है, यथा—(दाने शौण्ड —विख्यात इत्यर्थ) दानशौण्डः, (शास्त्रे प्रवीणः) शास्त्रप्रवीणः, (कर्मसु निपुण) कर्मनिपुणः, (रणे पण्डित) रणपण्डित, (क्रीडायां कुशलः) क्रीडाकुशलः, (कार्य्ये दक्ष) कार्य्यदक्षः, (विचारे पटुः) विचारपटु, (व्याख्याने चतुर) व्याख्यानचतुरः, (विषये चपल) विषयचपल, (आतपे शुष्क) आतपशुष्क, (स्थाल्यां पक्व) स्थालीपक्व, (वने अन्तः) वनान्तः, (ईश्वरे अधीनः) ईश्वराधीन, (मन्त्रे सिद्ध) मन्त्रसिद्ध ।

७५६ । 'ऋण' समझानेमें, कृत्यप्रत्ययनिष्पन्न पदके साथ सप्तमी-तत्पुरुष होता है; यथा—(मासे देयम्) मासदेयम् [ऋणम्], (वर्षे परिशोध्यम्) वर्षपरिशोध्यम् [ऋणम्] । ('यत्' प्रत्ययेनैव दृश्यते) ।

७५७ । 'क्त' प्रत्ययनिष्पन्न पदके साथ दिवस और रात्रिके अवयव-वाचक पदका सप्तमी-तत्पुरुष होता है, यथा—(पूर्वाह्णे कृतम्) पूर्वाह्ण-कृतम्, (अपराह्णे कृतम्) अपराह्णकृतम्, (पूर्वरात्रे कृतम्) पूर्वरात्र-कृतम्, (अपररात्रे कृतम्) अपररात्रकृतम् ।

७५८ । 'निन्दा' समझानेसे, 'काक' वाचक पदके साथ सप्तमी-तत्पुरुष होता है, यथा—(तीर्थे काक इव) तीर्थकाक ; तीर्थवायस ; तीर्थध्वाङ्क्ष ;—(लोलुप इत्यर्थ)।

(नञ्-तत्पुरुष)

७५९ । प्रथमान्त पदके साथ 'नञ्'*—इस अव्ययके समासको 'नञ् तत्पुरुष' कहते हैं, यथा—(न ब्राह्मण) अब्राह्मण ; (न मोघ) अमोघ (न प्रिय) अप्रिय, (न विकृत) अविकृत, (न सिद्ध) असिद्ध, (न सुखम्) असुखम्, (न दर्शनम्) अदर्शनम्, (न उपलम्भ) अनुपलम्भ ।

---

* 'नञ्'के अर्थ ६-प्रकार—(१) सादृश्य, यथा—अब्राह्मण (ब्राह्मणसदृश इत्यर्थ), (२) अभाव, यथा—अभोजनम् (भोजनाभाव इत्यर्थ), अपापम् (पापाभाव इत्यर्थ); (३) अन्यत्व, यथा—असुखम् (सुखात् अन्यत्, दुःखमित्यर्थ), अघट: पट: (घटो घटभिन्न इत्यर्थ); (४) अल्पता, यथा—अनुदरी कन्या (अल्पोदरी, कृशोदरा, तनुमध्यमा इत्यर्थ); अकेशी (अल्पकेशी इत्यर्थ); (५) अप्रशस्तता; यथा—अकाल (अप्रशस्तकाल इत्यर्थ), अकार्यम् (अप्रशस्तकार्यम् इत्यर्थ), (६) विरोध, यथा—असुर (सुरविरोधी इत्यर्थ); अनीति (नीतिविरोधिनी इत्यर्थ), असित (सितविपरीत, कृष्ण इत्यर्थ); अधर्म परापकार (परापकार धर्मविरोधी इत्यर्थ)।

"तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता ।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्था: षट् प्रकीर्तिता ॥"

(२) कर्मधारय समास ।

(Appositional Compound)

७६० । जिस समासमे समस्यमान पद समानाधिकरण* (अर्थात् विशेष्य-विशेषण†-भावापन्न, अथवा अभेदसम्बन्धसे

---

* अभेदेन अन्वितार्थक शब्द समानाधिकरण । एकविभक्त्यन्तत्वम् एकार्थनिष्ठत्व सामानाधिकरण्यम् ।

† किसी पद द्वारा जिस पदको विशेष किया जाता है, अर्थात् अनेक प्रकारोंसे पृथक् करके एकही प्रकारमे स्थापन किया जाता है, वह 'विशेष्य', और जिस पद द्वारा विशेष किया जाता है, वह 'विशेषण', यथा—नील पद्म,—यहाँ, पद्म नाना प्रकारके है (नील, श्वेत, लोहित इत्यादि), किन्तु 'नील' यह पद उसको उन प्रकारोंसे पृथक् करके एकही प्रकारमे अर्थात् नीलमे स्थापन करता है, इसलिये 'पद्म'—विशेष्य, और 'नील'—विशेषण ।

(विशिष्यते नियम्यते व्यावर्त्यते व्यवच्छिद्यते भेद्यते येन तत् विशेषणम्, भेदकम् इति यावत् । अनेकप्रकार वस्तु प्रकारान्तरेभ्यो व्यवच्छिद्य एकस्मिन् इप्सिते प्रकारे यत् व्यवस्थापयति, तत् व्यवस्थापक भेदक विशेषणम्, यत् व्यवस्थाप्यमानम्, तत् भेद्य विशेष्यम् ।)

फिर, 'गाढ नील' कहनेसे, उक्तरीतिसे 'गाढ' विशेषण, और 'नील' विशेष्य होता है । 'पद्म पुष्प' कहनेसे, 'पद्म' विशेषण, और 'पुष्प' विशेष्य होगा ।

जो शब्द द्रव्य (अर्थात् वस्तु, व्यक्ति, देश, काल इत्यादि), गुण, जाति और क्रियाका नाम समझाते है, वेही प्राय विशेष्य होते है; यथा—

एकार्थप्रतिपादक) होते हैं, उसको 'कर्मधारय समास' कहते हैं।

(क) विशेष्य-पदके साथ विशेषण-पदका कर्मधारय समास होता है। कर्मधारय-समासमें उत्तर-पदका अर्थ प्रधान होता है। यथा—(नवः पल्लवः, अथवा नवश्चासौ पल्लवश्च) नवपल्लवः, (नवौ पल्लवौ, अथवा नवौ च तौ पल्लवौ च) नवपल्लवौ; (नवाः पल्लवाः अथवा नवाश्च ते पल्लवाश्च) नवपल्लवाः। (शोभना लता, अथवा शोभना चासौ लता च) शोभनलता, (शोभने लते, अथवा शोभने च ते लते च) शोभनलते, (शोभनाः लताः, अथवा शोभनाश्च ताः लताश्च) शोभनलताः। (नीलम् उत्पलम्, अथवा नीलं च तद् उत्पलं च) नीलोत्पलम्, (नीले उत्पले, अथवा नीले च ते उत्पले च) नीलोत्पले, (नीलानि उत्पलानि, अथवा नीलानि च तानि उत्पलानि च) नीलोत्पलानि। (शीतः पवनः) शीतपवनः, (उष्णम् उदकम्) उष्णोदकम्, (मधुरं वचनम् मधुरवचनम्;

पुष्प, सौन्दर्य, ब्राह्मण, गमन। और जो शब्द गुण, जाति और क्रियाको समझा कर द्रव्यको भी समझाते हैं, वेही प्रायः विशेषण होते हैं, यथा—सुन्दर (पुष्प) ब्राह्मण (पण्डित), गत (दिन)।

प्रयोगविशेषमेंही विशेष्य पद विशेषण, और विशेषण पद विशेष्य होता है, जैसे 'नील पद्म' यहाँ 'पद्म'—द्रव्यवाचक विशेष्य, 'पद्म पुष्प' यहाँ 'पद्म'—द्रव्यवाचक विशेषण, 'नील वस्त्र' यहाँ 'नील'—गुणवाचक विशेषण, 'गाढ़ नील', यहाँ 'नील'—गुणवाचक विशेष्य, 'कुलीन ब्राह्मण' यहाँ 'ब्राह्मण'—जातिवाचक विशेष्य, 'ब्राह्मण पण्डित' यहाँ 'ब्राह्मण'—जातिवाचक विशेषण।

(नवम् अन्नम्) नवान्नम्; (सर्वे लोकाः) सर्वलोकाः; (विश्वे देवाः) विश्वदेवाः, (दृढो बन्धः) दृढबन्धः; (सुरभि चन्दनम्) सुरभिचन्दनम्; (नवः जलधरः) नवजलधरः; (सन् पुरुषः) सत्पुरुषः, (महान् देवः) महादेवः, (महान् वीरः) महावीरः, (परमः पुरुषः) परमपुरुषः; (केवलः वैयाकरणः) केवलवैयाकरणः, (जरन् नैयायिकः) जरन्नैयायिकः, (सप्त ऋषयः) सप्तर्षयः * ।

(ख) यदि अनेक विशेषण एकही विशेष्यके हों, तो विशेषणके साथ विशेषणकाभी कर्मधारय होता है, यथा—(नीलः उज्ज्वलश्च—जो नील, वही उज्ज्वल) नीलोज्ज्वलः † [आकाशः], (पीनः उन्नतश्च) पीनोन्नतः [कायः], (कुब्जः कुण्ठश्च) कुब्जकुण्ठः [पुरुषः] ।

७६१। 'नञ्'-विशिष्ट 'क्त' प्रत्ययान्त पदके साथ 'नञ्' शून्य 'क्त'-प्रत्ययान्त पदका कर्मधारय-समास होता है, यथा—(कृतञ्च तत् अकृतञ्च) कृताकृतम्, (भुक्तञ्च तत् अभुक्तञ्च) भुक्ताभुक्तम्, (पीतञ्च तत् अपीतञ्च) पीतापीतम्, (छिन्नञ्च तत् अछिन्नञ्च) छिन्नाछिन्नम्, (एकञ्च तत्

* सप्त समास नेमेही संख्यावाचक विशेषण-पदका कर्मधारय होता है; यथा—सप्तर्षय —यह 'सप्तर्षिमण्डल' के समस्त है । किन्तु सामान्यतः 'सप्तसंख्यक ऋषि' समझानेसे कर्मधारय समास नहीं होगा—द्विगु समास होगा । 'एक'-शब्दका कर्मधारय समास होता है, यथा—(एक वीर) एकवीर ।

† यहाँ 'उज्ज्वल' पदकी विशेष्यत्व-विवक्षा हुई है ।

अपक्वञ्च) पक्वापक्वम् । समान प्रकृति स्थलमेंही होता है ; सिद्ध अभुक्तञ्च—यहाँ समास नहीं होगा ।

७६२ । वर्णवाचक पदके साथ वर्णवाचक पदका कर्मधारय-समास होता है ; यथा—(नीलश्चासौ लोहितश्च) नीललोहित , (लोहितश्चासौ धवलश्च) लोहितधवल , (पीतश्चासौ धवलश्च) पीतधवल ।

७६३ । पूर्वकाल और उत्तरकाल समझानेसे, 'क्त'-प्रत्ययान्त पदके साथ 'क्त'-प्रत्ययान्त पदका कर्मधारय-समास होता है , यथा—(पूर्व—अथवा आदौ—स्नात , पश्चात् अनुलिप्त) स्नातानुलिप्त ; यातायात ; शयितोत्थित , लूनप्ररूढ , कृतापकृतम् , पक्वभुक्तम् ; भुक्तोद्गीर्णम् ।

(उपमान-कर्मधारय)

७६४ । उपमान और उपमेयके * साधारणगुण-वाचक पदके साथ उपमान पदके समासको 'उपमान-कर्मधारय' कहते हैं ; यथा—(घन इव श्याम) घनश्याम ; † (अर्णव इव गभीर) अर्णवगभीर ; (शैल इव उन्नत) शैलोन्नत ; (अनल इव उज्ज्वल) अनलोज्ज्वल , (नवनीतम् इव कोमलम्) नवनीत-कोमलम् ; (कुसुममिव सुकुमारम्) कुसुमसुकुमारम् ।

---

* जिसके साथ किसीकी तुलना की जाती है, उसे 'उपमान' कहते हैं ; और जिसकी तुलना की जाय, उसको 'उपमेय' कहते हैं ।

† जिस गुण वा धर्मको अवलम्बन करके दोनोंकी तुलना होती है, उसका नाम 'साधारणगुण' वा 'समानधर्म' । यहाँ 'श्यामत्व'-को अवलम्बन करके तुलना हुई है, इसलिये 'श्याम'—यह साधारणगुणवाचक वा समानधर्मबोधक पद ।

(उपमित-कर्मधारय)

७६५। उपमान-पदके साथ उपमेय पदके समासको 'उपमित-कर्मधारय' कहते हैं। यथा—(नरः व्याघ्र इव) नरव्याघ्रः, (पुरुषः सिंह इव) पुरुषसिंहः, तपस्विशार्दूलः, मुनिपुङ्गवः, द्विजर्षभः, कविकुञ्जरः।* (मुखं कमलम् इव) मुखकमलम्, (चरणम् अरविन्दम् इव) चरणारविन्दम्, (राजा चन्द्र इव) राजचन्द्रः, (वदनं सुधाकर इव) वदनसुधाकरः, (करः किसलयमिव) करकिसलयम्, (अधरः पल्लव इव) अधरपल्लवः, (कन्या रत्नम् इव) कन्यारत्नम्।

उपमान और उपमेयके साधारणगुणवाचक पदका प्रयोग रहनेसे समास नहीं होता, यथा—नरो व्याघ्र इव शूरः, मुखं कमलमिव सुन्दरम्।

(रूपक-कर्मधारय)

७६६। उपमान और उपमेय अभिन्नरूपसे कल्पित होनेसे, उपमान-पदके साथ उपमेय-पदके समासको 'रूपक-कर्मधारय' कहते हैं, यथा—(दुःखम् एव सागरः) दुःखसागरः, (मानसमेव विहङ्गः) मानसविहङ्गः, (देह एव पिञ्जरम्) देहपिञ्जरम्, (अविद्या एव निगडः) अविद्यानिगडः, (ज्ञान-

---

* व्याघ्र, पुङ्गव, ऋषभ, कुञ्जर, सिंह, शार्दूल, नाग प्रभृति शब्द उत्तरपद होनेसे श्रेष्ठार्थवाचक होते हैं, और पुंलिङ्गमेंही प्रयुक्त होते हैं।—

"स्युरुत्तरपदे व्याघ्र-पुङ्गवर्षभ-कुञ्जराः।
सिंह शार्दूल नागाद्या पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः॥" अमर।

मेव अग्नि) ज्ञानाग्नि ।

(मध्यपदलोपी कर्मधारय)

७६७ । जिस कर्मधारय-समासमें मध्यपदका लोप होता है, उसे 'मध्यपदलोपी कर्मधारय' कहते हैं*; यथा—(शाकप्रियः पार्थिवः) शाकपार्थिव , (मेरुनामा पर्वत) मेरुपर्वत , (छायाप्रधान तरु) छायातरु , (अर्द्धावशिष्ट दग्ध) अर्द्धदग्ध , (मुखसहिता नासिका) मुखनासिका ; (ब्राह्मणबहुलो ग्रामः) ब्राह्मणग्राम , (बिम्बाकारः अधरः) बिम्बाधर , (वज्रतुल्यं हृदयम्) वज्रहृदयम् , (पलमिश्रम् अन्नम्) पलान्नम् , (द्व्यधिकाः दश) द्वादश ; इत्यादि ।

७६८ । 'कृता' प्रभृति पदके साथ 'श्रेणि'-प्रभृति पदका 'अभूततद्भाव' (अर्थात् पूर्वमें जैसा नहीं था, वैसा होना) अर्थमें कर्मधारय होता है । यथा—(अश्रेणय श्रेणयः कृता) श्रेणिकृता , (अपूगा पूगा कृता) पूगकृता , (अराशय राशय कृता) राशिकृता । (अश्रेणय श्रेणय भूता) श्रेणिभूता , (अनिपुणा निपुणा भूता) निपुणभूताः ; (अकुशल कुशल भूत) कुशलभूत ; (अपण्डित पण्डितो भूत) पण्डितभूत ।†

७६९ । प्रशंसार्थ मतल्लिका, मचर्चिका, प्रकाण्ड, उद्ध और तल्लज पदके साथ जातिवाचक पदका कर्मधारय होता है , यथा—(प्रशस्ता गौः

---

* इसको 'शाकपार्थिवादि-समास' भी कहते हैं ।

† 'च्वि'-प्रत्यय होनेसे तन्निबन्धन कर्मधारयमें भी होता है , यथा—श्रेणीकृत , पूगीकृत , राशीकृत , श्रेणीभूत , निपुणीभूत , कुशलीभूत , पण्डितीभूत ।

गोमतल्लिका, गोमर्चिका, गोप्रकाण्डम्, गवोद्ध, गोतल्लज।

(३) द्विगु समास।

(Numeral Compound)

७७०। समाहार-प्रभृति अर्थमे,* विशेष्य-पदके साथ सङ्ख्या-वाचक विशेषण पदके समासको 'द्विगु समास' कहते हैं †। द्विगु-समासमे उत्तरपदका अर्थ प्रधान होता है, और समाहार होनेसे समस्त-पद क्लीबलिङ्ग एकवचनान्त होता है, यथा—(त्रयाणां भुवनानां समाहारः) त्रिभुवनम्, (चतुर्णां युगानां समाहारः) चतुर्युगम्, (पञ्चानां पात्राणां समाहारः) पञ्च-पात्रम्, (चतसृणां दिशां समाहारः) चतुर्दिक्।

(क) समाहार-द्विगु होनेसे, पात्रादि‡-भिन्न अकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग ('ईप्'—'ङीप्'—प्रत्ययान्त) होता है, यथा—

---

* समाहारका अर्थ—समष्टि।

† तद्धितार्थमे, और उत्तरपद परेभी द्विगुसमास होता है। यथा—(तद्धितार्थमे)—(द्वयोः मात्रोः अपत्यम्) द्वैमातुरः, (पञ्चभिः गोभिः क्रीतः) पञ्चगुः। (उत्तरपद परे)—(त्रयाणां लोकानां नाथः) त्रिलोक-नाथः—यहाँ 'नाथ' यह उत्तरपद परे 'त्रिलोक'—इसमे द्विगु समास हुआ, (सप्तभिः सामभिः उपगीतम्) सप्तसामोपगीतम्—र० १० २१, (पञ्च गावः धनं यस्य सः) पञ्चगवधनः।

‡ पात्र, भुवन, युग, मुख, गुण, पथ, गव, रात्र (मतान्तरमे 'रात्र'-शब्द पु०), अह इत्यादि।

(त्रयाणां लोकानां समाहारः) त्रिलोकी, (चतुर्णां पदानां समाहारः) चतुष्पदी, (पञ्चानां वटानां समाहारः) पञ्चवटी, (सप्तानां शतानां समाहारः) सप्तशती ।*

कर्मधारय और द्विगु समासमें उत्तरपदका अर्थ प्रधान होनेके कारण, वेभी तत्पुरुषमें गण्य होते हैं ।

नित्य-समास ।

७७१ । 'कुत्सित'-अर्थ समझानेसे, सुबन्त पदके साथ 'कु' इस अव्ययका नित्य-समास होता है, † यथा—(कुत्सितः जनः) कुजनः, कुपुरुषः, कुब्राह्मणः, कुसंस्कारः ।

७७२ । सुबन्त पदके साथ प्रादि उपसर्गका नित्य समास होता है‡ । यथा—(प्रकृष्टः पुरुषः) प्रपुरुषः, (शोभनो जनः) सुजनः । (दुष्टो जनः) दुर्जनः, (दुष्टा नीतिः) दुर्नीतिः, दुष्कुलम्, दुश्चरितम्, (अपकृष्टः, अपभ्रष्टो वा, शब्दः) अपशब्दः । (विप्रकृष्टः, विभिन्नो वा, देशः) विदेशः । (अधिको राजा) अधिराजः । (गौणी—असाक्षात् माता) उपमाता । (अतिशयितो नवः) अभिनवः, (अतिशयितं शीतम्) अति

---

* 'आप्'-प्रत्ययान्त और 'अन्'-भागान्त शब्द विकल्पसे स्त्रीलिङ्ग (ईप् प्रत्ययान्त) होता है, यथा—(त्रयाणां लतानां समाहारः) त्रिलती, त्रिलतम्, (पञ्च कर्मन्) पञ्चकर्मी, पञ्चकर्मम् ('अन्' भागान्त शब्दके उत्तर 'अ'-प्रत्यय होता है, और 'अन्'-भागका लोप होता है) ।

† नित्यसमासमें स्वपद द्वारा व्यासवाक्य नहीं होता, पदान्तर द्वारा करना होता है ।

‡ इसको 'प्रादि समास' कहते हैं ।

पीतम्। (ईषत् पिङ्गल) आपिङ्गल , आपाण्डुर , आलोहित ।

कई प्रादिसमास-निष्पन्न पद बहुव्रीहिके तुल्य अन्यपदार्थप्रधान होते हैं *—

(क) 'क्रान्त'-प्रभृति अर्थमें, द्वितीयान्त पदके साथ 'अति'-प्रभृति-का नित्य समास होता है । यथा—(अतिक्रान्त मायाम्—मायातीत इत्यर्थ) अतिमाय [शिव], (अतिक्रान्त मर्य्यादाम्) अतिमर्य्याद [व्यवहार], (अतिक्रान्तम् इन्द्रियम्—इन्द्रियातीतम् इत्यर्थ) अतीन्द्रियम् [ज्ञानम्], (अतिक्रान्तम् आदित्यम्—आदित्यात् अधिकम् इत्यर्थ) अत्यादित्य [तेज]। (अधिगतं ज्याम्) अधिज्यम् [धनु]। (अभिगत मुखम्) अभिमुख [जन]। (उत्क्रान्त , उद्गतो वा, वेलाम्) उद्वेल [सागर]।

(ख) 'क्रान्त'-प्रभृति अर्थमें, पञ्चम्यन्त पदके साथ 'निर्' प्रभृति-का नित्य समास होता है , यथा—(निष्क्रान्त वनात्) निर्वण [व्याघ्र], (निर्गत द्वन्द्वात्) निर्द्वन्द्व [साधु], (निर्गत नद्या) निर्नदि [कूर्म]।

५७३। धातुके साथ उपपदका† नित्य समास होता है ‡। यथा—

---

* सुतरां अन्य-पदार्थकेही लिङ्ग वचन प्राप्त होते हैं।

† जो जो सुवन्त-पद-प्रभृति पूर्वमें रहनेसे, धातुके उत्तर 'कृत्'-प्रत्यय-का विधान है, उनको 'उपपद' कहते हैं । 'कुम्भकार'—इस स्थलमें, द्वितीयान्त पद पूर्वमें रहनेसे धातुके उत्तर 'अण्'-प्रत्ययका विधान होनेके कारण, 'कुम्भम्' इस उपपदके साथ 'कृ' धातुका समास होकर 'कुम्भकृ' ऐसा होनेसे, 'अण्' होता है।

‡ इसको 'उपपद-समास' कहते हैं।

(कुम्भं करोति इति—कुम्भ-कृ) कुम्भकार । (प्रभां करोति इति—प्रभा-कृ+ट) प्रभाकर , (जले चरति इति—जल-चर्+ट) जलचर । (साक्षं जनाति इति—साक्ष-ज्ञा+क) साक्षज्ञ । (पङ्कात् जायते इति—पङ्क-जन्+ड) पङ्कजम् , (अध्वानं गच्छति इति—अध्व-गम्+ड) अध्वग । (शिलायां शेते इति—शिला-शी+अच्) शिलाशय । (दुर्गं भजते इति—दुर्ग-भज्+ण्वि) दुर्गभाक् । (वने वसति इति—वन वस्+णिन्) वनवासी । (आत्मानं बिभर्ति इति—आत्मन्-भृ+खि) आत्मम्भरि । (वाचं यच्छति इति—वाच् यम्+खच्) वाचंयम । इत्यादि ।

(क) धातुके साथ उपसर्गोंका नित्य-समास होता है , यथा—(सम् + कृ) संस्करोति, संस्कार , संस्कृत्य , (वि+जि) विजयते, विजय , विजित्य ; (अभि+सिच्) अभिषिञ्चति, अभिषेक , अभिषिच्य ; (आ+रभ्) आरभते, आरम्भ , आरभ्य ।

(ख) धातुके साथ 'ऊरी'-प्रभृति शब्दका*, और 'च्वि' तथा 'डाच्'-प्रत्ययान्तका नित्य समास होता है । यथा— (ऊरी) ऊरीकरोति, ऊरीकरणम् , ऊरीकृत्य , (आविस्) आविष्करोति, आविष्क्रिया, आविष्कृत्य ; (प्रादुस्) प्रादुर्भवति, प्रादुर्भाव , प्रादुर्भूय । (च्वि) स्वीकरोति, स्वीकार , स्वीकृत्य , भस्मीभवति, भस्मीभाव , भस्मीभूय । (डाच्)

---

* ऊरी (उरी), उररी (ऊररी), आविस्, प्रादुस्, स्वधा, स्वाहा, वषट्, वौषट् इत्यादि । ('ऊरी'-प्रभृति चार शब्दोंका अर्थ—स्वीकार)। 'श्रत्' शब्दभी इस गणमें लिया जाता है; यथा—(श्रत् धा) श्रद्दधाति, श्रद्धा, श्रद्धाय ।

समयाकरोति, समयाकरणम्, समयाकृत्य, दुःखाकरोति, दुःखाक्रिया, दुःखाकृत्य ।

(ग) धातुके साथ अनुकरणात्मक शब्दका नित्य समास होता है ; यथा—झनत्करोति, झनत्कारः, झनत्कृत्य, खाट् (ट्) करोति, खाट्करणम्, खाट्कृत्य । 'इति'-शब्द परे रहनेसे नहीं होता, यथा—खाट् इति कृत्वा निष्ठीवति ।

(घ) धातुके साथ, 'आदर'-अर्थमें 'सत्', और 'अनादर' अर्थमें 'असत्' शब्दका नित्य-समास होता है, यथा—सत्करोति, सत्कार, सत्कृत्य, असत्करोति, असत्क्रिया, असत्कृत्य ।

(ङ) 'भूषण'-अर्थ समझानेसे, धातुकेसाथ 'अलम्' शब्दका नित्य-समास होता है ; यथा—अलङ्करोति, अलङ्करणम्, अलङ्कृत्य ।

(च) धातुके साथ 'अन्तर्'-शब्दका नित्य समास होता है, यथा—अन्तर्भवति, अन्तर्भाव, अन्तर्भूय ।

(छ) धातुके साथ 'पुरस्' इस अव्ययका नित्य समास होता है ; यथा—पुरस्करोति, पुरस्कार, पुरस्कृत्य ।

(ज) धातुके साथ 'अस्तम्' इस अव्ययका नित्य समास होता है, यथा—अस्तङ्गच्छति, अस्तङ्गत, अस्तङ्गत्य ।

(झ) 'आकाङ्क्षानिवृत्ति' समझानेसे, धातुके साथ 'कणे' और 'मनस्' शब्दका नित्य समास होता है, यथा—कणेहत्य पय पिबति, मनोहत्य पय पिबति,—(तावत् पिबति, यावत् अस्य अभिलाषो न निवर्त्तते इत्यर्थ —आश मिटाकर पीता है Drinks to his heart's content or till he is satisfied)।

(ञ) 'अन्तर्द्धान' (व्यवधान) समझानेसे, धातुके साथ 'तिरस्' इस अव्ययका नित्य-समास होता है ; यथा—तिरोभवति, तिरोभाव, तिरोभूय । किन्तु 'कृ'-धातुके साथ विकल्पसे समास होता है, यथा—तिरस्कृत्य, तिरः कृत्वा (तिरस्कृत्वा) ।

(ट) 'कृ' धातुके साथ 'साक्षात्' प्रभृति शब्दका विकल्पसे समास होता है, यथा—साक्षात्कृत्य, साक्षात् कृत्वा, नमस्कृत्य, नमः कृत्वा (नमस्कृत्वा), वशेकृत्य, वशे कृत्वा ; मिथ्याकृत्य, मिथ्या कृत्वा ।

(ठ) 'कृ'-धातुके साथ 'उरसि' और 'मनसि'—इन दोनों सप्तम्यन्त पदोंका विकल्पसे समास होता है, यथा—उरसिकृत्य, उरसि कृत्वा (स्वीकृत्य इत्यर्थः), मनसिकृत्य, मनसि कृत्वा (निश्चित्य इत्यर्थः) ।

(ड) 'विवाह'-अर्थ समझानेसे, 'कृ'-धातुके साथ 'हस्ते' और 'पाणौ'—इन दोनों सप्तम्यन्त पदोंका नित्य समास होता है, यथा—हस्तेकृत्य, पाणीकृत्य (दारकर्म कृत्वा इत्यर्थः) ।

७७४ । 'अर्थ'-शब्दके साथ चतुर्थ्यन्त पदका नित्य समास होता है, और यह अन्यपदार्थप्रधान होता है ।* विग्रहवाक्यमें 'अर्थ'-शब्दका उल्लेख न करके 'इदम्' शब्दका उल्लेख किया जाता है । यथा—(भोजनाय अयम्) भोजनार्थः [सूपः], (गुरवे इयम्) गुर्वर्था [दक्षिणा], (पानाय इदम्) पानार्थं [जलम्] ।

७७५ । (मयूरव्यंसक —धूर्त —च) मयूरव्यंसकः ; (अन्य अर्थः) अर्थान्तरम्, (अन्य देशः) देशान्तरम् ; (अवश्यं कर्त्तव्यम्) अवश्यकर्त्तव्यम् ; (उदक् च अवाक् च) उच्चावचम् (नैकभेदम्—अनेक-

---

* सुतरां अन्यपदार्थके लिङ्ग वचन प्राप्त होता है ।

प्रकारम् इत्यर्थ), (तद् एव) तन्मात्रम् *, (नास्ति कुतो भय यस्य स) अकुतोभय , (नास्ति किञ्चन यस्य स) अकिञ्चन ,—इत्यादि-स्थलोंमेंभी नित्य समास होता है।

कृष्णसर्प , लोहितशालि —इत्यादि-स्थलोंमेंभी नित्य समास।

उक्त नियमसमूहके अतिरिक्त स्थलमेंभी कभी कभी नित्य समास होता है †, यथा—(पूर्वं भूत) भूतपूर्व , (पित्रा तुल्य) पितृभूत , (ब्रह्मैव) ब्रह्मभूत , (नितान्त दीर्घ) नितान्तदीर्घ , (अय लोक) इहलोक , (यथा तथा) यथातथा , (यथाविधि हुता) यथाविधि-हुता.—र०१.६ , (न एकधा) नैकधा , इत्यादि।

(४) द्वन्द्व समास।

(Copulative Compound)

७७६। जिस समासमें प्रत्येक पदका अर्थही प्रधान होता है, उसे 'द्वन्द्व-समास' कहते हैं।

(इतरेतर-द्वन्द्व)

७७७। किसी एक पदके साथ प्रत्येक पदकाही पृथग्भावसे समान अन्वय रहनेसे, उनके समासको 'इतरेतर-द्वन्द्व' कहते हैं। इतरेतर-द्वन्द्वमें समस्तपद उत्तरपदका लिङ्ग और

---

* यहाँ 'मात्र'-शब्द प्रत्यय नहीं, इसका अर्थ—अवधारण।

† इसको 'सुप् सुपेति' (सुबन्त-पदके साथ सुबन्त-पदका) समास कहते हैं।

प्रत्येक पदका वचन प्राप्त होता है, यथा—(रामश्च लक्ष्मणश्च*) रामलक्ष्मणौ [गच्छत],—यहाँ 'गच्छत' इस पदके साथ 'राम" और 'लक्ष्मण' इन दोनो पदोंके प्रत्येकका पृथक्रूपसे समान अन्वय है, (भीमश्च अर्जुनश्च) भीमार्जुनौ [युध्येते], (हरिश्च हरश्च) हरिहरौ [पूजयति], (वृक्षश्च शाखा च) वृक्षशाखे [छिनत्ति], (वराहश्च महिषश्च शशकश्च) वराहमहिषशशका [धावन्ति], (कन्दश्च मूलञ्च फलञ्च) कन्दमूलफलानि [भुङ्क्ते], (तिक्तञ्च अम्लञ्च मधुरञ्च) तिक्ताम्लमधुराणि [फलानि], (शब्दश्च स्पर्शश्च रूपञ्च रसश्च गन्धश्च) शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा: [विषया: भवन्ति]। †

(समाहार-द्वन्द्व)

७७८। किसी एक पदके साथ प्रत्येक पदका अपृथग्भाव से समान अन्वय रहनेसे, उनके समासको 'समाहार-द्वन्द्व' कहते हैं। समाहार-द्वन्द्वमें समस्तपद क्लीवलिङ्ग एकवचनान्त होता है, यथा—(फलानि च मूलानि च, तेषां समाहार:) फलमूलम् [भुक्तम्], (दिशश्च देशाश्च, तेषां समाहार) दिग्देशम्।

७७९। प्राणीके अङ्ग, वाद्यके अङ्ग और सेनाके अङ्ग—इनका नित्य समाहार-द्वन्द्व होता है। यथा—(प्राणीके अङ्ग)—(पाणिश्च पादश्च)

---

* प्रत्येक पदका प्राधान्य समझानेके लिये प्रत्येक पदके पश्चात्ही 'च' बैठाना होता है।

† परस्परापेक्षया एकक्रियासम्बन्ध इतरेतरयोग।

पाणिपादम्, (करश्च चरणश्च) करचरणम्, दन्तश्च ओष्ठश्च (दन्तौष्ठम्), (कर्णश्च नासिका च) कर्णनासिकम्, (पृष्ठञ्च उदरञ्च) पृष्ठोदरम्। (वाद्यके अङ्ग)—(पणवश्च मृदङ्गश्च) पणवमृदङ्गम्, (शङ्खश्च दुन्दुभिश्च) शङ्खदुन्दुभि, (भेरी च पटहश्च) भेरीपटहम्, (ऋषभश्च गान्धारश्च) ऋषभगान्धारम्, (धैवतश्च पञ्चमश्च) धैवतपञ्चमम्, (षड्जश्च मध्यमश्च) षड्जमध्यमम्। (सेनाके अङ्ग)—(रथिकाश्च अश्वारोहाश्च) रथिकाश्वारोहम्, (परशवश्च करवालाश्च) परशुकरवालम्, (धनूंषि च शराश्च) धनुःशरम्, (शराश्च तूणीराश्च) शरतूणीरम्, (हस्तिनश्च अश्वाश्च रथाश्च पादाताश्च) हस्त्यश्वरथपादातम् *।

७८०। लिङ्गका भेद रहनेसे, नदीवाचक और देशवाचक पदोंका समाहार-द्वन्द्व होता है। यथा—(नदी)—(गङ्गा च शोणश्च) गङ्गाशोणम्; (नलपुत्रश्च चन्द्रभागा च) नलपुत्रचन्द्रभागम्। (देश)—(काशी च नवद्वीपश्च) काशीनवद्वीपम्, (मथुरा च पाटलिपुत्रञ्च) मथुरापाटलिपुत्रम्। ग्रामवाचक पदका समाहार नहीं होता।

७८१। जो जन्तु परस्पर नित्यविरोधी, तद्वाचक पदोंका समाहार-द्वन्द्व होता है, यथा—(अहयश्च नकुलाश्च) अहिनकुलम्, (काकाश्च उलूकाश्च) काकोलूकम्, (मार्जाराश्च मूषिकाश्च) मार्जारमूषिकम्।

७८२। बहुवचनान्त क्षुद्रजन्तुवाचक और फलवाचक पदोंका समाहार द्वन्द्व होता है। यथा—(क्षुद्रजन्तु)—(दंशाश्च मशकाश्च) दंश-

---

* सेनाङ्गवाचक पदका केवल बहुवचनमें समाहार होता है, अन्यत्रवचनमे नहीं होता, यथा—(शरश्च तूणीरश्च) शरतूणीरौ, (हस्ती च अश्वश्च) हस्त्यश्वौ, (शक्तिश्च परशुश्च करवालश्च) शक्तिपरशुकरवालाः।

मशकम्, (यूकाश्च मक्षिकाश्च) यूकमक्षिकम्। (फल)—बदराणि च आमलकानि च) बदरामलकम्, (खर्जूराणि च नारिकेलानि च) खर्जूर-नारिकेलम्।

७८३। शूद्रवाचक पदोंका समाहार द्वन्द्व होता है; यथा—(गोपाश्च नापिताश्च) गोपनापितम्, (कर्मारश्च कुम्भकाराश्च) कर्मार-कुम्भकारम्, (ताम्बूलिकाश्च तन्तुवायाश्च) ताम्बूलिकतन्तुवायम्। अस्पृश्य शूद्रोंका नहीं होता, यथा—(शौनिकाश्च चण्डालाश्च) शौनिक-चण्डालाः।

७८४। 'गवाश्व'-प्रभृतियोंका समाहार द्वन्द्व होता है; यथा—(गावश्च अश्वाश्च) गवाश्वम्, (अजाश्च अविकाश्च) अजाविकम्; (पुत्राश्च पौत्राश्च) पुत्रपौत्रम्। एवम्—स्त्रीकुमारम्, श्वचण्डालम्, कुब्जवामनम्, उष्ट्रखरम्, दासीदासम्, मूत्रपुरीषम्, मांसशोणितम्, तृणोलपम्, दर्भशरम् इत्यादि।

७८५। बहुवचनान्त वृक्षवाचक, तृणवाचक, धान्यवाचक, पशुवाचक और पक्षिवाचक पदोंका विकल्पसे समाहार-द्वन्द्व होता है। यथा—(वृक्ष)—(अश्वत्थाश्च न्यग्रोधाश्च) अश्वत्थन्यग्रोधम्, अश्वत्थन्यग्रोधाः; (चूताश्च अशोकाश्च) चूताशोकम्, चूताशोकाः। (तृण)—(कुशाश्च काशाश्च) कुशकाशम्, कुशकाशाः। (धान्य)—(व्रीहयश्च यवाश्च) व्रीहियवम्, व्रीहियवाः, (मुद्गाश्च माषाश्च) मुद्गमाषम्, मुद्गमाषाः। (पशु)—(गावश्च महिषाश्च) गोमहिषम्, गोमहिषाः; (वृकाश्च कुक्कुराश्च) वृककुक्कुरम्, वृककुक्कुराः; (गोमायवश्च गर्दभाश्च) गोमायु-गर्दभम्, गोमायुगर्दभाः। (पक्षी)—(हंसाश्च सारसाश्च) हंससारसम्,

हंसमारसा, (कोकिलाश्च मयूराश्च) कोकिलमयूरम्, कोकिलमयूरा।

७८६। परस्परविरुद्ध पदार्थोंका विकल्पसे समाहार द्वन्द्व होता है, यथा—(शीतञ्च उष्णञ्च) शीतोष्णम्, शीतोष्णे, (सुखञ्च दुःखञ्च) सुखदुःखम्, सुखदुःखे; (धर्मश्च अधर्मश्च) धर्माधर्मम्, धर्माधर्मौ, (आलोकश्च अन्धकारश्च) आलोकान्धकारम्, आलोकान्धकारौ।

(एकशेष-द्वन्द्व)

७८७। जिस समासमें केवल एकपद शेष अर्थात् अवशिष्ट रहता है, उसे 'एकशेष-द्वन्द्व' कहते हैं।

(क) समानाकार पदोंका एकशेष होता है, यथा—(देवश्च देवश्च) देवौ, (देवश्च देवश्च देवश्च) देवा, (फलञ्च फलञ्च) फले, (फलञ्च फलञ्च फलञ्च) फलानि।

(ख) एकही शब्दसे उत्पन्न पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग पदोंके समासमें पुलिङ्ग पद शेष रहता है, यथा—(ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी च) ब्राह्मणौ, (कुक्कुटश्च कुक्कुटी च) कुक्कुटौ।

(ग) क्लीवलिङ्ग पदके साथ एकही शब्दसे उत्पन्न अन्यलिङ्ग पदके समासमें क्लीवलिङ्ग पद शेष रहता है, और वह विकल्पसे एकवचनान्त होता है, यथा—(मधुरश्च मधुरा च मधुरञ्च) मधुराणि, मधुरं वा।

(घ) मातृ और पितृ, पुत्र और दुहितृ, भ्रातृ और स्वसृ, श्वश्रू और श्वशुर—इन पदोंके समासमें पुंलिङ्ग-पद शेष रहता है; यथा—(माता च पिता च) पितरौ, (पुत्रश्च दुहिता च) पुत्रौ, (भ्राता च स्वसा च) भ्रातरौ; (श्वश्रूश्च श्वशुरश्च) श्वशुरौ। (पक्षे—मातापितरौ और श्वश्रूश्वशुरौ, अर्थात इन दोनो स्थलोंमें विकल्पसे।)

(५) बहुव्रीहि समास।

(Relative Compound)

७८८। जिस समासमें अन्यपदका अर्थ प्रधान होता है, अर्थात् अनेक (एकाधिक) समस्यमान-पद निज अर्थका वाचक न होकर अन्यपदार्थका वाचक होता है, उसे 'बहुव्रीहि-समास' कहते हैं।* यथा—(आरूढः वानरः यं

* सुतरां बहुव्रीहि-समास-निष्पन्न शब्द विशेषण होता है (अर्थात् अन्यपदार्थके लिङ्ग वचन प्राप्त होता है), यथा—दीर्घनेत्र [पुरुष]—यहाँ 'दीर्घ'-शब्दका अर्थ 'लम्बा', और 'नेत्र'-शब्दका अर्थ 'चक्षु'; किन्तु 'दीर्घनेत्र' यह पद लम्बे चक्षुको न समझाकर दीर्घनेत्र-विशिष्ट जो पुरुष उसको समझाता है, इसलिये यहाँ बहुव्रीहि समास हुआ, और 'दीर्घनेत्र' यह पद 'पुरुष' इस पदका विशेषण।

बहुव्रीहि द्विविध—समानाधिकरण और व्यधिकरण†। परस्पर विशेष्य-विशेषण भावापन्न पदोंके समासको 'समानाधिकरण बहुव्रीहि' कहते हैं; यथा—(लम्बौ कर्णौ यस्य सः) लम्बकर्ण [शशक]। और अन्यविध पदोंके समासको 'व्यधिकरण बहुव्रीहि' कहते हैं; यथा—(शूलं पाणौ यस्य सः) शूलपाणि (शिव); (पङ्कात् जन्म यस्य तत्) पङ्कजन्म (पद्मम्)।

उक्त द्विविध बहुव्रीहिका प्रत्येक फिर दो-प्रकार—तद्गुणसंविज्ञान और अतद्गुणसंविज्ञान। समस्तपद जिस पदार्थको समझाता है, और उसके

† भिन्नविभक्तिकत्वम् भिन्नार्थनिष्ठत्वं वैयधिकरण्यम्।

सः*) आरूढवानरः [वृक्षः], (प्राप्ताः नराः यं सः) प्राप्तनरः [ग्रामः]। (लब्धं धनं येन सः) लब्धधनः [दरिद्रः]; (कृतं कर्म येन सः) कृतकर्मा [पुरुषः]; (दृष्टः कृष्णः येन सः दृष्टकृष्णः) [भक्तः], (निर्जितः कामः येन सः) निर्जितकामः [शिवः]; (अधीतं शास्त्रं याभ्यां तौ) अधीतशास्त्रौ [शिष्यौ], (निरस्ताः शत्रवः येन सः) निरस्तशत्रुः [राजा]। (दत्तं धनं यस्मै सः) दत्तधनः [विप्रः], (दत्तः उपदेशः यस्मै सः) दत्तोपदेशः [शिष्यः]; (उपनीतं भोजनं यस्मै सः) उपनीत-

---

को गुण प्रकाश करता है, उस पदार्थके देखनेसेही यदि वह गुण सम्यक् जाना जाय, (अर्थात् समासान्तर्गत प्रधान पदार्थ यदि अन्य पदार्थमें विद्यमान रहे), तो 'तद्गुणसंविज्ञान' होता है, अन्यथा 'अतद्गुणसंविज्ञान'। 'लम्बकर्ण' 'चक्रपाणि' इत्यादि-स्थलोंमें 'तद्गुणसंविज्ञान', और 'प्रियपुत्र' 'दृष्टसागर' इत्यादि स्थलोंमें 'अतद्गुणसंविज्ञान'।

* बहुव्रीहि-निष्पन्न शब्द जिसको समझायेगा, व्यासवाक्यमें उसके लिङ्ग, वचन और सम्बन्ध समझानेके लिये द्वितीयादिविभक्त्यन्त 'यद्'-शब्दका प्रयोग करना होता है, ('यद्'-शब्दके स्थलमें 'इदम्'-शब्दभी कहीं कहीं प्रयुक्त होता है), पश्चात् समस्त शब्दके जिस लिङ्ग, विभक्ति और वचनमें लेना होगा, उसकी सूचनाके लिये 'तद्'-शब्द प्रयुक्त होता है; उस 'तद्' शब्दमें जो लिङ्ग, जो विभक्ति और जो वचन, समस्त-शब्दकोभी उसी लिङ्ग, उसी विभक्ति और उसी वचनमें लेना होगा॥ द्वितीयान्त 'यद्'-शब्दादिका प्रयोग करनेसे, उसको 'द्वितीयान्यपदार्थ बहुव्रीहि' कहते हैं; ऐसे—'तृतीयान्यपदार्थ' इत्यादि।

भोजनः [अतिथि] । (निर्गतं जलं यस्मात् तत्) निर्गत-जल [सर]; (उद्धृतम् उदकं यस्मात् सः) उद्धृतोदक [कूप], (श्रुत. वृत्तान्त यस्मात् स) श्रुतवृत्तान्त [दूत], (लब्ध धन यस्या सा) लब्धधना [राज्ञी] । (दीर्घौ बाहू यस्य स.) दीर्घबाहुः [पुरुष], (सन् आशय यस्य स.) सदाशय [साधु], (पीतम् अम्बर यस्य स) पीताम्बर [हरि], (चत्वार भुजा यस्य स.) चतुर्भुज [कृष्ण]; (निर्मलं जल यस्या सा) निर्मलजला [नदी]। (सुप्ता मीना. यस्मिन् स) सुप्तमीन [ह्रद], (बहव नरा यस्मिन् स) बहुनर [ग्राम], (बहव मृगाः यस्मिन् तत्) बहुमृगं [वनम्], (प्रफुल्लानि कमलानि यस्मिन् तत्) प्रफुल्ल कमल [सर]। (बहुपद)—(नीलम् उज्ज्वलञ्च वपुर्यस्य स) नीलोज्ज्वलवपु [कृष्ण]।

पूर्वपद अव्यय होनेसेभी, बहुव्रीहि समास होता है, यथा—(उच्चै शिर यस्य स) उच्चै शिरा, (अध मुख यस्य स) अधोमुख, (उपरि दृष्टि यस्य स) उपरिदृष्टि ।

(मध्यपदलोपी बहुव्रीहि)

७८९ । जिस बहुव्रीहि-समासमे मध्यपदका लोप होता है, उसको 'मध्यपदलोपी बहुव्रीहि' कहते हैं । यथा—(अविद्यमान कारण यस्य स) अकारण; (अविद्यमान पुत्रो यस्य स) अपुत्र; (अविद्यमान क्रोधो यस्य सः) अक्रोध । (वृषस्य स्कन्ध इव स्कन्धो यस्य स) वृषस्कन्ध,

(चन्द्रस्य प्रभा इव प्रभा यस्य तद्) चन्द्रप्रभम् [आतपत्रम्], (व्याघ्रस्य मुखम् इव मुख यस्य स) व्याघ्रमुख । (तामरस-सदृशम् आनन यस्य स) तामरसानन । (प्रपतितानि पर्णानि यस्मात् स॰) प्रपर्ण॰, (अपगत॰ शोक यस्य स) अपशोक॰, (निर्गतं मल यस्मात् स॰) निर्मल , (विगत अर्थ यस्मात् स॰) व्यर्थ , (उद्गत मद यस्य स) उन्मद , (उत्कण्ठित, उद्भ्रान्तं वा, मन॰ यस्य स) उन्मना , (प्रकृष्ट बल यस्य स) प्रबल॰ ।

(तुल्ययोगे बहुव्रीहि)

७१० । तृतीयान्त पदके साथ 'सह'-शब्दका बहुव्रीहि होता है , यथा—(पुत्रेण सह वर्त्तमान) सपुत्र , (अनुजेन सह वर्त्तमानः) सानुज , (बान्धवेन सह वर्त्तमान) सबान्धव ; (भृत्येन सह वर्त्तमान॰) सभृत्य , (विनयेन सह वर्त्तमान यथा स्यात् तथा) सविनयम् [उवाच] ।

(व्यतिहारे बहुव्रीहि)

७११ । व्यतिहार अर्थात् परस्पर एकजातीय कार्य्य करना समझानेसे, बहुव्रीहि होता है , यथा—(केशेषु केशेषु गृहीत्वा इद युद्ध प्रवृत्तम्) केशाकेशि , "केशाकेश्यभवद्युद्ध रक्षसा वानरै सह" महाभा॰, (दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इद युद्ध प्रवृत्तम्) दण्डादण्डि । ये शब्द अव्यय ।

(६) अव्ययीभाव समास ।

(Indeclinable Compound)

७१२ । सुबन्त-पदके साथ सामीप्यादि-अर्थ बोधक अव्य-

यके समासको 'अव्ययीभाव' कहते हैं। अव्ययीभाव समासमें पूर्वपदका अर्थ प्रधान होता है *। यथा—(समीप)—(गृहस्य समीपम्) उपगृहम्, (कुलस्य समीपम्) उपकूलम्, (गङ्गायाः समीपम्) उपगङ्गम्। (अभाव)—(विघ्नस्य अभाव) निर्विघ्नम्, (मक्षिकाणाम् अभावः) निर्मक्षिकम्, (भिक्षाया अभावः) दुर्भिक्षम्। (अत्यय)—(हिमस्य अत्ययः—नाश) अतिहिमम्, (शीतस्य अत्यय) अतिशीतम्, (बाधायाः अत्ययः) अतिबाधम्। (असम्प्रति)—(निद्रा सम्प्रति न युज्यते) अतिनिद्रम्, (शोक सम्प्रति न युज्यते) अतिशोकम्। (पश्चात्)—(रथस्य पश्चात्) अनुरथम्, (गृहस्य पश्चात्) अनुगृहम्, (पदस्य पश्चात्) अनुपदम्। (योग्य)—(रूपस्य योग्यम्) अनुरूपम्, (कुलस्य योग्यम्) अनुकुलम्। (वीप्सा)—(दिन दिनम्) अनुदिनम्, *यथा प्रतिदिनम्, (गृह गृह प्रति) प्रतिगृहम्, (क्षणे क्षणे) अनुक्षणम्। (अनतिक्रम)—(शक्तिम् अनतिक्रम्य) यथाशक्ति, (विधिम्

* अव्ययीभावसमास निष्पन्न शब्द क्लीवलिङ्ग होता है, और उसके उत्तर सब विभक्तियोंके स्थानमेंही 'अम्' (द्वितीयाका एकवचन) होता है, किन्तु अकारान्त शब्दके उत्तर तृतीया और सप्तमीके स्थानमें विकल्पसे 'अम्' होता है, पञ्चमीके स्थानमे नहीं होता, यथा—उपकूलं वृक्ष, उपकूलं वृक्षौ, उपकूलम् उपकूलेन वा वृक्षेण, उपकूलं वृक्षाय, उपकूलात् वृक्षात्, उपकूलं वृक्षस्य, उपकूलम् उपकूले वा वृक्षे, अधिहरि कथा कथाम् कथया इत्यादि।

अनतिक्रम्य) यथाविधि , (ज्ञानम् अनतिक्रम्य) यथाज्ञानम् , (ये ये वृद्धा॰) यथावृद्धम् , (ये ये तथाभूता) यथातथम् । (आनुपूर्व्य)—(ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण, अथवा ज्येष्ठ ज्येष्ठम् अनुक्रम्य) अनुज्येष्ठम् , (वर्णानाम् आनुपूर्व्येण) अनुवर्णम् । (समृद्धि)—(भिक्षाया॰ समृद्धि) सुभिक्षम् । (सादृश्य)—(चन्द्रस्य सदृशम्) सचन्द्रम् *, (हरेः सदृशम्) सहरि । (यौगपद्य)—(चक्रेण युगपत्) सचक्रम् । (साकल्य)—(तृणमपि अपरित्यज्य, अथवा तृणेन सह सकलम्) सतृणम् । (विभक्त्यर्थं)—(कूले) उपकूलम् , वा अधिकूलम् , (हरौ) अधिहरि , (गृहे) अधिगृहम् , (आत्मनि, अथवा आत्मानम् अधिकृत्य) अध्यात्मम् । (व्यतीहार) (कर्णे कर्णे) कर्णाकर्णि ।

७१३ । 'अवधारण' समझानेसे, सुबन्तके साथ 'यावत्' इस शब्दका अव्ययीभाव-समास होता है , यथा—यावदमत्रं ब्राह्मणान् आमन्त्रयस्व (यावन्ति अमत्राणि—भाजनानि—सन्ति, पञ्च षट् वा, तावत् आमन्त्रयस्व इत्यर्थ); (यावन्त वृद्धा) यावद्वृद्धम् ।

७१४ । 'मर्य्यादा' और 'अभिविधि' समझानेसे, सुबन्त पदके साथ 'आङ्' इस अव्ययका विकल्पसे अव्ययीभाव समास होता है । यथा—(मर्यादा) आपाटलिपुत्रम् , आ पाटलिपुत्रात् , वृष्टो देव , आग्रामम् , आ ग्रामात् , वनम् । (अभिविधि) आकुमारम् , आ कुमारेभ्य , यश कालिदासस्य ; आबाल्यम् , आ बाल्यात् , विद्याया यत्न कार्य्य ।

* 'सह'-शब्दके स्थानमे 'स' होता है।

आमरणम् , "आमेखलम्" कु०१. ९ ; 'आगोपालं ननुतु" का६० ।

७१५ । पञ्चम्यन्त पदके साथ 'बहिस्' प्रभृति * शब्दोंका विकल्पसे अव्ययीभाव-समास होता है , यथा—बहिर्ग्रामम् , ग्रामात् बहिः , प्रागुपवनम् , उपवनात् प्राक् ।

७१६ । 'आभिमुख्य' समझानेसे, लक्ष्यवाचक सुबन्त पदके साथ 'अभि' और 'प्रति'—इन दोनो अव्ययोंका विकल्पसे अव्ययीभाव समास होता है , यथा—अभ्यग्नि, अग्निम् अभि, शलभाः पतन्ति , प्रत्यग्नि, अग्नि प्रति ,—(अग्निं लक्ष्यीकृत्य अभिमुखं पतन्तीत्यर्थः) ।

७१७ । षष्ठ्यन्त पदके साथ 'पारे', 'मध्ये' और 'अन्तर्' शब्दका विकल्पसे अव्ययीभाव समास होता है । यथा—(गङ्गायाः पारे) पारेगङ्गम् । (समुद्रस्य मध्ये) मध्येसमुद्रम्—माघ०३ ३३ , (नगरस्य मध्ये) मध्येनगरम् , (रणस्य मध्ये) मध्येरणम्—भामिनी०१ १२५ , (जठरस्य मध्ये) मध्येजठरम्—भामिनी०१ ६० , (गृहस्य मध्ये) मध्येगृहम् , (सभाया मध्ये) मध्येसभम्—नै०६ ७६ , (नद्याः मध्ये) मध्येनदि । निपातनसे एकारागम होता है । (वधूनाम् अन्तः) अन्तर्वधु , (जलस्य अन्तः) अन्तर्जलम् , "अन्तर्गिरि"—भा०१ ३४. । पक्षे षष्ठी-तत्पुरुष समास, यथा—गङ्गापारे, समुद्रमध्ये, जठरान्तः ।

७१८ । 'तिष्ठद्गु' प्रभृति पद निपातनसे सिद्ध होते हैं , यथा—(तिष्ठन्ति गावः यस्मिन् काले दोहाय सः) तिष्ठद्गु (रात्रेः प्रथम-नाडिका इत्यर्थः —शामके बाद एक या डेढ घण्टा) , (आयन्ति यस्मिन् काले गावः गोष्ठं ■) आयतीगवम् (अर्द्धास्तमितभास्करः काल

---

* बहिस् , प्राच् , अवाच् , प्रत्यच् , आ , परि इत्यादि ।

इत्यर्थ), (प्रगतो दक्षिणम्) प्रदक्षिणम्, इत्यादि।

७९९। 'पृषोदरादि'-पद निपातनसे सिद्ध होते हैं, यथा—(पृषन्ति—बिन्दव—उदरे अस्य) पृषोदर [पवन], (वारिणः वाहक) बलाहक (मेघ इत्यर्थ), (शवानां शयनम्) श्मशानम्, (पिशितम् अश्नाति) पिशाच, (मह्यां रौति) मयूर, ('कां दिशं यामि' इत्याह) कान्दिशीक (भयद्रुत—भीत्या पलायित इत्यर्थ, "नृगजन कान्दिशीक समूह" पद्म० १), (जीवनस्य उदकस्य मूत पटबन्ध) जीमूत (जलधर इत्यर्थ)।

(सङ्गता आप अत्र) समीपम्, (अनुगता आपोऽत्र) अनूपम् (जलबहुल स्थानम् इत्यर्थ), (अन्तर्गता आपोऽत्र) अन्तरीपम्; (द्विर्गता आपोऽत्र) द्वीप, (जाया च पतिश्च) दम्पती वा जम्पती (अथवा जायापती), (कुशश्च लवश्च) कुशीलवौ, (द्यौश्च भूमिश्च) द्यावाभूमी, (द्यौश्च पृथिवी च) द्यावापृथिव्यौ वा दिवस्पृथिव्यौ, (सूर्यश्च चन्द्रमाश्च) सूर्याचन्द्रमसौ, (अग्निश्च सोमश्च) अग्नीषोमौ, (इन्द्रश्च वरुणश्च) इन्द्रावरुणौ, (मित्रश्च वरुणश्च) मित्रावरुणौ।

अलुक्-समास।

८००। किसी किसी स्थलमें पूर्वपदस्थ विभक्तिका लोप नहीं होता, उसको 'अलुक् समास' कहते हैं। यथा—सहसाकृत, जनुषान्ध। परस्मैपदम्, परस्मै भाषा, आत्मने-पदम्, आत्मने भाषा। वाचो-युक्ति, पश्यतो हर, वाचस्पति, वचसा-पति (अथवा वाक्पति), दिवस्पति, वास्तोष्पति, भ्रातुष्पुत्र, मातु ष्वसा (वा मातृ ष्वसा); पितु ष्वसा (वा पितृ ष्वसा), देवानां प्रिय (मूर्ख इत्यर्थ, "तेऽपि

अतात्पर्यज्ञा देवानां-प्रिया" काव्यप्रकाश); दास्याः-पुत्र (निन्दार्थे, गालिप्रदाने; "महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि" शकु० २)। युधिष्ठिर ; अन्ते-वासी ; बिले-शय ; पङ्के-रुहम्, कण्ठे-काल ; उरसि-लोमा ; मध्ये-ष्ठ ; स्तम्बे-रम (हस्ती); कर्णे-जप (सूचक, कर्णे लगित्वा परापवादं वदति यो जन इत्यर्थः), पात्रे-समित (भोजनकाले पात्रे एव सङ्गत, न तु कार्य-काले इत्यर्थः), गेहे-शूर (गेहे एव शूर, न तु अन्यत्र इत्यर्थः A carpet-knight), गेहे-नर्दी (गेहे एव नर्दति, न युद्धे इत्यर्थः A dunghill-cock), मातरि पुरुष ('पुरुष'-शब्द इह शूरवचन ; तेन मातरि एव पुरुष —मातरं वर्जयित्वा अन्यस्मात् सर्वस्मात् बिभेति, भीरु इत्यर्थः), हृदि स्पृक् ; हृदि-स्थ , दिवि-ज ; शरदि-ज ; मनसिज (वा मनोज), सरसिजम् (वा सरोजम्) ; वने-चर (वा वनचर) ; खे चर (वा खचर), इत्यादि।

पूर्वनिपात वा प्राग्भाव।

८०१। तत्पुरुष-समासमे—प्रथमादिविभक्त्यन्त पदोंका प्राग्भाव होता है; यथा—(उत्तर कायस्य) उत्तरकाय ; (तत्त्वं बुभुत्सु) तत्त्वबुभुत्सु ; (पटुना समान) पटुसमान ; (देवाय बलि) देवबलि ; (चौरात् भयम्) चौरभयम्, इत्यादि।

(क) 'राजदन्तादि'-पदोंमे 'दन्त' प्रभृति पदोंका परनिपात होता है; यथा—(दन्तानां राजा) राजदन्त (ऊर्ध्वपङ्क्तेः मध्यवर्त्तिदन्त-द्वयम् इत्यर्थः), (हंसानां राजा) राजहंस ; "राजविद्या राजगुह्यम्" गीता ९. २ ; (वनस्य अग्रे) अग्रेवणम्, इत्यादि।

८०२ । कर्मधारय-समासमे—विशेषण, और उपमान, उपमित-प्रभृति जिनके समासका विधान किया गया है, उनका प्राग्भाव होता है, यथा—(विशेषण)—(शुभ सन्देश) शुभसन्देश , (उपमान)—(चन्द्रिका इव धवलम्) चन्द्रिकाधवलम् , (उपमित)—(नयन सरोजम् इव) नयनसरोजम् , (पद पल्लवम् इव) पदपल्लवम् ।

८०३ । द्विगु-समासमे—सङ्ख्यावाचक शब्दका प्राग्भाव होता है ; यथा—(त्रयाणां गुणानां समाहार) त्रिगुणम् (अष्टानां सहस्राणां समाहार) अष्टसहस्री ।

८०४ । द्वन्द्व समासमे—दो पदोंमे द्वन्द्व होनेसे, अल्पस्वर विशिष्ट पदका प्राग्भाव होता है ; यथा—तालतमालौ , वराश्वरथौ , गजतुरङ्गौ ; गोमहिषौ , हरसपारलौ ; काककोकिलौ , शिवकेशवौ , भ्रातृभगिन्यौ , अम्लमधुरौ , तिक्तकषायौ ।

(क) स्वरसाम्यस्थलमे (अर्थात् दोनो पदही समानस्वरविशिष्ट होनेसे), स्वरादि (अर्थात् स्वरवर्ण आदिमे जिनके ऐसे) अकारान्त पदका प्राग्भाव होता है , यथा—अश्वगजौ , अम्लतिक्तौ , अनलपवनौ , अच्युतमहेशौ , अचलसमुद्रौ , इन्द्रवह्नी , ईशकृष्णौ , उष्ट्रखरौ , ऊर्द्ध्वनिम्ने ।

(ख) स्वरसाम्यस्थलमे, इकारान्त और उकारान्त पदका प्राग्भाव होता है । यथा—हरिहरौ , रविशशी । पटुगुरू, मृदुदृढौ ।

(ग) लघुवर्णविशिष्ट पदका प्राग्भाव होता है, यथा—मृगकाकौ , मलनोलौ ; कुशकाशम् , वलयकेयूरौ ।

(घ) अधिकतर पूजनीय पदका प्राग्भाव होता है ; यथा—मातापितरौ ("पितुर्माता सहस्रेण गौरवेणातिरिच्यते") ; तापसयाचकौ ।

(ङ) ज्येष्ठभ्रातृवाचक पदका प्राग्भाव होता है; यथा—युधिष्ठिरार्जुनौ, धृतराष्ट्रपाण्डू; बलदेवकृष्णौ ।

(च) ऋतुवाचक और नक्षत्रवाचक पदोंके आनुपूर्व्य अर्थात् क्रमके अनुसार पूर्ववर्त्तीका प्राग्भाव होता है । यथा—(ऋतु) हेमन्तशिशिरौ; शिशिरवसन्तौ; वसन्तनिदाघौ । (नक्षत्र) अश्विनीभरण्यौ; कृत्तिकारोहिण्यौ । वर्णोमात्र्यस्यवर्णेनेहीं यह नियम ।

(छ) ब्राह्मणादिवर्णवाचक पदोंका अनुपूर्व्यानुसार पौर्वापर्यनियम; यथा—ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रा, ब्राह्मणवैश्यौ ।

८०६ । बहुव्रीहि-समासमें—सप्तम्यन्त और विशेषण पदका प्राग्भाव होता है । यथा—(सप्तम्यन्त)—(कण्ठे कालः यस्य सः) कण्ठेकालः, (उरसि लोमानि यस्य सः) उरसिलोमा; (मूर्ध्नि शिखा यस्य सः) मूर्द्धशिखः; (सर्वे दृष्टि यस्य सः) सर्वदृष्टिः । (विशेषण)—(चित्रं वस्त्रं यस्य सः) चित्रवस्त्रः; (नीलम् अम्बरं यस्य सः) नीलाम्बरः; (मधुरं वचनं यस्य सः) मधुरवचनः ।

(क) 'प्रिय'-शब्दका विकल्पसे प्राग्भाव होता है; यथा—गुरुप्रियः; प्रियगुरुः ।

(ख) 'इन्दु'-प्रभृति पदके योगमें, सप्तम्यन्त पदका परनिपात होता है; यथा—(इन्दुः मौलौ यस्य सः) इन्दुमौलिः; चन्द्रशेखरः; (पद्मं नाभौ यस्य सः) पद्मनाभः; पद्महस्तः; (कुशः पाणौ यस्य सः) कुशपाणिः, इत्यादि ।

(ग) 'प्रहरण(अस्त्र)-वाचक पदके योगमें, सप्तम्यन्त पदका परनिपात होता है; यथा—(शस्त्रं पाणौ यस्य सः) शस्त्रपाणिः; दण्ड

पाणौ यस्य स) दण्डपाणि , चक्रपाणि , शूलपाणि , (खड्ग करे यस्य स) खड्गकर , (धनु हस्ते यस्य स) धनुर्हस्त ।

(घ) 'क्त'-प्रत्ययान्त पदका प्राग्भाव होता है , यथा—(कृता विद्या येन स) कृतविद्य , (कृत कर्म येन स) कृतकर्मा , कृतकृत्य , (अधीतं व्याकरण येन स) अधीतव्याकरण , (भक्षितम् ओदन येन स) भक्षितौदन , (धृतम् आयुध येन स) धृतायुध , (उद्धृत दण्ड येन स) उद्धृतदण्ड , (भग्न मनोरथ यस्य स) भग्नमनोरथ , (पक्व केश यस्य स) पक्वकेश ।

(ङ) 'आहिताग्नि' प्रभृति पदोंमे 'क्त'-प्रत्ययान्त पदका विकल्पसे प्राग्भाव होता है , यथा—(आहित अग्नि येन स) आहिताग्नि , अग्न्याहित , उद्यताग्नि , अग्न्युद्यत , सखोचित , उचितसख , जात सख , सखजात , जातपुत्र , पुत्रजात , जातदन्त , दन्तजात , जात श्मश्रु , श्मश्रुजात , पीततैल , तैलपीत , पीतघृत , घृतपीत , पीतक्षार , क्षारपीत , ऊढभार्य्य , भार्य्योढ , गतार्थ , अर्थगत , प्राप्तकाल , कालप्राप्त , इत्यादि ।

८०६ । सब समासोंमे—अव्ययपदका प्राग्भाव होता है , यथा—(न ब्राह्मण) अब्राह्मण , (टीकया सह वर्त्तमान) सटीक , (भिक्षाया अभाव) दुर्भिक्षम् , (आदित्यम् अतिक्रान्तम्)अत्यादित्यम् ।

समास-कार्य्य ।

(पुर्वपदमे)

८०७ । [अन्य]—'आशिस्' प्रभृति शब्द परे रहनेसे, 'अन्य'-

शब्दके स्थानमे 'अन्यत्' होता है, यथा—(अन्या आशी) अन्यदाशी, (अन्यस्मिन् आशा) अन्यदाशा ; (अन्यस्मिन् आस्था) अन्यदास्था, (अन्यम् आस्थित) अन्यदास्थित ; (अन्यस्मिन् उत्सुक) अन्यदुत्सुक, (अन्यस्मिन् राग) अन्यद्राग ; (अन्य कारक) अन्यत्कारक । *

(क) तृतीयान्त और षष्ठ्यन्त 'अन्य' शब्दका नहीं होता ; यथा—(अन्येन आशी) अन्याशी, (अन्यस्य आशी) अन्याशी ।

(ख) 'अर्थ' शब्द परे रहनेसे, विकल्पसे होता है, यथा—(अन्यस्य अर्थ) अन्यदर्थ, अन्यार्थ ।

८०८ । [अवश्यम्]—'कृत्य' प्रत्यय परे रहनेसे, 'अवश्यम्'-शब्दके मकारका लोप होता है, यथा—(अवश्य देयम्) अवश्यदेयम्, (अवश्यम् भव्यम्) अवश्यभव्यम्, (अवश्यं कर्त्तव्यम्) अवश्यकर्त्तव्यम् ।

८०९ । [उदक]—'वास', 'पेषम्' प्रभृति शब्द परे रहनेसे, 'उदक'-शब्दके स्थानमे 'उद' होता है, यथा—(उदके वास) उदवास ; "सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा [निनाय]" कु० ५ २६, उदपेषं पिनष्टि, उदधि ।

(क) कुम्भ, पात्र, बिन्दु प्रभृति शब्द परे रहनेसे, विकल्पसे होता है, यथा—(उदकस्य कुम्भ) उदकुम्भ, उदककुम्भ ; उदपात्रम्, उदकपात्रम् ; उदबिन्दु, उदकबिन्दु । †

८१० । [उभ]—पूर्वस्थित 'उभ'-शब्दके स्थानमे 'उभय' होता

---

* 'ईय'-प्रत्ययमेभी होता है, यथा—अन्यदीय ।

† क्षीरोद, लवणोद —इत्यादि-स्थलोंमे उत्तरपदमेभी होता है ।

है, यथा—(उभौ पक्षौ) उभयपक्षौ ।

८११। [ऋकारान्त]—द्वन्द्व-समासमे—एक गोत्र समझानेसे, 'पुत्र'-शब्द और ऋकारान्त शब्द उत्तरपद होनेसे, ऋकारान्त पूर्वपदके 'ऋ' के स्थानमे 'आ' होता है। यथा—(पिता च पुत्रश्च) पितापुत्रौ ; (माता च पुत्रश्च) मातापुत्रौ। (माता च पिता च) मातापितरौ *, (याता च ननान्दा च) याताननान्दरौ । गोत्रसम्बन्ध न रहनेसे नहीं होता, यथा—(दाता च भोक्ता च) दातृभोक्तारौ ।

८१२। [कु]—स्वरवर्ण और 'रथ' तथा 'वद्' शब्द परे रहनेसे, 'कु' शब्दके स्थानमे 'कत्' होता है। यथा—(कुत्सित अश्व) कदश्व, (कुत्सित अर्थ) कदर्थ, (कुत्सितम् अक्षरम्) कदक्षरम्, (कुत्सितम् अन्नम्) कदन्नम्, (कुत्सित आचार) कदाचार, (कुत्सित उष्ट्र) कदुष्ट्र, (कुत्सितम् उदकम्) कदुदकम्। (कुत्सित रथ) कद्रथ, (कुत्सित वदति) कद्वद, "प्रियापाये कद्वद हंसकोकिलम्" भ० ६ ७६.।

(क) 'पथिन्' और 'अक्ष' शब्द परे रहनेसे, 'कु' के स्थानमे 'का' होता है, यथा—(कुत्सित पन्था) कापथम् †, (कुत्सितम् अक्षम्)

---

* 'मातरपितरौ' पदभी होता है।

'मातृपितृसुहृद'—इस स्थलमे 'पितृ' शब्द उत्तरपद नहीं (६५५ पृष्ठ ७ पङ्क्ति द्रष्टव्य), इसलिये 'मातृ' के स्थानमे 'माता' नहीं हुआ। किन्तु पहले 'मातापितरौ' पद सिद्ध करके पीछे 'सुहृद्' शब्दके साथ समास करनेसे 'मातापितृसुहृद' हो सकता है।

† वोपदेवमते तु—"पथि पुरुषे वा" इति सूत्रेण विभाषया को कादेश,

काक्षम् (कुदृष्टिरित्यर्थ Frown, look of displeasure, malicious look) , 'अक्ष'-शब्दस्य सामान्यत इन्द्रियवाचित्वेऽपि, प्रयोगात् अयमर्थो बोध्य ; "काक्षेणानादरेक्षित" म० ६. २४ । 'अक्षि'-शब्दके साथ बहुव्रीहि समासमेंभी होता है, यथा—(कुत्सितम् अक्षि यस्य स) काक्ष [पुरुष] ।

(ख) 'ईषत्' अर्थ समझानेसे, 'कु' के स्थानमें 'का' होता है ; यथा—(ईषत् मधुरम्) कामधुरम् ; (ईषत् लवणम्) कालवणम् ; (ईषत् अम्लम्) काम्लम् ।

(ग) 'पुरुष' शब्द परे रहनेसे, विकल्पसे 'का' होता है ; यथा—(कुत्सित पुरुष) कापुरुष , कुपुरुष ।

(घ) 'उष्ण' शब्द पर रहनेसे, 'कु' के स्थानमें—का, कत् और कव होते हैं , यथा—(ईषत् उष्णम्) कोष्णम्, कदुष्णम्, कवोष्णम् ।

८१३ । [तुमुन्]—'काम' और 'मनस्' शब्द परे रहनेसे, 'तुमुन्'-प्रत्ययके मकारका लोप होता है , यथा—(गन्तु काम यस्य स) गन्तु काम , (भोक्तुम् मन यस्य स) भोक्तुमना ।

८१४ । [नञ्]—स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'नञ्' के स्थानमें 'अन्' होता है ; और व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे 'अ' होता है ; यथा—(न उचित) अनुचित , (न भाव) अभाव । *

८१५ । [महत्]—विशेष्य पद परे रहनेसे, विशेषण 'महत्'-शब्दके स्थानमें 'महा' होता है । यथा—(कर्मधारय)—(महान् देव)

तेन कुत्सम्' इत्यपि सिध्यति ।

* 'नातिदूर'-प्रभृति स्थलोंमें 'न' शब्दके साथ 'सुप् सुपेति समास' ।

महादेव , (महान् पुरुष) महापुरुष , (महान् जनः) महाजन ।* (बहुव्रीहि)—(महान् काय यस्य स) महाकाय [हस्ती] , (महत् बल यस्य स) महाबल , (महत् यश यस्य स) महायशा ।

'महत्'-शब्द विशेष्य होनेसे नहीं होता , यथा—(महताम् आश्रय) महदाश्रय , (महता सेवा) महत्सेवा , (महता वाक्यम्) महद्वाक्यम् ।

८१६ । [युष्मद्, अस्मद्]—एकवचनान्त 'युष्मद्'-शब्दके स्थानमें—'त्वत्', और 'अस्मद्' शब्दके स्थानमें—'मत्' होता है ; यथा—(तव पुस्तकम्) त्वत्पुस्तकम्, (मम गृहम्) मद्गृहम् । †

८१७ । [समान]—'गोत्र' प्रभृति शब्द परे रहनेसे, 'समान'-शब्दके स्थानमें 'स' होता है ; यथा—(समान गोत्र—कुल—यस्य स) सगोत्र , अथवा (समान गोत्रम्) सगोत्रम् (समानं रूपं यस्य स)

---

* शङ्ख' प्रभृति शब्दके पूर्वमें 'महत्' शब्द योग करनेसे 'निन्दा' अर्थ होता है , यथा—महाशङ्ख (शवकपाल, मानुषास्थि, नृललाटास्थि), महातैलम् (चर्बी) ; महामांसम् (नरमांस), महावैद्य (निन्दित अर्थात् अज्ञ वा अनिपुण चिकित्सक), महाज्योतिषिक (अनभिज्ञ ज्योतिषी), महाद्विज , महाब्राह्मण (नीच ब्राह्मण), महायात्रा (मरनेको जाना), महापथ (मृत्युपथ), महानिद्रा (मृत्यु) ।

"शङ्खे तैले तथा मांसे वैद्ये ज्योतिषिके द्विजे ।
यात्रायां पथि निद्रायां महच्छब्दो न दीयते ॥"

† प्रत्यय परे रहनेमें भी होता है , यथा—(तव इदम्) त्वदीयम् ; (मम इदम्) मदीयम् । द्विवचनान्त और बहुवचनान्त—युष्मत्पुस्तकम् , युष्मदीयम् ; अस्मत्पुस्तकम् , अस्मदीयम् ।

सरूप, (समान वर्ण यस्य स) सवर्ण; (समान पक्ष यस्य स) सपक्ष, अथवा (समान पक्ष) सपक्ष, (समान नाभि—गोत्रं, मूलपुरुषो वा—यस्य स) सनाभि; (समान पिण्ड—देह, मूलपुरुष, निवापो वा—यस्य स) सपिण्ड; (समान नाम यस्य स) सनामा; (समान वय यस्य स) सवया; (समान तीर्थ—गुरु—यस्य स) सतीर्थ, (समाने तीर्थे वसति) सतीर्थ्य; (समान ब्रह्मचारी) सब्रह्मचारी*, (समान धर्म यस्य स) सधर्मा, (समान जातीय) सजातीय, सस्थान, सवचन, इत्यादि। †

(क) 'उदर्य'-शब्द परे रहनेसे, विकल्पसे होता है; यथा—(समाने उदरे शयित) सोदर्य, समानोदर्य।

८१८। [सह]—बहुव्रीहि समासमें—'सह' शब्दके स्थानमें विकल्पसे 'स' होता है, यथा—(धनेन सह वर्त्तमान) सधन, सहधन, (अनुजेन सह वर्त्तमान) सानुज, सहानुज।

---

* सतीर्थ्य, सब्रह्मचारी—सहाध्यायी इत्यर्थः Fellow-student ("तु सब्रह्मचारिणी तरलिका क गता" । कादं०, "भद्र सुगृहीतनामन् सब्रह्मचारिन्! यदि न गुरुम्, तत् श्रोतुमिच्छामि" मुद्रा० १; सब्रह्मचारिन्—सहानुभूतिशालिन्)। ब्रह्म वेद, तदध्ययनार्थं यद्व्रतं तदपि ब्रह्म, तत् चरति इति ब्रह्मचारी।

† "नाम गोत्र-रूप-स्थान-वर्ण-वयो-वचन-जातीयेषु इति चान्द्रा" अर्थात् 'चान्द्र'-मते, नाम प्रभृति आठ शब्द परे रहनेसे विकल्पसे 'स' होता है; यथा—सनामा, समाननामा; सगोत्रः, समानगोत्र इत्यादि। कोई कोई 'धर्म' शब्दकोभी लेते हैं; यथा—सधर्मा, समानधर्मा।

पदकार्य्य ।

८१९। पद होनेसे, सब व्यञ्जनान्त शब्दकी आकृति सप्तमीके बहुवचनके तुल्य होती है यथा—वाच् ईश = वाक् + ईश = वागीश, सुहृद् समागम = सुहृत्समागम, राजन् वर = राजवर, अहन्-मुखम् = अहः + मुखम् = अहर्मुखम्; दिव्-लोक = द्युलोक, विद्वस् वर = विद्वत् + वर = विद्वद्वरः; पुम्स्-लिङ्ग = पुंलिङ्ग।

पुंवद्भाव ।

८२०। स्त्रीलिङ्ग विशेष्य पद परे रहनेसे, विशेषण उक्तपुंस्क (भाषितपुंस्क) स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव अर्थात् पुंलिङ्गके तुल्य आकार होता है* । यथा—(कर्मधारय)—(सुन्दरी बालिका) सुन्दरबालिका, (कृष्णा चतुर्दशी) कृष्णचतुर्दशी, (पाचिका स्त्री) पाचकस्त्री, (पञ्चमी कन्या) पञ्चमकन्या, (महती नवमी) महानवमी, (सुकेशी भार्य्या) सुकेशभार्य्या; (ब्राह्मणी भार्य्या) ब्राह्मणभार्य्या । (बहुव्रीहि)—(स्थिरा बुद्धि यस्य स) स्थिरबुद्धि, (महती मति यस्य स) महामति, (चित्रा मति यस्य स) चित्रमति, (दृढा भक्ति यस्य स) दृढभक्ति—२० १२ ११, (प्रिया भार्य्या यस्य स) प्रियभार्य्य, (काली तनु यस्य स) कालतनु । †

---

* जो शब्द पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमें एकही आकारमें एकही अर्थ समझाता है, उसको 'उक्तपुंस्क' वा 'भाषितपुंस्क' स्त्रीलिङ्ग शब्द कहते हैं ।

† 'ऊङ्'-प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता, यथा—(कर्मधारय)—(वामोरू भार्य्या) वामोरूभार्य्या, (बहुव्रीहि)—(वामोरू-

८२१ । उत्तरपद परे रहनेसे, स्त्रीलिङ्ग सर्वनाम शब्दका पुंवद्भाव होता है, यथा—(सर्वस्या धनम्) सर्वधनम्; (भवत्या प्रमादः भवत्प्रसाद ।

८२२ । 'अण्ड'-प्रभृति शब्द परे रहनेसे, 'कुक्कुटी'-प्रभृति शब्दका

भार्य्या यस्य स) वामोरुभार्य्यः ।

(क) बहुव्रीहि समासमें—जिस स्त्रीलिङ्ग शब्दके उत्तरमें तद्धितका अथवा 'अक'-प्रत्ययका 'क' रहता है, उसका पुंवद्भाव नहीं होता; यथा—(तद्धित)—(रसिका भार्य्या यस्य स) रसिकाभार्य्य, ('अक'-प्रत्यय)—(पाचिका भार्य्या यस्य स) पाचिकाभार्य्य ।

(ख) पूरणवाचक स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता, यथा—(द्वितीया भार्य्या यस्य स) द्वितीयाभार्य्य; (पञ्चमी भार्य्या यस्य स) पञ्चमीभार्य्य ।

(ग) जातिवाचक और स्वाङ्गवाचक स्त्रीलिङ्ग-शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता । यथा—(जातिवाचक)—(ब्राह्मणी भार्य्या यस्य स) ब्राह्मणीभार्य्य, (क्षत्रिया भार्य्या यस्य स) क्षत्रियाभार्य्य । (स्वाङ्गवाचक)—(सुकेशी भार्य्या यस्य स) सुकेशीभार्य्य, (कृशाङ्गी भार्य्या यस्य स) कृशाङ्गीभार्य्य ।

(घ) प्रिया, कान्ता, तनया, दुहिता—इत्यादि शब्द परे रहनेसे, पूर्ववर्ती स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता, यथा—(शोभना प्रिया यस्य स) शोभनाप्रिय, (सुलोचना कान्ता यस्य स) सुलोचनाकान्त; (सुन्दरी तनया यस्य स) सुन्दरीतनय, (गुणवती दुहिता यस्य स) गुणवतीदुहितृक ।

पुंवद्भाव होता है, यथा—(कुक्कुट्या अण्डम्) कुक्कुटाण्डम्, (हंस्या-अण्डम्) हंसाण्डम्, (काक्या शावक) काकशावक, (मृग्या-शाव) मृगशाव, (छाग्या दुग्धम्) छागदुग्धम्, (महिष्या-क्षीरम्) महिषक्षीरम्, (मृग्या पदम्) मृगपदम् ।

समास-कार्य्य ।

(उत्तरपदमें)

८२३ । [अ आ इ ई]—समास प्रत्ययका स्वरवर्ण परे रहनेसे, अवर्ण और इवर्णका लोप होता है, यथा—अल्पमेधा अस्—अल्पमेधस्, विशालाक्षि अ—विशालाक्ष ।

८२४ । [उ ऊ न]—समास प्रत्ययका स्वरवर्ण परे रहनेसे, उव-र्णके स्थानमें 'ओ' होता है, और नकारका लोप होता है, यथा—बाहु बाहु-इ (इच्)—बाहूबाहवि, महाराजन्-अ (ट)—महाराज ।

८२५ । [दीर्घस्वर]—क्लीवलिङ्गका विशेषण होनेसे, दीर्घस्वर ह्रस्व होता है, यथा—(विश्व पाति इति) विश्वप [ब्रह्म], सुधि, सुभ्रु ; (नावम् अतिक्रान्तम्) अतिनु [जलम्] ।

८२६ । [आप् ईप्]—अन्य पदका विशेषण होनेसे, 'आप्' और 'ईप्' प्रत्ययका ह्रस्व होता है, यथा—(त्यक्ता लज्जा येन स) त्यक्तलज्ज [पुमान्], (अतिक्रान्त प्रेयसीम्) अतिप्रेयसि [कृष्ण] * ।

---

* बहुव्रीहि-समासमें 'ईयसु'-प्रत्ययके परवर्त्ती 'ईप्'-प्रत्ययका ह्रस्व नहीं होता, यथा—(बह्व्य प्रेयस्य यस्य स) बहुप्रेयसी [कृष्णः] ।

(क) बहुव्रीहि-समासमें 'क' (कप्) प्रत्यय होनेसे, 'आप्'-प्रत्ययका

८२७। [गो]—अन्य पदका विशेषण होनेसे, 'गो' शब्दके स्थानमें 'गु' होता है, यथा—(उष्णा गौ —किरण —यस्य सः) उष्णगु (सूर्य्य इत्यर्थ); (शीता गौ यस्य सः) शीतगु (चन्द्र इत्यर्थ)।

८२८। [पाद]—बहुव्रीहि-समासमें—उपमानवाचक पदके परवर्ती 'पाद'-शब्दके स्थानमें 'पाद्' होता है, यथा—(व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य सः) व्याघ्रपात्। 'हस्तिन्'-प्रभृतिके परवर्ती होनेसे नहीं होता; यथा—(हस्तिन इव पादौ यस्य [redacted]) हस्तिपाद, कुम्भपाद इत्यादि।

(क) 'सु'-शब्द और संख्यावाचक शब्द पूर्वमें रहनेसे, 'पाद'-शब्दके स्थानमें 'पाद्' होता है। यथा—(शोभनौ पादौ यस्य सः) सुपात्। (द्वौ पादौ यस्य सः) द्विपात्, (त्रय पादा यस्य सः) त्रिपात्; चतुष्पात्—(स्त्री०) चतुष्पदी।

समास प्रत्यय।

८२९। [तत्पुरुष, कर्मधारय और द्विगु समासमें] एकदेशवाचक शब्दके परवर्ती 'रात्रि'-शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है; यथा—(अर्द्धं रात्रेः) अर्द्धरात्र; (७४२ (ख) सूत्र)।

(क) एकदेशवाचक शब्दके परवर्ती 'अहन्'-शब्दके उत्तर 'अ'

विकल्पमें ह्रस्व होता है; यथा—(बहव विद्या यस्य सः) बहुविद्याक, बहुविद्यक।

(ख) षष्ठीतत्पुरुष समासमें, बहुवचनान्त पद पूर्वमें रहनेसे, 'छाया'-शब्द क्लीवलिङ्ग होता है, यथा—(वृक्षाणां छाया) वृक्षच्छायम्, (इक्षूणां छाया) इक्षुच्छायम्, (शराणां छाया) शरच्छायम्। पूर्वपद एकवचन होनेसे विकल्पसे, यथा—(वृक्षस्य छाया) वृक्षच्छाया, वृक्षच्छायम्।

(टच्) होता है, और 'अहन्'-शब्दके स्थानमे 'अह्' आदेश होता है ; यथा—मध्याह्न (७४२ (ख) सूत्र)।

(ख)। 'सर्व' शब्द, 'पुण्य' शब्द, सङ्ख्यावाचक शब्द और अव्यय शब्दके परवर्त्ती 'रात्रि' शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है। यथा—(सर्वा रात्रि) सर्वरात्र । (पुण्या रात्रि) पुण्यरात्र । (द्वयो रात्र्योः समाहार) द्विरात्रम्, (तिसृणां रात्रीणां समाहार) त्रिरात्रम्, पञ्चरात्रम्, दशरात्रम्। (रात्रिम् अतिक्रान्त) अतिरात्र ।

(ग) 'सर्व'-शब्द, 'पुण्य' शब्द, सङ्ख्यावाचक शब्द और अव्यय शब्दके परवर्त्ती 'अहन्' शब्दके उत्तर 'अ' (टच्) होता है, और 'अहन्'-शब्दके स्थानमें 'अह्' होता है।* यथा—(सर्वम् अह) सर्वाह्ण। (द्वयो अह्नो भव) द्व्यह्न (तद्धितार्थे द्विगु), (पञ्चसु अह्नसु भव) पञ्चाह्न । (निर्गत अह्न) निरह्न, निरह्ना वेला ।

(घ) सङ्ख्यावाचक और अव्यय शब्दके परवर्त्ती 'अङ्गुलि' शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है। यथा—(द्वे अङ्गुली प्रमाणम् अस्य) द्व्यङ्गुलम्, त्र्यङ्गुलम्। (निर्गतम् अङ्गुलिभ्य) निरङ्गुलम्, (प्रकृष्टा अङ्गुल्य) प्राङ्गुला ।

---

* 'पुण्य'-शब्द और 'एक-शब्दके परवर्त्ती 'अहन्' के स्थानमे 'अह्' नहीं होता, यथा—पुण्याहम् (ट), एकाह (ट)।

(क) समाहार द्विगु समासमें, 'अहन्' के स्थानमे 'अह्' नहीं होता ; यथा—(द्वयो अह्नो समाहार) द्व्यह, (ट), त्र्यह, दशाह ।

'रात्र' और 'अह्न' शब्द पुंलिङ्ग, किन्तु सङ्ख्यापूर्व 'रात्र' शब्द क्लीवलिङ्ग । 'अह'-शब्द पुंलिङ्ग, किन्तु 'पुण्याह' शब्द क्लीवलिङ्ग ।

(ङ) राजन्, अहन् और सखि शब्दके उत्तर 'ट' (टच्) होता है; 'ट्' इत्, 'अ' रहता है; यथा—(अङ्गानां राजा) अङ्गराज, (महान् राजा) महाराज—(स्त्री०) महाराज्ञी। (पूर्वम् अहः) पूर्वाह्ण; (परमम् अहः) परमाह, (उत्तमम् अहः) उत्तमाह। (राज्ञः सखा) राजसख; (प्रियः सखा) प्रियसख—(स्त्री०) प्रियसखी।

(च) 'गो'-शब्दके उत्तर 'ट' होता है, यथा—(राज्ञः गौः) राजगव—(स्त्री०) राजगवी, (परमो गौः) परमगव; (दश गावः धनम् अस्य) दशगवधन; (पञ्चानां गवां समाहारः) पञ्चगवम्। तद्धितमें नहीं होता; यथा—(पञ्चभिः गोभिः क्रीतः) पञ्चगु।*

(छ) 'कु' और 'महत्'-शब्दके परवर्ती 'ब्रह्मन्'-शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ट' होता है; यथा—(कुत्सितः ब्रह्मा—ब्राह्मण इत्यर्थः) कुब्रह्म, कुब्रह्मा, महाब्रह्म, महाब्रह्मा।

৮৩০। [कर्मधारय-समासमें] वृद्ध, महत् और जात शब्दके परवर्ती 'उक्षन्'-शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है; यथा—(वृद्धः उक्षा) वृद्धोक्ष, (महान् उक्षा) महोक्ष; (जातः उक्षा) जातोक्ष।

৮৩১। [द्विगु-समासमें] 'द्वि' और 'त्रि'-शब्दके परवर्ती 'अञ्जलि'-शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ट' (टच्) होता है; यथा—(द्वयोः अञ्जल्योः समाहारः) द्व्यञ्जलम्, द्व्यञ्जलि; त्र्यञ्जलम्, त्र्यञ्जलि।

---

* ऐसे—(पुरुषस्य आयुः) पुरुषायुषम्; (निश्चितं श्रेयः) निःश्रेयसम्, (शोभनं श्रेयः) श्वःश्रेयसम्; (ब्रह्मणो वर्चः) ब्रह्मवर्चसम्, (गोः अक्षि इव) गवाक्ष; (अन्धं च तत् तमश्च) अन्धतमसम्; इत्यादि। (अन्धयति इति अन्धम्—पचाद्यच्)।

८३२। [द्वन्द्व-समासमे] 'स्त्रीपुंसौ'-प्रभृति शब्द निपातन-सिद्ध, यथा—(स्त्री च पुमांश्च) स्त्रीपुंसौ, (वाक् च मनश्च) वाङ्मनसे; (नक्तञ्च दिवा च) नक्तन्दिवम्, (रात्रौ च दिवा च) रात्रिन्दिवम्, (अहनि च दिवा च) अहर्दिवम् (अहनि अहनि इत्यर्थ — रोज़ बरोज या रोज़मर्रह्), (अहश्च रात्रिश्च) अहोरात्र ; इत्यादि।

८३३। [बहुव्रीहि-समासमे] 'अक्षि' और 'सक्थि'-शब्दके उत्तर 'ष' (षच्) होता है; 'ष्' इत्, 'अ' रहता है। यथा—(दीर्घे अक्षिणी यस्मिन् तत्) दीर्घाक्षं [वदनम्]; [विशाले अक्षिणी यस्याः सा) विशालाक्षी [देवी]। (दीर्घे सक्थिनी यस्य स॰) दीर्घसक्थ॰ [पुरुष॰]; (वृत्ते सक्थिनी यस्या सा) वृत्तसक्थी [नारी]।*

(क) 'द्वि' और 'त्रि'-शब्दके परवर्ती 'मूर्द्धन्'-शब्दके उत्तर 'ष' होता है, यथा—(द्वौ मूर्द्धानौ यस्य स) द्विमूर्द्ध, (त्रय मूर्द्धान॰ यस्य स) त्रिमूर्द्ध। अन्यत्र नहीं होता, यथा—(पञ्च मूर्द्धानो यस्य स) पञ्चमूर्द्धा।

(ख) संज्ञा समझानेसे, 'नाभि'-शब्दके उत्तर विकल्पसे 'अ' (अच्) होता है, यथा—पद्मनाभ, पद्मनाभि, (अरविन्दं नाभौ यस्य स) अरविन्दनाभ, अरविन्दनाभि —"प्रभा इवाङ्कादरविन्दनाभे" माघ॰ ३. ६९, (ऊर्णा इव तन्तु॰ नाभौ यस्य स) ऊर्णनाभ, † ऊर्ण-

---

* प्राणीका अङ्ग न समझानेसे नहीं होता, यथा—स्थूलाक्षं इक्षु-दण्ड ; दीर्घसक्थि शकटम्।

† संज्ञा समझानेसे, पूर्वपदस्थ 'आप्' और 'ईप्'-प्रत्ययका बहुल ह्रस्व होता है, यथा—(काल्या दास॰) कालिदास (कविविशेष); (प्रम-

नाभि —"प्रवृत्तिर्नो विना कार्य्यमूर्णनाभेरपीष्यते" महर्षाश्चिक्यम् ।

(ग) सङ्ख्यावाचक शब्दके परवर्ती सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'ड' होता ; 'ड्' इत्; 'अ' रहता है; यथा—(द्वौ वा त्रयो वा) द्वित्राः ; (पञ्च वा षट् वा) पञ्चषाः * ।

(घ) 'धर्म'-शब्दके उत्तर 'अन्' (अनिच्) होता है; यथा—(विदित: धर्मः येन सः) विदितधर्मा; त्यक्तधर्मा, (मरणं धर्मः यस्य सः) मरणधर्मा, (जननमरणे धर्मौ यस्य सः) जननमरणधर्मा; (साक्षात्कृतः धर्मः येन सः) साक्षात्कृतधर्मा—"साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः" उत्तर० * ।

(ङ) 'धनुस्' शब्दके उत्तर 'अन्' (अनङ्) होता है; और सकारका लोप होता है, यथा—(गृहीतं धनुः येन सः) गृहीतधन्वा; (अधिज्यं धनुः यस्य सः) अधिज्यधन्वा † ।

(च) नञ्, दुर् और सु शब्दके परवर्ती 'प्रजा'-शब्दके उत्तर 'अस्' (असिच्) होता है; यथा—(अविद्यमाना प्रजा यस्य सः) अप्रजाः (अप्रजस्), (दुष्टा प्रजा यस्य सः) दुष्प्रजाः, (शोभना प्रजा यस्य सः) सुप्रजाः ।

(छ) नञ्, दुर्, सु, मन्द और अल्प शब्दके परवर्ती 'मेधा'-

दाला वनम्) प्रमदवनम्, प्रमदावनम्; (वैदेहाः बन्धुः) वैदेहिबन्धु —र० १४. २३; इत्यादि ।

* किन्तु (त्रयो वा चत्वारो वा) त्रिचतुराः ।

† संज्ञा समझानेसे, विकल्पसे होता है, यथा—(पुष्पं धनुर्यस्य सः) पुष्पधन्वा, पुष्पधनु (कन्दर्प इत्यर्थ)—माघ० ६.४१. ।

शब्दके उत्तर 'अस्' होता है, यथा—अमेधा, दुर्मेधा, सुमेधा; (मन्दा मेधा यस्य स.) मन्दमेधा, अल्पमेधा।

(ज) सु, उत्, पूति और सुरभि शब्दके परवर्त्ती गुणवाचक 'गन्ध'-शब्दके उत्तर 'इ' होता है, यथा—(शोभन गन्ध यस्य स) सुगन्धि, (उद्गत गन्ध यस्य स) उद्गन्धि, (पूति—दुष्ट—गन्ध यस्य स) पूतिगन्धि, (सुरभि—मनोहर—गन्धो यस्य स) सुरभिगन्धि।

स्वाभाविक गन्ध न होनेसे नहीं होता, यथा—सुगन्ध पवन; "आघ्राय वान् गन्धवह सुगन्धस्तेनारविन्दव्यतिषङ्गवाश्च" (वान् वहन् वायुराघ्रात इत्यर्थं) म० २, १०। *

(झ) उपमानवाचक पदके परवर्त्ती 'गन्ध'-शब्दके उत्तर 'इ' होता है †, यथा—(पद्मस्य इव गन्धो यस्य तत्) पद्मगन्धि [मुखम्]।

(ञ) 'जाया'-शब्दके उत्तर 'इ' होता है, और 'जाया' के स्थानमे 'जान्' होता है, यथा—(सीता जाया यस्य [illegible]) सीताजानि; (युवति जाया यस्य स) युवजानि, (प्रिया जाया यस्य स) प्रियजानि, (सुन्दरी जाया यस्य स) सुन्दरजानि।

(ट) 'उरस्'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'कप्' होता है, 'प्' इत्, 'क'-रहता है, यथा—(व्यूढम्—विपुलम्—उर यस्य स) व्यूढोरस्क; (पीत सर्पि येन स) पीतसर्पिष्क, (उपानह्या सह वर्त्तमान)

---

* "गन्धादूवा इति चान्द्रा"।

† शाकटायन-मते विकल्पसे, यथा—पद्मगन्धि, पद्मगन्धम्।—"वोपमानात्"।

सोपानत्क ; (भाषित पुमान् येन स) भाषितपुंस्कः [शब्द]; (प्रचुरं पय यस्या सा) प्रचुरपयस्का [धेनु]; (प्राप्ता लक्ष्मी येन सः) प्राप्तलक्ष्मीक ; (आहृत मधु येन स) आहृतमधुक ; (विक्रीयमाणं दधि यया सा) विक्रीयमाणदधिका [गोपी]; (न विद्यते अर्थ यस्मिन् तत्) निरर्थकम्, अनर्थकम् ।

(ठ) स्त्रीलिङ्गमें, 'इन्'-भागान्त शब्दके उत्तर 'कप्' होता है, यथा—(बहव धनिन यस्या सा) बहुधनिका [नगरी]; (बहव वाग्मिन यस्यां सा) बहुवाग्मिका [सभा]।

(ड) ऋकारान्त शब्द और स्त्रीलिङ्ग ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दके उत्तर 'कप्' होता है। यथा—(नास्ति पिता यस्य स) निष्पितृक ; (मात्रा सह वर्त्तमान) समातृक ; (मृत भर्त्ता यस्या सा) मृतभर्तृका। (स्त्रिया सह वर्त्तमान) सस्त्रीक ; (मृता पत्नी यस्य स) मृतपत्नीक , (बह्व्य कुमार्य्य यस्य स) बहुकुमारीक ; (मधुरा वाणी यस्य स) मधुरवाणीक ; (प्रौढा वधू यस्य स) प्रौढवधूक ।*

('स्त्री'-शब्द-भिन्न) जिनके स्थानमें 'इय्' 'उव्' होते हैं, ऐसे ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दके उत्तर नहीं होता ; यथा—(शोभना श्री यस्य स) सुश्री ; (शोभना भ्रू यस्य स) सुभ्रू ।

(ढ) पूर्वोक्त-भिन्न अन्यविध शब्दके उत्तर विकल्पसे 'कप्' होता है ; यथा—(लब्धं यश येन स) लब्धयशस्क, लब्धयशा ; (प्राप्तं तेज येन स) प्राप्ततेजस्क, प्राप्ततेजा ; (मुण्डितं शिर यस्य स) मुण्डितशिर-

---

* प्रशंसा समझानेमें, 'भ्रातृ'-शब्दके उत्तर 'कप्' नहीं होता ; यथा—सुभ्राता ; पण्डितभ्राता ; साधुभ्राता । अन्यत्र—मूर्खभ्रातृक ; बहुभ्रातृक ।

स्क॰, मुण्डितशिरा॰; (घृतं धनु येन स) घृतधनुष्क, घृतधनु, (अर्जितं धनं येन स॰) अर्जितधनक, अर्जितधन, (अन्यस्मिन् मन यस्य सः) अन्यमनस्क॰, अन्यमनाः ।

(ग) व्यतीहार-अर्थमें 'इच्' होता है, 'च्' इत्, 'इ' रहता है, यथा—केशाकेशि, मुष्टामुष्टि, बाहूबाहवि ।*

८३४ । [अव्ययीभाव-समासमें] 'शरद्'-प्रभृति † शब्दके उत्तर 'अ' (टच्) होता है, यथा—(शरदि शरदि) प्रतिशरदम्; (दिशि दिशि) प्रतिदिशम्, (हिमवन्तपर्य्यन्तम्) आहिमवतम्, अनुदशम् ।

(क) 'जरा'-शब्दके उत्तर 'अ' होता है, 'अ' होनेसे, 'जरा'-के स्थानमें 'जरस्' होता है, यथा—(जरायाः समीपे) उपजरसम् ।

(ख) सम्, अनु, प्रति और पर शब्दके परवर्त्ती 'अक्षि'-शब्दके उत्तर 'अ' होता है; यथा—(अक्ष्णः समीपे) समक्षम्, अन्वक्षम्; (अक्षि प्रति) प्रत्यक्षम्, (अक्ष्णः परम्) परोक्षम् ‡ ।

(ग) 'अन्'-भागान्त शब्दके उत्तर 'अ' होता है, यथा—(राजनि) अधिराजम्; अध्यात्मम्; प्रत्यध्वम् । §

---

* पूर्वपदका अन्त्यस्वर दीर्घ होता है । शाकटायन-मते—पूर्वपदके अन्त्य-स्वरके स्थानमें 'आ' होता है; यथा—मुष्टामुष्टि, बाहाबाहवि ।—"आदि-त्न्ते" । स्वरवर्ण परे रहनेसे नहीं होता; यथा—अस्यासि ।

† शरद्, अनस्, मनस्, चेतस्, उपानह्, अनडुह्, दिव्, हिमवत्, दिश्, दृश् इत्यादि ।

‡ 'अक्षि'-शब्द परे रहनेसे, 'पर'के स्थानमें 'परस्' होता ।

§ क्लीवलिङ्ग शब्दके उत्तर विकल्पसे होता है; यथा—उपचर्मम्, उपचर्म ।

(घ) गिरि, नदी, पौर्णमासी और आग्रहायणी शब्दके उत्तर विकल्पसे 'अ' होता है; यथा—(गिरेः समीपम्) उपगिरम्, उपगिरि; उपनदम्, उपनदि; उपपौर्णमासम्, उपपौर्णमासि; उपाग्रहायणम्, उपाग्रहायणि।

(ङ) पञ्चम-भिन्न स्पर्शवर्णान्त शब्दके (अर्थात् वर्गके प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्णके) उत्तर विकल्पसे 'अ' होता है; यथा—उपदृषदम्, उपदृषत्; अनुसमिधम्, अनुसमित्।

(च) 'प्रति'-शब्दके परवर्ती सप्तम्यर्थमें वर्तमान 'उरस्'-शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है, यथा—(उरसि) प्रत्युरसम्।

८३६। [सर्वसमासमें] 'पथिन्'-शब्दके उत्तर 'अ' होता है। यथा—(राज्ञां पन्थाः) राजपथः; (हस्ते पन्थाः) हस्तिपथः; (जले पन्थाः) जलपथः, (दक्षिणा—दक्षिणस्यां दिशि—पन्थाः) दक्षिणापथः। (सन् पन्थाः) सत्पथः। (कुत्सितः पन्थाः) कापथः। (त्रयाणां पथां समाहारः) त्रिपथम्, (चतुर्णां पथां समाहारः) चतुष्पथम्। (क्षेत्रञ्च पन्थाश्च) क्षेत्रपथौ। (रम्यः पन्था यस्मिन् तत्) रम्यपथं [नगरम्]। (पन्थानं प्रति) प्रतिपथम्।

अव्यय-शब्दके परवर्ती होनेसे क्लीबलिङ्ग होता है; यथा—(विरुद्धः पन्थाः) विपथम्; (गर्हितः पन्थाः) उत्पथम्; (अपकृष्टः पन्थाः) अपपथम्।

(छ) 'अप्'-शब्दके उत्तर 'अ' होता है; यथा—(विमला आपः यस्मिन् तत्) विमलापं [सरः], (उद्गताः आपः यस्मात् सः) उद्गतापः [कूपः]।

(ख) पुर्, धुर् और ऋच् शब्दके उत्तर 'अ' होता है। यथा—(राज्ञः पूः) राजपुरम्। (राज्यस्य धूः) राज्यधुरा, (महती धूः) महाधुरा, (विश्वस्य धूः) विश्वधुरा, (रणस्य धूः) रणधुरा—"ताते चापद्वितीये वहति रणधुराम्*" वेणी० ३ ७, "कार्य्यधुरां† वहन्ति" मुद्रा० १ १४, "न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति" मृच्छ० ४ १७, (दृढा धूः येन सः) दृढधुर।† (अर्द्धम् ऋचः) अर्द्धर्चं, अर्द्धर्चम्‡, (अधिगता ऋक् येन सः) अधिगतर्च।

समासप्रत्यय-निषेध।

८३६। पूजार्थे (प्रशंसावाची) 'सु' और 'अति'-शब्द पूर्वमें रहनेसे, समास प्रत्यय नहीं होता, यथा—(शोभनो राजा) सुराजा, (शोभनो राजा यस्मिन् सः) सुराजा [देश], (अतिशयेन राजा) अतिराजा, सुसखा, अतिसखा, सुगौः, अतिगौः, सुपन्था।

(क) निन्दार्थे 'किम्' शब्द पूर्वमें रहनेसे, समासप्रत्यय नहीं होता, यथा—(कुत्सितो राजा) किंराजा, (कुत्सितः सखा) किंसखा, (कुत्सितः पन्था यस्मिन् सः) किम्पन्था [देश]।

(ख) तत्पुरुष-समासमें, 'नञ्' शब्द पूर्वमें रहनेसे, समास-प्रत्यय नहीं होता, यथा—(न राजा) अराजा, असखा, अगौः।

---

* 'रणधुरम्' इति च पाठः। † 'कार्य्यधुरम्' इति च पाठः।

† 'अक्ष' शब्दका सम्बन्ध रहनेसे नहीं होता, यथा—(अक्षस्य धूः) अक्षधूः, (दृढा धूः यस्य सः) दृढधूः [अक्ष]।

‡ 'अर्द्धर्चादि'-शब्द पुलिङ्ग और क्लीवलिङ्ग (अर्द्धर्च, गोमय, कार्षापण, ध्वज, नखर, चरण, मधु, मूल, तण्डुल इत्यादि)।

पथिन्-शब्दके उत्तर विकल्पसे। समासान्त-पक्षमें क्लीबलिङ्ग होता है; यथा—अपथम्, अपन्थाः।

समास-विच्छेद।

※ समास विच्छेद करनेके समय, उसका विग्रहवाक्य कहना होता है। किन्तु किसी वाक्यके अन्तर्गत समस्तपदका समास-विच्छेद करनेके समय, पुनरुक्ति-प्रभृति दोष-परिहार तथा अन्यान्य पदके साथ अन्वय-रचना करनेके लिये कुछ कुछ परिवर्जन, परिवर्द्धन और परिवर्त्तनभी करना होता है। यथा—

दधिभाण्डम् = दध्नो भाण्डम्।

मस्तकस्थितात् = मस्तके यत् स्थितं तस्मात् *।

यूयं सन्ध्यासमये महारवं करिष्यथ = यूयं सन्ध्यायाः समये महान्तं रवं करिष्यथ।

त्रिभुवने भवादृशः कोऽपि नास्ति = त्रिषु भुवनेषु भवादृशः कोऽपि नास्ति।

दानमानाभ्यां तं पूजयामास = दानेन मानेन च तं पूजयामास।

निरपराधो हतस्तेन व्यापादितः = यस्यापराधो नासीत् स हतस्तेन व्यापादितः।

स प्रतिदिनं विद्याभ्यासे सयत्नं प्रवर्त्तते = स दिने दिने विद्याया अभ्यासे यत्नेन सह प्रवर्त्तते।

समास होनेके पश्चात्—सिंह, व्याघ्र-प्रभृति शब्द 'श्रेष्ठ'-अर्थ

---

* समस्तपद द्वितीयादिविभक्तियुक्त रहनेसे, समासविच्छेद या विग्रहवाक्यमें, अन्तमें इसप्रकार 'तद्' शब्दका वही-विभक्तियुक्त पद कहना होता है।

समझाते हैं, और निभ, सङ्काश प्रभृति शब्द* 'तुल्य'-अर्थ समझाते हैं, इसलिये समासविच्छेदमें उनके स्थानमें श्रेष्ठार्थ और तुल्यार्थ पद बैठाना चाहिये, यथा—पुरुषसिंह = पुरुषाणां श्रेष्ठ ; देवसङ्काश = देवस्य सदृश. ।

समास-प्रश्नमाला ।

समास विच्छेद करो—वृद्धस्शगाल । सर्वस्वामिगुणोपेत । सामर्थ्यहीन । मन्मरणम् । मत्स्यकण्टकाकीर्णम् । कम्बुग्रीवनामा । स्वकार्योत्कर्षम् । काव्यवाटिषु । क्षुत्क्षाम । चन्द्रार्द्धचूड़ामणि । मासाहारदानन । तस्करतारावम् । लगुडहस्त. । हृष्टपुष्टाङ्ग । अस्मत्सौख्यम् । सकोपम् । विश्रम्भालापैः । नीरज. । व्याघ्रभीत । रक्तविलिप्तमुखपाद । पार्श्वगतात् । मरणादा । प्रत्यहम् । महाव्याकुलचित्तेन । शताब्दि । [illegible] पूर्वं कोपाविष्टो विस्मृतपूर्ववचन प्रोवाच । ततस्तेन सिंहव्याघ्रादीन् उत्तमपरिजनान् प्राप्य स्वजातीया सर्वे दूरीकृता । नास्ति क्षुद्रजन्तूनामपि निमज्जनस्थानम् । ततस्तत्तीरावस्थिता गजपादाहतिभिश्चूर्णिता क्षुद्रशशका । ततस्तेन नकुलेन बाणकसमीपमागच्छन् कृष्णसर्पो दृष्ट्वा व्यापादित । आसीत् सकलराजलक्षणोपेत शूद्रको नाम राजा । एकदाऽसौ अमात्यगणपरिवृत परिषद्मास्थित । तदैको राजपुत्र पुत्रभार्यासमेतो देशान्तरादाजगाम ।

समास करो, और कौन समास कहो—गुरोर्वचन शृणुयात् । शीतल

---

* निभ, सङ्काश, नीकाश, प्रतीकाश प्रभृति शब्द उत्तरपद होनेसेही 'सदृश' वाची होते हैं ।—

"स्युरुत्तरपदे त्वमी ।
निभ सङ्काश-नीकाश प्रतीकाशोपमादय ॥" (तुल्यार्था इति शेष) ।

जल पिब । कुठारेण छिन्नो वृक्ष । नद्यां मग्ना नौका । स अस्माकं गृहम् आगमिष्यति । मया कृतं कार्य्यम् । त्रिषु लोकेषु गीयते ते यश । दशसु दिक्षु विख्यातम् । चतुर्षु युगेषु सत्यस्य आदर । तव कुशलं मम प्रीत्यै दुर्लभम् पाण्डव । तस्योपरि पुष्पाणां वृष्टि पपात । निशायां निशायाम् उत्सवो भवति । अन्नं व्यञ्जनञ्च भक्षय । फलानि पुष्पाणि च गन्ध । शास्त्रं शास्त्रेण पुष्यते । गुरु छात्राश्च गच्छन्ति । हंसौ मयूरौ च मानसरे यान्ति । महान् वृक्ष अयम् । धार्मिकाणां वरो राम पितु सत्यस्य पालनार्थं भ्रात्रा अनुयात पत्न्या सह वनं जगाम ।

कृत्-परिशिष्ट ।

अ ।

८३७ । सन्—प्रत्ययान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमें 'अ'-प्रत्यय होता है । 'अ' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग । यथा—(सनन्त) जिज्ञासा, पिपासा ; चिकीर्षा , जिगीषा ; जिगमिषा , लिप्सा ; विवासा ; चिकित्सा ; मीमांसा , जुगुप्सा । (यङन्त) अटाट्या । (नामधातु) नमस्या ; वरिवस्या , अशनाया , पुत्रकाम्या ; कण्डूया ।

(क) निष्ठाप्रत्ययमें जिन धातुओंके उत्तर 'इट्' होता है, ऐसे आदिमें गुरुस्वरविशिष्ट व्यञ्जनान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमें 'अ' होता है, यथा—(ईह्) ईहा , (चेष्ट्) चेष्टा ; (भिक्ष्) भिक्षा ; (सेव्) सेवा , (निन्द्) निन्दा , (शङ्क्) शङ्का, (अर्च्) अर्चा, (काङ्क्ष्) आकाङ्क्षा , (ईक्ष्) परीक्षा, (कम्प्) अनुकम्पा , (शंस्) आशंसा,

प्रशंसा, (क्रीड्) क्रीडा, (बाध्) बाधा, (वाञ्छ्) वाञ्छा।

८३८। अङ्—धातुपाठमे षकार-इत् (षित्) धातुके उत्तर भाववाच्यमे 'अङ्' प्रत्यय होता है, 'ङ्' इत्, 'अ' रहता है। 'अङ्'-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग। यथा—(जृष्) जरा, (क्षमूष्) क्षमा; (त्रपूष्) त्रपा, (व्यथ्) व्यथा,* (त्वर्) त्वरा।

(क) 'भिद्' प्रभृति धातुके उत्तर भाववाच्यमे 'अङ्' होता है; यथा—(भिद्) भिदा, (छिद्) छिदा, (पीड्) पीडा, (मृज्) मृजा, (दय्) दया, (तोलि) तुला।

(ख) चिन्ति, पूजि, कथि और चर्चि धातुके उत्तरभी भाववाच्यमे 'अङ्' होता है, यथा—चिन्ता, पूजा, कथा, चर्चा।

(ग) उपसर्ग, 'श्रत्'-शब्द और 'अन्तर्' शब्द पूर्वमे रहनेसे, आकारान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमे 'अङ्' होता है। यथा—(मा) अल्मा, प्रमा, विमा, प्रतिमा, (मा) प्रमा, उपमा, प्रतिमा, (धा) विधा, व्यवधा, अभिधा, उपधा, (ज्ञा) अभिज्ञा, प्रज्ञा, अनुज्ञा, संज्ञा, अवज्ञा, प्रतिज्ञा, उपज्ञा, आज्ञा, (ख्या) आख्या, सङ्ख्या, अभिख्या, (स्था) संस्था, अवस्था, आस्था, निष्ठा, प्रतिष्ठा। (धा) श्रद्धा, अन्तर्द्धा।

८३९। अच्—'पच्' प्रभृति धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'अच्'-प्रत्यय होता है, 'च्' इत्, 'अ' रहता है, यथा—(पचतीति) पच; (दीव्यतीति) देव, (क्षमते इति) क्षम, (धरतीति) धर, (हरतीति) हर।

---

* घटादि धातुभी 'षित्'।

(चरतीति) चर वा चराचर ; (चलतीति) चल वा चलाचल ; (पततीति) पत वा पतापत ; (वदतीति) वद वा वदावद ।

(क) कर्मवाचक पदके परवर्त्ती 'हृ'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'अच्' होता है, यथा—(अंशं हरति इति) अंशहरः (दायाद), (मार्गं हरति) मार्गहर ; रोगहर ; शोकहर , दुःखहर ; क्लेशहर ।*

(ख) कर्मवाचक पदके परवर्त्ती 'अर्ह्'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'अच्' होता है, यथा—(पूजाम् अर्हति इति) पूजार्ह ; (तत् अर्हति) तदर्ह ; (सत्कारम् अर्हति) सत्कारार्ह ; (निन्दाम् अर्हति) निन्दार्ह ।

(ग) अधिकरणवाचक पदके परवर्त्ती 'शी'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'अच्' होता है, यथा—(शिलायां शेते इति) शिलाशय ; (भूमौ शेते) भूमिशय ; (शय्यायां शेते) शय्याशय , (बिले शेते) बिलेशय (सर्प) ।

(घ) 'पार्श्व'-प्रभृति शब्दके परवर्त्ती 'शी'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'अच्' होता है, यथा—(पार्श्वेन शेते इति) पार्श्वशय ; (पृष्ठेन शेते) पृष्ठशय ; (उदरेण शेते) उदरशय , (उत्तान शेते) उत्तानशय ; (अवमूर्द्धा †—अधोमुख —शेते) अवमूर्द्धशय ।

८४७ । घञ्—भाववाच्यमें और कर्तृभिन्न-कारकवाच्यमें धातुके उत्तर 'घञ्'-प्रत्यय होता है, 'घ्' और 'ञ्' इत्, 'अ' रहता

* 'भारवहन'-अर्थमें नहीं होता ; यथा—(भारं हरति) भारहार — यहाँ 'अण्' हुआ ।

† अवनत मूर्द्धा यस्य स —अवमूर्द्धा ।

है। * 'घञ्'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग। यथा—(भाववाच्ये)—(पच्) पाकः; (त्यज्) त्यागः, (नश्) नाश; (पठ्) पाठ, (स्रु) स्राव, (रु—उपसर्गपूर्व) आराव, विराव, सराव, (शुच्) शोक। (कर्मवाच्ये)—(भुज्यते इति) भोग (भोग्यवस्तु), (ग्रास्यते—क्षिप्यते—इति) ग्रास (कुन्त)। (करणवाच्ये)—(रज्यते अनेन इति) राग † (लाक्षादि)। (अपादानवाच्ये)—(आहरन्ति रसम् अस्मात् इति) आहार (भक्ष्यवस्तु)। (अधिकरणवाच्ये)—रज्यति अस्मिन् इति) रङ्गः (नाट्यशाला)।

(रभ्) आरम्भ, (लभ्) आलम्भ।

८४१। अच्—इवर्गान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमें और कर्तृभिन्न-कारकवाच्यमें अच्-प्रत्यय होता है; 'च्' इत्, 'अ' रहता है। 'अच्'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग। यथा—(जि) जय, (क्षि) क्षय, (श्रि) श्रय; (ली) लय; (की) क्रय, (भी) भयम् (क्लीवलिङ्ग)।

८४२। अप्‡—ऋवर्गान्त और उवर्गान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमें और कर्तृभिन्न-कारकवाच्यमें 'अप्' प्रत्यय होता है। 'प्' इत्, 'अ' रहता है। 'अप्'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग। यथा—(कॄ) कर, (दॄ) दार; (गॄ) गर; (स्तु) स्तव, (रु) रव (भू) भव।

[(चि+घञ्) काय (देह), (नि+चि+घञ्) निकाय

---

* ४५५ (५) (७) सूत्रानुसार 'इत्'-कार्य्य होगा।

† करणवाच्य और भाववाच्यमें 'रञ्ज्' धातुके नकारका लोप होता है।

‡ व्याकरणान्तरमें 'अच्' और 'अप्' इन दोनों प्रत्ययोंके स्थानमें एक 'अल्'-प्रत्ययका विधान परिदृष्ट होता है।

(गृहम्, राशि, सङ्घ); (अन्यत्र) चय (अच्)। (वि+स्तृ+घञ्) विस्तार, (अप्) विस्तर (वाक्यन्य), विष्टर (आसनम्)। (प्र+मद्+अप्) प्रमद (हर्ष), (घञ्) प्रमाद (अनवधानता)।]

८४३। क—जिन धातुओंकी उपधामें इ, उ अथवा ऋ रहता है, उन धातुओंके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'क'-प्रत्यय होता है, 'क्' इत्, 'अ' रहता है, यथा—(वेत्ति इति) विद, (बुध्यते इति) बुध, (रोहति इति) रुह, (नृत्) नृत।

(क) कृ, गृ, ज्ञा और प्री धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'क' होता है। 'ऋ' के स्थानमें 'इर्', और 'ई' के स्थानमें 'इय्' होता है। यथा—(किरति इति) किर, (गिरति इति) गिर; (जानाति इति) ज्ञ, (प्रीणाति इति) प्रिय।

(ख) उपसर्ग पूर्वक आकारान्त धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'क' होता है, यथा—(प्र+ज्ञा) प्रज्ञ, (वि+ज्ञा) विज्ञ, (अभि+ज्ञा) अभिज्ञ, (प्र+दा) प्रद, (प्र+मा) प्रम, (नि+भा) निभ, (वि+आ+घ्रा) व्याघ्र।

(ग) कर्मवाचक शब्दके परवर्ती उपसर्गहीन आकारान्त धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'क' होता है, और धातुके आकारका लोप होता है, यथा—(अन्नं ददाति इति) अन्नद, (भूमिं ददाति) भूमिद; (धनं ददाति) धनद, (वारि ददाति) वारिद; (ज्ञानं ददाति) ज्ञानद, (शिरः त्रायते) शिरस्त्रम् *; (तनुं त्रायते) तनुत्रम्;

* त्रा (त्रै) धातुके अपादानके उत्तरमें होता है; यथा—(आत

(धर्मं जानाति) धर्मज्ञः; (रसं जानाति) रसज्ञ; (नॄन् पाति) नृप; (भुवं पाति) भूप, (भूमिं पाति) भूमिप, (मधु पिबति) मधुप।

(घ) सुबन्त-पद और उपसर्गके परवर्ती 'स्था'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'क' होता है; और धातुके आकारका लोप होता है। यथा—(गृहे तिष्ठति इति) गृहस्थ; (वने तिष्ठति) वनस्थ, (मध्ये तिष्ठति) मध्यस्थ; (प्रकृतौ तिष्ठति) प्रकृतिस्थ। सुस्थ; दुःस्थ; संस्थ; (उत्+स्था) उत्थ, (नि+स्था) निष्ठ।

(ङ) सुबन्त-पदके परवर्ती दुह् धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'क' होता है; 'दुह्' के 'ह्' के स्थानमें 'घ्' होता है, यथा—(कामं दोग्धि इति) कामदुघा [धेनु]।

गौर्गौः कामदुघा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः।
दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्वं प्रयोक्तुः सैव शंसति॥

८४४। खच्—'प्रिय'-प्रभृति शब्दके परवर्ती 'वद्'-प्रभृति धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'खच्'-प्रत्यय होता है; 'ख्' और 'च्' इत्, 'अ' रहता है; 'खित्'-कार्य्य होता है (४९९ (४) सू०)। यथा—(प्रियं वदति इति) प्रियंवद, (वशं वदति) वशंवद (आयत्त)। (प्रियं करोति) प्रियङ्करः; क्षेमङ्करः, भयङ्करः। (वाचं यच्छति) वाचंयम (मौनव्रती)। (सर्वं कषति) सर्वङ्कष (सर्वहिंस्र); कूलङ्कषः [नद]। (परान्—शत्रून्—तापयति) परन्तप*। (अरीन् दाम्यति दमयति वा) अरिन्दम। (पुरं दारयति—दृ+णिच्) पुरन्दर।

पाद मानदे) आत्मनम्।

* 'खच्'-प्रत्यय परे रहनेसे, णिजन्त धातुकी उपधा ह्रस्व होती है।

(धुरं धारयति) धुरन्धर ; (वसूनि धारयति) वसुन्धरा । (पतिं वृणोति) पतिंवरा [कन्यका]। (विश्वं बिभर्त्ति) विश्वम्भर (विष्णु); विश्वम्भरा (पृथिवी) । (सर्वं सहते) सर्वंसहा (धात्री)। (धनं जयति) धनञ्जय । (भुजेन—कौटिल्येन, भुजं—वक्रं वा गच्छति) भुजङ्गम *, (प्लवेन—लम्फेन—गच्छति) प्लवङ्गम ; (तुरेण—वेगेन—गच्छति) तुरङ्गम । (विहायसा गच्छति) विहङ्गम (विहायसो 'विह' इति वाच्यम्)। (हृदयं गच्छति) हृदयङ्गम ।

८४५ । खल्—सु, दुर् और ईषत् शब्दके परवर्त्ती धातुके उत्तर कर्मवाच्य और भाववाच्यमें 'खल्'-प्रत्यय होता है; 'ख्' और 'ल्' इत्, 'अ' रहता है । यथा—(सुखेन क्रियते) सुकर †; (दुःखेन क्रियते) दुष्कर ; (सुखेन क्रियते) ईषत्कर । (गम्) सुगम ; दुर्गम । (वह्) सुवह ; दुर्वह । (त्यज्) सुत्यज , दुस्त्यज ; (लभ्) सुलभ ; दुर्लभ ।

८४६ । खच्—'असूर्य'-प्रभृति कर्मवाचक पदके परवर्त्ती 'दृश्'-प्रभृति धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'खच्'-प्रत्यय होता है ;‡ 'ख्' और 'च्' इत्, 'अ' रहता है । यथा—(सूर्य्यम् अपि न पश्यति इति) असूर्य्यम्पश्या [कुलवधू]; (जनम् एजयति) जनमेजय ; (स्तनं धयति) स्तनन्धय (शिशु), स्तनन्धयी (कन्या); नाडी—धमनी—धमति

---

* ड—भुजग ; खच्—भुजङ्ग । ऐसे—प्लवग, प्लवङ्ग ; तुरग, तुरङ्ग ; विहग , विहङ्ग ।

† 'खित्'-प्रत्ययान्त परे रहनेसे, अव्यय उपपदके उत्तर 'म्' नहीं होता।

‡ 'खच्'-प्रत्यय परे, धातुका चतुर्लकारके तुल्य कार्य्य होता है ।

—ध्मा धातु) नाडिन्धम * (स्वर्णकार इत्यर्थं), (अभ्र लेढि) अभ्रलिह [प्रासाद]—'ख' परे, लिह् धातुका गुण नहीं होता । (विधुं तुदति) विधुन्तुद (राहु), (अरुषि तुदति) अरुन्तुद (मर्म-पीडक, दु:खद इत्यर्थ)—'अरुस्'-शब्दके सकारका लोप होता है । (आत्मानं पण्डितं मन्यते) पण्डितम्मन्य , (आत्मानं धन्यं मन्यते) धन्यम्मन्य , कृतार्थम्मन्य , सुभगम्मन्य † । (कूलम् उद्रुजति विभक्ति—उत् + रुज् धातु) कूलमुद्रुज [महोक्ष], (कूलम् उद्वहति) कूलमुद्वहा [सरित्] ।

८४७ । ट—'दिवा'-प्रभृति कर्मवाचक पदके परवर्ती 'कृ'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'ट'-प्रत्यय होता है, 'ट्' इत्, 'अ' रहता है, यथा—(दिवा—दिन—करोति इति) दिवाकर , (विभां करोति) विभाकर , प्रभाकर , निशाकर , (भासं करोति) भास्कर , अहस्कर, अन्त-कर , किङ्कर , लिपिकर , चित्रकर ; (कर्म करोति मूल्येन) कर्मकर (भृत्य इत्यर्थ ‡—मजदूर)।

(क) 'हेतु' और 'अनुकूल' अर्थ समझानेसे, कर्मवाचक पदके परवर्त्ती धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'ट' होता है । यथा—('हेतु'-अर्थमें) शोक-कर बन्धुनाश (बन्धुनाश शोकका हेतु), अर्थकर यशस्कर विद्या-लाभ (विद्यालाभ अर्थ और यशका हेतु) । ('अनुकूल' अर्थमें) पितृ

* 'खित्'-प्रत्ययान्त परे रहनेसे, उपपदका अन्त्य स्वर ह्रस्व होता है ।

† इसप्रकार अर्थमें 'णिन्' भी होता है ; यथा—पण्डितमानी, धन्य-मानी, कृतार्थमानी, सुभगमानी ।

‡ अन्यत्र 'अण्' होता है , यथा—कर्मकार (लोहार)।

आज्ञाकर वचनकर पुत्र (पुत्र पिताकी आज्ञा और वचनके अनुकूल)।

(ख) पुर, अग्र, अग्रे, अग्रत —इन शब्दोंके परवर्ती 'सृ'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'ट' होता है, यथा—पुरःसर, अग्रसर, अग्रेसर ; अग्रतःसर।

(ग) अधिकरणवाचक पदके परवर्ती 'चर' धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'ट' होता है, यथा—(जले चरति इति) जलचर, (वारिणि चरति) वारिचर, (स्थले चरति) स्थलचर, (भुवि चरति) भूचर, (वने चरति) वनचर, (निशायां चरति) निशाचर, (पार्श्वे चरति) पार्श्वचर ; (खे चरति) खचर।

'रात्रि'-शब्द विकल्पसे द्वितीयाके एकवचनान्तवत् होता है, यथा—(रात्रौ चरति) रात्रिचर, रात्रिञ्चर।*

८४८। टक्—कर्मवाचक पदके परवर्ती 'गा' (गै) धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'टक्' प्रत्यय होता है, 'ट्' और 'क्' इत्, 'अ' रहता है; यथा—(साम गायति इति) सामग।

(क) कर्मवाचक पदके परवर्ती 'हन्'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'टक्' होता है, और 'हन्' के स्थानमे 'घ्न' होता है, यथा—(पापं हन्ति इति) पापघ्न, (पित्तं हन्ति) पित्तघ्न ; (वातं हन्ति) वातघ्न, (त्रिदोषं हन्ति) त्रिदोषघ्न ; (शत्रुं हन्ति) शत्रुघ्न ; (मित्रं हन्ति) मित्रघ्न, (कृतं हन्ति) कृतघ्न, (पशून् हन्ति) पशुघ्न।

(ख) उपमानवाचक तद्, यद्, एतद्, किम्, भवद्, अस्मद्, युष्मद्, अदस्, इदम्, अन्य और समान शब्दके परवर्ती दृश्-धातुके

* कभी कभी अधिकरणवाचक पद विभक्तियुक्त रहता है; यथा—खेचर, वनेचर।

उत्तर कर्मवाच्यमें 'टक्' होता है।*

'टक्' प्रत्ययान्त 'दृश्'-धातु परे रहनेसे, तद्, यद्, एतद्, अस्मद् और युष्मद् शब्दके 'द्' का लोप, और तत्पूर्ववर्त्ती 'अ' के स्थानमें 'आ' होता है; यथा—(स इव दृश्यते इति) तादृश, यादृश, एतादृश, अस्मादृश, युष्मादृश। †

'टक्' प्रत्ययान्त 'दृश्'-धातु परे रहनेसे, 'अदस्' शब्दके स्थानमें—'अमू', 'इदम्'-शब्दके स्थानमें—'ई', 'किम्' शब्दके स्थानमें—'की', 'भवत्' शब्दके स्थानमें—'भवा', 'समान' शब्दके स्थानमें—'स', और 'अन्य'-शब्दके स्थानमें—'अन्या' होता है; यथा—(असौ इव दृश्यते इति) अमूदृश; (अयम् इव दृश्यते) ईदृश; (क इव दृश्यते) कीदृश; (भवान् इव दृश्यते) भवादृश; (समान इव दृश्यते) सदृश, (अन्य इव दृश्यते) अन्यादृश। ‡

८४९। ड—द्यन्त पदके परवर्ती 'गम्' धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'ड'-प्रत्यय होता है; 'ड्' इत्, 'अ' रहता है, § यथा—(अन्तं गच्छति इति) अन्तग, (अध्वान गच्छति) अध्वग, (दूरं गच्छति) दूरग; (पारं गच्छति) पारग, (सर्वं गच्छति) सर्वग, (सर्वत्र

---

* पाणिनि मते—क्विन्।

† 'अस्मद्' और 'युष्मद्'-शब्दके स्थानमें एकवचनमें 'मद्' और 'त्वद्' होनेसेभी होता है; यथा—मादृश, त्वादृश।

‡ इन सब स्थलोंमें 'क्विप्' (क्विन्) और 'सक्' (क्स) प्रत्ययभी होते हैं; यथा—तादृक्, तादृक्ष; सदृक्, सदृक्ष इत्यादि।

§ 'डित्'-कार्य्य होता है (४५५(९) सू०)।

গচ্ছতি) সর্বত্রগ , (গৃহ গচ্ছতি) গৃহগ ; (গ্রাম গচ্ছতি) গ্রামগ , (তল্প গচ্ছতি) তল্পগ , (খে গচ্ছতি) খগ ।

(ক) ক্লেশ, শোক এবং তমস্ শব্দের পরবর্তী 'অপ'-পূর্বক 'হন্'-ধাতুর উত্তর কর্তৃবাচ্যে 'ড' হয়, যথা—(ক্লেশম্ অপহন্তি ইতি) ক্লেশাপহ , (শোকম্ অপহন্তি) শোকাপহ. , (তম অপহন্তি) তমোঽপহ. ।

(খ) অধিকরণবাচক 'গিরি'-শব্দের পরবর্তী 'শী' ধাতুর উত্তর 'ড' হয়, যথা—"গিরিশমুপচচার প্রত্যহ সা সুকেশী" কু০ ১. ৬০ ।

(গ) উপসর্গ বা সুবন্ত-পদের পরবর্তী 'জন্'-ধাতুর উত্তর কর্তৃবাচ্যে 'ড' হয়। যথা—(সরসি জায়তে ইতি) সরোজম্ , (মনসি জায়তে) মনোজ ,* (অপ্সু জায়তে) অব্জম্ , (জলে জায়তে) জলজম্ , (অগ্রে জায়তে) অগ্রজ । (পঙ্কাৎ জায়তে) পঙ্কজম্ , (অঙ্গাৎ জায়তে) অঙ্গজ , (আত্মন জায়তে) আত্মজ ; (স্বেদাৎ জায়তে) স্বেদজ , (অণ্ডাৎ জায়তে) অণ্ডজ. , (জরায়ৌ জায়তে) জরায়ুজ । (অনু জায়তে) অনুজ , (প্র জায়তে) প্রজা । †

৮৬০ । অণ্—কর্মবাচক পদের পরবর্তী ধাতুর উত্তর কর্তৃবাচ্যে 'অণ্' প্রত্যয় হয়, 'ণ্' ইৎ, 'অ' থাকে ; ‡ যথা—(কুম্ভং করোতি ইতি) কুম্ভকার , (তন্তূন্ বয়তি) তন্তুবায় ; (তন্ত্র বয়তি)

* কখন কখন পূর্বপদ বিভক্ত্যন্ত থাকে , যথা—সরসিজম্ ; মনসিজ' ।

† অন্যত্রও 'ড' হয়। যথা—(দ্বি জায়তে ইতি) দ্বিজ ; (সহ জায়তে) সহজ । (আশু গচ্ছতি) আশুগ । ইত্যাদি ।

‡ 'ণিৎ'-কার্য্য হয় (৮৫৮(১০) সূ০)।

तन्तुवाय , (शास्त्राणि करोति) शास्त्रकार , सूत्रकार , भाष्यकार मालाकार , चाटुकार , कर्मकार , (सूत्र धारयति) सूत्रधार , (वा वदति) वारिवाह ।

अक ।

८५१ । णक (ण्वुल्)—धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'णक' प्रत्यय होता है , 'ण्' इत् , 'अक' रहता है , * यथा—(नी) नायक , (श्रु) श्रावक (पू) पावक , (कृ) कारक , (स्मृ) स्मारक , (तॄ) तारक (नश्) नाशक , (पच्) पाचक , (पठ्) पाठकः , (रिच्) रेचक ; (सिच्) सेचक ; (मुच्) मोचक , (रुध्) रोधक , (दा) दायक † , (गा—गै) गायक , (हन्) घातक ('हन्' के स्थानमें 'घात्' होता है) ; (दृश्) दर्शक , (जनि) जनक , (पालि) पालक , (योजि) योजक , (स्थापि) स्थापक ।

(क) 'निमित्त'-अर्थ समझानेसे , भविष्यत्कालमें धातुके उत्तर 'णक' होता है ; यथा—अन्न भोजक व्रजति (अन्न भोजन करनेके लिये जाता है) , ओदनं पाचक प्रयाति (पक्तुम् इत्यर्थ) , देवं दर्शक प्रति ष्ठते (देव द्रष्टुम् इत्यर्थ) ।

८५२ । षक (ष्वुन्)—शिल्पी (क्रियाकौशलविशिष्ट) समझानेसे , नृत् , खन् और रञ्ज् धातुके उत्तर 'षक' होता है , 'ष्' इत् , 'अक' रहता है । 'षक' परे , उपधा लघुस्वरका गुण , और उपधा नकारका लोप होता है । यथा—(नृत्) नर्तक , (खन्) खनक , (रञ्ज्) रजक ।

* 'णित्'-कार्य्य होता है (४५५ (१०) सू०) ।

† णक और णिन् परे , आकारान्त धातुके उत्तर 'य' होता है ।

तृच्।

८५३। धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'तृच्'-प्रत्यय होता है, * 'च्' इत्, 'तृ' रहता है। 'लुट्' विभक्तिमे जिसप्रकार कार्य्य हुआ है, 'तृच्'-प्रत्ययमेभी उसीप्रकार कार्य्य होगा। † यथा—(दा) दाता, (धा) धाता, (पा) पाता, (जि) जेता, (नी) नेता, (श्रु) श्रोता, (कृ) कर्त्ता, (हृ) हर्त्ता, (क्षिप्) क्षेप्ता, (सिच्) सेक्ता, (भिद्) भेत्ता, (भुज्) भोक्ता, (बुध्) बोद्धा, (युध्) योद्धा, (रुध्) रोद्धा, (गम्) गन्ता, (हन्) हन्ता, (दृश्) द्रष्टा, (ग्रह्) ग्रहीता, (भू) भविता, (सू) सविता, सोता, (कारि) कारयिता।

अन।

८५४। अन (ल्यु)—'नन्दि' प्रभृति ‡ धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'अन' प्रत्यय होता है, यथा—(नन्दयति इति) नन्दन; (मदयति इति) मदन; (दूषयति इति) दूषण, (साधयति इति) साधन, (वर्द्धयति इति) वर्द्धन, (शोभयति इति) शोभन, (सूदयति

---

* शीलार्थमे 'तृन्' होता है (शील—स्वभाव), यथा—धर्मं वदिता साधु, परान् उद्वेजयिता पिशुन।

† 'तृच्'-प्रत्ययान्त शब्दके रूप पुलिङ्गमे 'दातृ' शब्दके तुल्य, और स्त्रीलिङ्गमे 'नदी'-शब्दके तुल्य।

‡ नन्दि, मदि, दूषि, साधि, वर्द्धि, शोभि, सूदि, भीषि, नाशि, रमि, सह्, तप्, दम्, चक्ष्, अदि, रोचि, वासि, जल्प्, क्रन्द्, कृप्, दृप्, लू।

इति) सूदन, (मोषयते इति) मोषण , (नाशयति इति) नाशन , (रमयति इति) रमण , (सहते इति) सहन , (तपति इति) तपन , (दाम्यति इति) दमन , (विशेषेण चष्टे) विचक्षण ।

(क) विद् (ज्ञानार्थ), वन्द्, आस् और णिजन्त धातुके उत्तर भाववाच्यमें 'अन' (युच्) होता है। एतत्प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग। * यथा—(विद्) वेदना , (वन्द्) वन्दना , (आस्) आसना । (णिजन्त धातु)—(अर्चि) अर्चना , (कल्पि) कल्पना , (गणि) गणना , (घटि) घटना , (तारि) प्रतारणा , (धारि) धारणा , (पारि) पारणा , (पाठि) पाठना , (मानि) विमानना , (यन्त्रि) यन्त्रणा , (यातु) यातना , (वासि) वासना ।

(ख) भूषार्थ, कोपार्थ, चलनार्थ और शब्दार्थ धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें शीलार्थमें 'अन' (युच्) होता है। यथा—(भूषि) भूषण (भूषाशील इत्यर्थ), (मण्डि) मण्डन , (अलङ्कृ) अलङ्करण । (कुप्) कोपन , (क्रुध्) क्रोधन , (रुष्) रोषण , (असूय्) असूयण । (चल्) चलन , (कम्प्) कम्पन । (शब्दि—शब्दयति) शब्दन , (रु) रवण ।

(ग) सु, दुर् और ईषत् शब्दके परवर्ती दृश्, धृष्, मृष्, शास् और युध् धातुके उत्तर कर्मवाच्यमें विकल्पसे 'अन' (युच्) होता है, पक्षे—खल् , इसको "खलर्थ अन" कहते हैं। यथा—(दृश्)—

* कहीं कहीं णिजन्त धातुके उत्तर 'अनट्'-प्रत्यय होता है ; यथा—(प्रेरि) प्रेरणम् ; (प्रीणि) प्रीणनम् , (तर्पि) तर्पणम् , (शोधि) शोधनम् , (साधि) साधनम् , (गोपि) गोपनम् इत्यादि ।

(सुखेन दृश्यते इति) सुदर्शन, (पक्षे) सुदर्श (खल्); दुर्दर्शन, दुर्दर्श। (धृष्) दुर्धर्षण, दुर्धर्ष; (मृष्) दुर्मर्षण, दुर्मर्ष; (शास्) दुःशासन, दुःशास। (युध्) सुयोधन, सुयोध; दुर्योधन, दुर्योध।

८९० । अनट् (ल्युट्)—भाववाच्यमें और कर्तृभिन्न-कारक-वाच्यमें धातुके उत्तर 'अनट्'-प्रत्यय होता है, 'ट्' इत्, 'अन' रहता है। 'अनट्'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीवलिङ्ग। यथा—(भाववाच्ये)—(गम्) गमनम्; (वम्) वमनम्, (आ+रुह्) आरोहणम्; (ईक्ष्) ईक्षणम्; (पत्) पतनम्, (अधि+इ) अध्ययनम्; (दा) दानम्; (गा—गै) गानम्; (चि) चयनम्, (श्रि) श्रयणम्; (श्रु) श्रवणम्; (कृ) करणम्, (स्मृ) स्मरणम्, (स्पृश्) स्पर्शनम्; (सिव्) सेवनम्; (नृत्) नर्तनम्; (रुद्) रोदनम्। (कर्मवाच्ये)—(भुज्यते इति) भोजनम् (भक्ष्यवस्तु)। (करणवाच्ये)—(दृश्यते अनेन इति) दर्शनम् (चक्षु); (श्रूयते अनेन इति) श्रवणम् (श्रोत्रम्); (साध्यते अनेन इति) साधनम्, (क्रियते अनेन इति) करणम्; (भूष्यते अनेन इति) भूषणम्। (सम्प्रदानवाच्ये)—(सम्प्रदीयते अस्मै इति) सम्प्रदानम्। (अपादानवाच्ये)—(अपादीयते अस्मात् इति) अपादानम्। (अधिकरणवाच्ये)—(शय्यते अस्मिन् इति) शयनम्; (स्थीयते अत्र इति) स्थानम्।

(एकं वक्ति इति) एकवचनम्—यहाँ कर्तृवाच्यमें 'अनट्' हुआ।

(ष्ठिव्) ष्ठीवनम्, ष्ठेवनम्; (सिव्) सीवनम्, सेवनम्, (ष्टिव्) ष्टिवनम्, ष्टेवनम्।

कर्तृभिन्न-कारक-वाच्यमें विहित 'अनट्'-प्रत्ययान्त शब्द कहीं कहीं

वाच्यलिङ्ग (विशेषण) होता है ; यथा—(राजभि भुज्यन्ते इति) राजभोजना [शालय], (छिद्यते अनेन इति) छेदन [परशु·] ।

संज्ञा समझानेसे, दमन, चरण इत्यादि पुलिङ्ग, और बन्धनी, साधना, दोहनी, उपक्रमणी, अवतरणी, विज्ञापनी, अधिरोहणी इत्यादि स्त्रीलिङ्ग होते हैं ।

इ * ।

८९६ । कि—उपसर्ग और अन्तर्-शब्दके परवर्ती 'धा'-धातुके उत्तर भाववाच्यमे 'कि'-प्रत्यय होता है ; 'क्' इत्, 'इ' रहता है । 'कि' परे, 'धा'-धातुके आकारका लोप होता है । 'कि'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग । यथा—विधि , निधि , सन्धि , आधि , उपाधि , अन्तर्धि ,

(क) कर्मवाचक पदके परवर्ती 'धा'-धातुके उत्तर अधिकरणवाच्यमे 'कि' होता है , यथा—(जलानि धीयन्ते अस्मिन् इति) जलधि· , वारिधि , पयोधि , जलनिधि , वारिनिधि , पयोनिधि ।

८९७ । खि (इन्)—आत्मन्, उदर और कुक्षि शब्दके परवर्ती 'भृ'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'खि' होता है, 'ख्' इत, 'इ' रहता है , यथा—(आत्मानं बिभर्ति इति) आत्मम्भरि (आत्मन् शब्दके नकारका लोप होता है), उदरम्भरि , कुक्षिम्भरि ।

---

* 'धातु' अर्थमे (धातुनिर्देशमे), 'इ' (इक्) प्रत्यय होता है , यथा—गमि (गम् धातु), पचि (पच् धातु) । 'ति' (श्तिप्) प्रत्ययभी होता है ; यथा—गच्छति (गम् धातु) ; पचति (पच् धातु)—पु॰ ।

इन्।

८६८। णिन् (णिनि)—धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'णिन्' प्रत्यय होता है; 'ण्' इत्, 'इन्' रहता है,* यथा—(मन्त्रयते इति—मन्त्र्) मन्त्री; (वद्) वादी, प्रतिवादी, परिवादी; (वस्) वासी, प्रवासी, अधिवासी, (राध्) अपराधी, (चर्) व्यभिचारी, सञ्चारी, (स्था) स्थायी, (सृ) संसारी, (द्विष्) द्वेषी, विद्वेषी, (रुध्) रोधी, विरोधी, प्रतिरोधी, (द्रुह्) द्रोही, विद्रोही; (दिव्) परिदेवी, (कृ) अधिकारी, (लष्) अभिलाषी।

(क) उपसर्ग और सुबन्त-पदके परवर्ती धातुके उत्तर 'शील' और 'व्रत' अर्थमें 'णिन्' होता है। यथा—('शील'-अर्थमें)—(मांसं भोक्तुं शीलम् अस्य इति) मांसभोजी, (वने वस्तुं शीलमस्य) वनवासी; (साधु करोति) साधुकारी, (सत्यं वदति) सत्यवादी; (प्रिय वदति) प्रियवादी, (मन हरति) मनोहारी, (हृदयं गृह्णाति) हृदयग्राही। (अनु याति) अनुयायी, (अनु जीवति) अनुजीवी, (अनु गच्छति) अनुगामी। ('व्रत'-अर्थमें)—(स्थण्डिले शेते) स्थण्डिलशायी, क्षीरपायी, शिरःस्नायी, अश्राद्धभोजी।

(ख) कर्तृवाचक उपमान पदके परवर्ती धातुके उत्तर 'णिन्' होता है, यथा—(सिंह इव विक्रमते) सिंहविक्रमी, (सुधा इव स्यन्दते) सुधास्यन्दी।

(ग) करणवाचक पदके परवर्ती 'यज्' धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें अतीतकालमें 'णिन्' होता है, यथा—(सोमेन इष्टवान्) सोमयाजी;

* 'णित्' कार्य्य होता है।

अग्निष्टोमयाजी ।

(घ) कर्मवाचक पदके परवर्त्ती 'हन्' धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें अतीतकालमें 'णिन्' होता है । 'हन्'-धातुके 'ह' के स्थानमें 'घ', और 'न्' के स्थानमें 'त' होता है , यथा—(पितर जघान) पितृघाती , (पितृव्य जघान) पितृव्यघाती , पुत्रघाती , मित्रघाती ।

(ङ) भविष्यत्काल समझानेसे, भू, या, स्था, गम्, रुध्, युध् और रुध् धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'णिन्' होता है , यथा—(भविष्यति इति) भावी , (या) यायी , (स्था) स्थायी, प्रस्थायी ; (गम्) गामी , (रुध्) प्रतिरोधी ; (युध्) प्रतियोधी , (रुध्) प्रतिरोधी ।

८५९ । घिनुण्—युज्, त्यज्, भज्, भुज्, रञ्ज् , रुज् , 'सम्'-पूर्वक सृज्, 'वि'-पूर्वक विच् और 'सम्'-पूर्वक पृच् धातुके उत्तर 'शील'-अर्थमें कर्तृवाच्यमें 'घिनुण्'-प्रत्यय होता है , 'घ', 'उ' और 'ण्' इत् , 'इन्' रहता है , * यथा—(युज्) योगी, वियोगी, प्रतियोगी ; (त्यज्) त्यागी, परित्यागी , (भज्) भागी, विभागी ; (भुज्) भोगी, सम्भोगी ; (रञ्ज्) रागी, विरागी, अनुरागी ('रञ्ज्'-धातुके नकारका लोप होता है), (रुज्) रोगी , (सम् + सृज्) संसर्गी , (वि + विच्) विवेकी ; (सम् + पृच्) सम्पर्की ।

उ ।

८६० । सनन्त धातु, भिक्ष् धातु और 'आ'-पूर्वक शन्स् धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'उ'-प्रत्यय होता है ; यथा—जिज्ञासु , पिपासु ; बुभुक्षु ; चिकीर्षु ; दिदृक्षु ; जिघृक्षु , जिगीषु , तितीर्षु , ईप्सु ,

---

* 'चित्'-कार्य्य होता है (४५५(५) सू०) ।

दिदृक्षु ; लिप्सु ; जिगीषु ; जिगमिषु ; भिक्षु ; आशंस ।

इष् (इच्छार्थ)—इच्छु (निपातने)।

क्ति ।

८६१ । क्ति (क्तिन्)—धातुके उत्तर भाववाच्यमें और कर्तृभिन्न-कारक-वाच्यमें 'क्ति'-प्रत्यय होता है, 'क्' इत्, 'ति' रहता है। 'क्ति'-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग। 'क्ति' परे रहनेसे, धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता। यथा—(ख्या) ख्याति , (चि) चिति ; (नी) नीति ; (प्री) प्रीति , (हृ) हृति , (स्मृ) स्मृति , (शक्) शक्ति ; (मुच्) मुक्ति ; (ब्रू,वच्) उक्ति , (भज्) भक्ति , (सृज्) सृष्टि ; (भिद्) भित्ति ; (बुध्) बुद्धि , (क्षण्) क्षति ; (तन्) तति ; (मन्) मति ; (प्र+आप्) प्राप्ति ; (स्वप्) सुप्ति , (उप+लभ्) उपलब्धि ; (क्लम्) क्लान्ति ; (क्षम्) क्षान्ति , (गम्) गति* ; (नम्) नति ; (भ्रम्) भ्रान्ति ; (रम्) रति ; (शम्) शान्ति ; (दृश्) दृष्टि ; (तुष्) तुष्टि ; (शास्) शिष्टि ; (वृष्) वृष्टि ; (रुह्) रूढि ।

मा और स्था धातुका आकार इकार होता है ; यथा—(मा) मिति ; (स्था) स्थिति । 'गै'—'गी' होता है ; यथा—गीति ।

(श्रूयते अनया इति) श्रुति ; (स्तूयते अनया) स्तुति ; (इज्यते अनया) इष्टि ।

(क) दीर्घ ऋकारान्त धातु और 'लू'-प्रभृति धातुके उत्तर विहित

---

* कर्मवाच्ये—गम्यते इति गतिः (गन्तव्यस्थानम् इत्यर्थः) । करण-वाच्ये—गम्यते प्राप्यते अनया इति गतिः (उपाय इत्यर्थः) ; यथा—"का गतिः ?" ।

'क्ति' के 'त' के स्थानमे 'न' होता है, यथा—(कॄ) कीर्णि ; (लू) लूनि। (किन्तु पॄ—पूर्त्ति)।

(ख) दा-दत्ति, (धा) हिति, (हा) हानि, (ग्लै) ग्लानि, (म्लै) म्लानि, (अद्) जग्धि, (अर्द्) अर्त्ति, (आ+ऋ) आर्त्ति।

(ग) 'क्ति' परे, ग्रह्-प्रभृति धातुके उत्तर 'इट्' होता है, यथा—(ग्रह्) निगृहीति ; (पठ्) पठिति, (भण्) भणिति इत्यादि।

वन्।

८६२। वनिप् (ङ्वनिप्)—अतीतकालमे 'सु' (स्वादि) और 'यज्' धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे वनिप्-प्रत्यय होता है, 'इ' और 'प्' इत्, 'वन्' रहता है, यथा—(सुनोति स्म—अभिषव यज्ञाङ्गस्नान कृतवान् इति) सुत्वा, * (विधिना इष्टवान्) यज्वा।

८६३। क्वनिप्—अतीतकालमे कर्मवाचक पदके परवर्त्ती 'दृश्' धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'क्वनिप्' होता है, 'क्','इ' और 'प्' इत्, 'वन्' रहता है, यथा—(पारं दृष्टवान्) पारदृश्वा।

(क) 'सह' शब्दके परवर्त्ती 'कृ' और 'युध्' धातुके उत्तरभो 'क्वनिप्' प्रत्यय होता है, यथा—(सह कृतवान्) सहकृत्वा (सहकारी इत्यर्थः), (सह युद्धवान्) सहयुध्वा। †

क्विप्।

८६४। सुबन्तपद वा उपसर्गके परवर्त्ती धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे

---

* 'पित्' कार्य्य होता है (४५५ (११) सू)।

† 'वनिप्' और 'क्वनिप् प्रत्ययान्त शब्दके रूप 'आत्मन्' शब्दके तुल्य।

'क्विप्'-प्रत्यय होता है, 'क्विप्'का सब 'इत्'कुछभी नहीं रहता, यथा—(सद्)—(सभायां सीदति इति) सभासद्; (सू)—(पुत्रं सूते) पुत्रसू, वीरसू; रत्नसू, कामसू; प्रसू, (द्विष्)—(धर्मं द्वेष्टि) धर्मद्विट्, मित्रद्विट्, विद्विट्; (द्रुह्)—(धर्मं द्रुह्यति) धर्मध्रुट्, मित्रध्रुट्, (दुह्)—(कामं दोग्धि) कामधुक्, गोधुक्, (विद्)—(शास्त्रं वेत्ति) शास्त्रविद्, धर्मविद्, ब्रह्मविद्; (भिद्)—(गोत्रं—पर्वतं—भिनत्ति) गोत्रभिद्, मर्मभिद्; (छिद्)—(पक्ष छिनत्ति) पक्षच्छिद्, मर्मच्छिद्, (जि)—(शत्रुं जयति) शत्रुजित्, इन्द्रजित्, रणजित्, (नी)—(सेनां नयति) सेनानी; अग्रणी, ग्रामणी; (राज्)—(स्वेन एव राजते) स्वराट्, देवराट्, (विशेषेण राजते) विराट्, (सम्यक् राजते) सम्राट्। (स्पृश्)—(जल स्पृशति) जलस्पृक्, घृतस्पृक्, मर्मस्पृक् *।

(त्यज्) "तनुत्यजाम्" र० १. ८; (जुष्) "परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम्" र० ८. ८५; (भू) प्राग्भूत, शम्भूत, स्वभूत, महीभृत।

'क्विप्' परे, 'दिव्'—'द्यु' होता है, यथा-(अभ्रं दीव्यति) अभ्रद्यू।

'शास्'-धातुके स्थानमें 'शी' होता है; यथा—(मित्रं शास्ति) मित्रशी।

भाववाच्य और कर्मादिकारकवाच्यमेंभी 'क्विप्' होता है; यथा—(भावे)—(आ+शास्) आशी; (कर्मवाच्यमें)—(उच्यते इति) वाक्; (करणवाच्यमें)—(ध्यायति अनया इति) धी;

---

* पाणिनि मते—क्विन्। किन्तु 'उदक'-शब्दके परवर्ती 'स्पृश्' धातुके उत्तर 'क्विप्' नहीं होता।

(अधिकरणवाच्ये)—(संसीदन्ति अस्याम्) संसद्, (परित सीदन्ति अस्याम्) परिषद्, (उपनिषण्ण पर श्रेय अस्याम्) उपनिषद्।

(क) सु, कर्मन्, पाप, पुण्य और मन्त्र शब्दके परवर्त्ती 'कृ'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे अतीतकालमे 'क्विप्' होता है ; यथा—(सु कृतवान्) सुकृत्, (कर्म कृतवान्) कर्मकृत्, पापकृत्, पुण्यकृत्, मन्त्रकृत्।

(ख) भ्रूण, ब्रह्म और वृत्र शब्दके परवर्त्ती 'हन्' धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे अतीतकालमे 'क्विप्' होता है, यथा—(भ्रूण जघान) भ्रूणहा, ब्रह्महा, वृत्रहा।

(ग) प्र+अन्च्—प्राङ्, (सम्+अन्च्) सम्यङ्, (सह+अन्च्) सध्र्यङ्, (तिरस्+अन्च्) तिर्य्यङ्।

विण् (णिव)।

८६६। सुबन्त पदके परवर्त्ती 'भज्'-धातुकेउत्तर कर्तृवाच्यमे 'णिव्'-प्रत्यय होता है, 'विण्' का समस्त 'इत्', कुछभी नहीं रहता, यथा—(अर्द्ध भजते इति) अर्द्धभाक्, (दु खं भजते) दुःखभाक्।

य।

८६६। क्यप्—यज् और व्रज् धातुके उत्तर भाववाच्यमे, और संज्ञा समझानेसे नि+पत्, नि+सद्, शी, विद् और भृ धातुके उत्तर करणवाच्य और अधिकरणवाच्यमे 'क्यप्'-प्रत्यय होता है, 'क्' और 'प्' इत्, 'य' रहता है। 'क्यप्' करनेसे ये शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—(यज्) इज्या, (व्रज्) व्रज्या, परिव्रज्या, प्रव्रज्या। (अधिकरणवाच्ये)—(नि+पत्—निपतन्ति अस्याम् इति) निपत्या (पिच्छिला भूमिरित्यर्थ), (नि+सद्—निषीदन्ति अस्याम्) निषद्या (आपण·

इत्यर्थः), (शी—शेते अस्याम्) शय्या । (करणवाच्ये)—(विद्—विदन्ति अनया) विद्या, (भृ—भ्रियन्ते कर्मकरा अनया) भृत्या (वेतनम् इत्यर्थः) ।

(क) 'कृ' धातुके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें भाववाच्यमें 'क्यप्' और 'श' प्रत्यय * होते हैं ; 'श्' इत्, 'अ' रहता है ; यथा—(क्यप्) कृत्या ; (श) क्रिया ।

* * * *

८६७ । (क) अथु (अथुच्)—'टु'-संसृष्ट धातुके उत्तर भाववाच्यमें, यथा—(टुवेप्) वेपथु, (टुवम्) वमथु, (टुश्वि) श्वयथु ; (टुक्षु) क्षवथु, (टुदु) दवथु, (टुभ्राज्) भ्राजथु ।

(ख) अनि—(सृ) सरणि, (ऋ) अरणि, (धृ) धरणि ; (अव्) अवनि ; (अश्) अशनि इत्यादि ।

(ग) अस् (असुन्)—(सरति इति) सर, (चेतति इति—चित् संज्ञाने, भ्वादि) चेत । (पीयते इति—पीङ्, दिवादि) पय ;

---

* श—पा, घ्रा, ध्मा, धेट् धातु, और उपसर्गविहीन लिम्प्, विन्द्, धारि धातु तथा 'उत्'-पूर्वक एजि (णिजन्त एज्) धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें 'श' होता है ; 'श्' इत्, 'अ' रहता है । यथा—(पिबति इति) पिब ; (धमति इति) धम, (पश्यति इति) पश्य ; (धयति इति) धय । (लिम्पति इति) लिम्प ; (विन्दति इति) विन्द ; (धारयति इति) धारय ; (उदेजयति—उत्कम्पयति इति) उदेजय ;—"आचोदद्विजातीन् परमार्थविन्दान्, उदेजयान् भूतगणान् न्यषेधीत्" भ॰ १. १५. । "घटानिवापस्यदलं तरुम्मत परानि घृमस्य धयानधोमुखान्" जै॰ १. ८२. ।

(उच्यते इति) वचः। (मन्यते अनेन इति) मनः, (रज्यते अने-न—रञ्ज्) रजः ("न" लोप); (ताम्यति अनेन) तमः; इत्यादि।*

(घ) आलु (आलुच्)—शीलार्थे—(दय्) दयालु (दयाशील इत्यर्थः), (नि+द्रा) निद्रालु; (तन्द्रा) तन्द्रालु; (श्रद्धा) (श्रद्धालु); (शी) शयालु†, (गृहि) गृहयालु; (स्पृहि) स्पृहयालु; (पति) पतयालु।

(ङ) इत्नु (इत्नुच्)—(स्तनि—स्तनयति इति) स्तनयित्नु (मेघ इत्यर्थः) इत्यादि।

(च) इत्र—(करणवाच्ये)—(लूयते अनेन इति) लवित्रम् (दात्रम् इत्यर्थः—दाँती); (खन्यते अनेन) खनित्रम्, (धूयते अनेन) धवित्रम् (मृगचर्मव्यजनम् इत्यर्थः), (पूयते अनेन) पवित्रम् (कुशम् इत्यर्थः), (चर्) चरित्रम्, (अर्) अरित्रम्।

(छ) इष्णु (इष्णुच्)—शीलार्थे—(सह्) सहिष्णु (सहनशील इत्यर्थः); (रुच्) रोचिष्णु, (वृध्) वर्धिष्णु; (अलङ्कृ)

---

* इस् (इसि)—(सर्पति इति) सर्पिः; (छादयति इति, छाद्यते अनेन इति वा) छदिः (पुं० स्त्री०); (हूयते इति) हविः, (अर्च्यते इति) अर्चिः, (रोचते अनेन) रोचिः; (शुच्यति—पूतीभवति—अनेन) शोचिः (दीप्ति)।

उस् (उसि)—(चष्टे—पश्यति—अनेन) चक्षुः; (धनति इति—धन् शब्दे) धनुः; (वप्यन्ते देहान्तरभोगसाधनबीजीभूतानि कर्माणि अत्र) वपुः।

† "हन्ति नोपशयस्थोऽपि शयालुर्मृगयुर्मृगान्" माघ० २. ८०.।

अलङ्करिष्णु ; (निर्+कृ) निराकरिष्णु ; (प्र+जन्) प्रजनिष्णु ; (उत्+पत्) उत्पतिष्णुः ; (उत्+मद्) उन्मदिष्णु ; (अप+त्रप्) अपत्रपिष्णु (लज्जाशील इत्यर्थः) ; (वृत्) वर्तिष्णु ; (वृध्) वर्धिष्णु ; (प्र+भू) प्रभविष्णु ।

(ज) उ(डु)—(प्रभवति इति) प्रभुः ; विभुः ; (शं सुखं भवति—भावयति—इति) शम्भु ।

(झ) उक(उकञ्)—शीलार्थे—(कामयते इति) कामुक ; (गम्) गामुक (गमनशील इत्यर्थः) ; (पत्) पातुक ; (स्था) स्थायुक ; (भू) भावुक ; (लष्) लाषुक , (वृष्) वर्षुक ; (हन्) घातुक ('हन्'—'घात' होता है) ।

(ञ) उर(कुरच्)—शीलार्थे—(विद्) विदुर (पण्डित, ज्ञानीत्यर्थः) ; (भिद्) भिदुर , (छिद्) छिदुर । (घुरच्)—(भास्) भासुर ; (मिद् स्नेहने, स्निग्धीभावे—भ्वा० आ०) मेदुर ; (भञ्ज्) भङ्गुर (कर्मकर्तरि) ।

(ट) ऊक—शीलार्थे—(जागृ) जागरूक (जागरणशील इत्यर्थः) । यङन्त—(यज्) यायजूक (सर्वदा यज्ञकारक) ; (जप्) जञ्जपूक (पुनः पुनः जपकारी) ; (वद्) वावदूक (वाचाल ; वक्ता) ; (दन्श्) दन्दशूक (सर्प इत्यर्थः) । (यङ्का लोप होता है) ।

(ठ) त्र (ष्ट्रन्)—(करणवाच्ये)—(दा छेदने—दाति अनेन इति) दात्रम् ; (नयति अनेन) नेत्रम् ; (शस् हिंसायाम्—शसति अनेन) शस्त्रम् , (स्तौति अनेन) स्तोत्रम् ; (पतति गच्छति अनेन) पत्त्रम् (वाहनम् इत्यर्थः) ; (दशति अनया) दंष्ट्रा ।

(ड) त्रिम (क्त्रिमप्)—'डु' संयुक्त धातुके उत्तर 'तन्निर्वृत्त'-अर्थमें ;

यथा—(डुकृञ्—क्रियया निर्वृत्तम् नित्यम्) कृत्रिमम्, (डुपच्—पाकेन निर्वृत्तम्) पक्त्रिमम्, (डुदा—दानेन निर्वृत्तम्) दत्त्रिमम् ('दा' के स्थानमे 'दत्' होता है)।

(ङ) न (नङ्)—(भाववाच्ये)—(यज्) यज्ञः, (यत्) यत्नः; (स्वप्) स्वप्नः, (प्रच्छ्) प्रश्नः; (याच्) याच्ञा।

(च) नु (क्नु)—शीलार्थे—(त्रस्) त्रस्नु (त्रासशील इत्यर्थः); (गृध्) गृध्नु (लुब्ध), (धृष्) धृष्णु; (क्षिप्) क्षिप्नु।

(छ) मर (क्मरच्)—शीलार्थे—(घस्) घस्मर (बहुभक्षी, भोजनप्रिय इत्यर्थः)—"दावानलो घस्मरः" भामिनी० १ ३३, (अद्) अद्मरः; (सृ) सृमरः।

(ज) र—शीलार्थे—(नम्) नम्रः; (हिंस्) हिंस्र; (स्मि) स्मेरः, (कम्प्) कम्प्र, (दीप्) दीप्रः।

(झ) वर (वरच्)—शीलार्थे—(स्था) स्थावर (स्थानशील इत्यर्थः); (ईश्) ईश्वरः; (भास्) भास्वरः। (क्वरप्, ष्वरप्)—शीलार्थे—(नश्) नश्वरः; (इण्) इत्वरः; (जि) जित्वर, (सृ) सृत्वरः; (गम्) गत्वरः ('गम्' धातुके 'म्' के स्थानमे 'त्' होता है)।

(ञ) स्नु (ग्स्नु, स्नुक्)—शीलार्थे—(जि) जिष्णु; (भू) भूष्णुः। (स्था) स्थास्नु; (ग्ला—ग्लै) ग्लास्नु।



स्त्रीप्रत्यय-प्रकरण ।

स्त्रीलिङ्गमें किसी किसी शब्दके उत्तर 'आप्', किसी किसी शब्दके उत्तर 'ईप्', और किसी किसी शब्दके उत्तर 'ऊप्' होता है , उनको 'स्त्रीप्रत्यय' कहते हैं ।

आप् ।

८६८ । अकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें 'आप्' (टाप्) होता है । 'प्' इत्, 'आ' रहता है ; यथा—(शुभ) शुभा ; (दीन) दीना , (सरल) सरला , (निपुण) निपुणा ; (दक्षिण) दक्षिणा , (उत्तर) उत्तरा ; (पूर्व) पूर्वा ; (पश्चिम) पश्चिमा ; (सर्व) सर्वा , (एक) एका ; (प्रथम) प्रथमा , (द्वितीय) द्वितीया , (तृतीय) तृतीया ; (कर्त्तव्य) कर्त्तव्या ; (पठित) पठिता ; (अनुकूल) अनुकूला , (मनोहर) मनोहरा ।

८६९ । 'आप्' होनेसे, अष्टकादि-भिन्न* 'अक'-भागान्त शब्दके प्रत्ययस्थ-ककारके पूर्ववर्त्ती अकारके स्थानमें इकार होता है ; यथा—(साधक) साधिका ; (पाचक) पाचिका ; (कारक) कारिका ; (नायक) नायिका ; (नाटक) नाटिका ; (बालक) बालिका ।

८७० । कई व्यञ्जनान्त नित्यस्त्रीलिङ्ग शब्दके उत्तर विकल्पसे 'आप्' होता है ; यथा—(वाच्) वाचा, वाच् ; (गिर्) गिरा, गिर् ;

---

* अष्टकादि—अष्टका, इष्टका, कन्यका, करका, चटका, तारका, अधित्यका, उपत्यका ॥ बहुव्रीहि-समासमेंभी नहीं होता ; यथा—बहुपरिव्राजका नगरी। किन्तु समासान्त 'क' प्रत्ययके स्थलमें होता है ; यथा—बहुचर्मिका ।

(दिश्) दिशा, दिश्, (आपद्) आपदा, आपद्, (रुज्) रुजा, रुज्; (क्षुध्) क्षुधा, क्षुध्।

ईप्।

८७१। ऋकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें 'ईप्' (ङीप्) होता है, 'प्' इत्, 'ई' रहता है, यथा—(दातृ) दात्री, (धातृ) धात्री; (कर्तृ) कर्त्री, (जनयितृ) जनयित्री; (प्रसवितृ) प्रसवित्री।*

८७२। नकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें 'ईप्' (ङीप्) होता है; यथा—(मानिन्) मानिनी, (मायाविन्) मायाविनी; (तपस्विन्) तपस्विनी, (विलासिन्) विलासिनी, (अनुरागिन्) अनुरागिणी; (प्रियवादिन्) प्रियवादिनी; (मनोहारिन्) मनोहारिणी। †

---

* ऋकारान्तके बीचमें, 'स्वसृ' प्रभृति शब्दके उत्तर 'ईप्' नहीं होता।

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा।
याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः॥

† नकारान्तके बीचमें,—सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'ईप्' नहीं होता, यथा—पञ्च, सप्त, अष्ट, नव, दश।

(क) 'मन्'-भागान्त शब्दके उत्तर विकल्पसे 'डाप्' होता है, 'ईप्' नहीं होता; 'ड्' और 'प्' इत्, 'आ' रहता है, यथा—(सीमन्) सीमे, सीमानौ, (पामन्) पामे, पामानौ; (दामन्) दामे, दामानौ।

(ख) बहुव्रीहि समास होनेसे, 'अन्'-भागान्त शब्दके उत्तर 'ईप्' नहीं होता; यथा—(बहूनि पर्व्वाणि सन्ति यस्याः सा) बहुपर्व्वा [वेणुयष्टि]।

(ग) बहुव्रीहि-समास होनेसे, 'अन्'-भागान्त प्रातिपदिकके उत्तर

(क) 'ईप्' होनेसे, 'अन्'-भागान्त शब्दके उपधा अकारका लोप होता है ; यथा—(राजन्) राज्ञी । *

उपधा अकार 'म'-संयुक्त अथवा 'व'-संयुक्त वर्णमें मिलित रहनेसे नहीं होता ।

(ख) 'युवति' प्रभृति शब्द निपातन सिद्ध; यथा—(युवन्) युवति , युवती, यूनी , (श्वन्) शुनी , (मघवन्) मघोनी, मघवती ।

८७३ । उकार-इत् (उदित्) और ऋकार-इत् (ऋदित्) प्रत्ययके योगसे निष्पन्न शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें 'ईप्' (ङीप्) होता है । यथा—उदित्—(भवत्—डवतु) भवती ; (वतुप्) —(इयत्) इयती, (कियत्) कियती ; (मतुप्)—(श्रीमत्) श्रीमती, (बुद्धिमत्) बुद्धिमती, (पुत्रवत्) पुत्रवती, (लज्जावत्) लज्जावती, (बलवत्) बलवती, (प्रभावत्) प्रभावती ; (क्तवतु)—(कृतवत्) कृतवती ; (ईयसु)—(प्रेयस्) प्रेयसी, (श्रेयस्) श्रेयसी, (गरीयस्) गरीयसी, (लघीयस्) लघीयसी, (कनीयस्) कनीयसी , (क्वसु)—(विद्वस्) विदु-

---

विकल्पसे 'डाप्' होता है ; यथा—बहुपर्वा, बहुपर्वे, बहुपर्वाः ; (पक्षे) बहुपर्वा, बहुपर्वाणौ, बहुपर्वाणः ।

* जिन 'अन्'-भागान्त शब्दके उपधा अकारका लोप हो सकता है, बहुव्रीहि-समास होनेसे, उनके उत्तर विकल्पसे 'डाप्' और 'ईप्' होते हैं ; यथा—(बहवः राजानः सन्ति अत्र) बहुराजा, बहुराजे, बहुराजाः ; बहुराज्ञी, बहुराज्ञ्यौ, बहुराज्ञ्यः , (पक्षे) बहुराजा, बहुराजानौ, बहुराजानः । (सुनामन्) सुनामा, सुनाम्नी ।

पी*। ऋदित्—(शतृ)—(सत्) सती, (रुदत्) रुदती, (द्विषत्) द्विषती, (शृण्वत्) शृण्वती, (कुर्वत्) कुर्वती, (बिभ्रत्) बिभ्रती, (गृह्णत्) गृह्णती, (जानत्) जानती।

(क) 'ईप्' होनेसे, भ्वादि और दिवादिगणीय धातुके उत्तर विहित 'शतृ'-प्रत्ययके स्थानमें 'नुम्' होता है, 'उ' और 'म्' इत्, 'न्' रहता है; 'न्' अन्त्यस्वरके परवर्ती होकर तकारमें मिलता है। यथा—(भ्वादिगणीय)—(भवत्) भवन्ती, (धावत्) धावन्ती, (गच्छत्) गच्छन्ती, (पतत्) पतन्ती, (तिष्ठत्) तिष्ठन्ती; (चलत्) चलन्ती, (पश्यत्) पश्यन्ती; (कारयत्) कारयन्ती, (स्मारयत्) स्मारयन्ती, (स्थापयत्) स्थापयन्ती, (पालयत्) पालयन्ती। (दिवादिगणीय)—(दीव्यत्) दीव्यन्ती; (नश्यत्) नश्यन्ती, (नृत्यत्) नृत्यन्ती; (जीर्य्यत्) जीर्य्यन्ती, (क्षुध्यत्) क्षुध्यन्ती।

(ख) तुदादिगणीयके उत्तर विकल्पसे, यथा—(तुदत्) तुदन्ती, तुदती, (इच्छत्) इच्छन्ती, इच्छती, (पृच्छत्) पृच्छन्ती, पृच्छती, (स्पृशत्) स्पृशन्ती, स्पृशती, (सिञ्चत्) सिञ्चन्ती, सिञ्चती।

(ग) अदादिगणीय आकारान्तके उत्तर विकल्पसे, यथा—(यात्) यान्ती, याती, (भात्) भान्ती, भाती, (स्नात्) स्नान्ती, स्नाती।

(घ) 'ईप्' होनेसे, 'स्यतृ'-प्रत्ययके स्थानमें विकल्पसे 'नुम्' होता है, यथा—(भविष्यत्) भविष्यन्ती, भविष्यती, (करिष्यत्) करिष्यन्ती, करिष्यती, (दास्यत्) दास्यन्ती, दास्यती, (यास्यत्) यास्य-

* 'ईप्' होनेसे, क्वसु (वस्)-प्रत्ययान्त शब्दकी आकृति क्लीवलिङ्ग प्रथमाके द्विवचनान्तके तुल्य होती है।

न्ती, यास्यती ।*

८৬४ । टकार-इत् (टित्) और पकार-इत् (पित्) प्रत्ययके योगसे निष्पन्न शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' † होता है । यथा—टित्-प्रत्यय—(ट)—(कर्मकर) कर्मकरी ‡, (अर्थंकर) अर्थंकरी, (यशस्कर) यशस्करी, (भयङ्कर) भयङ्करी, (निशाचर) निशाचरी, (थट्)—(चतुर्थ) चतुर्थी, (षष्ठ) षष्ठी, (मट्)—(पञ्चम) पञ्चमी, (सप्तम) सप्तमी, (अष्टम) अष्टमी, (नवम) नवमी, (दशम) दशमी ; (डट्)—(एकादश) एकादशी, (द्वादश) द्वादशी, (त्रयोदश) त्रयोदशी, (चतुर्दश) चतुर्दशी, (षोडश) षोडशी ; (अयट्)—(द्वय) द्वयी, (त्रय) त्रयी, (तयट्)—(चतुष्टय) चतुष्टयी ; (मयट्)—(श्यामय) श्यामयी, (स्वर्णमय) स्वर्णमयी, (मृन्मय) मृन्मयी, (हिरण्मय) हिरण्मयी, (टक्)—(ईदृश) ईदृशी, (तादृश) तादृशी, (यादृश) यादृशी, (कीदृश) कीदृशी, (सदृश) सदृशी, (एतादृश) एतादृशी, (अन्यादृश) अन्यादृशी । पित् प्रत्यय—(ण्वक)—(नर्त्तक) नर्त्तकी, (रजक) रजकी, (ष्ण)—(मानव) मानवी, (वैष्णव) वैष्णवी, (द्रौपद) द्रौपदी, (पाञ्चाल) पाञ्चाली, (मागध) मागधी, (मैथिल) मैथिली, (पौत्र) पौत्री, (दौहित्र)

---

* इन चार सूत्रोंमे उक्त कार्य्य क्लीवलिङ्ग प्रथमाके द्विवचनमेभी होता है।

† पाणिनि मते—'टित्' प्रत्ययान्तके उत्तर 'ङीप्', और 'षित्' प्रत्ययान्तके उत्तर 'ङीष्'-होता है।

‡ 'ईप्' होनेसे, शब्दके अन्तस्थित अवर्णका लोप होता है।

दौहित्री, (ष्णेय)—(भागिनेय) भागिनेयी, (क्वरप्)—(गत्वर) गत्वरी, (नश्वर) नश्वरी—"गत्वर्य्यो यौवनश्रिय" मा० ११ १२।

৮৭২। 'प्राच्'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) होता है, यथा—(प्राच्) प्राची, (अवाच्) अवाची।

(क) 'प्रतीची'-प्रभृति शब्द निपातन सिद्ध, यथा—(प्रत्यच्) प्रतीची, (उदच्) उदीची, (तिर्यच्) तिरश्ची।

৮৭৬। 'क्वनिप्'-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' (ङीप्) होनेसे, शब्दके अन्तस्थित 'न्' के स्थानमे 'र्' होता है; यथा—(पारदृश्वन्) पारदृश्वरी, (सहकृत्वन्) सहकृत्वरी—नै० १-१२।

৮৭৭। बहुव्रीहि समास होनेसे, सङ्ख्यावाचक शब्दके परवर्ती दामन् और हायन शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) होता है। यथा—(द्वे दाम्नी यस्याः सा) द्विदाम्नी [रज्जु], (त्रीणि दामानि यस्याः सा) त्रिदाम्नी। (द्वौ हायनौ यस्याः सा) द्विहायनी [वत्सा], त्रिहायणी, चतुर्हायणी [गौ]।

'हायन'-शब्द वयोवाचक न होनेसे 'ईप्' और णत्व नहीं होते, यथा—द्विहायना, त्रिहायना, चतुर्हायना [शाला]।

৮৭৮। 'पाद्'-भागान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे विकल्पसे 'ईप्' (ङीप्) होता है; 'ईप्' होनेसे, 'पाद्' के स्थानमे 'पद्' होता है, यथा—चतुष्पाद्, चतुष्पदी।

৮৭৯। 'पति' शब्दके स्त्रीलिङ्गमे—पत्नी। 'सपत्नी' प्रभृति शब्द निपातन सिद्ध, यथा—(समानः पतिर्यस्याः) सपत्नी; (एक पतिर-

स्या) एकपत्नी (साध्वी), (वीर पतिरस्या) वीरपत्नी ; (वृद्ध पतिरस्या.) वृद्धपत्नी ; (पञ्च पतय अस्या) पञ्चपत्नी [द्रौपदी]; (पतिरस्ति यस्या. सा) पतिवत्नी (जीवद्भर्तृका इत्यर्थ); (अन्त रस्ति अस्या गर्भे) अन्तर्वत्नी (गर्भिणी इत्यर्थ)।

८८० । 'गौर'-प्रभृति * अकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें 'ईप्' (ङीप्) होता है ; यथा—(गौर) गौरी , (कुमार) कुमारी ; (किशोर) किशोरी , (तरुण) तरुणी , (सुन्दर) सुन्दरी ; (नद) नदी ; (वृहत्) वृहती इत्यादि ।

८८१ । जातिवाचक अकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें 'ईप्' (ङीप्) होता है , यथा—(सिंह) सिंही , (व्याघ्र) व्याघ्री, (भल्लुक) भल्लुकी ; (मृग) मृगी ; (हरिण) हरिणी ; (कुरङ्ग) कुरङ्गी ; (गर्दभ) गर्दभी ; (शूकर) शूकरी ; (कुक्कुर) कुक्कुरी ; (जम्बुक) जम्बुकी, (शृगाल) शृगाली , (बिडाल) बिडाली ; (घोटक) घोटकी ; (महिष) महिषी , (हंस) हंसी ; (सारस) सारसी , (चक्रवाक) चक्रवाकी , (मानुष) मानुषी , (ब्राह्मण) ब्राह्मणी , (गोप) गोपी, (चण्डाल) चण्डाली ; (पिशाच) पिशाची ; (राक्षस) राक्षसी । (गार्ग्य) गार्गी , (वात्स्य) वात्सी ।

(क) नित्य स्त्रीलिङ्ग होनेसे नहीं होता , यथा—मक्षिका, बलाका ।

---

* गौर, कुमार, किशोर, [illegible], सुन्दर, पुत्र, पितामह, मातामह, देव, नद, तट, नट, पट, कदल, स्थल, नाग, मण्डल, काल, महत्, वृहत्, बदर, आमलक, तृण, सूच इत्यादि ।

(ख) जातिवाचकके* बीचमें, 'अज' प्रभृति शब्दके उत्तर 'ईप्' नहीं होता, यथा—(अज) अजा, (अश्व) अश्वा, (बाल) बाला, (चटक) चटका, (कोकिल) कोकिला, (मूषिक) मूषिका; (शूद्र) शूद्रा (किन्तु 'महत्'-शब्द पूर्वमें रहनेसे होता है, यथा—महाशूद्री) ।

(ग) जिन जातिवाचक शब्दोंकी उपधामें 'य' रहता है, उनके उत्तर 'ईप्' नहीं होता; यथा—क्षत्रिया, वैश्या ।

किन्तु हय, गवय, मत्स्य और मनुष्य शब्दके उत्तर होता है,† यथा—हयी, गवयी इत्यादि ।

८८२ । 'पत्नी' अर्थमें, जातिवाचक अकारान्त शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) होता है, यथा—(ब्राह्मणस्य पत्नी) ब्राह्मणी, (क्षत्रियस्य पत्नी) क्षत्रियी; (वैश्यस्य पत्नी) वैश्यी, (शूद्रस्य पत्नी) शूद्री; (गोपस्य पत्नी) गोपी; (गणकस्य पत्नी) गणकी, (नापितस्य पत्नी) नापिती, (निषादस्य पत्नी) निषादी ।

किन्तु पालकान्त शब्दके उत्तर नहीं होता; यथा—(गोपालकस्य पत्नी) गोपालिका ।

---

* समानैकाकृतियुता जातिमन्तस्तु कीर्त्तिताः ।
विप्रक्षत्रादिवर्णा ये, जातयस्तेऽपि सम्मताः ॥
पौत्राद्यपत्यवर्गश्च गोत्रं, तज्जातिरीरिताः ।
जातिवाचिन आख्यातास्तद्विशिष्टस्य वाचकाः ॥

† 'ईप्' होनेसे, 'मत्स्य'-शब्दके यकारका लोप होता है; यथा—मत्सी । और व्यञ्जनवर्णके परस्थित तद्धितप्रत्ययके यकारका लोप होता है; यथा—मनुष्य + ईप्=मनुषी ।

(क) सूर्य्यस्य पत्नी—सूरी (मानुषी—कुन्ती), सूर्य्या (देवी—सज्ञा और छाया)। (अग्ने पत्नी) अग्नायी। (मनो पत्नी) मनायी, मनावी।

८८३। बहुव्रीहि वा प्रादिसमासमे अन्य पदार्थको समझानेसे, स्वाङ्ग-वाचक अकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे विकल्पसे 'ईप्' (ङीप्) होता है। यथा—चकेशी, चकेशा, चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा, ताम्रनखी, ताम्रनखा। (केशान् अतिक्रान्ता) अतिकेशा [माला]।

प्राणीके अङ्गकोही 'स्वाङ्ग' कहते हैं, इसलिये 'पूर्वमुखा—यहां 'ईप्' नहीं होगा।

प्राणिस्थ होनेसेभी—द्रव पदार्थ 'स्वाङ्ग' नहीं; यथा—बहुकफा [कन्या]। जिसकी मूर्त्ति नहीं, वह 'स्वाङ्ग' नहीं; यथा—सुज्ञाना [रमणी]। विकारजनित पदार्थ 'स्वाङ्ग' नहीं, यथा—(बहुशोथा) (जरती)। प्राणिस्थ न होनेपरभी जो पहले प्राणीमे दृष्ट होता है, वहभी 'स्वाङ्ग'; यथा—दीर्घकेशी दीर्घकेशा रथ्या। प्राणीका जो अङ्ग जिसप्रकार प्राणीमे रहता है, वह अङ्ग उसीप्रकार अप्राणीमे दृष्ट होनेसे, उसको भी 'स्वाङ्ग' कहा जाता है; यथा—सुमुखी सुमुखा प्रतिमा। *

(क) जिन अङ्ग (अवयव)-वाचक शब्दकी उपधामे संयुक्तवर्ण रहे, उनके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता, यथा—मृगनेत्रा, चन्द्रवक्त्रा, लोलजिह्वा।

---

* अद्रवं, मूर्त्तिमत् 'स्वाङ्गं,' प्राणिस्थमविकारजम्।
अप्राणिस्थं तत्र दृष्टं, तेन तुल्ये तथा स्थितम्॥

तेनेति। प्राणिनि यथा स्थितं स्वाङ्गम्, तथैव प्राणितुल्ये वस्तुनि यत् स्थितम्, तदपि स्वाङ्गमित्यर्थः।

किन्तु 'अङ्ग'-प्रभृति शब्दके उत्तर होता है, यथा—कृशाङ्गी, कृशाङ्गा; मृदुगात्री, मृदुगात्रा, बिम्बोष्ठी, बिम्बोष्ठा, कुन्ददन्ती, कुन्ददन्ता; चारुकर्णी, चारुकर्णा, दीर्घजङ्घी, दीर्घजङ्घा, कोकिलकण्ठी, कोकिलकण्ठा, सत्पुच्छी, सत्पुच्छा, तीक्ष्णशृङ्गी, तीक्ष्णशृङ्गा ।

(ख) क्रोड, खुर, शफ, गल, कर, भुज, घोणा, शिखा प्रभृतिके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता, यथा—सुक्रोडा, तीक्ष्णखुरा, दीर्घशफा, आयतभुजा; उन्नतघोणा, चारुशिखा ।

(ग) दोसे अधिक स्वरविशिष्ट अङ्गवाचक शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता, यथा—सुलोचना, चारुवदना, पृथुजघना ।

किन्तु 'नासिका' और 'उदर' शब्दके उत्तर होता है, यथा—तुङ्गनासिकी, तुङ्गनासिका, कृशोदरी, कृशोदरा ।

(घ) 'सह', 'नञ्' और 'विद्यमान' शब्द पूर्वमे रहनेसे, अङ्गवाचक शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता, यथा—सकेशा, अकेशा, विद्यमानकेशा ।

(ङ) सञ्ज्ञा समझानेसे, 'नख' और 'मुख' शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता, यथा—शूर्पणखा, गौरमुखा । (अन्यत्र—शूर्पनखा, शूर्पनखी, गौरमुखा, गौरमुखी) ।

८८४ । बहुव्रीहि-समास होनेसे, 'ऊधस्' शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) होता है, और 'टि' के स्थानमे 'न्' होता है, यथा—(पीनम् ऊधः यस्या सा) पीनोध्नी; (घटवत् ऊधः यस्याः सा) घटोध्नी; कुण्डोध्नी ।

८८५ । इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ईप्' (ङीप्) होता है, यथा—श्रेणि, श्रेणी, राजि, राजी, आलि:, आली, कटि:, कटी, रात्रि:, रात्री; रजनि:, रजनी, अवनि:,

अवनी ; शारि, शारी, यष्टि, यष्टी ; भूमि, भूमी।

'क्ति'-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर नहीं होता ; यथा—गतिः, स्थिति, कृति, मतिः, भक्ति, मुक्ति, युक्ति, बुद्धिः। किन्तु 'पद्धति'-शब्दके उत्तर होता है ; यथा—पद्धति, पद्धती।

८८६। उकारान्त गुणवाचक* विशेषणके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें विकल्पसे 'ईप्' (ङीप्) होता है, यथा—साधु, साध्वी ; मृदु, मृद्वी, पटु, पट्वी ; गुरु, गुर्वी, लघु, लघ्वी ; अणु, अण्वी ; तनु, तन्वी, स्वादु, स्वाद्वी, बहु, बह्वी। †

आनीप्।

८८७। महत्, इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र और मृड शब्दके उत्तर 'पत्नी'-अर्थमें 'आन' (आनुक्) और 'ईप्' (ङीप्)—अर्थात् 'आनीप्'—होता है, यथा—(महतः पत्नी) महाणी ‡ ; (इन्द्रस्य पत्नी) इन्द्राणी ; वरुणानी ; भवानी ; शर्वाणी ; रुद्राणी, मृडानी।

'मातुल'-शब्दके उत्तर विकल्पसे होता है, यथा—मातुलानी, मातुली।

'उपाध्याय'-प्रभृति शब्दके उत्तर अर्थविशेषमें होता है। यथा—

---

* सिद्धस्य वस्तुधर्मा जातिभिन्ना गुणा मताः।
गुणवाचक आख्यातास्तद्विशिष्टस्य वाचकाः॥

† उपधामें युक्ताक्षरविशिष्ट शब्दके उत्तर नहीं होता ; यथा—पाण्डु।

‡ 'आनीप्' होनेसे, 'महत्'-शब्दके नकारका लोप होता है।

उपाध्याय—('पत्नी'-अर्थमें) उपाध्यायानी, उपाध्यायी, (स्वयम् अध्यापिका) उपाध्यायी, उपाध्याया। आचार्य्य—('पत्नी'-अर्थमें) आचार्य्यानी*, (स्वयं व्याख्यात्री) आचार्य्या। क्षत्रिय—('पत्नी'-अर्थमें) क्षत्रियी, (स्वयम्) क्षत्रियाणी, क्षत्रिया। अर्य्य (वैश्य)—('पत्नी'-अर्थमें) अर्य्यी; (स्वयम्) अर्य्याणी, अर्य्या। हिम—हिमानी (हिमसहति, महत् हिम)। अरण्य—अरण्यानी (महारण्य)। यव—यवानी (दुष्ट यव)। यवन—यवनानी (यवनोंका लिपिविशेष)।

ऊप्।

८८८। प्राणि भिन्न उकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें 'ऊप्' (ऊङ्) होता है; 'प्' इत्, 'ऊ' रहता है, यथा—(जम्बु) जम्बू, (अलाबु) अलाबू; (कर्कन्धु) कर्कन्धू। †

८८९। 'तनु'-प्रभृति शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ऊप्' होता है, यथा—तनु, तनू, चम्बु, चम्बू।

८९०। उपमानपदके परवर्त्ती 'ऊरु' शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें 'ऊप्' (ऊङ्) होता है, यथा—(रम्भे इव ऊरू यस्या: सा) रम्भोरू:, (करभौ ‡ इव ऊरू यस्या सा) करभोरू:, (करभ उपमा ययो तौ ऊरू यस्या सा) करभोपमोरू:—र० ६. ८३, (करिकरौ इव ऊरू यस्या सा) करिकरोरू:।

---

* 'आचार्य्यानी' शब्दका 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता।

† मनुष्यजाति समझानेसेभी होता है, यथा—कुरु, ब्रह्मबन्धू। 'रज्जु' और 'हनु' शब्दके उत्तर नहीं होता।

‡ "मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहि:" इत्यमर।

(क) 'वाम'-शब्दके परवर्त्ती 'ऊरु'-शब्दके उत्तर 'ऊङ्' होता है, यथा—(वामौ—सुन्दरौ—ऊरू यस्याः सा) वामोरूः।

प्रश्न।

स्त्रीलिङ्ग करो—देव, सखि, पति, धातृ, प्राच्, प्रत्यच्, तिर्य्यंच्, उदच्, पापकृत्, सर्, धीमत्, महत्, बृहत्, यजत्, कुर्वत्, भजत्, ददत्, भवत्, करिष्यत्, महामहिमन्, महात्मन्, श्वन्, युवन्, धनिन्, तादृश्, पतिद्विष्, उन्मनस्, विद्वस्, महीयस्, दीर्घायुस्, सर्व, पूर्व, अन्य, एक, प्रथम, सप्तम, पञ्चाशत्, पञ्चाश (डट्), शततम (तमट्), गौर, मृग, अश्व, कुमार, वरुण।

तद्धित-प्रकरण।

८११। शब्द या प्रातिपदिकके उत्तर 'मतुप्'-प्रभृति कई प्रत्यय करनेसे शब्द उत्पन्न होता है, उन्हें 'तद्धित-प्रत्यय' कहते हैं।

तद्धित-कार्य्य।

८१२। तद्धित प्रत्ययका मूर्द्धन्य 'ण' इत् होनेसे, शब्दके आदिस्वरकी वृद्धि होती है, यथा—तर्क + ष्णिक = तार्किक।

कहीं कहीं 'णित्'-कार्य्य नहीं भी होता।

(क) कई समस्तपदोंके उत्तरपदके आदिस्वरकी वृद्धि होती है। यथा—गुरुलघु + ष्य = गुरुलाघवम्, पितृपितामह + ष्ण = पितृपैतामहम् (पितृपितामहानाम् इदम्), (वातपित्तस्य संयोगो निमित्तम्—वातपित्त +

ष्णिक) वातपैत्तिकम्, वातश्लेष्मिकम् । (पूर्वं वर्षाणाम्—पूर्ववर्षम्, तस्मिन् भवम्—पूर्ववर्ष + ष्णिक) पूर्ववार्षिकम् । (द्वौ संवत्सरौ व्याप्य भूत भावि वा) द्विसांवत्सरिकम् । सङ्ख्या-पूर्व 'वर्ष' शब्दके उत्तर भविष्यद् भिन्न कालमें प्रत्यय होनेसे—(द्वे वर्षे व्याप्य भूत भवत् वा) द्विवार्षिकम् ।

(ख) कई समस्तपदोंके पूर्वपदके आदिस्वरकी वृद्धि होती है। यथा—(पूर्वासु वर्षासु भवम्) पौर्ववर्षिकम् । (द्वौ मासौ व्याप्य भूतं भवद् वा) द्वैमासिकम्, त्रैमासिकम् । (द्वे वर्षे व्याप्य भावि) द्वैवर्षिकम् । (सुहृद् भाव) सौहृदम् (ष्ण), सौहृद्यम् (ष्य), दौर्हृदम्, दौर्हृद्यम् । (मित्रावरुणयो अपत्यम्) मैत्रावरुणि (ष्णि) ।

(ग) कई समस्तपदोंके उभयपदकोंही आदिस्वरकी वृद्धि होती है। यथा—(इहलोके भव —इहलोक + ष्णिक) ऐहलौकिक, (परलोक) पारलौकिक; (सर्वलोके विदित) सार्वलौकिक, (अधिदेव) आधिदैविक, (अधिभूत) आधिभौतिक, (सर्वभूमि) सार्वभौम (ष्ण); (चतुर् विद्या —चतुर्विद्या + ष्ण) चातुर्वैद्यम्, (परस्त्रिया अपत्यम्—परस्त्री + ष्णेय) पारस्त्रैणेय (जारज इत्यर्थ) । (सुहृद सुहृदयस्य वा भाव —सुहृद्, सुहृदय + ष्ण) सौहार्दम्, सौहार्द्यम् (ष्य), (दुर्भगस्य भाव) दौर्भाग्यम् (ष्य), दौर्भाग्यम् ।

(घ) कई नञ्तत्पुरुषसमासनिष्पन्न पदोंके, उत्तरपद वा उभयपदके आदिस्वरकी वृद्धि होती है, यथा—अशौचम्, आशौचम्, अनैश्वर्य्यम्, आनैश्वर्य्य, अकौशलम्, आकौशलम्, अनैपुणम्, आनैपुणम्, अयाथातथ्यम् आयाथातथ्यम् ।

आदि

८९३ । 'णित्' तद्धितप्रत्यय परे रहनेसे, सम्बन्धपदके आदिस्वरके स्थानमे जात 'य्' के स्थानमे 'ऐय्' और 'व्' के स्थानमे 'औव्' होता है; यथा—(वि + आस = व्यास + ष्णिक) वैयासिक ; (वि + आ करण = व्याकरण + ष्ण) वैयाकरण , (सु + अश्व = स्वश्व + ष्णिक) सौवश्विकः ।

'व्यवहार', 'स्वागत' प्रभृति शब्दोंका नहीं होता ; यथा—(व्यवहारम् अर्हति—व्यवहार + ष्णिक) व्यावहारिक , व्यवहारिक इत्यादि ।

द्वार, स्वर, स्वस्ति, श्वन् प्रभृति शब्दोंकाभी होता है ; यथा—(द्वारे नियुक्त —द्वार + ष्णिक) दौवारिक ; (स्वर + ष्ण) सौवर ; (स्वस्तिकरणे कुशल —स्वस्ति + ष्णिक) सौवस्तिक , (श्वः परदिने भव —श्वस् + ष्णिक) शौवस्तिक , इत्यादि ।

'श्वापद' और 'न्यङ्कु' शब्दका विकल्पसे होता है; यथा—(श्वापद + ष्ण) शौवापद —"कश्चित् कान्तारभाजा भवति परिभव कोऽपि शावापदो वा ?" अनर्घ० १ २९ , (न्यङ्कु) नैयङ्कव ।

८९४ । तद्धितप्रत्ययके 'य' और स्वरवर्ग परे रहनेसे, शब्दके अन्तस्थित अवर्ण और इवर्णका लोप होता है ; यथा—पर्वत + ष्णय = पार्वत्य ; माया + ष्णिक = मायिक , विधि + ष्ण = वैध ।

८९५ । तद्धितप्रत्ययके 'य' और स्वरवर्ग परे रहनेसे, शब्द अन्तस्थित उवर्णका गुण होता है ; यथा—पाण्डु + ष्ण = पाण्डव , बाहु + ष्णि = बाहवि । *

* 'ष्णेय' परे, उवर्णका लोप होता है ; यथा—कमण्डलु + ष्णेय = कामण्डलेय । किन्तु 'कद्रु' और 'पाण्डु' शब्दका नहीं होता ; यथा—काद्रवेय ; (पितृदिय ।

८९६ । ऋकारान्त, ओकारान्त और औकारान्त शब्दके परस्थित तद्धितप्रत्ययका 'य' स्वरकार्य्य निर्वाह करता है, अर्थात् 'य' परे रहनेसे, 'ऋ' के स्थानमे 'र्', 'ओ' के स्थानमे 'अव्', और 'औ' के स्थानमे 'आव्' होता है; यथा—पितृ + ष्यय = पित्र्यम्, वैश्यम्, गो + य = गव्यम् ।

८९७ । तद्धितप्रत्यय परे रहनेसे, नकारान्त शब्दके नकारका लोप होता है, यथा—(राज्ञां समूह —राजन् + वुण्—वुञ्) राजकम् ; (पन्थां गच्छति—पथिन् + कण्—ष्कन्) पथिक ।

८९ । तद्धितका 'य' परे रहनेसे, 'अन्'-भागान्त शब्दके नकारका लोप नहीं होता, यथा—(ब्रह्मणि साधु —ब्रह्मन् + ष्यय) ब्रह्मण्य । ति भाव और कर्म अर्थमे नकारका लोप होता है, यथा—(राज्ञ भाव वा—राजन् + ष्यय) राज्यम् ।

८९ 'ष्ण'-प्रत्यय परे रहनेसे, 'अन्'-भागान्त शब्दके नकारका लोप नहीं होता, यथा—(यून भाव) यौवनम्, (पर्वणि भव) पार्वण । विकारार्थमे 'ष्ण' होनेसे, 'हेमन्'-शब्दके नकारका लोप होता है; यथा—(हेम्न विकार) हैम ।

९ 'ष्ण'-प्रत्यय परे, 'इन्'-भागान्त शब्दके नकारका लोप नहीं होता—(हस्तिन इदम्) हास्तिनम् ।

'अपत्य'-अर्थमे होता है, यथा—(मेधाविन अपत्यम्) मैधाव । 'इन्' से मिलित होनेसे नहीं होता, यथा—(तपस्विन अपत्यम्)न ।

---

९ ति भिन्न अर्थमे 'ब्रह्मन्'-शब्दके नकारका लोप होता है; यथा—वता अस्य—ब्रह्मन् + ष्ण) ब्राह्मम् [ब्रह्मम्], ब्राह्मं

हवि ; (ब्रह्म देवतास्य) ब्राह्म , (ब्राह्मण इयम्) ब्राह्मी [तनु] । 'जाति'-अर्थमें नहीं होता , यथा—(ब्राह्मण अपत्यम्) ब्राह्मण (जातिविशेष) ।

९८२ । 'खीन'-प्रत्यय होनेसे, 'अध्वन्' और 'आत्मन्' शब्दके नकारका लोप नहीं होता ; यथा—(अध्वनि साधु) अध्वनीन ; (आत्मने हितम्) आत्मनीनम् ।

९८३ । तद्धितके 'य' और स्वरवर्ण परे रहनेसे, आरात् और शश्वत् भिन्न अव्ययशब्दके 'टि' का लोप होता है, यथा—(बहिः भवम्—बहिस्+ष्ण्य) बाह्यम् ; (अकस्मात् भवम्—अकस्मात्+ष्णिक) आकस्मिकम् । (आरात् भव—आरात्+ईय—छ) आरातीय ; (शश्वत् भव) शाश्वतिक ।

९८४ । 'तर'-प्रभृति* तद्धितप्रत्यय परे रहनेसे, भाषितपुंस्क (विशेषण) स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव होता है ; यथा—शुभ्रा+तर् शुभ्रतरा , (साध्व्या भाव) साधुता ।

तद्धित-प्रत्यय—प्रथमान्तसे ।

वक्ष्यमाण तद्धित प्रत्यय प्रथमान्तसे होते हैं—

अस्त्यर्थे ।

९८५ । मतुप्—'तत् अस्य अस्ति', 'तत् अस्मिन् अस्ति'—इन दोनो अर्थोंमें शब्दके उत्तर 'मतुप्'-प्रत्यय होता है ; 'उ' और 'प्' इत्, 'मत्' रहता है । यथा—(मति अस्य अस्ति) मतिमान् ; (बुद्धिरस्यास्ति) बुद्धिमान् ; (धी अस्यास्ति)

* तर, तम, इष्ठ, ईयसु, रूप, पाश, कल्प, देश्य, देशीय, जातीय, चरट्, त्व, तल्, इमन् इत्यादि ।

धीमान्; (श्री· अस्यास्ति) श्रीमान्. (अशव अस्य सन्ति) अंशुमान्, (पिता अस्यास्ति) पितृमान्, (धनु अस्यास्ति) धनुष्मान्, (वपुः अस्यास्ति) वपुष्मान् । (अग्नि· अस्मिन् अस्ति) अग्निमान्, (वायु अस्मिन् अस्ति) वायुमान् (नद्य अस्मिन् सन्ति) नदीमान् [देश·]; (गाव अस्य सन्ति) गोमती [शाला]।

(ग) अउणन्ति शब्दके उत्तर विहित 'मतुप्' के स्थान 'व' होता है। यथा—(ज्ञानम् अस्यास्ति) —धीमान्, (धन अस्यास्ति) धनवान्, (बलम् अस्यास्ति (विद्‌ अस्यास्ति) विद्यावान्, (दया अस्य' और 'कंस'-शब्दके (क्षमाऽस्यास्ति) क्षमावान्। वें), कंसल·

( ) जिन शब्दोंके अन्तमें ङ, ञ, ण (इस्व) (अथ वर्गके प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पड़े) रहता। उनके उत्तर विहित 'मतुप्' के, यथा- तडित् अस्मिन् अस्ति) (विद्‌ अस्मिन् अस्ति) विद्युत्वान्। 'व'-प्रत्यय होता है; स्ति)वान्। , वसा; (गिरि आश्रयत्वेन

() जिन शब्दोंकी उपधामें, पक्ष्म—आश्लेष, पक्ष्मले मनोहर- विहितमतुप्' के 'म' के स्थानमें, पक्ष्मलाक्षी); "मुदितपक्ष्मलरल्लकात अस्य) आत्मवान्; (सो—लोमश)।

(भास्य सन्ति) भास्वान्, ५-२९- (पाप्मा —दोष, पापम, तद्युक्त-

() जिन शब्दोंकी उ

विहित 'मतुप्' के 'म' के स्थानमें 'व' होता है, यथा—(लक्ष्मीः अस्यास्ति) लक्ष्मीवान्, (शमी अस्मिन् अस्ति) शमीवान् ।

(छ) 'यव' प्रभृति शब्दके उत्तर विहित 'मतुप्' के 'म' के स्थानमें 'व' नहीं होता, यथा—यवमान्, ऊर्मिमान्, भूमिमान्, कृमिमान्, ... गमान्, गरुत्मान्, हरित्मान्, ककुद्मान् ।

(ज) निपातने—(उदकम् अस्मिन् अस्ति) उदन्वान् (समुद्र भिन्न ... (अन्यत्र) उदकवान्, (शोभनो राजा अस्मिन् अस्ति) ... [राजन्+वत्]—राजन्वती प्रजा, (अन्यत्र) राजवान्, (... आसन्दिवत् ... अस्मिन् अस्ति) अष्ठीवान् (जानूरसन्धिरित्यर्थः), (...) ...वान् ।

९०४ । 'तत्' प्र... बहुव्रीहिसमास-द्वारा अर्थबोध होता है, वहाँ कर्मधारय- ...) शौक्लिक शब्दके उत्तर अस्त्यर्थ-प्रत्यय नहीं होता, यथा—(शोभना ... तरा, (सादृश्या भाव ,—यहाँ (शोभना बुद्धि) सुबुद्धि, सा ... स्या-

तद्धित ... नहीं होगा ।

वक्ष्यमाण तद्धिते स्थलविशेषमें 'बाहुल्य'-प्रभृति* अर्थ ... शमी

...—बाहुल्य) धनवान्, गोमान्; (... दर)

९०५ । मतुप्—'तत् अस्त्यर्थे), (प्रशंसा) वाग्मी, ... न्; इन दोनों अर्थोंमें शब्दके उत्तर स्पर्शोयुत इत्यर्थ); (अतिशा... न— 'प्' इत्, 'मत्' रहता है । यदुवतो इत्यर्थ); (संसर्ग) दण्डी ... मी । मतिमान्; (बुद्धिरस्यास्ति)

---

* तर, तम, इष्ठ, ईयसु, रूप, पाश मतुबादय ॥ ... नित्ययोगेऽतिशायने । ... रट्, त्व, तल्, इमन् इत्यादि । । भूमादिषु विषयेषु भवन्ति ; (सं ।

हिरण्यार्थी ; गुरुदक्षिणार्थी ।

९०९ । ल (लच्)—'मांस'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ल'-प्रत्यय होता है , यथा—(मांसम् अस्यास्ति) मांसल , (श्री अस्यास्ति) श्रील , पक्ष्म अस्यास्ति) पक्ष्मल * , (शीतं गुण अस्यास्ति) शीतल , (श्यामः वर्ण अस्यास्ति) श्यामल , (पिङ्ग वर्ण अस्यास्ति) पिङ्गल ; पित्तल [illegible] युक्त , पित्तवर्द्धकश्चेत्यर्थ) , श्लेष्मल ; पृथुल , मृदुल ; ग्रन्थि [illegible] † , श्मश्रुल ।

इनमेंसे [illegible] के उत्तर 'मतुप्' भी होता है , यथा—श्रीमान् , ग्रन्थिमान् ।

(क) 'स्नेहवान्' और 'बलवान्' अर्थमें 'वत्स' और 'अंस'-शब्दके उत्तर 'ल' होता है , यथा—वत्सल (स्नेहवान् इत्यर्थ) , अंसल (बलवान् इत्यर्थ) ।

(ख) 'फेन'-शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ल' और 'इल' (इलच्) होते हैं ; यथा—(फेन अस्मिन् अस्ति) फेनल , फेनिल ; (पक्षे) फेनवान् । "फेनिलमम्बुराशिम्" र० १३ २. ।

९१० । श—'लोमन्'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'श'-प्रत्यय होता है ; यथा—(लोमानि अस्य सन्ति) लोमश ; रोमश ; (गिरि आश्रयत्वेन

* "पक्ष्मलाक्ष्या" शकु० ३ २२. (पक्ष्म—अक्षिलोम, पक्ष्मले मनोहर-पक्ष्मसमन्विते अक्षिणी यस्याः सा पक्ष्मलाक्षी); "मुदितपक्ष्मलरल्लकाङ्ग-[वायु] " माघ० ४ ६१ (पक्ष्मल—लोमश) ।

† "परुषांसपांशुल" शकु० ५.२९ (पांशु —दोष , पातक, तद्युक्त—पांशुल) । 'पांसुरोऽपि ।

अस्यस्ति) गिरिश ।

९११ । इल (इलच्)—'पिच्छा' और 'पङ्क' शब्दके उत्तर 'इल'-प्रत्यय होता है , यथा —(पिच्छा—भक्तसम्भूतमण्डम्—अस्यास्ति) पिच्छिल *, (पङ्क अस्मिन् अस्ति) पङ्किल † ।

(क) 'वृद्धि' समझानेसे , अङ्गवाचक शब्दके उत्तर 'इल' होता है ; यथा—(विवृद्ध तुन्दम्—उदरम्—अस्यास्ति) तुन्दिल ‡ ; पिचण्डिल ।

९१२ । उर (उरच्)—'दन्त' शब्दके उत्तर 'उर'-प्रत्यय होता है—'उन्नत'-अर्थमें , यथा— (उन्नता दन्ता सन्ति अस्य) दन्तुर § ।

९१३ । र—'ऊष'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'र' प्रत्यय होता है ; यथा—(ऊष —क्षारमृत्तिका—अस्मिन् अस्ति) ऊषर || (क्षारभूमिरित्यर्थ) ; (शुषि —छिद्रम्—अस्यास्ति) शुषिर , (मधु—माधुर्य्यम्—अस्यास्ति) मधुर । (निन्दित मुखम् ¶ अस्यास्ति) मुखर (वाचाल इत्यर्थ) ;

---

* "पिच्छिलानि च दधीनि" छन्दोमञ्जरी ; "पिच्छिल पन्था " साहित्य-दर्पणम् १० ।

† "मांसमज्जास्थिपङ्किला मही" महाभा० (पङ्किल—व्याप्त) ।

‡ "मकरन्दतुन्दिलानामरविन्दानामयं महामान्य." भामिनी० १. ५. (तुन्दिल—पूर्ण) ।

§ "अखर्वगर्वस्मितदन्तुरेण" विक्रमाङ्कदेवचरितम् १ ५० (दन्तुर—व्याप्त) ॥ "शूकरे निहते चैव दन्तुरो जायते नर " ।

|| "धर्मार्थौ यत्र न स्याताम्, शुश्रूषा वाऽपि तद्विधा ।
विद्या तत्र न वक्तव्या, शुभं बीजमिवोषरे ॥" मनु० २ ११२. ।

¶ 'मुख'-शब्दोऽत्र लक्षणया 'वचन'-पर । "मुखरमधीर त्यज मञ्जी-"

(अतिशयित कुञ्ज—हनु—अस्यास्ति) कुञ्जर'; (नगा इव प्रासादादय अस्मिन् सन्ति) नगाम्।

९.१४। डुलप् (डुलच्)—'नड' और 'शाद' शब्दके उत्तर 'डुलप्'-प्रत्यय होता है, 'ड्' और 'प्' इत्, 'वल' रहता है, यथा—(नडा अस्मिन् सन्ति) नड्वल; (शादा —बालतृणानि—अस्मिन् सन्ति) शाद्वल * (शष्पश्यामस्थल इत्यर्थ)।

९.१५। वल (वलच्)—'कृषि' प्रभृति शब्दके उत्तर 'वल'-प्रत्यय होता है। 'वल'-प्रत्यय होनेसे अन्त्यस्वर दीर्घ होता है। यथा—(कृषि अस्यास्ति) कृषीवल, रजस्वला, ऊर्जस्वल (बलवान् इत्यर्थ)। दन्तावल (हस्ती इत्यर्थ), शिखावल (मयूर इत्यर्थ)।

९.१६। आलु—'असहन' अर्थमें, 'शीत' और 'उष्ण' शब्दके उत्तर 'आलु'-प्रत्यय होता है, यथा—(शीत न सहते) शीतालु, (उष्ण न सहते) उष्णालु।

(क) 'कृपा' और 'हृदय' शब्दके उत्तर 'आलु' होता है; यथा—(कृपा अस्यास्ति) कृपालु, हृदयालु।

९.१७। किन्—'रोग' समझानेसे, 'वात' और 'अतिसार' शब्दके उत्तर 'किन्'-प्रत्यय होता है, यथा—(वात अस्यास्ति) वातकी, (अतिसार अस्यास्ति) अतिसारकी।

९.१८। आमिन्—'ऐश्वर्य' समझानेसे,'स्व'-शब्दके उत्तर 'आमिन्'-प्रत्यय होता है; यथा—(स्वम्—ऐश्वर्यम्—अस्यास्ति) स्वामी।

रम्" गीतगो० १.११। (मुखर—शब्दायमान)।

* "शष्या शाद्वलम्" शान्तिशतकम्।

९१९ । भ—'वलि'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'भ' प्रत्यय होता है; यथा—(वलि —त्वक्सङ्कोच —अस्मिन् अस्ति) वलिभम् (उदरम्) ।

९२० । यु (युस्)—'अहम्', 'शुभम्' और 'शम्' शब्दके उत्तर 'यु' प्रत्यय होता है, यथा—(अहम्—अहङ्कार —अस्यास्ति) अहंयु (अहङ्कारवान् इत्यर्थः), (शुभम् अस्यास्ति) शुभंयु , शंयु (शुभान्वित इत्यर्थः) ।

९२१ । अच्—'अर्शस्' प्रभृति शब्दके उत्तर 'अच्' प्रत्यय होता है, यथा—(अर्शांसि अस्य सन्ति) अर्शसः, (पलितम् अस्यास्ति) पलितः, (लवणः रसः अस्यास्ति) लवणः ।

९२२ । 'ज्योत्स्ना'-प्रभृति शब्द निपातन सिद्ध, यथा—(ज्योतिः अस्यास्ति) ज्योत्स्ना, (तमोऽस्या अस्ति) तमिस्रा, (मलम् अस्यास्ति) मलिनः, मलीमसः, (अर्णांसि—जलानि—अस्मिन् सन्ति) अर्णवः (समुद्र इत्यर्थः), (आमयः अस्यास्ति) आमयावी (रोगी इत्यर्थः) । (प्रशस्ता वाचः अस्य सन्ति) वाग्मी (ग्मिन्—ग्मिनि); (यः कुत्सितं बहु भाषते सः) वाचालः (आल—आलच्), वाचाटः (आट—आटच्) ।

स्वार्थे ।

९२३ । ष्ण (अण्), ष्णय, ष्णिक (ठक्), कन्—शब्दके उत्तर स्वार्थमें 'ष्ण', 'ष्णय', 'ष्णिक' और 'कन्' प्रत्यय होते हैं । 'ष्ण' का 'ष्' और 'ण्' इत्, 'अ' रहता है, 'ष्णय' का 'ष्' और 'ण्' इत्, 'य' रहता है, 'ष्णिक' का 'ष्' और 'ण्' इत्, 'इक' रहता है, 'कन्' का 'न्' इत्, 'क' रहता है । प्रत्यय होनेमें शब्दके अर्थका वैलक्षण्य नहीं होता,

पूर्व अर्थही अविकृत रहता है। यथा— (ष्ण)—(बन्धुः एव) बान्धव, (शत्रुरेव) शात्रव ; (चोर एव) चौर, (चण्डाल एव) चाण्डाल, (मन एव) मानसम्, (देवता एव) दैवतम्, (प्रज्ञ एव) प्राज्ञ, (कुतुकम् एव) कौतुकम्, (कुतूहलम् एव) कौतूहलम्, (मरुत् एव) मारुत, (रक्ष एव) राक्षस । (ष्ण्य)—(भेषजम् एव) भैषज्यम् (ष्य), (इतिह* एव) ऐतिह्यम् (ष्य), (त्रिलोकी एव) त्रैलोक्यम् †, (करुणा एव) कारुण्यम्, (द्विगुणी एव) द्वैगुण्यम्, (त्रिगुणा एव) त्रैगुण्यम्, (षड्गुणा एव) षाड्गुण्यम्; (चत्वार वर्णा एव) चातुर्वर्ण्यम्, (सेना एव) सैन्यम्, (सन्निधिरेव) सान्निध्यम्; (समीपम् एव) सामीप्यम्; (उपमा एव) औपम्यम्, (सुखम् एव) सौख्यम्, (समानम् एव) सामान्यम्, (सोदर एव) सोदर्य्य (य), (मर्त एव) मर्त्य (यत्); (नवम् एव) नव्यम्, नवीनम् (नीन—ख) । (ष्णिक)— वाक् एव) वाचिकम् (सन्देशवचनम् इत्यर्थ)। (कन्)—(याव एव) यावक, (बाल एव) बालक, (गौ एव) गौका ।

(क) ष्णीक (ईकक्)—'द्वितीय' और 'तृतीय' शब्दके उत्तर स्वार्थमें 'ष्णीक'-प्रत्यय होता है, 'ष्' और 'ण्' इत्, 'ईक' रहता है; यथा—(द्वितीय एव) द्वैतीयीक—"द्वैतीयीकतया मितोऽयमगमत् सर्ग" नै० २ ११० ; (तृतीय एव) तार्तीयीक—"तार्तीयीकं पुरोऽस्तद्वत् मदनप्लोषण लोचन च" मालती० ४ ।

---

* इतिह—उपदेशपरम्परा इत्यर्थ—अव्यय ।

† 'त्रैलोक्यम्' से 'सामान्यम्' तक पाणिनि-मते 'ष्यञ्' ।

(ख) तल्—'देव' शब्दके उत्तर स्वार्थमें 'तल्' प्रत्यय होता है ; 'ल्' इत्, 'त' रहता है । 'तल्' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग । यथा—(देव एव) देवता ।

(ग) धेय—'भाग', 'रूप' और 'नामन्' शब्दके उत्तर स्वार्थमें 'धेय' प्रत्यय होता है, यथा—(भाग* एव) भागधेयम्† (भाग्यम् इत्यर्थः); (नाम एव) नामधेयम् ।

(घ) तिकन्—'मृद्'-शब्दके उत्तर स्वार्थमें 'तिकन्' प्रत्यय होता है, 'न्' इत्, 'तिक' रहता है, यथा—(मृद् एव) मृत्तिका ।

(ङ) स, स्न—'प्रशंसा' समझानेसे, 'मृद्' शब्दके उत्तर स्वार्थमें 'स' और 'स्न' प्रत्यय होते हैं, यथा—(प्रशस्ता मृत्) मृत्सा, मृत्स्ना ।

(च) निपातने—(नवम् एव) नूत्नम्, नूतनम्, (उपाय एव) औपयिकम् (ठक्—ह्रस्वश्च)—"विनयौपयिकम्" आ० २ ३९ ।

१२४ । कन्—ह्रस्व, अल्प, कुत्सित, अज्ञात, अनुकम्पा और संज्ञा (नाम) अर्थ समझानेसे, शब्दके उत्तर 'कन्'-प्रत्यय होता है । यथा—(ह्रस्व वृक्ष) वृक्षक ‡ । (अल्प तैलम्) तैलकम् । (कुत्सित अश्व) अश्वक । (कस्य अयमिति अज्ञात अश्वः) अश्वक । (अनुकम्पित पुत्रः) पुत्रक । (संज्ञा) लोहितक , शूद्रक ; आर्य्यक ।

१२५ । स्त्रीलिङ्ग शब्दके उत्तर 'कन्' होनेसे, अन्त्यस्वर ह्रस्व होता

---

* "भाग्यैकदेशयोर्भाग" रुद्र ।

† "भागधेयं मतं भाग्ये, भाग-प्रत्याययो पुमान्" मेदिनी । (प्रत्याय —कर इत्यर्थः —Tax महसूल)।

‡ "अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्द्धयत्" कु० ५ १४.

है । यथा—(कन्या एव) कन्यका । (चण्डी) चण्डिका ; (कुमारी) कुमारिका ; (मृणाली) मृणालिका , (यूथी) यूथिका , (बदरी) बदरिका , (दूती) दूतिका , (काली) कालिका , (शारी) शारिका , (सूची) सूचिका ।

ह्रस्वार्थे ।

९२६ । र—'ह्रस्व'-अर्थमें, 'कुटी', 'शमी' और 'शुण्डा' शब्दके उत्तर 'र'-प्रत्यय होता है , यथा—(ह्रस्वा कुटी) कुटीर , (ह्रस्वा शमी) शमीर , (ह्रस्वा शुण्डा *) शुण्डार † ।

अल्पार्थे ।

९२७ । तरट् (ष्टरच्)—'अल्प' अर्थमें, अश्व, वत्स, उक्षन् और ऋषभ शब्दके उत्तर 'तरट्'-प्रत्यय होता है ; 'ट्' इत् , 'तर' रहता है ; यथा—(अल्प अश्व ‡) अश्वतर (गर्दभेन अश्वायाम् उत्पन्न अश्व-विशेष इत्यर्थ —खच्चर) , (अल्पो वत्स §) वत्सतर (शुक्तबाल्य प्राप्तयौवनो दमनयोग्य. वत्स इत्यर्थ) , (अल्प उक्षा ||) उक्षतर ¶

---

* "शुण्डा करिकरे मद्ये" वैजयन्ती ।

† "शुण्डार. कलभेन यद्वदचले वत्सेन दोर्दण्डकस्तस्मिन्नाहित एव" महावीर० १. ५३. ।

‡ गर्दभेन अश्वायाम् उत्पन्न अश्व ; तस्य अल्पत्वम् अन्यपितृकता ।

§ प्रथमवया वत्स , तस्य अल्पत्व द्वितीयवय प्राप्ति ।

|| तरुण उक्षा , तस्य अल्पत्व तृतीयवय.प्राप्ति ।

¶ "महोक्ष स्यादुक्षतर." हेमचन्द्र । "महोक्षता वत्सतर स्पृशन्निव" र० ३ ३२. ।

(त्यक्तयौवन प्राप्ततृतीयवयसा वृष इत्यर्थः), (अल्प ऋषभ *) ऋषभतर (भारवहनाशक्तो वृषभ इत्यर्थः) ।

ईषदूनार्थे ।

९२८ । कल्प (कल्पप्), देश्य, देशीय (देशीयर्)—'ईषत् न्यून (कम)' यह अर्थ समझानेसे, शब्द और तिङन्त पदके उत्तर 'कल्प', 'देश्य' और 'देशीय' प्रत्यय होते हैं । यथा—(ईषदूनः विद्वान्) विद्वत्कल्प , विद्वद्देश्य , विद्वद्देशीय ।†(ईषदून पठति) पठतिकल्पम् , पठतिदेश्यम् , पठतिदेशीयम् ।

प्रशंसार्थे ।

९२९ । रूप (रूपप्)—'प्रशंसा' समझानेसे, शब्द और तिङन्त-पदके उत्तर 'रूप' प्रत्यय होता है , यथा—(प्रशस्तो वैयाकरणः) वैयाकरणरूप , नैयायिकरूप , आलङ्कारिकरूप , मीमांसकरूप । (प्रशस्तं पठति) पठतिरूपम् ।

---

* भारस्य वोढा ऋषभ , तस्य अल्पत्वं भारोद्वहने मन्दशक्तिता ।

† 'कल्प' means 'almost like', 'nearly equal to'—प्राय समान (denoting similarity with a degree of inferiority) । "कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम्" (कार्त्तिकेयतुल्यम् इत्यर्थः) र० ५ ३६ , "उपपन्नमेतदस्मिन् ऋषिकल्पे राजनि" शकु० २ , "प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी" (ईषदसमाप्तप्रभाता,—प्रभातात् ईषदूना इत्यर्थः) र० , ऐसे—मृतकल्प । "अष्टादशवर्षदेशीयां कन्यां ददर्श" काद० (girl about 18 years old—whose age bordered on 18.) ।

निन्दार्थे।

१३० । पाश (पाशप्)—'कुत्सित'-अर्थ समझानेसे, शब्दके उत्तर 'पाश'-प्रत्यय होता है, यथा—(कुत्सितो वैयाकरण) वैयाकरणपाश , मीमांसकपाश , भिषक्पाश , छात्रपाश , लेखकपाश ; पाचकपाश ।

भूतपूर्वार्थे।

१३१ । चरट्—'पूर्वं भूत —भूतपूर्व ' (पहले था, अथवा हुआ था, अब नहीं) इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'चरट्'-प्रत्यय होता है , 'ट्' इत् , 'चर' रहता है , यथा—भूतपूर्व आढ्य (Who was formerly rich) आढ्यचर —आढ्यचरी ; (भूतपूर्व अध्यापक) अध्यापकचर (Late teacher) ; (पूर्वं दृष्ट) दृष्टचरः ; (पूर्वं श्रुतम्) श्रुतचरम् , (पूर्वम् अर्पितम्) अर्पितचरम् ; (पूर्वम् अधीत.) अधीतचरः ।

प्रकारार्थे।

१३२ । जातीय (जातीयर्)—'स प्रकार अस्यास्ति' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'जातीय'-प्रत्यय होता है , यथा—(पटु प्रकार अस्यास्ति) पटुजातीय ; मृदुजातीय ; (स प्रकार अस्यास्ति) तज्जातीय , (उत्कृष्ट प्रकार अस्यास्ति) उत्कृष्टजातीय [वस्त्र] ।

असहायार्थे।

१३३ । आकिन् (आकिनिच्)—'असहाय' अर्थमें ('सहायशून्य' समझानेसे) 'एक'-शब्दके उत्तर 'आकिन्' प्रत्यय होता है , *

---

* इस अर्थमें 'कन्'-प्रत्ययभी होता है , यथा—एकक (असहाय इत्यर्थ)।

यथा—एकाकी * (सहायरहित इत्यर्थ) ।

अतिशयार्थे ।

९३४ । तर (तरप्), ईयसु (ईयसुन्)†—दोनोंके बीचमें एकका आतिशय्य (आधिक्य) समझानेसे, शब्दके उत्तर 'तर' और 'ईयसु' प्रत्यय होते हैं, 'ईयसु' का 'उ' इत्, 'ईयस्' रहता है, यथा—(इमौ पटू, अयम् अनयोः अतिशयेन पटु) पटुतरः, पटीयान्, ‡ (इमौ लघू, अयमनयोरतिशयेन लघुः) लघुतर, लघीयान्। विन्ध्यात् हिमालय उच्चतरः (विन्ध्यसे—विन्ध्यकी अपेक्षा—हिमालय उच्च), 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' ।

९३५ । तम (तमप्), इष्ठ (इष्ठन्) §—बहुतोंके बीचमें एकका आतिशय्य समझानेसे, शब्दके उत्तर 'तम' और 'इष्ठ' प्रत्यय होते हैं, यथा—(सर्वे इमे पटवः, अयम् एषाम् अतिशयेन पटु) पटुतम, पटिष्ठ , (सर्वे इमे लघवः; अयमेषामतिशयेन लघु) लघुतमः, लघिष्ठ । भाषासु संस्कृत मधुरतमम् (भाषाओंमें—भाषाओंके बीचमें—संस्कृत मधुर), भ्रातृ

---

* "एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मन ।
एकाकी चिन्तयानो हि पर श्रेयोऽधिगच्छति ॥" मनु० ४ २५८ ।

† Comparative

‡ 'इष्ठ', 'ईयसु' और 'इमन्' प्रत्यय परे रहनेसे, एकाधिक-स्वरविशिष्ट शब्दके 'टि' का लोप होता है ।

§ Superlative.

णाम् अयमेव कनिष्ठः (सब भाइयोंमें यही छोटा) ।

९३६ । 'इष्ठ' और 'ईयसु' परे, 'स्थूल' प्रभृति शब्दके स्थानमें 'स्थव' प्रभृति आदेश होता है, यथा—

शब्द	आदेश	उदाहरण
स्थूल	स्थव	स्थविष्ठ , स्थवीयान्
स्थिर	स्थ	स्थेष्ठ , स्थेयान्
दूर	दव	दविष्ठ , दवीयान्
उरु	वर	वरिष्ठ , वरीयान्
पृथु	प्रथ	प्रथिष्ठ , प्रथीयान्
प्रिय	प्र	प्रेष्ठ , प्रेयान्
क्षिप्र	क्षेप	क्षेपिष्ठ , क्षेपीयान्
क्षुद्र	क्षद्	क्षदिष्ठ , क्षदीयान्
कृश	क्रश	क्रशिष्ठ , क्रशीयान्
बहु	भू	भूयिष्ठ , भूयान् (निपातने)
बाढ	साध	साधिष्ठ , साधीयान्
गुरु	गर	गरिष्ठ , गरीयान्
अन्तिक	नेद्	नेदिष्ठ , नेदीयान्
दीर्घ	द्राघ	द्राघिष्ठ , द्राघीयान्
दृढ	द्रढ	द्रढिष्ठ , द्रढीयान्
भृश	भ्रश	भ्रशिष्ठ, भ्रशीयान्
युवन्	कन्	कनिष्ठ , कनीयान्
(पक्षे) ,,	यव	यविष्ठ , यवीयान्

शब्द	आदेश	उदाहरण
अल्प	कन्	कनिष्ठ , कनीयान्
(पक्षे) ,,	०	अल्पिष्ठ , अल्पीयान्
क्षुद्र	क्षोद	क्षोदिष्ठ , क्षोदीयान्
प्रशस्य	श्र	श्रेष्ठ , श्रेयान्
ह्रस्व	ह्रस	ह्रसिष्ठ , ह्रसीयान्
बहुल	बंह	बंहिष्ठ , बंहीयान्
वृद्ध	वर्ष *	वर्षिष्ठ , वर्षीयान् †

'इष्ठ' और 'ईयसु' प्रत्ययोंमें ये सब आदेश होते हैं।

अनुवाद करो—धनीसे (धनीकी अपेक्षा) विद्वान् मान्य ..। कन्यासे पुत्र प्रिय...। वृक्षोंसे (वृक्षोंके बीचमें) अश्वत्थ वृहत् ..। फलोंमें

---

* 'वृद्ध' और 'प्रशस्य'-शब्दके स्थानमें विकल्पसे 'ज्य' होता है। 'ज्य'-आदेशके परवर्ती 'ईयसु' के 'ई' के स्थानमें 'आ' होता है। यथा—ज्येष्ठ, ज्यायान्।

† स्थूल स्थव , स्थिर' स्थ स्याद्, दूरो दव, उरुर्वर. ।
पृथु प्रथ , प्रिय प्र स्यात्, क्षिप्र क्षेपो, मृदुर्म्रदः ॥
कृश क्रशो, बहुर्भू स्याद्, बाढ साधो, गुरुर्गर ।
अन्तिकस्य भवेन्नेदो, दीर्घो द्राघो, दृढो द्रढ ॥
भृशो भ्रशो, युवाऽल्पौ वा कन् स्यात्, पक्षे युवा यव ।
क्षुद्र क्षोद, प्रशस्य श्रो, ह्रस्वो ह्रस इतीष्यते ॥
बहुलस्य भवेद् बंहो, वृद्धो वर्षस्तथा भवेत् ।
इष्ठेमनोर्हि आदेशा ईयसौ च क्रमादिमे ॥

आम्र मधुर. । ऋतुओमे वसन्त सुन्दर .। दुग्धसे चीनी (शर्करा) मिष्ट .। व्याघ्रसे सिंह बलवान् .। पशुओमे सिंह बलवान् । नदीसे समुद्र गभीर ..। वायुसेभी मन द्रुतगामि (द्रुत) । वह मुझसे स्थूल ।

९३७ । 'इष्ठ,' 'ईयसु' और 'इमन्' प्रत्यय परे, 'मतुप्' और 'विन्' प्रत्ययका लोप होता है । यथा—(अयमेषामतिशयेन बलवान्) बलिष्ठ , बलीयान् । (अयमेषामतिशयेन मायावी) मायिष्ठ , मायीयान् ।

९३८ । घतराम् , घतमाम्—अव्यय-शब्द और तिङन्तपदके उत्तर 'तर'-अर्थमे 'घतराम्', और 'तम' अर्थमे 'घतमाम्' प्रत्यय होता है, 'घ' इत् ,* 'तराम्' और 'तमाम्' रहते हैं । यथा—उत्तराम् , निरा-राम् , उच्चैस्तराम् , उच्चैस्तमाम् । द्रव्य समझानेसे नहीं होता , यथा—उच्चैस्तर तरु । (इमौ पचत , अयमनयोरतिशयेन पचति) पचति तराम् , (इमे सर्वे पचन्ति , अयमेषामतिशयेन पचति) पचतितमाम् ।

निर्द्धारणार्थे ।

९३९ । डतर—दोनोके बीचमे एकका निर्द्धारण † सम-झानेसे, 'किम्,' 'यद्' और 'तद्' शब्दके उत्तर 'डतर'-प्रत्यय होता है, 'ड्' इत्, 'अतर' रहता है, यथा—अनयोः कतरः वैष्णव ?, अनयो यतर ब्राह्मण , ततर आगच्छतु ।

९४० । डतम—बहुतोके बीचमे एकका निर्द्धारण सम-

---

* चकार-इत् (चित्) तद्धित प्रत्ययान्त शब्द अव्यय । समासप्रत्यय-भी तद्धितप्रत्ययमे गण्य ।

† जातिगुणक्रियासंज्ञाभि समुदायात् एकदेशस्य पृथक्करण 'निर्द्धारणम्' ।

आनेसे, 'डतम'-प्रत्यय होता है, 'ड्' इत्, 'अतम' रहता है; यथा—एषां कतम शैव. ?, एषा यतम• क्षत्रिय, ततम प्रयातु।

९४१। 'एक' और 'अन्य' शब्दके उत्तर 'डतर' और 'डतम' होते हैं। यथा—भवतो एकतर पठतु, भवताम् एकतम शृणोतु। तयो अन्यतरो यात, तेषाम् अन्यतमो मृत।

परिमाणार्थे।

९४२। दघ्नट् (दघ्नच्), द्वयसट् (द्वयसच्), मात्रट् (मात्रच्)—'परिमाण' अर्थमे ('तत् प्रमाणम् अस्य' इस अर्थमे) शब्दके उत्तर 'दघ्नट्', 'द्वयसट्' और 'मात्रट्' प्रत्यय होते हैं,* 'ट्' इत्, 'दघ्न', 'द्वयस' और 'मात्र' रहते हैं।

---

* प्रथमश्चोर्द्ध्वमाने स्याद्, द्वितीयश्च तदर्थके।
तृतीयो मानसामान्ये शाब्दिकैरुदाहृत ॥

'दघ्नट्' और 'द्वयसट्'—केवल 'ऊर्द्ध्वपरिमाण' अर्थमे होते हैं (उच्चता वा गाम्भीर्य—'Reaching to', 'as high or deep as'); और 'मात्रट्'—सामान्यत सबप्रकार परिमाण अर्थमे होता है ('Measuring as much as,' 'as high or long or broad as')।

"ऊरुदघ्नेन पयसोत्तीर्य्य" काद•; "कीलालव्यतिकरगुल्फदघ्नपङ्क• [मार्ग]" मालती• ३ १७, "खर्जूरद्रुमदघ्नजङ्घ [पूतनचक्रम्]" मालती• ५. १४.। "गुल्फद्वयसे मदपयसि" काद•; "नारीनितम्बद्वयसं बभूव [अम्भ.]" र• १६. ४६, "गजपतिद्वयसी सरित" माघ• ६. ५५। "पञ्चदशयोजनमात्रमध्वानमतिचक्राम" काद•; "तिष्ठन्त पयसि पुमांसमंसमात्रे" माघ• ८ ३१।

यथा—(जानु प्रमाणम् अस्य) जानुद्घ्नम्, जानुद्वयसम्, जानुमात्र [जलम्], (ऊरु प्रमाणम् अस्य) ऊरुद्घ्नम्, ऊरुद्वयसम्, ऊरुमात्रम्, (गज• प्रमाणमस्य) गजद्घ्नम्, गजद्वयसम्, गजमात्रम्। (हस्त प्रमाणम् अस्य) हस्तमात्र• [पट], (प्रादेश प्रमाणमस्य) प्रादेशमात्र [कुश], (द्रोणः प्रमाणमस्य) द्रोणमात्र [धान्यम्]। ऊरुमात्री भित्ति। *

९४३। वतुप्—'परिमाण'-अर्थमे, 'यद्,' 'तद्' और 'एतद्' शब्दके उत्तर 'वतुप्' प्रत्यय होता है, 'उ' और 'प्' इत्, 'वत्' रहता है। 'वतुप्' परे, 'यद्'—'या', 'तद्'—'ता', और 'एतद्'—'एता' होता है। यथा—(यत् परिमाणम् अस्य) यावान्, (तत् परिमाणमस्य) तावान् † (As much as, as many as—'यावत्' standing for 'as', and 'तावत्' for 'as much' or 'as many')। (एतत् परिमाणमस्य) एतावान् ‡।

---

* स्वार्थमेभी 'मात्र'-प्रत्यय होता है, यथा—(तत् एव) तन्मात्रम्, (तावत् एव) तावन्मात्रम्।

† "पुरे तावन्तमेवास्य तनोति रविरातपम्।
दीर्घिकाकमलोन्मेषो यावन्मात्रेण साध्यते॥"

कु• २ ३३ Also र• १७. १७.।

"ते तु यावन्त एवाजौ, तावाश्च ददृशे स तैः" र• १२. ४५ (यावन्त —यावत्सङ्ख्याकाः, तावान्—तावत्सङ्ख्याक इत्यर्थः)।

‡ "एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे" र• २ ५१, "एतावान् मे विभवो

(क) 'किम्' और 'इदम्' शब्दके उत्तर 'वतुप्' होकर, 'कियत्', 'इयत्'—ये दो शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यथा—(किं परिमाणमस्य) कियान्, (इदं परिमाणमस्य) इयान्। *

(ख) डति—सङ्ख्या परिमाण समझानेसे, 'किम्'-शब्दके उत्तर 'डति'-प्रत्यय होता है, 'ड्' इत्, 'अति' रहता है, यथा—(का सङ्ख्या परिमाणमषाम्) कति।

अवयवार्थे।

९४४। तयट् (तयप्)—'अवयव'-अर्थमें, सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'तयट्'-प्रत्यय होता है, 'ट्' इत्, 'तय' रहता है; यथा—(चत्वारः अवयवाः —विधाः —अस्य) चतुष्टयम् (चतुर्विधम् इत्यर्थः); पञ्च अवयवा अस्य) पञ्चतयम्—पञ्चतयी †, (शतम् अवयवा अस्य) शततयम्;

भवन्त सेवितुम्" मालवि॰ २।

* "कियान् कालस्तत्रैव स्थितस्य सञ्जात ?" पञ्च॰ ५, "अयं भूनाथासौ विसृज क्रियतीं यामि न दशाम्" शान्तिशतकम्, "कियद्वशिष्टं रजन्या ?" शकु॰ ४। "मात! कियदोऽस्य ?" वेणी॰ ५ ९, (अकिंचित्करा इत्यर्थः)। "निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ?" भर्तृ॰ २, "पञ्चति पदानि कियन्ति चलन्ती" गीतगो॰ ६ ३,।

"इयत् तवायु" दशकु॰, "आरमोदय परजयानिर्द्वय नीतिरितीयती" माघ॰ २ ३॰; "इयन्ति वर्षाणि तया सहोग्रमभ्यस्यतीव व्रतमासिधारम्" र॰ १३ ६७, "इयतो दिवसानुत्सव आसीत्" उत्तर॰ १।

† "वृत्तय पञ्चतय्य क्लिष्टा अक्लिष्टा" पातञ्जलसूत्रम् १ ५, "चतुष्टयी प्रवृत्ति शब्दानाम्" कु॰ २ १७,।

(सहस्रम् अवयवा अस्य) सहस्रतयम् ।

१४९ । इयट् (अयच्)—'अवयव'-अर्थमें, 'द्वि' और 'त्रि' शब्दके उत्तर विकल्पसे 'इयट्'-प्रत्यय होता है, 'इ' और 'ट्' इत्, 'अय' रहता है ; पक्षे—तयट्, यथा—(द्वौ अवयवौ अस्य) द्वयम्, द्वितयम् * ; (त्रय अवयवा अस्य) त्रयम्, त्रितयम् । †

(क) 'अवयव'-अर्थमें, 'उभ'-शब्दके उत्तर नित्य 'इयट' होता है, यथा—(उभौ अवयवौ अस्य) उभयम्—उभयी ।

---

* "द्वयी गति" मुद्रा० ३ (द्विविध उपाय इत्यर्थ)।

"द्रुम सानुमतां किमन्तरं, यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चला" र० ८, ९०, (द्वितयेऽपि—द्विप्रकारा, अपि इत्यर्थ) । ('द्वय' और 'द्वितय'-शब्द बहुवचनमेंभी प्रयुक्त होते हैं, See माघ० ३ ५७)।—"त्रयी वै विद्या—ऋचो यजूंषि सामानि" शतपथब्राह्मणम् । "त्रिनयीमपि तां सुपत्या परस्परविरोधिनीम्" पञ्चदशी १, ८६ ।

† सङ्ख्यामात्रमेंभी 'तयट्' और 'इयट्' प्रत्यय होते हैं । यथा—

"यौवन, धनसम्पत्ति, प्रभुत्वम्, अविवेकिता ।

एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम् ?" हितो० ११, "मासचतुष्टयस्य भोजनम्" हितो० १, ।

"आधिक सुगुमे युगमुना द्वितयेन द्वयमेव सङ्गतम्" र० ८, ६, । "घटद्वितयम्" । "अदेयमासीत् त्रयमेव भूपते, शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे" र० ३ १६, "लोकत्रयम्" ।

"दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी, सदपत्यमिदं, भवान् ।
श्रद्धा, वित्त, विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम् ॥" शकु० ७, २९ ।

तत् अस्मिन् अधिकम् इत्यर्थे।

९४६। ड—'तत् अस्मिन् अधिकम्' इस अर्थमें, 'दशन्'-भागान्त शब्दके उत्तर 'ड'-प्रत्यय होता है, 'ड्' इत्, 'अ' रहता है; यथा—(एकादश अधिका अस्मिन् शते) एकादश शतम् (एकादशाधिकम् इत्यर्थे), द्वादश शतम्, त्रयोदश शतम्, चतुर्दश शतम्।

(क) 'तत् अस्मिन् अधिकम्' इस अर्थमें, 'शत्'-भागान्त शब्द और 'विंशति'-शब्दके उत्तर 'ड' होता है। यथा—(त्रिंशत् अधिका अस्मिन्) त्रिंश शतम्, चत्वारिंश शतम्; पञ्चाश शतम्; एकत्रिंश शतम्, चतुश्चत्वारिंश शतम्, पञ्चपञ्चाश शतम्। (विंशति अधिका अस्मिन्) विंश शतम्, एकविंश शतम्, द्वाविंश शतम्।

तत् कृतम् अनेन इत्यर्थे।

९४७। इनि—'तत् कृतम् अनेन' इस अर्थमें, 'इष्ट'-प्रभृति 'क्त'-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर 'इनि'-प्रत्यय होता है, 'इ' इत्, 'इन्' रहता है; यथा—(इष्टम् अनेन) इष्टी यज्ञे; (अधीतम् अनेन) अधीती शास्त्रे; (गृहीतम् अनेन) गृहीती उपदेशे, (श्रुतम् अनेन) श्रुती वेदे, (आसेवितम् अनेन) आसेविती गुरौ; (निराकृतम् अनेन) निराकृती दारौ; (उपकृतम् अनेन) उपकृती मित्रे, (अवकीर्णम्—उल्लङ्घितम्—अनेन) अवकीर्णी मने।

जातार्थे।

९४८। इत (इतच्)—'तत् अस्य सञ्जातम्', 'तत् अस्मिन् सञ्जातम्' इन दोनो अर्थोंमे 'तारका'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'इत'-प्रत्यय होता है, यथा—(तारका अस्मिन् सञ्जाता) तारकित

[नभ.]। (पुष्पाणि अस्या सञ्जातानि) पुष्पिता [लता], (कुसुम) कुसुमिता [चूतलतिका], (पल्लवा अस्य सञ्जाता) पल्लवित [तरु]; (फलानि अस्य सञ्जातानि) फलित [वृक्ष], (तरङ्ग अस्या सञ्जात) तरङ्गिता [नदी], (उत्कण्ठा अस्मिन् सञ्जाता) उत्कण्ठित [मन]; (अन्धकारम् अस्मिन् सञ्जातम्) अन्धकारितं [जगत्], (कलङ्क अस्य सञ्जात) कलङ्कित [चन्द्र], (कर्दम अस्मिन् सञ्जात) कर्दमित [पन्था], (पुलकानि अस्मिन् सञ्जातानि) पुलकित [शरीरम्]; (रोमाञ्च) रोमाञ्चित [वपु], (अङ्कुर अस्य सञ्जात) अङ्कुरितं [शस्यम्], (व्याधि अस्य सञ्जात)व्याधित [पुरुष], (रोग) रोगिता [नारी], (मञ्जरी) मञ्जरित [सहकार], (मुकुल) मुकुलित [नयनसरोजम्], (कुड्मल) कुड्मलितम् [ईक्षणम्]; (स्तबक) स्तबकित [प्रसूनम्], (कोरक) कोरकित [कुरवकम्], (किसलय) किसलयित [पादप], (कुवलय) कुवलयित *; (निद्रा) निद्रित [शिशु], (बुभुक्षा) बुभुक्षित [शार्दूल], (पिपासा) पिपासित [पान्थ], (क्षुध्, क्षुधा) क्षुधित [बाल], (सुख) सुखितं [चित्तम्], (दु:ख) दु:खितं [चेत], (व्रण) व्रणित (पीडितम् इत्यर्थे —हृदयम्), (तिलक) तिलकितं [ललाटम्], (गर्व) गर्वितं [मानसम्], (हर्ष) हर्षित [स्वान्तम्], (ज्वर) ज्वरितं [कलेवरम्], (तृष्, तृषा) तृषित [चातक] · (कज्जल) कज्जलित [नयन, लोचन वा], (कल्लोल)

---

* "पुरमविशदयोध्या मैथिलीदर्शनीनां
कुवलयितगवाक्षां लोचनैरङ्गनानाम् ॥" र० १२ ९३ ।

कल्लोलित [सरित्पति]; (शैवल) शैवलित [सोपानम्], (कन्दल) कन्दलित (विकसित, प्रवृद्ध इत्यर्थ —आनन्द), (बिम्ब) बिम्बित [सूर्य्य], (प्रतिबिम्ब) प्रतिबिम्बित [मुखम्], (मूर्च्छा) मूर्च्छित [रोगी], (दीक्षा) दीक्षित [यजमान], (पण्डा*) पण्डित, (मुद्रा) मुद्रित (सङ्कुचितम् इत्यर्थ,—कुवलयम्) †।

तत् अस्य पण्यम् इत्यर्थे ।

९४९। ष्णिक (ठक्)—'तत् अस्य पण्यम्' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्णिक'-प्रत्यय होता है, यथा—(लवणम् अस्य पण्यम्) लावणिक (ठम्—लवणव्यवहारी,लवणविक्रेता इत्यर्थ); (तैलम् अस्य पण्यम्) तैलिक (तेली), (ताम्बूलम् अस्य पण्यम्) ताम्बूलिक (तम्बोली)।

तत् अस्य शिल्पम् इत्यर्थे ।

९५०। ष्णिक (ठक्)—'तत् अस्य शिल्पम् ‡' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है, यथा—(मृदङ्ग शिल्पम् अस्य) मार्दङ्गिक (मृदङ्गवादक इत्यर्थ); (मुरज शिल्पमस्य) मौरजिक; (पणव शिल्पमस्य) पाणविक; (वीणा शिल्पमस्य) वैणिक। अत्र मृदङ्गादिपदेन तत्तद्वादन लक्ष्यते।

तत् अस्य प्रहरणम् इत्यर्थे ।

९५१। ष्णिक (ठक्), कण्, पर्णीक—'तत् अस्य प्रहरणम्' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्णिक' और 'कण्' प्रत्यय होते हैं। 'कण्' का

---

* "पण्डा तत्त्वानुगा बुद्धि" हेमचन्द्र ।

† "कश्मीरमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य" गीतगो० १ (मुद्रन—विहित)।

‡ मतिशमोपयोगि द्रव्य तदीयकौशलञ्च शिल्पम्।

'ण्' इत्, 'क' रहता है। यथा—(ष्ठिक)—(असि प्रहरणम् अस्य) आसिक, (प्रास प्रहरणम् अस्य) प्रासिक, (परश्वध प्रहरणमस्य) पारश्वधिक, (तरवारि प्रहरणमस्य) तारवारिक। (कण्)—(धनु प्रहरणमस्य) धानुष्क।

किन्तु 'शक्ति' और 'यष्टि' शब्दके उत्तर 'ष्णीक' (ईकक्) होता है; यथा—(शक्ति प्रहरणमस्य) शाक्तीक, (यष्टि प्रहरणमस्य) याष्टीक।

तत् अस्य प्रयोजनम् इत्यर्थे।

११२। यत्—'तत् अस्य प्रयोजनम्*' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'यत्' प्रत्यय होता है, 'त्' इत्, 'य' रहता है, यथा—(स्वर्ग प्रयोजनम् अस्य) स्वर्ग्यम्, (यश प्रयोजनमस्य) यशस्यम्, (आयु प्रयोजनमस्य) आयुष्यम्, (काम प्रयोजनमस्य) काम्यम्।

तत् अस्य शीलम् इत्यर्थे।

११३। ष्ण (ण)—'तत् अस्य शीलम्' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्ण' प्रत्यय होता है, यथा—(गुरोर्दोषाणां छादनम् आवरणं छत्रम्; छत्रं शीलम् अस्य) छात्र, (शिक्षा शीलमस्य) शैक्ष, (तप शीलमस्य) तापस, (चुर्+अ=चुरा—चौर्यम् इत्यर्थः; चुरा शीलमस्य) चौर।

तत् अस्य प्राप्तम् इत्यर्थे।

११४। ष्ण (अण्), ष्ठिक (ठञ्)—'तत् अस्य प्राप्तम्' इस अर्थमें 'ऋतु' शब्दके उत्तर 'ष्ण', और 'समय'-शब्दके उत्तर 'ष्ठिक' प्रत्यय होता है। यथा—(ऋतु अस्य प्राप्त) आर्त्तव [कुसु-

---

* प्रयोजनम्—फल कारणेष्वर्थ।

मम्]।* (समय अस्य प्राप्त) सामयिकं (प्राप्तकालम्, समयोचितम् इत्यर्थ —कार्य्यम्) ।

निवासार्थे ।

९९९। ष्ण (अण्)—'स· अस्य निवास·', 'स· अस्य अभिजन·'† इन दोनो अर्थोंमे शब्दके उत्तर 'ष्ण' होता है। यथा—(मथुरा निवास अस्य) माथुर , (मिथिला निवास अस्य) मैथिल ; (उत्कल निवास अस्य) औत्कल ,(विदेह निवास· अस्य) वैदेह , (मद्र निवास अस्य) माद्र , (वङ्गोऽस्य निवास) वाङ्ग । 'अभि· जन'-अर्थमेभी इसप्रकार , यथा—(गन्धारोऽस्याभिजन·) गान्धार ‡।§

सा अस्य देवता इत्यर्थे ।

९९६। ष्ण (अण्), ष्णय, ष्णेय (ढक्), इय (घ)—

* "अथ यथासुखमार्त्तवमुत्सव समनुभूय विलासवतीसख " र० ९ ४८ । "अभिभूय विभूतिमार्त्तवीम्" र० ८ ३६, "सखीभिर्याति सम्पर्क लताभि श्रीरिवार्त्तवी" विक्रमो० १ १३ ।

† सम्प्रति वासस्थान निवास , पूर्ववासस्थानम् अभिजनः (यत्र पूर्वै· रुषितमित्यर्थ)।

‡ बहुवचनमें, 'निवास' और 'अभिजन' अर्थमें विहित प्रत्ययका लोप होता है , यथा—(वङ्ग एषां निवास) वङ्गा । स्त्रीलिङ्गमें लोप नहीं होता ; यथा—(मगध आसा निवास) मागध्य ।

§ 'तस्य राजा'—इस अर्थमेंभी इसीप्रकार 'ष्ण'-प्रत्यय होता है , यथा—(विदेहस्य राजा) वैदेह , (कश्मीरस्य राजा) काश्मीर , (नि· षधस्य राजा) नैषध । (बहुवचनमे प्रत्यय-लोप)—कश्मीरा , विदेहा ।

'सा अस्य देवता' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्ण' और 'ष्ण्य' प्रत्यय होते हैं । यथा—(ष्ण)—(शिव देवता अस्य) शैव, (विष्णु देवता अस्य) वैष्णव, (शक्ति देवता अस्य) शाक्त । (ष्ण्य)—(गणपति देवता अस्य) गाणपत्य (ण्य), (प्रजापति देवताऽस्य) प्राजापत्य (ण्य), (वायु देवताऽस्य) वायव्य (यत्), (सोम देवताऽस्य) सौम्य (ट्यण्) ।

'अग्नि'-शब्दके उत्तर 'ष्णेय' होता है, 'ष्' और 'ण्' इत्, 'एय' रहता है, यथा—(अग्नि देवताऽस्य) आग्नेय [चरु], आग्नेयी ऋक् ।

'महेन्द्र' शब्दके उत्तर 'इय' और 'ष्ण' होते हैं, यथा—(महेन्द्र देवताऽस्य) माहेन्द्रियम्, माहेन्द्रम् [हवि] ।

सा अस्मिन् पौर्णमासी इत्यर्थे ।

१९७ । ष्ण (अण्), ष्णिक (ठक्)—सञ्ज्ञा समझानेसे, 'सा पौर्णमासी अस्मिन् [मासे]' इस अर्थमें 'ष्ण' और 'ष्णिक' प्रत्यय होते हैं । यथा—(ष्ण)—(विशाखया नक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी—वैशाखी ; वैशाखी पौर्णमासी अस्मिन्) वैशाख [मास], (ज्यैष्ठी पौर्णमासी अस्मिन्) ज्यैष्ठ, (आषाढी पौर्णमासी अस्मिन्) आषाढ, (भाद्री, भाद्रपदी च, पौर्णमासी अस्मिन्) भाद्र, भाद्रपद, (आश्विनी पौर्णमासी अस्मिन्) आश्विन, (पौषी पौर्णमासी अस्मिन्) पौष, (माघी पौर्णमासी अस्मिन्) माघ ।

'आग्रहायणी' शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है ; यथा—(आग्रहायणी पौर्णमासी अस्मिन्) आग्रहायणिक । 'पक्षे ष्ण' इति केचित् यथा—आग्रहायण ।

श्रावणी, कार्त्तिकी, फाल्गुनी और चैत्री शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ष्णिक' होता है ; पक्षे—'ष्ण' ; यथा—(श्रावणी पौर्णमासी अस्मिन्) श्रावणिक , श्रावण ; (कार्त्तिकी पौर्णमासी अस्मिन्) कार्त्तिकिक, कार्त्तिक , (फाल्गुनी पौर्णमासी अस्मिन्) फाल्गुनिक , फाल्गुन ; (चैत्री पौर्णमासी अस्मिन्) चैत्रिक , चैत्र ।

तद्धित-प्रत्यय—द्वितीयान्तसे।

वक्ष्यमाण तद्धित प्रत्यय द्वितीयान्तसे होते हैं—

तत् वेत्ति, तत् अधीते इत्यर्थे।

९९८। ष्ण (अण्), ष्णिक (ठक्), कण् (वुन्)—'तत् वेत्ति', 'तत् अधीते' इन दोनो अर्थोमे शब्दके उत्तर 'ष्ण', 'ष्णिक' और 'कण्' प्रत्यय होते हैं। यथा—(ष्ण)—(व्याकरण वेत्ति, अधीते वा) वैयाकरण , (उपनिषद् वेत्ति, अधीते वा) औपनिषद। (ष्णिक)—(वेदं वेत्ति, अधीते वा) वैदिक ; (वेदान्तं वेत्ति, अधीते वा) वैदान्तिक , (तर्कं वेत्ति, अधीते वा) तार्किक ; (न्यायं वेत्ति, अधीते वा) नैयायिक , (पुराणं वेत्ति, अधीते वा) पौराणिक ; (अलङ्कारं वेत्ति, अधीते वा) आलङ्कारिक , (ज्योतिषं वेत्ति, अधीते वा) ज्यौतिषिक । (कण्)*—(क्रमं वेत्ति, अधीते वा) क्रमक , (पदं वेत्ति, अधीते वा) पदक ; (शिक्षा वेत्ति, अधीते वा) शिक्षक , † (मीमांसां वेत्ति, अधीते वा) मीमांसक ।

---

* यहाँ 'णित्'-कार्य्य नहीं होता।

† 'शिक्षा' और 'मीमांसा'-शब्दका अन्त्यस्वर ह्रस्व होता है।

तत् अधिकृत्य कृतम् इत्यर्थे ।

९९९ । ण्य (अण्), ण्णीय (छ), ष्णिक—अन्य समझानेसे, 'तत् अधिकृत्य * कृतम्' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ण्य', 'ण्णीय' और 'ष्णिक' प्रत्यय होते हैं; 'ण्णीय' के 'ण' और 'ण्' इत्, 'ईय' रहता है । यथा—(ण्य)—(रामस्य अयन—चरितम्—अधिकृत्य कृतम्) रामायणम्, (भरतान्—भरतवंशीयान्—अधिकृत्य कृतम्) भारतम्; (भगवन्तम् अधिकृत्य कृतम्) भागवतम् । (ण्णीय)—(वाक्य पदञ्च अधिकृत्य कृतम्) वाक्यपदीयम्, (किरातम् अर्जुनञ्च अधिकृत्य कृतम्) किरातार्जुनीयम्, (राघवान् पाण्डवांश्च अधिकृत्य कृतम्) राघवपाण्डवीयम् । (ष्णिक)—(अनुशासनम् अधिकृत्य कृतम्) आनुशासनिकम्, (अश्वमेधम् अधिकृत्य कृतम्) आश्वमेधिकम् । †

तत् अर्हति इत्यर्थे ।

९६० । यत्—'तत् अर्हति' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'यत्'-प्रत्यय होता है, 'त्' इत्, 'य' रहता है, यथा—(दण्डम् अर्हति इति) दण्ड्यः; (छेदमर्हति) छेद्य, (भेदमर्हति) भेद्य, (वधमर्हति) वध्यः; (कराम् अर्हति) कर्य; (अर्घमर्हति) अर्घ्यः, (गुहमर्हति) गुह्य; (इभम्—हस्तिनम्—अर्हति) इभ्य (धनी इत्यर्थ), (शीर्षच्छेदम्

---

* अधिकृत्य—प्रस्तुत्य, अवलम्ब्य इत्यर्थ ।

† कहीं कहीं प्रत्ययका लोप होता है; यथा—(वासवदत्ताम् अधिकृत्य कृता आख्यायिका) वासवदत्ता, कादम्बरी; शकुन्तला—'तद्धितलुपि प्रकृतिलिङ्गता' इति स्त्रीत्वम्; रत्नावली; कुमारसम्भवम्, जानकीहरणम् ।

अर्हति) शीर्षच्छेद्य [चौर] ।

(क) ईय (छ)—'दक्षिणा'-शब्दके उत्तर 'ईय' भी होता है ; पक्षे—'यत्', यथा—(दक्षिणाम् अर्हति) दक्षिणीय, दक्षिण्य *। "निष्क-शतसुवर्णपरिमाणा दक्षिणा देवी दक्षिणार्थे परिग्राहयति" मालविका० ५ ।

(ख) इय (घ)—'यज्ञ'-शब्दके उत्तर 'इय' होता है ; यथा—(यज्ञकर्म अर्हति) यज्ञिय [देश] । †

तत् वहति इत्यर्थे ।

९९१ । यत्, ष्णेय (ढक्), खीन (ख), ष्णिक (ठक्), ष्ण (अण्)—'तत् वहति' इस अर्थमें 'धुर्'-शब्दके उत्तर 'यत्', 'ष्णेय' और 'खीन' प्रत्यय होते हैं, यथा—(धुर वहति) धुर्य (यत्), धौरेय (ष्णेय), धुरीण ‡ (खीन) ।

'सर्वधुरा'-शब्दके उत्तर 'खीन' होता है ; 'ण्' इत्, 'ईन' रहता है ; यथा—(सर्वधुरा वहति) सर्वधुरीण ।

'हल' और 'सीर'-शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है ; यथा—(हलं वहति) हालिक ; (सीर—लाङ्गलं—वहति) सैरिक ।

'रथ' और 'युग'-शब्दके उत्तर 'यत्' होता है, यथा—(रथं वहति) रथ्य—"धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्या" शकु० १. ८, (युगं वहति) युग्य (रथाश्व इत्यर्थः)—"हरियुग्यं रथं तस्मै प्रजिघाय पुरन्दर" र० १२. ८४ ।

---

* 'ष्य (यन्)'-भी होता है, यथा—दाक्षिण्य ।

† 'अर्हत्यर्थे तु शालाया खे शालीन सलज्जक'—(शालाम् अर्हति) शालीनः (खीन—ख ; सलज्ज इत्यर्थः)।

‡ यहाँ 'णित्'-कार्य नहीं होता ।

'शाकट'-शब्दके उत्तर 'ष्य' होता है, यथा—(शकट वहति) शाकट ।

तत् व्याप्नोति इत्यर्थे ।

१६२ । ष्णिक (ठक्)—'तत् व्याप्नोति' इस अर्थमें कालवाचक-शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है, यथा—(पक्ष व्याप्नोति) पाक्षिकं [पारायणम्]; (मास व्याप्नोति) मासिक [चान्द्रायणम्, अशौचञ्च] ।

द्विगु-समास होनेसे, प्रत्ययका विकल्पसे लोप होता है, यथा—दाशाहिकम्, दशाहम्; द्वादशरात्रिकम्, द्वादशरात्रम्, त्रैवार्षिकम्, त्रिवर्षम्, षाड्वार्षिकम्, षड्वर्षम् ।

(क) ईन* (ख)—(सर्वपथ व्याप्नोति) सर्वपथीन-[रथ]—सर्वपथीना मतिः; (सर्वाङ्गं व्याप्नोति) सर्वाङ्गीण † [ताप]; (सर्वकर्माणि व्याप्नोति) सर्वकर्मीण (सकलकर्मक्षम इत्यर्थे —पुरुष) ।

तद्धित-प्रत्यय—तृतीयान्तसे ।

वक्ष्यमाण तद्धित प्रत्यय तृतीयान्तसे होते हैं—

तेन कृतम् इत्यर्थे ।

१६३ । ष्णिक (ठक्), ष्णेय (ढञ्), ष्ण (अण्)—'तेन कृतम्' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्णिक' और 'ष्ण' प्रत्यय होते हैं । यथा—(ष्णिक)—(कायेन कृतम्) कायिकम्, (शरीरेण कृतम्) शारीरिकम्; (वाचा कृतम्) वाचिकम्, (वचनेन कृतम्) वाचनिकम्;

---

* यहाँ 'णित्'-कार्य्य नहीं होता ।

† 'सर्वाङ्गीन' इत्यपि दृश्यते ।

(मनसा कृतम्) मानसिकम् । (ष्ण)—(मक्षिकाभि कृतम्) माक्षिकम्; (क्षुद्राभि कृतम्) क्षौद्रम्; (सरघाभि कृतम्) सारघम्;—मधु इत्यर्थ ।

'पुरुष' शब्दके उत्तर 'ष्णेय' होता है, यथा—(पुरुषेण कृत) पौरुषेय [ग्रन्थ]—"अपौरुषेयो वै वेद" ।

तेन प्रोक्तम् इत्यर्थे ।

१६३ । ष्ण (अण्), ष्णीय (छ), ष्यय (ण्य)—'तेन प्रोक्तम्' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'ष्ण', 'ष्णीय' और 'ष्यय' होते हैं । यथा—(ष्ण)—(ऋषिभि प्रोक्तम्) आर्षम्, (मनुना प्रोक्तम्) मानवम्, मानवीयम् (ष्णीय), (विष्णुना प्रोक्तम्) वैष्णवम्; (पतञ्जलिना प्रोक्तम्) पातञ्जलम्; (कणादेन प्रोक्तम्) काणादम्, (उशनसा प्रोक्तम्) औशनसम्, (अङ्गिरसा प्रोक्तम्) आङ्गिरसम्; (पराशरेण प्रोक्तम्) पाराशरम्, पाराशरीयम् (ष्णीय) । (ष्णीय)—(पाणिनिना प्रोक्तम्) पाणिनीयम्; (जैमिनिना प्रोक्तम्) जैमिनीयम्, (नारदेन प्रोक्तम्) नारदीयम्; (वाल्मीकिना प्रोक्तम्) वाल्मीकीयम्, (बौधायनेन प्रोक्तम्) बौधायनीयम् । (ष्यय)—(बृहस्पतिना प्रोक्तम्) बार्हस्पत्यम् ।

तेन रक्तम् इत्यर्थे ।

१६४ । ष्ण (अण्), ष्णिक (ठक्), अन्, कन्—'तेन रक्तम्*' इस अर्थमें रञ्जकद्रव्यवाचक शब्दके उत्तर 'ष्ण'-प्रत्यय होता है । यथा—(कषायेण रक्तम्) काषायम्; (कुसुम्भेन रक्तम्) कौसुम्भम्;

---

* शुक्लस्य वर्णान्तरापादनम् इह रञ्जे अर्थ ।

(मञ्जिष्ठया रक्तम्) माञ्जिष्ठम् । (हरिद्रया रक्तम्) हारिद्रम् (अत्र)।

'लाक्षा' और 'रोचना' शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है, यथा—(लाक्षया रक्तम्) लाक्षिकम्, (रोचनया रक्तम्) रौचनिकम् ।

'नीली'-शब्दके उत्तर 'अन्' होता है, 'न्' इत्, 'अ' रहता है, यथा—(नील्या रक्तम्) नीलम् ।

'पीत'-शब्दके उत्तर 'कन्' होता है, 'न्' इत्, 'क' रहता है, यथा—(पीतेन रक्तम्) पीतकम् ।

तेन निर्वृत्तम् इत्यर्थे ।

९६६ । ष्णिक (ठञ्)—'तेन निर्वृत्तम् (निष्पन्नम्)' इस अर्थमें कालवाचक शब्दके उत्तर 'ष्णिक'-प्रत्यय होता है, यथा—(दिनेन निर्वृत्तम्) दैनिकम्, (मासेन निर्वृत्तम्) मासिकम्, (वर्षेण निर्वृत्तम्) वार्षिकम्; (संवत्सरेण निर्वृत्तम्) सांवत्सरिकम् ।

'अहन्' शब्दके स्थानमें 'अह्न' होता है, यथा—(अह्ना निर्वृत्तम्) आह्निकम् ।

• तेन युक्तम् इत्यर्थे ।

९६७ । ष्ण (अण्)—काल समझानेसे, 'तेन युक्तम्' इस अर्थमें नक्षत्रवाचक शब्दके उत्तर 'ष्ण' प्रत्यय होता है, यथा—(ज्येष्ठया नक्षत्रेण युक्तम्) ज्यैष्ठम् [अहः]; (ज्येष्ठया युक्ता) ज्यैष्ठी [रात्रि, पौर्णमासी वा], (आषाढया नक्षत्रेण युक्ता) आषाढी, (श्रवणया नक्षत्रेण युक्ता) श्रावणी, (मद्रया नक्षत्रेण युक्ता) माद्री, (भद्रपदया नक्षत्रेण युक्ता) भाद्रपदी; (अश्विन्या नक्षत्रेण युक्ता) आश्विनी, (कृत्तिकया नक्षत्रेण युक्ता) कार्त्तिकी; (आग्रहायण्या—मृगशिरसा—नक्षत्रेण युक्ता)

आग्रहायणी, (मघया नक्षत्रेण युक्ता) माघी; (फाल्गुन्या नक्षत्रेण युक्ता) फाल्गुनी; (चित्रया नक्षत्रेण युक्ता) चैत्री।

'तिष्य' और 'पुष्य'-शब्दके यकारका लोप होता है; यथा—(तिष्येण नक्षत्रेण युक्ता) तैषी; (पुष्येण नक्षत्रेण युक्ता) पौषी।

तेन जीवति इत्यर्थे।

९९८। ष्णिक (ठक्)—'तेन जीवति' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है, यथा—(वेतनेन जीवति) वैतनिक, (वाहनेन जीवति) वाहनिक, (जालेन जीवति) जालिक, (उपदेशेन जीवति) औपदेशिक, (धनुषा जीवति) धानुष्क ('ष्णिक' के स्थानमें 'क'); (वागुरया जीवति) वागुरिक, (नावा जीवति) नाविक (खेवट); (क्रयविक्रयाभ्यां जीवति) क्रयविक्रयिक (ठन्)—'व्यापारी' इति भाषा।

'आयुध'-शब्दके उत्तर 'ष्णीय' (छ) भी होता है, यथा—(आयुधेन जीवति) आयुधीय, आयुधिक (ठन्)।

तेन वित्त इत्यर्थे।

९९९। चुञ्चु (चुञ्चुप्), चण (चणप्)—'तेन वित्त (ख्यात)' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'चुञ्चु' और 'चण' प्रत्यय होते हैं; यथा—(विद्यया वित्त) विद्याचुञ्चु, विद्याचण; (ज्ञानेन वित्त) ज्ञानचुञ्चु, ज्ञानचण, (अर्थेन वित्तः) अर्थचुञ्चु, अर्थचण; (मायया वित्त) मायाचुञ्चु, मायाचण, (अक्षेण वित्त) अक्षचुञ्चु, अक्षचणः; (अक्षरेण वित्त) अक्षरचुञ्चु, अक्षरचण (मुन्शी)। वेदान्तचुञ्चु।*

---

* स्थान, स्थानीय—'तेन तुल्य' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'स्थान'

तद्धित-प्रत्यय—चतुर्थ्यन्तसे ।

वक्ष्यमाण तद्धित प्रत्यय चतुर्थ्यन्तसे होते हैं—

तस्मै हितम् इत्यर्थे ।

९७० । यत्, णीन (ख), इय (घ)—'तस्मै हितम्' इस अर्थमें शरीरावयव वाचक शब्दके उत्तर 'यत्' प्रत्यय होता है, यथा—(दन्ताय हितम्) दन्त्यम्, (नसे हितम्) नस्यम्* ।

(ब्रह्मणे हितम्) ब्रह्मण्यम् ।

(णीन)—(सर्वजनेभ्यो हितम्) सार्वजनीनम्, सर्वजनीनम्, सार्वजनिकम् (ष्णिक—ठञ्), (विश्वजनेभ्यो हितम्) विश्वजनीनम् ।

(इय)—(यज्ञाय हितम्) यज्ञियम् ।

तस्मै प्रभवति इत्यर्थे ।

९७१ । ष्णिक (ठक्)—'तस्मै प्रभवति' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है, यथा—(सङ्ग्रामाय प्रभवति) साङ्ग्रामिक, (सन्नाहाय प्रभवति) सान्नाहिक, (सन्तापाय प्रभवति) सान्तापिक ; (उत्पाताय प्रभवति) औत्पातिक ; (सङ्घाताय—विनाशाय—प्रभवति) साङ्घातिक ।

(क) 'धनु' अर्थमें, 'कार्मुक'-शब्द निपातन सिद्ध, यथा—(कर्मणे प्रभवति) कार्मुकम् (उकञ्) ।

और 'स्थानीय' प्रत्यय होते हैं, यथा—(पित्रा तुल्य) पितृस्थान, पितृस्थानीय भ्रातृस्थान, भ्रातृस्थानीय, मातृस्थाना, मातृस्थानीया [मातृष्वसा] ।

* 'नासिका' के स्थानमें 'नस्' होता है ।

तादर्थ्ये।

१७२। ष्यञ—'तादर्थ्य' समझानेसे, शब्दके उत्तर 'ष्यञ' प्रत्यय होता है, यथा—(पादाय इदम्) पाद्यम् (यत्); (अर्घाय इदम्) अर्घ्यम् (यत्); (अतिथये इदम्) आतिथ्यम् (ञ्य); (अग्निदेवतायै इदम्) आग्निदैवत्यम्, अग्निदेवत्यम्, (पितृदेवतायै इदम्) पितृदैवत्यम्, पितृदेवत्यम्।

तद्धित प्रत्यय—पञ्चम्यन्तसे।

वक्ष्यमाण तद्धित प्रत्यय पञ्चम्यन्तसे होते हैं—

तत आगत इत्यर्थे।

१७३। ष्ण (अण्), ष्णिक (ठक्), कण्—'तत आगत' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्ण', 'ष्णिक' और 'कण्' प्रत्यय होते हैं। यथा—(ष्ण)—(मथुराया आगत) माथुर। (ष्णिक)—(तीर्थात् आगत) तैर्थिक; (नगरात् आगत) नागरिक; (आपणात् आगत) आपणिक। (कण्)—(उपाध्यायात् आगतम्) औपाध्यायकम् (वुञ्), (पितामहात् आगतम्) पैतामहकम् (वुञ्); (मातुः आगतम्) मातृकम् (ठञ्), (भ्रातुः आगतम्) भ्रातृकम् (ठञ्); (पितुः आगतम्) पैतृकम् (ठञ्), पित्र्यम् (य)।

तस्मात् अनपेतम् इत्यर्थे।

१७४। यत्—'तस्मात् अनपेतम्*' इस अर्थमें धर्म, न्याय, अ

---

* अवियुक्तम् इत्यर्थः।

और पथिन् शब्दके उत्तर 'यत्' प्रत्यय होता है, यथा—(धर्मात् अनपेतम्) धर्म्यम् (धर्मयुक्तम् इत्यर्थ), (न्यायात् अनपेतम्) न्याय्यम्; (अर्थात् अनपेतम्) अर्थ्यम्—"स्तुत्य स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती" र० ४, ६, (पथ अनपेतम्) पथ्यम् ।

तद्धित-प्रत्यय—षष्ठ्यन्तसे ।

वक्ष्यमाण तद्धित प्रत्यय षष्ठ्यन्तसे होते हैं—

अपत्यार्थ ।

'अपत्य'* अर्थमे ('तस्य अपत्यम्' इस अर्थमे) शब्दके उत्तर ष्णि, ष्णायन, ष्ण्य, ष्ण, ष्णेय, ष्णीय प्रभृति प्रत्यय होते हैं । यथा—

६७६ । ष्णि (इञ्)—अकारान्त शब्दके उत्तर 'ष्णि' प्रत्यय होता है, 'ष्' और 'ण्' इत्, 'इ' रहता है; यथा—(दशरथस्य अपत्य पुमान्) दाशरथि, (शूरस्य अपत्यम्) शौरि, (द्रोणस्य अपत्यम्) द्रौणि, (गवल्गणस्य अपत्यम्) गावल्गणि (सञ्जय), (युधिष्ठिर) यौधिष्ठिरि, (अर्जुन) आर्जुनि, (कृष्ण) कार्ष्णि, (व्यास) वैयासकि † ।

(क) 'बाहु'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्णि' होता है, यथा—(बाहो

---

* पुत्र कन्या प्रभृति सन्तानको 'अपत्य' कहते हैं । 'अपत्य'-शब्द नित्य क्लीवलिङ्ग । विशेष समझाना हो, तो 'अपत्यं पुमान्', 'अपत्य स्त्री' कहना होता है ।

† 'ष्णि'-प्रत्यय परे रहनेसे, 'व्यास' प्रभृति शब्दके अन्त्य अवयवके स्थानमे 'अक' (अकङ्) होता है ।

अपत्यम्) बाहवि ; (सुमित्राया अपत्यम्) सौमित्रि ; (बलाकायाः अपत्यम्) बालाकि ।

१७६ । ष्णायन (फक्)—'नड'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्णायन'-प्रत्यय होता है, 'ष्' और 'ण्' इत्, 'आयन' रहता है, यथा—(नडस्य अपत्यम्) नाडायन ; (नरस्य अपत्यम्) नारायण ; (अश्वलस्य अपत्यम्) आश्वलायन ; (दक्ष) दाक्षायण ; (द्रोण) द्रौणायन ; (शकट) शाकटायन , (युगन्धर) यौगन्धरायण । *

१७७ । ष्णय (यञ्)—'गर्ग' प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्णय'-प्रत्यय होता है, यथा—(गर्गस्य अपत्यम्) गार्ग्य , (वत्सस्य अपत्यम्) वात्स्य ; (पुलस्ते अपत्यम्) पौलस्त्य , (मण्डु) माण्डव्य ; (यज्ञवल्क) याज्ञवल्क्य , (शाण्डिल) शाण्डिल्य ; (चणक) चाणक्य ; (जमदग्नि) जामदग्न्य ; (पराशर) पाराशर्य ; (व्याघ्रपाद्—व्याघ्रपद अपत्यम्) वैयाघ्रपद्य ।

(दितेः अपत्यम्) दैत्य ; (अदिति) आदित्य , (प्रजापति) प्राजापत्य ,—(ष्य) ।

१७८ । ष्ण (अण्)—'शिव'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्ण'-प्रत्यय होता है, यथा—(शिवस्य अपत्यम्) शैव ; (ककुत्स्थस्य अपत्यम्) काकुत्स्थ , (विश्रवसस्य अपत्यम्) वैश्रवण , (श्रवण) श्रावण ; (यस्क) यास्क , (पृथाया अपत्यम्) पार्थ , (इलाया अपत्यम्) ऐल ।

(क) 'भृगु'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्ण' (अण्) होता है ।

---

* (अमुष्य ख्यातस्य अपत्यम्) आमुष्यायण (सद्वंशोद्भव इत्यर्थ —षष्ठ्या अलुक्) ।

यथा—(भृगो अपत्यम्) भार्गव , (मरीचे अपत्यम्) मारीच ; (वसिष्ठस्य अपत्यम्) वासिष्ठ ; (कुत्स) कौत्स , (गोतम) गौतम , (अङ्गिरस्) आङ्गिरस ; (विश्वामित्र) वैश्वामित्र । (यदो अपत्यम्) यादव , (वसुदेव) वासुदेव । (कुरो अपत्यम्) कौरव ; (पाण्डु) पाण्डव , (धृतराष्ट्र) धार्तराष्ट्र । (पुरु) पौरव , (रघु) राघवः , (मनु) मानव , (द्रुपद) द्रौपद । *

(ख) सङ्ख्यावाचक शब्दके परवर्ती 'मातृ'-शब्दके उत्तर 'ष्ण' होता है , और 'ष्ण' परे, 'मातृ'—'मातुर' होता है , यथा—(द्वयो मात्रो अपत्यम्) द्वैमातुर , (षण्णां मातृणामपत्यम्) षाण्मातुर ।

(ग) 'कन्या'-शब्दके उत्तर 'ष्ण' होता है ; और 'ष्ण' परे, 'कन्या'—'कनीन' होता है , यथा—(कन्याया अपत्यम्) कानीन (व्यास , कर्ण्ण) ।

(घ) 'विद'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्ण' (अञ्) होता है ; यथा—(विदस्य अपत्यम्) वैद , (उर्वस्य अपत्यम्) और्व ; (कश्यपस्य अपत्यम्) काश्यप ; (कुशिक) कौशिकः ; (भरद्वाज) भारद्वाज , (उपमन्यु) औपमन्यव , (शरद्वत्) शारद्वत , (ऋष्टिषेण) आर्ष्टिषेण ; (शुनक) शौनक । (पुनर्भ्वा † अपत्यम्) पौनर्भव , (पुत्रस्य अपत्यम्) पौत्र , (दुहितृ अपत्यम्) दौहित्रः ।

१७९ । ष्णेय (ढक्)—स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दके उत्तर 'ष्णेय'-प्रत्यय

---

* अपत्य-प्रत्ययान्त ऐक्ष्वाक, कौरव्य, मनुष्य और मानुष शब्द निपातनसिद्ध ; यथा—(इक्ष्वाको अपत्यम्) ऐक्ष्वाक (अण्), (कुरो अपत्यम्) कौरव्य (ण्य) , (मनो अपत्यम्) मनुष्य (यत्), मानुष (अञ्) ।

† पुनर्भू —पुनर्विवाहिता स्त्री ।

होता है ; यथा—(गङ्गाया अपत्यम्) गाङ्गेय ; (राधाया अपत्यम्) राधेय ; (विनताया अपत्यम्) वैनतेय ; (सरमा) सारमेय ; (कुन्ती) कौन्तेय , (रोहिणी) रौहिणेय ; (रुक्मिणी) रौक्मिणेय ; (अम्बिका) आम्बिकेय , (भगिन्या अपत्यम्) भागिनेय ।

(क) 'शुभ्र'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्णेय' होता है , यथा—(शुभ्रस्य अपत्यम्) शौभ्रेय ; (अत्रे अपत्यम्) आत्रेय , (मृकण्डो अपत्यम्) मार्कण्डेय ; (अदिते अपत्यम्) आदितेय , (विमातु अपत्यम्) वैमात्रेय।

९८० । ष्णीय (छ)—'स्वसृ' और 'भ्रातृ' शब्दके उत्तर 'ष्णीय'-प्रत्यय होता है ; यथा—(स्वसु अपत्यम्) स्वस्रीय ; (भ्रातु अपत्यम्) भ्रात्रीय *।

(क) 'पितृष्वसृ' और 'मातृष्वसृ' शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ष्णेय' (ढक्) होता है , 'ष्णेय' होनेसे, ऋकारका लोप होता है ; यथा— (पितृष्वसु अपत्यम्) पैतृष्वसेय , पक्षे—(ष्णीय—छण्) पैतृष्वस्रीय ; (मातृष्वसु अपत्यम्) मातृष्वसेय , पक्षे—(ष्णीय—छण्) मातृष्वस्रीय ।

९८१ । यत्—'राजन्' और 'श्वशुर' शब्दके उत्तर 'यत्'-प्रत्यय होता है ; यथा—(राज्ञ अपत्यम्) राजन्य ; (श्वशुरस्य अपत्यम्) श्वशुर्य ।

९८२ । इय (घ)— जाति समझानेसे, 'क्षत्र'-शब्दके उत्तर 'इय'-प्रत्यय होता है ; यथा—(क्षत्रस्य अपत्यम्) क्षत्रिय ।

९८३ । ईन (ख)—'कुल'-शब्दके उत्तर 'ईन' होता है ; यथा— (कुलस्य अपत्यम्) कुलीन । †

---

* 'भ्रातृ' शब्दके उत्तर विकल्पसे 'व्य' होता है ; यथा—भ्रातृव्य ।

† सत्कुलात् खे सत्कुलीन", सत्कुल्य सत्कुलस्तु दता ।
स्मा माहाकुलीन" स्याद्, दौष्कुलेयो दका तथा ॥

९८४ । बहुवचनमें—गर्गादि, यस्कादि* और विदादिके उत्तर विहित अपत्य प्रत्ययका लोप होता है , किन्तु स्त्रीलिङ्गमें नहीं होता । यथा—(गर्गस्य अपत्यानि) गर्गाः , (यस्कस्य अपत्यानि) यस्काः , (अत्रेः अपत्यानि) अत्रयः , (विदस्य अपत्यानि) विदाः । (स्त्रीलिङ्गमें)—(यस्कस्य अपत्यानि स्त्रियः) यास्क्यः , (अत्रेः अपत्यानि स्त्रियः) आत्रेय्यः ।

(क) बहु पुरुष अपत्य समझानेसे, देशनामसे राजनाम बोधक शब्दके उत्तर अपत्य प्रत्ययका लोप होता है , यथा—(अङ्गस्य राज्ञः अपत्यानि पुमांसः) अङ्गाः ; ऐसे—वङ्गाः , कलिङ्गाः ।

प्रसिद्ध क्षत्रिय-नामके उत्तर विकल्पसे लोप होता है , यथा—(रघोः अपत्यानि पुमांसः) रघवः , राघवाः , (कुरोः अपत्यानि) कुरवः , कौरवाः , यदवः , यादवाः ; (इक्ष्वाकोः अपत्यानि) इक्ष्वाकवः , ऐक्ष्वाकाः ; वृष्णयः , वार्ष्णेयाः , भरताः , भारताः ।

तस्य समूह इत्यर्थे ।

९८५ । ष्ण (अण्), कण् (वुञ्), ष्ण्य (यञ्), ष्णिक (ठक्)—'तस्य समूहः' इस अर्थमें शब्दके उत्तर ष्ण, कण्, ष्ण्य और ष्णिक होते हैं । यथा—(ष्ण)—(काकानां समूहः) काकम् , (उलूकानां समूहः) औलूकम् , (कपोतानां समूहः) कापोतम् , (मयूराणां समूहः) मायूरम् , (भिक्षाणां समूहः) भैक्षम् , (अङ्गाराणां समूहः) आङ्गारम् , (पदातीनां समूहः) पादातम् । (कण्)—(वृद्धानां समूहः) वार्द्धकम् ; (उक्ष्णां—वृषाणां—समूहः) औक्षकम् , (उष्ट्राणां समूहः) औष्ट्रकम् , (राजन्यानां समूहः) राजन्यकम् , (राजपुत्राणां समूहः)

* यस्कादि—यस्क, अत्रि, भृगु, कुत्स, वसिष्ठ, गोतम, आङ्गिरस् ।

राजपुत्रकम्, (मनुष्याणां समूहः) मानुष्यकम्; (अजानां समूहः) आजकम्; (धेनूनां समूहः) धैनुकम् (ठक्)। (ष्यञ)—(गणिकानां समूहः) गाणिक्यम्, (ब्राह्मणानां समूहः) ब्राह्मण्यम् (यत्)। (ष्णिक)—(अपूपानां समूहः) आपूपिकम्, (हस्तिनां समूहः) हास्तिकम्।

'केश'-शब्दके उत्तर 'ष्यञ' और 'ष्णिक' होते हैं; यथा—(केशानां समूहः) कैश्यम्, कैशिकम्।*

'अश्व'-शब्दके उत्तर 'ष्ण' और 'ष्णीय' (छ) होते हैं; यथा— (अश्वानां समूहः) आश्वम्, आश्वीयम्।

(क) तल्—'समूह'-अर्थमें, ग्राम, जन, गज, बन्धु और सहाय शब्दके उत्तर 'तल्'-प्रत्यय होता है, 'तल्'-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग, यथा—(ग्रामाणां समूहः) ग्रामता, (जनानां समूहः) जनता, (गजानां समूहः) गजता, (बन्धूनां समूहः) बन्धुता, (सहायानां समूहः) सहायता।

(ख) य—'पाश' प्रभृति शब्दके उत्तर 'य'-प्रत्यय होता है; 'य'-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग, यथा—(पाशानां समूहः) पाश्या, (तृणानां समूहः) तृण्या, (वातानां समूहः) वात्या, (धूमानां समूहः) धूम्या।

(ग) खण्ड, काण्ड—'समूह'-अर्थमें, यथासम्भव 'खण्ड'† और 'काण्ड' प्रत्यय होते हैं। यथा—(तरूणां समूहः) तरुखण्डः; पादपखण्डः, (कमलानां समूहः) कमलखण्डम्, (कुमुदानां समूहः) कुमुद-

---

* पाशः, पक्षश्च, हस्तश्च—स्युरेते केशतो गणे।
केशपाशः, केशपक्षः, केशहस्तस्ततो भवेत्॥

† 'खण्ड'-के स्थानमें 'षण्ड' भी लिखते हैं। 'खण्ड' अथवा 'षण्ड' शब्द पुं नपुंसक लिङ्ग। 'काण्ड' शब्दभी पुं-नपुंसक लिङ्ग।

खण्डम् । (दूर्वाणां समूह) दूर्वाकाण्डम् , (तमसां समूह) तमस्काण्डम् , (कर्मणां समूह) कर्मकाण्डम् ।

(घ) ग्राम (ग्रामच्)—'समूह'-अर्थमें, 'गुण' प्रभृति शब्दके उत्तर 'ग्राम'-प्रत्यय होता है , यथा—(गुणानां समूह) गुणग्राम , (करणानां समूह) करणग्राम , (इन्द्रियाणां समूह) इन्द्रियग्राम , (शब्दानां समूह) शब्दग्राम , (तत्त्वानां समूह) तत्त्वग्राम ।

तस्य इदम् इत्यर्थे ।

९८६ । ष्ण (अण्), ष्णय (यत्), ईय (छ)—'तस्य इदम्' इस अर्थमें 'ष्ण', 'ष्णय' और 'ईय' प्रत्यय होते हैं । यथा—(ष्ण)—(विष्णो इदम्) वैष्णवम् , (शिवस्य इदम्) शैवम् , (जनपदस्येदम्) जानपदम् , (देवस्येदम्) दैवम् , (मकरस्येदम्) माकरम् , (इन्द्रस्येदम्) ऐन्द्रम् , (महेन्द्रस्येदम्) माहेन्द्रम् , (मनस इदम्) मानसम् , (शरीरस्येदम्) शारीरम् , (महिषस्येदम्) माहिषम् , (वेणोरिदम्) वैणवम् , (पलाशस्येदम्) पालाशम् , (खदिरस्येदम्) खादिरम् , (बिल्वस्येदम्) बैल्वम् , (मुञ्जानाम् इदम्) मौञ्जम् , (गङ्गाया इदम्) गाङ्गम् , (हिमवत इदम्) हैमवतम् , (पशुपतेरिदम्) पाशुपतम् , (शङ्करस्येदम्) शाङ्करम् , (सूरस्येदम्) सौरम् , (चन्द्रस्येदम्) चान्द्रम् , (उपनिषद इदम्) औपनिषदम् , (पृथिव्या इदम्) पार्थिवम् , (तेजस इदम्) तैजसम् , (रुरो इदम्) रौरवम् , (न्यङ्को इदम्) नैयङ्कवम् , न्याङ्कवम् , (श्वापदस्येदम्) शौवापदम् , श्वापदम् , (स्त्रिया इदम्) स्त्रैणम् , (पुंस इदम्) पौंस्नम्* ।

---

* 'स्त्री' और 'पुम्स्' शब्दके उत्तर 'नञ्' होता है , 'ञ्' इत् , 'न' रहता है ।

(ष्यञ)—(पितृ इदम्) पित्र्यम्, (गो इदम्) गव्यम्। (ईय)—(जलस्येदम्) जलीयम्; (वायो इदम्) वायवीयम्; (भारतवर्षस्येदम्) भारतवर्षीयम्, (तस्य इदम्) तदीयम्, (एतस्य इदम्) एतदीयम्, (युष्माकम् इदम्) युष्मदीयम्; (अस्माकम् इदम्) अस्मदीयम्, (अन्यस्य इदम्) अन्यदीयम्, (भवत इदम्) भवदीयम् * ।

(क) एकवचनमें—'युष्मद्' के स्थानमें 'त्वद्', और 'अस्मद्' के स्थानमें 'मद्' होता है, यथा—(तव इदम्) त्वदीयम्, (मम इदम्) मदीयम्।

(ख) 'खीन' (खञ्) और 'ष्ण' प्रत्यय परे, 'युष्मद्' के स्थानमें 'युष्माक', और 'अस्मद्' के स्थानमें 'अस्माक' होता है; यथा—(युष्माकम् इदम्) यौष्माकीणम्, यौष्माकम्; (अस्माकम् इदम्) आस्माकीनम्, आस्माकम्।

एकवचनमें 'तवक' और 'ममक' होते हैं, यथा—(तव इदम्) तावकीनम्, तावकम्, (मम इदम्) मामकीनम्, मामकम्।

(ग) 'ईय' प्रत्यय होनेसे, 'पर', 'स्व' और 'राजन्' शब्दके उत्तर 'कुक्' होता है; 'उ' और 'क्' इत्, 'क्' रहता है, यथा—(परस्य इदम्) परकीयम्, (राज्ञ इदम्) राजकीयम्, 'स्व'-शब्दके उत्तर विकल्पसे—(स्वस्य इदम्) स्वकीयम्, स्वीयम्।

तस्य विकार इत्यर्थे।

८८७। ष्ण (अण्)—'तस्य विकार' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्ण'-प्रत्यय होता है, यथा—(सुवर्णस्य विकार) सौवर्ण, (रजतस्य

---

* 'भवत्'-शब्दके उत्तर 'कण्' (ठक्) भी होता है, यथा—(भवत इदम्) भावत्कम्।

विकार) राजत , (पित्तलस्य विकारः) पैत्तलः , (सीसकस्य विकार) सैसक , (गुडस्य विकार) गौड ; (सुरस्य विकार) सौर ; (दारो विकार) दारव , (देवदारो विकार) दैवदारव , (इक्षो विकार) ऐक्षव , (पयस विकार) पायस , (तिलस्य विकार) तैलम् ।

मयट् ।

९८८। 'विकार'-अर्थ समझानेसे, शब्दके उत्तर 'मयट्'-प्रत्यय होता है, (यथा— स्वर्णस्य विकार.) स्वर्णमय [घट]; स्वर्णमयी प्रतिमा, (मृदो विकारः) मृन्मयः [घट], मृन्मयी प्रतिमा ।

(क) 'प्राचुर्य्य' (बाहुल्य) समझानेसे, शब्दके उत्तर 'मयट्' होता है, यथा—(अन्न प्रचुरम् अस्मिन्) अन्नमय [यज्ञः], (अपूपा प्रचुरा अस्मिन्) अपूपमयम् [श्राद्धम्]; (रोगा प्रचुरा अस्मिन्) रोगमयम् [शरीरम्], (आनन्दः प्रचुर. अस्मिन्) आनन्दमय [आत्मा]।

(ख) 'व्याप्ति'-अर्थ समझानेसे, शब्दके उत्तर 'मयट्' होता है, यथा—(जलेन व्याप्तम्) जलमयम् [जगत्], (धूमेन व्याप्तम्) धूममयम् [गृहम्]।

(ग) 'संसर्ग' समझानेसे, शब्दके उत्तर 'मयट्' होता है; यथा—(घृतेन संसृष्टम्) घृतमयम् [व्यञ्जनम्], (तिलेन संसृष्टम्) तिलमयम् [तर्पणम्]।

(घ) 'अपृथग्भाव' (अभेद, एकत्व) समझानेसे (अर्थात् 'स्वरूप-अर्थमे) शब्दके उत्तर 'मयट्' होता है; यथा—

(विष्णोः अपृथग्भूतम्—विष्णुस्वरूपम्) विष्णुमयम् [जगत्] ; (वाग्भ्यः अपृथग्भूतम्—वाक्स्वरूपम्) वाङ्मयम् [शास्त्रम्], (चितः अपृथग्भूतः—चित्स्वरूपः) चिन्मयः [पुरुषः] ।

(ङ) 'पुरीष' समझानेसे, 'गो' शब्दके उत्तर 'मयट्' होता है ; यथा—(गोः पुरीषम्) गोमयम् ।

(च) 'हिरण्मय'-शब्द निपातन सिद्ध ; यथा—(हिरण्यस्य विकार) हिरण्मय ।

तस्य भाव इत्यर्थे ।

९८९ । ष्ण (अण्), ष्यञ (ष्यञ्), इमन् (इमनिच्)— 'तस्य भाव' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्ण', 'ष्य' और 'इमन्' प्रत्यय होते हैं । यथा—(ष्ण)—(कुमारस्य भाव) कौमारम्, (शिशो भाव) शैशवम्, (वृद्धस्य भाव) वार्द्धकम्, वार्द्धक्यम् (ष्य); (स्थविरस्य भाव) स्थाविरम्, (गुरो भाव) गौरवम्, (लघो भाव) लाघवम्; (सुष्ठु भाव) सौष्ठवम्, (ऋजो भाव) आर्जवम्; (मृदोर्भाव) मार्दवम्, (पटोर्भाव) पाटवम्; (सुरभेर्भाव) सौरभम्, सौरभ्यम् (ष्य) । (ष्यञ)—(स्थिरस्य भाव) स्थैर्य्यम्, (धीरस्य भाव) धैर्य्यम्, (गम्भीरस्य भाव) गाम्भीर्य्यम्, (कृशस्य भाव) कार्श्यम्, (जडस्य भाव) जाड्यम्, (शीतस्य भाव) शैत्यम्, (उष्णस्य भाव) औष्ण्यम्, (दृढस्य भाव) दार्ढ्यम्; (मन्दस्य भाव) मान्द्यम्, (सुभगस्य भाव) सौभाग्यम्, (दुर्भगस्य भाव) दौर्भाग्यम्; (मधुरस्य भाव) माधुर्य्यम्, माधुरी (ष्ण); (मूर्खस्य भाव) मौर्ख्यम् ; (विषमस्य भाव) वैषम्यम्, (समस्य

भाव) साम्यम्, (कातरस्य भाव) कातर्य्यम्, (कर्कशस्य भाव) कार्कश्यम्, (बालस्य भाव॰) बाल्यम्; (शुक्लस्य भाव) शौक्ल्यम्, (सुमनसो भाव) सौमनस्यम्, (दुर्मनसो भाव) दौर्मनस्यम्, (विमनसो भाव) वैमनस्यम्, (प्रवीणस्य भाव.) प्रावीण्यम्, (उदासीनस्य भाव) औदासीन्यम्, (कृपणस्य भाव) कार्पण्यम्, (मध्यस्थस्य भाव) माध्यस्थ्यम्, (उदारस्य भाव) औदार्य्यम्; (विगुणस्य भाव) वैगुण्यम्, (सुजनस्य भाव) सौजन्यम्, (स्थूलस्य भाव.) स्थौल्यम्, (अधिकस्य भाव) आधिक्यम्। (कण्)—(रमणीयस्य भाव) रामणीयकम्, (कमनीयस्य भाव) कामनीयकम्।

तस्य भावः, तस्य कर्म इत्यर्थे।

९९० । ष्यञ् (ष्यञ्), ष्ण (अण्)—'तस्य भाव' 'तस्य कर्म' इन दोनो अर्थोमे शब्दके उत्तर "ष्यञ" और "ष्ण" होते हैं। यथा—(ष्यञ)—(ब्राह्मणस्य भाव, कर्म वा) ब्राह्मण्यम्, (चोरस्य भाव, कर्म वा) चौर्य्यम्, (अलसस्य भाव, कर्म वा) आलस्यम्, (सख्यु भाव, कर्म वा) सख्यम् (य), (दूतस्य भाव, कर्म वा) दूत्यम् (य), दौत्यम्; (सेनापते भाव, कर्म वा) सैनापत्यम् (यक्), (पुरोहितस्य भाव, कर्म वा) पौरोहित्यम् (यक्), (अधिपते भाव, कर्म वा) आधिपत्यम् (यक्), (शूरस्य भाव, कर्म वा) शौर्य्यम्, (वीरस्य भाव, कर्म वा)वीर्य्यम्, (सुहितस्य—तृप्तस्य—भाव, कर्म वा) सौहित्यम्* (यक्), (सारथेर्भाव, कर्म वा) सारथ्यम्, (आस्तिकस्य भाव,

---

* "अहेरिव गणाद्भीत, सौहित्यान्नरकादिव।
कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्त देवा ब्राह्मण विदु ॥" महाभा॰।

कर्म वा) आस्तिक्यम् , (नास्तिकस्य भाव , कर्म वा) नास्तिक्यम् ; (पण्डितस्य भाव , कर्म वा) पाण्डित्यम् ; (वणिजो भाव , कर्म वा) वाणिज्यम् , (अनुकूलस्य भाव , कर्म वा) आनुकूल्यम् ; (प्रतिकूलस्य भाव , कर्म वा) प्रातिकूल्यम् , (अनृशंसस्य भाव , कर्म वा) आनृशंस्यम् ; (कुशलस्य भाव , कर्म वा) कौशल्यम् , कौशलम् (ष्ण) ; (चपलस्य भाव , कर्म वा) चापल्यम् , चापलम् (ष्ण) , (निपुणस्य भाव, कर्म वा) नैपुण्यम्, नैपुणम् (ष्ण) , (पिशुनस्य भाव , कर्म वा) पैशुन्यम्, पैशुनम् (ष्ण) , (चतुरस्य भाव , कर्म वा) चातुर्य्यम् , चातुरी (ष्ण) ; (सहायस्य भाव , कर्म वा) साहाय्यम् , साहायकम् (कञ्—वुञ्) । (ष्णु)—(शुचे भाव , कर्म वा) शौचम् * ; (अशुचेर्भाव , कर्म वा) आशौचम् , (मुनेर्भाव , कर्म वा) मौनम् , (अकुशलस्य भाव , कर्म वा) आकौशलम् ; (पुरुषस्य भाव , कर्म वा) पौरुषम् ; (सुभ्रातु भाव , कर्म वा) सौभ्रात्रम् , (दुर्भ्रातुर्भाव , कर्म वा) दौर्भ्रात्रम् ; (सुहृद भाव , कर्म वा) सौहृदम् ; (दुर्हृद भाव , कर्म वा) दौर्हृदम् ।

भावार्थे ।

९९१ । त्व, तल्—'तस्य भाव' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'त्व' और 'तल्' प्रत्यय होते हैं । 'त्व' प्रत्ययान्त शब्द क्लीवलिङ्ग, 'तल्'-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग । यथा—(प्रभो भाव) प्रभुत्वम् , प्रभुता ; (भीरो भाव) भीरुत्वम् , भीरुता , (मनुष्यस्य भाव) मनुष्यत्वम् , मनुष्यता ; (अमरस्य भाव) अमरत्वम् , अमरता ;

---

* "अभक्ष्यपरिहारश्च, संसर्गश्चाप्यनिन्दितै ।
स्वधर्मे च व्यवस्थान, शौचमेतत् प्रकीर्त्तितम् ॥" बृहस्पति ।

(पशोर्भाव) पशुत्वम्, पशुता, (शूरस्य भाव) शूरत्वम्, शूरता ; (कातरस्य भाव) कातरत्वम्, कातरता, (चपलस्य भाव) चपलत्वम् ; चपलता, (नास्तिकस्य भाव) नास्तिकत्वम्, नास्तिकता ; (अलसस्य भाव) अलसत्वम्, अलसता, (अन्धस्य भाव) अन्धत्वम्, अन्धता, (मूर्खस्य भाव) मूर्खत्वम्, मूर्खता, (मूकस्य भाव) मूकत्वम्, मूकता, (राज्ञो भाव) राजत्वम्, राजता ; (यूनो भाव) युवत्वम्, युवता, (न्यूनस्य भाव) न्यूनत्वम्, न्यूनता।

९९२। इमन् (इमनिच्)—'तस्य भाव' इस अर्थमें 'नील'-प्रभृति शब्दके उत्तर विकल्पसे 'इमन्'-प्रत्यय होता है, पक्षे—'त्व' और 'तल्'। यथा—(नीलस्य भाव) नीलिमा, नीलत्वम्, नीलता, (पीतस्य भाव) पीतिमा, पीतत्वम्, पीतता, (रक्तस्य भाव) रक्तिमा, रक्तत्वम्, रक्तता, (शुक्लस्य भाव) शुक्लिमा, शुक्लत्वम्, शुक्लता, (वक्रस्य भाव) वक्रिमा, वक्रत्वम्, वक्रता, (उष्णस्य भाव) उष्णिमा, उष्णत्वम्, उष्णता, (जडस्य भाव) जडिमा, जडत्वम्, जडता, (मधुरस्य भाव) मधुरिमा, मधुरत्वम्, मधुरता, (लघोर्भाव) लघिमा, लघुत्वम्, लघुता, (अणोर्भाव) अणिमा, अणुत्वम्, अणुता, (तनोर्भाव) तनिमा, तनुत्वम्, तनुता, (स्वादोर्भाव) स्वादिमा, स्वादुत्वम्, स्वादुता, (पटोर्भाव) पटिमा, पटुत्वम्, पटुता। (९३६ सूत्रानुसार)—(स्थिरस्य भाव) स्थेमा, स्थिरत्वम्, स्थिरता, (पृथोर्भाव) प्रथिमा, पृथुत्वम्, पृथुता ; (प्रियस्य भाव) प्रेमा, प्रियत्वम्, प्रियता, (मृदोर्भाव) म्रदिमा, मृदुत्वम्, मृदुता, (कृशस्य भाव) क्रशिमा, कृशत्वम्, कृशता, (गुरोर्भाव) गरिमा, गुरुत्वम्,

गुरुता ; (दीर्घस्य भाव) द्राघिमा, दीर्घत्वम्, दीर्घता, (दृढस्य भाव) द्रढिमा, दृढत्वम्, दृढता ; (क्षुद्रस्य भाव) क्षोदिमा, क्षुद्रत्वम्, क्षुद्रता, (ह्रस्वस्य भाव) ह्रसिमा, ह्रस्वत्वम्, ह्रस्वता, (महतो भाव) महिमा, महत्त्वम्, महत्ता।

(क) 'बहु'-शब्दके उत्तर 'इमन्'-प्रत्यय होनेसे, 'भूमन्' निपातनसे सिद्ध होता है ; यथा—(बहोर्भाव) भूमा।

तस्य मूलम् इत्यर्थे।

९९३। जाह (जाहच्)—'तस्य मूलम्' इस अर्थमे, 'कर्ण'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'जाह'-प्रत्यय होता है, यथा—(कर्णस्य मूलम्) कर्णजाहम्—"अपि कर्णजाहविनिवेशिताननं" मालती० ९. ८, (अक्ष्णो मूलम्) अक्षिजाहम्, भ्रूजाहम्, नखजाहम्, केशजाहम्, पादजाहम्; शृङ्गजाहम्, दन्तजाहम्, ओष्ठजाहम्।

(क) ति—'मूल'-अर्थमे, 'पक्ष'-शब्दके उत्तर 'ति' प्रत्यय होता है ; यथा—(पक्षस्य मूलम्) पक्षति।

पूरणार्थे।

९९४। डट्—'पूरण'-अर्थमे ('तस्य पूरण' इस अर्थमे) सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'डट्' प्रत्यय होता है ; 'ड्' और 'ट्' इत्, 'अ' रहता है, यथा—(एकादशाना पूरण) एकादश, द्वादश ; त्रयोदश ; चतुर्दश, पञ्चदश, षोडश, सप्तदश, अष्टादश।

९९५। मट्—'पूरण'-अर्थमे, नकारान्त सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'मट्' होता है, 'ट्' इत्, 'म' रहता है, यथा—(पञ्चाना पूरण) पञ्चम ; (सप्ताना पूरण) सप्तम, (अष्टाना पूरण) अष्टम, (नवा-

-नां पूरण) नवम , (दशानां पूरण) दशम ।

अन्य संख्यावाचक शब्द पूर्वमें रहनेसे नहीं होता , यथा—(एकादशानां पूरण) एकादश , द्वादश ; त्रयोदश ।

९९६ । थट्—'पूरण'-अर्थमें, 'चतुर्', 'षष्' और 'कति' शब्दके उत्तर 'थट्' होता है , 'ट्' इत्, 'थ' रहता है , यथा—(चतुर्णां पूरण) चतुर्थ , (षण्णां पूरण) षष्ठ , (कतीनां पूरण) कतिथ ।*

९९७ । तीय—'पूरण'-अर्थमें 'द्वि'-शब्दके उत्तर 'तीय' होता है , यथा—(द्वयोः पूरण) द्वितीय ।

९९८ । 'पूरण' अर्थमें, तृतीय, तुरीय और तुर्य्य निपातन सिद्ध ; यथा—(त्रयाणां पूरण) तृतीय , (चतुर्णां पूरण) तुरीय , तुर्य्य ।

९९९ । तमट्—'पूरण'-अर्थमें, 'विंशति' प्रभृति संख्यावाचक शब्दके उत्तर विकल्पसे 'तमट्' होता है , 'ट्' इत्, 'तम' रहता है , पक्षे—'डट्' ; यथा—(विंशतेः पूरण) विंशतितम , विंश , एकविंशतितम , एकविंश , द्वाविंशतितम , द्वाविंश , त्रयोविंशतितम , त्रयोविंश , त्रिंशत्तम , त्रिंश ; चत्वारिंशत्तम , चत्वारिंश , पञ्चाशत्तम , पञ्चाश ।

(क) 'शत'-प्रभृति शब्दके उत्तर नित्य 'तमट्' होता है , यथा—(शतस्य पूरण) शततम , (सहस्रस्य पूरण) सहस्रतम , (अयुतस्य पूरण) अयुततम ।†

---

* 'कतिपय' शब्दके उत्तरमें होता है ; यथा—(कतिपयानां पूरण) कतिपयथ ।

† मास, अर्द्धमास और संवत्सर—इन तीनोंके उत्तरमें होता है , यथा—(मासस्य पूरण) मासतम , (अर्द्धमासस्य पूरण) अर्द्धमास-

(ख) 'षष्टि' प्रभृति सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर नित्य 'तमट्' होता है; यथा—(षष्टेः पूरण) षष्टितम , सप्ततितम , अशीतितम ; नवतितम ।

अन्य सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्वमे रहनेसे नहीं होता , तब ९९९ सूत्रानुसार कार्य्य होगा , यथा—(एकषष्टेः पूरण.) एकषष्टितम , एकषष्ट ; द्विषष्टितम , द्वाषष्ट ।

१०००। तिथुक्—'डट्' परे रहनेसे, 'पूरण'-अर्थमे बहु, गण, पूग और सङ्घ शब्दके उत्तर 'तिथुक्' होता है , 'उ' और 'क्' इत , 'तिथ्' रहता है , यथा—(बहूनां पूरण) बहुतिथ —"काले गते बहुतिथे" शकु० ९ ३, (गणानां पूरण.) गणतिथ , (पूगानां पूरण) पूगतिथ ; (सङ्घानां पूरण) सङ्घतिथ ।

१००१। इथुक्—'डट्' परे रहनेसे, 'पूरण'-अर्थमे, 'वतुप्' प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर 'इथुक्' होता है , 'उ' और 'क्' इत, 'इथ्' रहता है , यथा—(यावतां पूरण.) यावतिथ ; तावतिथ ; एतावतिथ ; कियतिथ , इयतिथ ।

१००२। 'पितृव्य' प्रभृति शब्द निपातन सिद्ध , यथा—(पितु भ्राता) पितृव्य (व्य—व्यत्), (मातु भ्राता) मातुल (डुल—डुल्च्), (पितु पिता) पितामह (डामह—डामहच्), (मातु पिता) मातामह , (पितु माता) पितामही , (मातुर्माता) मातामही ।

तद्धित-प्रत्यय—सप्तम्यन्तमे ।

अभ्यमाण तद्धित-प्रत्यय सप्तम्यन्तसे होते हैं—

तम ; (संवत्सरस्य पूरण) संवत्सरतम ।

तत्र भव इत्यर्थे ।

१००३ । ष्ण (अण्), ष्णिक (ठञ्), ष्णय (यत्), ष्णीय (छ), ष्णेय (ढक्), णीन (ख), कण् (ठञ्)—'तत्र भव'* इस अर्थमे, शब्दके उत्तर ये प्रत्यय होते हैं। यथा—(ष्ण)—(मथुरायां भव) माथुर , (कलिङ्गे भव) कालिङ्ग , (शरदि भव) शारद , (हेमन्ते भव) हैमन्त, हैमन्तिक (ष्णिक), (वसन्ते भव·) वासन्त , वासन्तिक (ष्णिक), (निशायां भवम्) नैशम्, नैशिकम् (ष्णिक), (प्रदोषे भवम्) प्रादोषम्, प्रादोषिकम् (ष्णिक); (मध्यन्दिने भवम्) माध्यन्दिनम्, (मनसि भवम्) मानसम्, मानसिकम् (ष्णिक); (अन्तरे भवम्) आन्तरम्, आन्तरिकम् (ष्णिक); (शरीरे भवम्) शारीरम्, शारीरिकम् (ष्णिक), (भूमौ भव) भौम , (शर्वर्य्यां भवम्) शार्वरम्—"शार्वरान्धकार-पूर०" दशकु०; "शार्वरस्य तमसो निषिद्धये" कु०८ ५८ । (ष्णिक)—(वर्षे वर्षासु वा भव) वार्षिक ; (मासे भव) मासिक , † (संवत्सरे भव.) सांवत्सरिक , (अकाले भव) आकालिक —"आकालिकीं वीक्ष्य मधुप्रवृत्तिम्" कु० ३. ३४ ; (सर्वकाले भवम्) सार्वकालिकम्, (इह भवम्) ऐहिकम्, (अध्यात्म भवम्) आध्यात्मिकम्, (अधि-

---

* यहाँ 'भव'-शब्द—जात, स्थित, सङ्क्रान्त, आविर्भूत इत्यादि अनेक अर्थ समझाता है।

† 'देय'-अर्थमे भी कालवाचक शब्दके उत्तर 'ष्णिक' होता है , यथा—(मासे देयम्) मासिकम्, (वर्षे देयम्) वार्षिकम् ; (संवत्सरे देयम्) सांवत्सरिकम् ।

भूतं भवम्) आधिभौतिकम् ; (अधिदैवं भवम्) आधिदैविकम् ; (नगरे भव) नागरिक , नागरक (कन्—वुञ्) । (ष्ण्य)—(दिवि भवम्) दिव्यम् , (वर्गे भव) वर्ग्य , वर्गीय (ष्णीय),—"उद्बाहुना जुहुविरे मुहुरात्मवर्ग्या" माघः ५ १९ , (यूथे भव) यूथ्य , यथा—मृगयूथ्या , (वंशे भव) वंश्य —"इतरेऽपि रघोर्वंश्या" र० १८, ३९ ; (अग्रे भव) अग्र्य , (रहसि भवम्) रहस्यम् ; (आदौ भवम्) आद्यम् ; (अन्ते भवम्) अन्त्यम् , (दिवि भव) दिव्य ; (कण्ठे भवम्) कण्ठ्यम् ; (दन्ते भवम्) दन्त्यम् ; (तालौ भवम्) तालव्यम् ; (ओष्ठे भवम्) औष्ठ्यम् ; (प्राचि भवम्) प्राच्यम् ; (ग्रामे भव) ग्राम्य , ग्रामीण (ष्णीन) । (ष्णीय)—(जिह्वामूले भवम्) जिह्वामूलीयम् , (अङ्गुलौ भवम्) अङ्गुलीयम् ; (कवर्गे भव) कवर्गीय [वर्ण] , पवर्गीय ; (शरदि भवा) शारदीया (छण्) । (ष्णेय)—(कोषे भवम्) कौषेयम्* [वसनम्] ; (नद्यां भवम्) नादेयं [जलम्] ; (अहौ भवम्) आहेयम् (ढञ्) · (ग्रीवायां भवम्) ग्रैवेयम् (ढञ्), ग्रैवम् (ष्ण)—कण्ठभूषणम् इत्यर्थ । (ष्णीन)—(कुले भव) कुलीन ; (दुष्कुले भव) दुष्कुलीन , दौष्कुलेय. (ष्णेय) । (कण्)—(कदाचित् भवम्) कादाचित्कम् , (सम्प्रति भवम्) साम्प्रतिकम् ; (अरण्ये भव) आरण्यक. (मनुष्य , पन्था , मन्य —वेदैकदेश ; इन्वौ वा—वुञ्) , आरण्य [पशु —ष्ण] ।

(इय—घ)—(राष्ट्रे भव) राष्ट्रिय ।

(क) 'हैमन'-प्रभृति शब्द निपातन-सिद्ध ; यथा—(हेमन्ते भवम्)

---

* रेशमी ।

हैमनम्, (पुन पुन भवम्) पौन पुनिकम्, (प्रतीचि भवम्) प्रतीच्यम्, (उदीचि भवम्) उदीच्यम्, (तिरश्चि भवम्) तिरश्चीनम्।

१००४। तनट्—'भव' अर्थमे, कालवाचक अव्यय-शब्दके उत्तर 'तनट्'-प्रत्यय होता है, 'ट्' इत्, 'तन' रहता है, यथा—(अद्य भवम्) अद्यतनम्; (प्रातः भवम्) प्रातस्तनम्, प्रगेतनम्, (साय भवम्) सायन्तनम्—सायन्तनी, (दोषा—रात्रौ—भवम्) दोषातनम्—दोषातनी, दिवातनम्, पुरातनम्; चिरन्तनम्, सदातनम्*; अधुनातनम्, इदानीन्तनम्, तदानीन्तनम्, श्वस्तनम्, ह्यस्तनम्।

(क) सप्तमी-विभक्तिमे, 'पूर्वाह्ण' और 'अपराह्ण' शब्दके उत्तर विकल्पसे 'तनट्' होता है, यथा—(पूर्वाह्णे भवम्) पूर्वाह्णतनम्, पूर्वाह्णेतनम्, पौर्वाह्णिकम् (ष्णिक); (अपराह्णे भवम्) अपराह्णतनम्, अपराह्णेतनम्, आपराह्णिकम् (ष्णिक)।

(ख) 'ऊर्द्ध' प्रभृति शब्दके उत्तर नित्य 'तनट्' होता है, यथा—(ऊर्द्ध भव) ऊर्द्धतन, (उपरि भव) उपरितन, (अधो भव) अधस्तन; (प्राक् भव) प्राक्तन, (पूर्व भव) पूर्वतन।

१००५। त्यण् (त्यक्)—'दक्षिणा', 'पश्चात्' और 'पुरस्'शब्दके उत्तर 'त्यण्'-प्रत्यय होता है, 'ण्' इत्, 'त्य' रहता है, यथा—(दक्षिणा—दक्षिणस्या दिशि—भव) दाक्षिणात्य, (पश्चात् भव) पाश्चात्त्य; (पुर भव) पौरस्त्य।

१००६। त्य (त्यप्)—अमा, इह, क और तसिल् तथा त्रल्-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर 'त्य'-प्रत्यय होता है। यथा—(अमा—सह—

---

* निपातनात् 'दा' स्थाने 'ना'ऽऽदेशे—सनातनम्।

भव) अमात्य ; इहत्य , क्त्य । (तसिल् प्रत्ययान्त) ततस्त्य , अतस्त्य ; कुतस्त्य । (त्रल्-प्रत्ययान्त) तत्रत्य ; अत्रत्य , कुत्रत्य ।

१००७। म—'आदि' और 'मध्य' शब्दके उत्तर 'म' प्रत्यय होता है ; यथा—(आदौ भव) आदिम , (मध्ये भव) मध्यम ।

१००८। डिम (डिमच्)—'अग्र', 'अन्त' और 'पश्चात्' शब्दके उत्तर 'डिम' प्रत्यय होता है , 'ट्' इत , 'इम' रहता है , यथा—(अग्रे भव) अग्रिम , अग्रिय (इय—घ), अग्रीय (ईय—छ), (अन्ते भव) अन्तिम , (पश्चात् भव) पश्चिम ।

तत्र साधुः इत्यर्थे ।

१००९। ण्यय (यत्), ष्णिक (ठक्), ण्णेय (ढञ्), णीन (खञ्)—'तत्र साधु *' इस अर्थमें शब्दके उत्तर ण्यय, ष्णिक, ण्णेय और णीन प्रत्यय होते हैं। यथा—(ण्यय)—(कर्मणि साधु) कर्मण्य , (शरणे—रक्षणे—साधु) शरण्य , (सभायां साधु) सभ्य (य)। (ष्णिक)—(वितण्डाया साधु) वैतण्डिक , (सट्टाया साधु) साट्टिक , (सङ्कटे साधु) साङ्कटिक ; (सङ्ग्रामे साधु) साङ्ग्रामिक (ठञ्)। (ण्णेय)—(पथि साधु) पाथेयम् ; (अतिथौ साधु) आतिथेय †। (णीन)—(सयुगे—रणे—साधु) सांयुगीन।

---

* साधु —प्रवीण , योग्यो वा इत्यर्थ ।

† "प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेय " र० ५ २ (आतिथेय —अतिथि-सेवक इत्यर्थ) , "तमातिथेयी बहुमानपूर्वया सपर्य्यया प्रत्युदियाय पार्वती" कु० ५ ३१। "आतिथेय कर्त्तुं नाशकत्" माघ० १४ ३८ (आतिथेयम्—अतिथिसत्कारम् इत्यर्थ), "सज्जातिथेया वयम्" महावीर० २.४९ (सज्ज—सम्पन्नम् आतिथेय विटरपाद्यार्घ्यादिक यै ते तथोक्ता इत्यर्थ)।

१०१०। 'ठिक' प्रभृति प्रत्यय जिन अर्थोंमें दिखलाये गये, उनके सिवा औरभी नाना अर्थोंमें दये जाते हैं। कई स्थलोंमें उदाहरण प्रदर्शित किये जाते हैं। यथा—

(अस्ति परलोक ईश्वरो वा इति मतिर्यस्य स) आस्तिक, (नास्ति परलोक ईश्वरो वा इति मतिरस्य) नास्तिक, (दिष्टम्—भागधेयम् एव सर्वसाधनम्—इति यस्य मति स) दैष्टिक (दैवपर इत्यर्थ)।

(समाज रक्षति) सामाजिक। (शकुनीन् हन्ति) शाकुनिक। (अर्थं गृह्णाति) आर्थिक। (धर्मं चरति) धार्मिक। (सुस्नात पृच्छति) सौस्नातिक *, (सुखशयनं पृच्छति) सौखशायनिक †। (वशं गत) वश्य। (संशयम् आपन्न) सांशयिक (संशय प्राप्त—सन्देहविषय—पदार्थ इति यावत्)। ‡ (परदारान् गच्छति) पारदारिक। (अध्वानम् अल—दृढ—गच्छति) अध्वनीन, अध्वन्य §, (अभ्यमित्रम्—अमित्रस्य अभिमुखम्—अल—सम्यक् गच्छति) अभ्यमित्रीण, अभ्यमित्र्य, अभ्यमित्रीय। (पारं गच्छति) पारीण, (पारावार गच्छति) पारावारीण (पारगामी इत्यर्थ)। (आप्रपदं प्राप्नोति) आप्रपदीन [पद—पादाग्रपर्यन्त लम्बमान इत्यर्थ]। (अनुपद—पादायामप्रमाणा—

---

* "सौस्नातिको यस्य भवत्यगस्त्य" र० ६. ६१.।

† "सुखादीनतुशृङ्खन्त सौखशायनिकान्नृपान्" र० १०, १४।

‡ 'वरं सांशयिकात् निष्कात् असांशयिक कार्षापणम्'।

§ गच्छत्यर्थे योजनात् ठक्, तेन यौजनिकः स्मृत।
पथष्ठक् स्यात् तदर्थे च, पथिकः—पथिकी स्त्रियाम्।
नित्य यातीति पान्थः स्यात्, पथो णेन निपात्यते॥

बद्धा) अनुपदीना [उपानत्—बूट् जुता] । (सर्वान्नानि भक्षयति) सर्वान्नीन [भिक्षु] । (समां समां प्रसूते) समांसमीना [गौ—प्रतिवर्षं प्रसूता इत्यर्थ —निपातने] ।

(चक्षुषा ग्राह्यम्) चाक्षुषं [रूपम्], (श्रवणेन ग्राह्य) श्रावण [शब्द], (रसनया ग्राह्य) रासन. [रस], (त्वचा ग्राह्य) त्वाच [स्पर्श] । (चक्षुषा निर्वृत्तम्) चाक्षुष [प्रत्यक्षम्], (श्रवणेन निर्वृत्तम्) श्रावणम्, (रसनया निर्वृत्तम्) रासनम्, (त्वचा निर्वृत्तम्) त्वाचम् । (रथेन चरति) रथिक , (अश्वेन चरति) आश्विक । (सहसा—बलेन—प्रवर्त्तते) साहसिक [चौर] । (गृहपतिना संयुक्त) गार्हपत्य [अग्नि] । (सप्तभि पदै —उच्चारितै —अवाप्यम्) साप्तपदीनं [सख्यम्] * । (नावा तार्य्या) नाव्या [नदी] । (तुल्यया सम्मितम्) तुल्यम् । (वयसा तुल्य) वयस्य । (कुशाग्रेण तुल्या) कुशाग्रीया [मति —अतिसूक्ष्मा इत्यर्थ] । (काकतालेन तुल्यम्)† काकतालीयम्, अजाकृपाणीयम्, अन्धकवर्त्तकीयम् ।

---

* 'सद्य जना साप्तपदीनमाहु' ।

† काकस्य तालस्य काकतालम् । तेन लक्षणया काकस्य निपतता तालेन अतर्कितोपनत विधीयमाण संयोग उच्यते । एवम् अजाया कृपाणेन आकस्मिक संयोग —अजाकृपाणम् । अन्धकस्य वर्त्तका—पक्षिभेद —स्य अन्धकवर्त्तकम् इति अन्धस्य वर्त्तकाया उपरि अतर्कित पादन्यास उच्यते ।

एव घुणाक्षरीय स्यादनुद्देश्यफलोदये ।
"साधयति तत्प्रयोजनमन्यस्तत् तस्य काकतालीयम् ।
दैवात् कथमप्यक्षरमुत्किरति घुणोऽपि काष्टेषु ॥" सुभाषितावलि ।

(हिमवत प्रभवति) हैमवती [गङ्गा], (विदूरात्—पर्वतविशेषात्—प्रभवति) वैदूर्य्यं (मणि)।

(आमलक्या फलम्) आमलकम्, (बदर्य्या फलम्) बदरम्, (अश्वत्थस्य फलम्) आश्वत्थम्, (न्यग्रोधस्य फलम्) नैयग्रोधम्। (हृदयस्य प्रियम्) हृद्यम् (मनोज्ञम् इत्यर्थं —'हृदय' के स्थानमें 'हृद्'-आदेश)। (सर्वभूमे ईश्वर) सार्वभौम., (पृथिव्या ईश्वर) पार्थिव। (इन्द्रस्य*—आत्मन —लिङ्गम्—अनुमापकम्) इन्द्रियम्।

(पयसि संस्कृतम्) पायसम्। (भाण्डागारे नियुक्त) भाण्डागारिक। (समाने तीर्थे—गुरौ—वसति) सतीर्थ्यं। (समाने उदर शयित) समानोदर्य्य। (सर्वासु भूमिषु विदित) सार्वभौमः, (पृथिव्यां विदित) पार्थिव। (लोके विदित) लौकिक, (सर्वलोकेषु विदित) सार्वलौकिक। (उदरे एव प्रसित —सक्त) औदरिक (आद्यून इत्यर्थं —पेटू)।

घटते कर्मणीत्यर्थे कर्मठस्तु निपात्यते।

अव्यय-तद्धित ।

वारार्थे ।

१०११। कृत्वसुच्—क्रियाकी "अभ्यावृत्तिगणन" अर्थात् कितनी बार वह क्रिया अनुष्ठित हुई, उसकी गणना समझानेसे, सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'कृत्वसुच्' प्रत्यय होता है, 'उ' और 'च्' इत्, 'कृत्वस्' रहता है, यथा—(पञ्च वारान् भुङ्क्ते) पञ्चकृत्व भुङ्क्ते, (सप्त वारान् स्वपिति) सप्तकृत्व स्वपिति, (शत वारान् पठति) शतकृत्व पठति। "त्रि सप्तकृत्वो

---

* इन्दति परमैश्वर्य्यम् अनुभवति इति कदाचित् कर्मोदयवशात् ऐश्वर्य्यरहितोऽपि तच्छक्तियोगात् इन्द्र आत्मा।

जगतीपतीना हन्ता जामदग्न्य" भा० ३ १८ ।

१०१२ । सुच—उक्त अर्थमे, 'द्वि', 'त्रि' और 'चतुर्' शब्दके उत्तर 'सुच्'-प्रत्यय होता है, 'उ' और 'च्' इत्, 'स्' रहता है, यथा—(द्वौ वारौ भुङ्क्ते) द्विः भुङ्क्ते, (त्रीन् वारान् सन्ध्यामुपास्ते) त्रिः सन्ध्यामुपास्ते, (चतुरो वारान् ध्यायति) चतुः ध्यायति ('चतुर्'-शब्दके अन्त्यवर्णका लोप होता है)।

(क) 'एक'-शब्दके उत्तर 'सुच्' करनेसे, दोनो मिलके 'सकृत्' होता है, यथा—(एकं वारं भुङ्क्ते) सकृत् भुङ्क्ते।* यहाँ अभ्यावृत्ति सम्भव नहीं, गणनमात्र समझाता है।

१०१३ । धाच् (धा)—उक्त अर्थमे, 'बहु'-शब्दके उत्तर विकल्प से 'धाच्'-प्रत्यय होता है, 'च्' इत्, 'धा' रहता है, पक्षे—'कृत्वसुच्'; यथा—बहुधा बहुकृत्वः वा भुङ्क्ते।

प्रकारार्थ।

१०१४ । धाच् (धा)—'विधा'-अर्थमे, संख्यावाचक शब्दके उत्तर 'धाच्' होता है। यथा—(एका विधा) एकधा, (द्वे विधे) द्विधा, (तिस्रो विधा) त्रिधा, (चतस्रो विधा) चतुर्धा, (पञ्च विधा) पञ्चधा। अथवा—(एकेन प्रकारेण) एकधा, (द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम्) द्विधा इत्यादि। चतुर्धा करोति (चतुर प्रकारान्, चतुर्भिः प्रकारैर्वा इत्यर्थः)। †

---

* "सकृदंशो निपतति, सकृत् कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति, त्रीण्येतानि सतां सकृत्॥" मनु० ९ ४७।

† ऐकध्यमेकधा वा स्याद्, द्वैध द्वेधा द्विधा तथा।

(क) 'डति' प्रत्ययान्त शब्दके उत्तरभी होता है ; यथा—(कति-भि प्रकारैः) कतिधा ।

वीप्सार्थे ।

१०१९ । चशस् (शस्)—'वीप्सा' समझानेसे, सङ्ख्यावाचक और एकदेशवाचक शब्दके उत्तर विकल्पसे 'चशस्' प्रत्यय होता है, 'च' इत्, 'शस्' रहता है । यथा—(सङ्ख्यावाचक)—द्वौ द्वौ, द्वाभ्यां द्वाभ्यां वा ददाति—द्विशः ददाति, पञ्च पञ्च, पञ्चभिः पञ्चभिः वा ददाति—पञ्चशः ददाति । (एकदेशवाचक)—पादं पादं, पादेन पादेन वा ददाति—पादशः ददाति, अर्द्धम् अर्द्धम्, अर्द्धेन अर्द्धेन वा ददाति—अर्द्धशः ददाति ।

'डति'-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तरभी होता है, यथा—कतिशः ।

(क) बह्वर्थ और अल्पार्थ शब्दके उत्तर विकल्पसे 'चशस्' होता है, यथा—बहु ददाति—बहुशः ददाति, भूरि ददाति—भूरिशः ददाति, अल्पं ददाति—अल्पशः ददाति, स्तोकं ददाति—स्तोकशः ददाति ।

कारकके उत्तर होता है, अन्यत्र नहीं होता, यथा—'बहूनां स्वामी' यहां 'बहुशः स्वामी' नहीं होगा ।

तुल्यार्थे । औपम्यार्थे ।

१०२० । वतिच् (वति)—'सादृश्य' समझानेसे, शब्दके उत्तर 'वतिच्'-प्रत्यय होता है, 'इ' और 'च्' इत्, 'वत्' रहता है । यथा—(चन्द्र इव मुखम्) चन्द्रवत् मुखम् ; (हिमम् इव शीतलम्) हिमवत् शीतलम्, (समुद्र इव गम्भीरः) समुद्रवत् गम्भीरः, (पर्वत इव उन्नतः) पर्वतवत् उन्नतः । (ब्राह्मण इव अधीते)

त्रैध त्रेधा त्रिधा, षोढा षड्धेत्येते निपातिताः ॥

ब्राह्मणवत् अधीते, (क्षत्रिय इव युध्यति) क्षत्रियवत् युध्यति ; (पितरम् इव पूजयति) पितृवत् पूजयति [उपाध्यायम्], (कर्णेन इव शृण्वन्ति) कर्णवत् शृण्वन्ति [चक्षुषा सर्पा], (विप्राय इव देहि) विप्रवत् देहि [दरिद्राय अपि], (सर्पात् इव बिभेति) सर्पवत् बिभेति [खलात्]; (देवदत्तस्य इव भवनम्) देवदत्तवत् भवन [यज्ञदत्तस्य] ; (रामस्य इव पितृभक्ति) रामवत् पितृभक्ति [भरतस्य], (पुत्रे इव स्निह्यति) पुत्रवत् स्निह्यति [शिष्ये], (राजा इव) राजवत्, (आत्मा इव) आत्मवत्। *

(विभक्तिस्थानी प्रत्यय)

१०१७। तसिल्—शब्दके उत्तर विहित पञ्चमी और सप्तमी विभक्तिके स्थानमे विकल्पसे 'तसिल्'-प्रत्यय होता है†, 'इ' और 'ल्' इत्, 'तस्' रहता है। यथा—(पञ्चमी) गृहात् गृहत , ग्रामात् ग्रामत , नगरात् नगरत , सर्वस्मात् सर्वत , विश्वस्मात् विश्वत , उभयस्मात् उभयत , भवत भवत्त , एतस्मात् एकत ; अन्यस्मात् अन्यत , पूर्वस्मात् पूर्वत , परस्मात् परत , दक्षिणस्मात् दक्षिणत ; उत्तरस्मात् उत्तरत ; हस्तात् हस्तत , वृक्षात् वृक्षत ; मेघात् मेघत ; जलात् जलत । (सप्तमी) पूर्वस्मिन् पूर्वत ; दक्षिणस्मिन् दक्षिणत , उत्तरस्मिन् उत्तरत , प्रथमे प्रथमत ; परस्मिन् परत ; अग्रे अग्रत , आदौ आदित , मध्ये मध्यत , अन्ते अन्तत , पृष्ठे पृष्ठत , पार्श्वयो पार्श्वत , सर्वस्मिन् सर्वत ।

---

* उपमेय-पदमे जो विभक्ति रहती है, उपमान-पदमेभी वही विभक्ति होती है।

† वैयाकरणोंके मतमे, सब विभक्तियोंके स्थानमेही 'तसिल्' होता है।

(क) 'परि' और 'अभि' उपसर्गके उत्तर नित्य 'तसिल्' होता है, यथा—परित, अभित ।

(ख) ओङाक् और रुह् धातुके प्रयोगमे 'तसिल्' नहीं होता, यथा—माहात्म्यात् हीयते, पर्वतात् अवरोहति ।

१०१८। त्रल्—द्वि, युष्मद्, अस्मद् भिन्न सर्वनाम शब्द और 'बहु' शब्दके उत्तर सप्तमीके स्थानमे विकल्पसे 'त्रल्' प्रत्यय होता है, 'ल्' इत्, 'त्र' रहता है, यथा—सर्वस्मिन् सर्वत्र, उभयस्मिन् उभयत्र, एकस्मिन् एकत्र; अन्यस्मिन् अन्यत्र, इतरस्मिन् इतरत्र, पूर्वस्मिन् पूर्वत्र, परस्मिन् परत्र, अपरस्मिन् अपरत्र; बहुषु बहुत्र ।

१०१९। 'तसिल्' और 'त्रल्' प्रत्यय होनेसे, एतद्' के स्थानमे 'अ', 'यद्' के स्थानमे 'य', 'तद्' के स्थानमे 'त', और 'किम्' के स्थानमे 'कु' होता है, यथा—एतस्मात् अत., एतस्मिन् अत्र, यस्मात् यत, यस्मिन् यत्र, तस्मात् तत, तस्मिन् तत्र, कस्मात् कुत, कस्मिन् कुत्र ।

'क' और 'कुह' निपातन सिद्ध, यथा—कस्मिन्—क, कुह ।

(क) 'इदम्' शब्दके स्थानमे 'इ' होता है, * यथा—अस्मात् इत । सप्तमीके स्थानमे 'ह' होता है, यथा—अस्मिन् इह ।

१०२०। दा—'काल' अर्थमे, 'एक' और 'सर्व' शब्दके उत्तर सप्तमीके स्थानमे 'दा' प्रत्यय होता है, 'दा' होनेसे, 'सर्व' के स्थानमे विकल्पसे 'स' होता है, यथा—(एकस्मिन् काले) एकदा, (सर्वस्मिन् काले) सदा, सर्वदा ।

(क) दा, र्हिल्—अन्य, किम् और यद्—इन तीन सर्वनाम

* 'दानीम्'-प्रत्यय होनेसेभी होता है ।

शब्दोंके सप्तमीके स्थानमें 'दा' और 'र्हिल्' प्रत्यय होते हैं, 'र्' इत्, 'र्हि' रहता है, यथा—(अन्यस्मिन् काले) अन्यदा, अन्यर्हि ।

(ख) दा' और 'र्हिल्' होनेसे, 'स्मिन्' के स्थानमें 'क', और 'यद्' के स्थानमें 'य' होता है, यथा—(कस्मिन् काले) कदा, कर्हि, (यस्मिन् काले) यदा, यर्हि ।

(ग) दा, र्हिल्, दानीम्—'तद्' शब्दके सप्तमीके स्थानमें 'दा', 'र्हिल्' और 'दानीम्' प्रत्यय होते हैं, 'दा', 'र्हिल्' और 'दानीम्' होनेसे, 'तद्' शब्दके स्थानमें 'त' होता है, यथा—(तस्मिन् काले) तदा, तर्हि, तदानीम् ।

(घ) दानीम्—'इदम्'-शब्दके सप्तमीके स्थानमें 'दानीम्' होता है, यथा—(अस्मिन् काले) इदानीम् ।

(ङ) अधुना, एतर्हि—निपातन सिद्ध, यथा—(अस्मिन् काले) अधुना, (अस्मिन् एतस्मिन् वा काले) एतर्हि ।

१०२१। एद्युस् (एद्युसुच्)—'दिन' समझानेसे, 'पूर्व'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'एद्युस्' प्रत्यय होता है; यथा—(पूर्वस्मिन् अहनि) पूर्वेद्यु, (अन्यस्मिन् अहनि) अन्येद्यु, (अपरस्मिन् अहनि) अपरेद्यु, इतरेद्यु, अन्यतरेद्यु, अधरेद्यु, उत्तरेद्यु, उभयेद्यु । *

१०२२। 'दिन' समझानेसे, विभक्तिसहित 'पूर्व'के स्थानमें 'ह्यस्', 'समान' के स्थानमें 'सद्यस्', 'इदम्' के स्थानमें 'अद्य', और 'पर'के स्थानमें 'पस्' और 'परेद्यवि' होते हैं, यथा—(पूर्वस्मिन् अहनि) ह्य, (समाने अहनि)

---

* 'उभय'-शब्दके उत्तर 'द्युस्' भी होता है, यथा—(उभयस्मिन् अहनि) उभयद्यु ।

सद्य : (अस्मिन् अहनि) अद्य , (परस्मिन् अहनि) श्व , परेद्यवि ।

१०२३ । 'वर्ष' समझानेसे, विभक्तिसहित 'इदम्'के स्थानमे 'ऐषमस्', 'पूर्व' के स्थानमे 'परुत्', और 'पूर्वतर' के स्थानमे 'परारि' होता है , यथा— (अस्मिन् वर्षे) ऐषम , (पूर्वस्मिन् वर्षे) परुत् , (पूर्वतरे वर्षे) परारि । *

१०२४ । थाच् (थाल्)—'प्रकार' अर्थमे, तृतीयाके स्थानमे 'थाच्' प्रत्यय होता है , 'च्' इत, 'था' रहता है ; यथा—(सर्वे प्रकारे) सर्वथा , (अन्येन प्रकारेण) अन्यथा , (इतरेण प्रकारेण) इतरथा , (उभयेन प्रकारेण) उभयथा , (अपरेण प्रकारेण) अपरथा ।

(क) 'थाच्' होनेसे, 'यद्'-शब्दके स्थानमे 'य', और 'तद्'-शब्दके स्थानमे 'त' होता है , यथा—(येन प्रकारेण) यथा , (तेन प्रकारेण) तथा ।

(ख) कथम्, इत्थम्—निपातन सिद्ध ; यथा—(केन प्रकारेण) कथम् , (अनेन एतेन वा प्रकारेण) इत्थम् ।

१०२५ । अस्तात् (अस्ताति)—'पर' प्रभृति शब्दकी सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमाके स्थानमे 'अस्तात्' प्रत्यय होता है , यथा—(परस्मिन् परस्मात् परो वा) परस्तात् ।

(क) 'अस्तात्' सहित 'अपर'-शब्दके स्थानमे, 'पश्चात्' निपातन-सिद्ध , यथा—(अपरस्मिन् अपरस्मात् अपरो वा) पश्चात् । †

(ख) 'अस्तात्'-सहित 'ऊर्द्ध्व'-'शब्दके स्थानमे, 'उपरि' और 'उपरिष्टा-

---

* अस्मिन् वर्षे ऐषम स्यात्, पूर्ववर्षे परुद्भवेत् ।
तथा पूर्वतरे वर्षे परारि स्यान्निपातितम् ॥

† 'अर्द्ध' शब्द परे रहनेसे, 'अपर' शब्दके स्थानमे विकल्पसे 'पश्च' आदेश होता है , यथा—(अपरम् अर्द्धम्) पश्चार्द्धम् , अपरार्द्ध वा ।

व'—निपातन-सिद्ध, यथा—(ऊर्ध्वे ऊर्ध्वात् ऊर्ध्वा वा) उपरि, उपरिष्टात् ।

१०२६ । अस्तात्, असि—'पूर्व', 'अधर' और 'अवर' शब्दकी सप्तमी, पञ्चमी तथा प्रथमाके स्थानमे, 'अस्तात्' और 'असि' प्रत्यय होते हैं, 'इ' इत्, 'अस्' रहता है ।

(क) 'अस्तात्' और 'असि' होनेसे, 'पूर्व' के स्थानमे 'पुर', और 'अधर' के स्थानमे 'अध' होता है, यथा—(पूर्वस्मिन् पूर्वस्मात् पूर्वो वा) पुरस्तात्, पुर, (अधरस्मिन् अधरस्मात् अधरो वा) अधरस्तात्, अध ।

(ख) 'अस्तात्' और 'असि' होनेसे, 'अवर' के स्थानमे विकल्पसे 'अव' होता है, यथा—(अवरस्मिन् अवरस्मात् अवरो वा) अवस्तात्, अवरस्तात्, अव, अवर ।

१०२७ । अतसु (अतसुच्)—दिग्वाचक और देशवाचक 'दक्षिण' और 'उत्तर' शब्दकी सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमाके स्थानमे 'अतसु' प्रत्यय होता है ; 'उ' इत्, 'अतस्' रहता है, यथा—(दक्षिणस्मिन् दक्षिणस्मात् दक्षिणो वा) दक्षिणतः, (उत्तरस्मिन् उत्तरस्मात् उत्तरो वा) उत्तरतः ।

१०२८ । आति—'उत्तर', 'अधर' और 'दक्षिण' शब्दकी सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमाके स्थानमे 'आति' प्रत्यय होता है, 'इ' इत्, 'आत्' रहता है, यथा—(उत्तरस्मिन् उत्तरस्मात् उत्तरो वा) उत्तरात्, अधरात्, दक्षिणात् ।

(क) एनप्—'अदूर'-अर्थमे, 'एनप्' भी होता है, यथा—(उत्तरस्मिन् उत्तरो वा) उत्तरेण ; अधरेण, दक्षिणेन । पञ्चमीके स्थानमे नहीं होता ।

१०२९ । आच्, आहि—'दक्षिण' और 'उत्तर' शब्दकी सप्तमी और प्रथमाके स्थानमे 'आच्' और 'आहि' प्रत्यय होते हैं ; 'च्' इत्, 'आ' रहता है, यथा—दक्षिणा, दक्षिणाहि ; उत्तरा, उत्तराहि ।

('च्वि'-प्रभृति प्रत्यय)

अभूततद्भावार्थे ।

१०३० । च्वि—कृ, भू और अस् धातुके योगसे, 'अभूततद्भाव'*-अर्थमें, शब्दके उत्तर 'च्वि' प्रत्यय होता है, 'च्वि' का सम्पूर्ण इत्, कुछ भी नहीं रहता ।

(क) 'अभूततद्भाव' अर्थमें प्रत्यय होनेसे, शब्दके अन्तस्थित ह्रस्वस्वर दीर्घ होता है, यथा—(अलघु लघु करोति) लघूकरोति, (अलघु लघु भवति) लघूभवति, (अलघु लघु स्यात्) लघूस्यात् ।

(ख) 'अभूततद्भाव'-अर्थमें प्रत्यय होनेसे, शब्दके अन्तस्थित अवर्णके स्थानमें 'ई' होता है, यथा—(अशुक्ल शुक्ल करोति) शुक्लीकरोति, (अशुक्ल शुक्ल भवति) शुक्लीभवति, शुक्लीस्यात् ।

(ग) 'अभूततद्भाव' अर्थमें प्रत्यय होनेसे, शब्दके अन्तस्थित ऋकारके स्थानमें 'री' होता है, यथा—(अश्रोतारं श्रोतारं करोति) श्रोत्रीकरोति, श्रोत्रीभवति, श्रोत्रीस्यात् ।

(घ) 'अभूततद्भाव' अर्थमें प्रत्यय होनेसे, अरुस्, मनस्, चक्षुस्, चेतस्, रहस्, रजस्—इनके अन्त्यवर्णका लोप होता है ; यथा—अरुकरोति, अरुभवति, अरुस्यात्, विमनीकरोति, विमनीभवति, उच्चक्षुकरोति, उच्चक्षुभवति, सुचेतीकरोति, सुचेतीभवति, विरहीकरोति, विरहीभवति, विरजीकरोति, विरजीभवति ।

१०३१ । सातिच् (साति)—'कार्त्स्न्य' (साकल्य) समझानेसे,

* अभूतका तद्भाव, अर्थात् जो जैसा नहीं रहता, उसका वैसा होना, जैसे जो वस्तु शुक्ल नहीं रहती, उसका शुक्ल होना ।

'अभूततद्भाव'-अर्थमें, कृ, भू, अस् धातुके योगसे, विकल्पसे 'सातिच्'-प्रत्यय होता है, 'इ' और 'च्' इत्, 'सात्' रहता है। यथा—(अजलं कृत्स्न—सकल—स्वरूप जल करोति) जलसात् करोति ; (कृत्स्न स्वरूप जल भवति) जलसात् भवति, (कृत्स्न स्वरूप जल स्यात्) जलसात् स्यात्। (अभस्म समस्त भस्म करोति) भस्मसात् करोति, भस्मसात् भवति, भस्मसात् स्यात्। पक्षे—'च्वि', यथा—जलीकरोति, जलीभवति, जलीस्यात्, भस्मीकरोति, भस्मीभवति, भस्मीस्यात्। "अग्निसात् कृत्वा"।

(क) 'अधीनता'-अर्थमें, कृ, भू, अस् और 'सम्' पूर्वक पद् धातुके योगसे, 'सातिच्' होता है ; यथा—(राज अधीन करोति) राजसात् करोति, (राज अधीन भवति) राजसात् भवति, (राज्ञोऽधीन स्यात्) राजसात् स्यात्, (राज्ञोऽधीन सम्पद्यते) राजसात् सम्पद्यते। (आत्मनि अधीन करोति) आत्मसात् करोति।

(ख) सातिच्, त्राच् (त्रा)—'देय' समझानेसे, कृ, भू, अस् और 'सम्' पूर्वक पद् धातुके प्रयोगमें, 'सातिच्' और 'त्राच्' प्रत्यय होते हैं, 'च्' इत्, 'त्रा' रहता है, यथा—(ब्राह्मणाय देयं करोति) ब्राह्मणसात् करोति, ब्राह्मणत्रा करोति, ब्राह्मणसात् भवति, ब्राह्मणत्रा भवति ; ब्राह्मणसात् स्यात्, ब्राह्मणत्रा स्यात्, ब्राह्मणसात् सम्पद्यते, ब्राह्मणत्रा सम्पद्यते।*

१०३२। डाच्—'कृ' धातुके योगसे, द्वितीय, तृतीय, शम्ब और

---

* "भस्मसात् कृतवतः पितृद्विषः पात्रसाच्च वसुधां ससागराम्" र० ११. ८६, "विभज्य मेरुर्न यदर्थिसात् कृतः" नै० १. १६, "विप्रसात्कृत भूयसी-र्भुवः" माघ० १४ ३६, "राजा स यज्वा विबुधव्रजत्रा कृत्वाऽध्वराज्योपमयैव राज्यम्" नै० ३ २४।

बीज शब्दके उत्तर, 'कर्षण'-अर्थमें 'डाच्'-प्रत्यय होता है, 'ड्' और 'च्' इत्, 'आ' रहता है; यथा—द्वितीयाकरोति, तृतीयाकरोति (द्वितीयं तृतीयं कर्षणं करोति इत्यर्थः), शम्बाकरोति (अनुलोमकृष्टं क्षेत्रं पुनः प्रतिलोमं कर्षति इत्यर्थः); बीजाकरोति * (बीजेन सह कर्षति इत्यर्थः)।

(क) 'गुण'-शब्द अन्तमें रहनेसे, सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर, 'कृ'-धातुके योगसे, 'कर्षण'-अर्थमें 'डाच्' होता है; यथा—द्विगुणाकरोति त्रिगुणाकरोति क्षेत्रम् (द्विगुणं त्रिगुणं कर्षतीत्यर्थः)।

(ख) 'व्यथन'-अर्थमें, 'सपत्र' और 'निष्पत्र' शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है, यथा—सपत्राकरोति मृगं व्याधः (सपत्रं शरम् अस्य शरीरे प्रवेशयन् व्यथयति इत्यर्थः); निष्पत्राकरोति (शरीरात् शरम् अपरपार्श्वे निष्कामयन् व्यथयतीत्यर्थः)। "एकत्र मृग सपत्राकृत, अन्यत्र निष्पत्राकृत अपतत्" दशकु०।

(ग) 'यापन' (क्षेपण, अतिवाहन) समझानेसे, 'समय'-शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है; यथा—समयाकरोति (समयं यापयति इत्यर्थः)।

(घ) 'निष्कोषण'†-अर्थमें, 'निष्कुल'-शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है; यथा—निष्कुलाकरोति दाडिमम् (निष्कुष्णाति—दाडिमस्य अन्तरवयवान् बहिर्निःसारयति इत्यर्थः)।

(ङ) 'आनुलोम्य' (आनुकूल्य) अर्थमें, 'सुख' और 'प्रिय' शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है; यथा—सुखाकरोति प्रियाकरोति मित्रम् (अनुकूलाचरणेन आनन्दयतीत्यर्थः)।

---

* "कर्षति बीजाकुरुते, चित्रं निर्माति सुन्दरं पवनः।
रचयति रेखां सलिले, चरति खले यस्तु संस्कारम्॥" भामिनी० १.९६।

† दोषसे बहिष्करण।

(च) 'प्रातिलोम्य' (प्रातिकूल्य) समझानेसे, 'दुःख'-शब्दके उत्तर डाच्' होता है, यथा—दुःखाकरोति भृत्य स्वामिनम् (पीडयतीत्यर्थः)।

(छ) 'पाक'-अर्थमे, 'शूल'-शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है ; यथा—शूलाकरोति मांसम् (शूलेन पचतीत्यर्थः)।

(ज) 'शपथ'-भिन्न अर्थमे, 'सत्य' शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है ; यथा—सत्याकरोति भाण्ड वणिक् (मयैतद्‌द्रव्य क्रेयमिति प्रतिजानीते सत्यङ्कार-द्रव्यप्रदानादिनेत्यर्थः)। (भाण्डम्—पण्यद्रव्यम्। सत्यङ्कार —बयाना।)

(झ) 'मुण्डन' अर्थमे, 'भद्र' और 'मद्र' शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है , यथा—भद्राकरोति, मद्राकरोति (मुण्डति इत्यर्थः)।

अनिश्चयार्थे।

१०३३। चित्, चन—विभक्त्यन्त 'किम्'-शब्दके उत्तर 'अनिश्चय'-अर्थमे 'चित्' और 'चन' प्रत्यय होते हैं , यथा—कश्चित्, काञ्चित्, केनचित्, कस्मैचित्, कस्माच्चित्, कस्यचित्, कस्मिंश्चित्, कुतश्चित्, क्वचित्, कुत्रचित्, कश्चन, किञ्चन, कञ्चन, कुतश्चन, क्वचन, कुत्रचन।

प्रश्न।

कौन प्रत्यय और कौनसा पद होगा, कहो—

कृष्णका पुत्र। जो व्याकरण पढता है। जिसका ज्ञान है। जिसका कोन (स्नेनम्) है। अतिशय प्रिय। कोई मनुष्य। जो पण्डित नहीं था, वह पण्डित हुआ है। कुछ कम पांच वर्षका लडका। जिस लताका पुष्प हुआ है। पांच पांच करके।

सम्पूर्ण।

"सरस्वती श्रुतमहतां न हीयताम्"।

नीति-प्रबन्धः ।

('शेख सादी'-कृत-'पन्द्-नामा'('करीमा', पारसी-निबन्धादेतद्ग्रन्थकर्त्राऽनूदितः)

विद्या-माहात्म्यम् ।

मानवोऽत्र समुत्कर्षं विद्यया प्रतिपद्यते ।
न पदेन पदव्या वा न धनेन न सम्पदा ॥ १ ॥
वर्त्तिवत् क्षपणीयोऽयमात्मा विद्याकृते सदा ।
विद्यामृते परिज्ञातुं नेश्वरः शक्यते यतः ॥ २ ॥
भवन्ति खलु धीमन्तो विद्योपादानतत्पराः ।
तीव्रोऽस्ति सतत यस्माद्विद्याया अन्य आपणः ॥ ३ ॥
अनन्तकालसन्तत्या यो जातः किल पुण्यभाक् ।
अङ्गीकृता शुभोदर्का तेन विद्यार्थिताऽनिशम् ॥ ४ ॥
विद्यार्जनविधिर्नून त्वयि कर्त्तव्यतां गतः ।
पुनर्देशान्तरव्रज्या तदर्थमिह युज्यते ॥ ५ ॥
गच्छ, चेलाञ्चलं दिव्यं विद्याया धारय [illegible]रम् ।
अनन्त स्वर्गलोक त्वां [illegible]प्स्यति ॥ ६ ॥
नान्यदभ्यस्यतां विद्यामृते, चेदसि [illegible]बुद्धिमान् ।
स्यादालस्यहता नूनं विद्याहीना स्थितिर्यतः ॥ ७ ॥
विद्यैव तव पर्य्याप्ता लोकेऽत्र च परत्र च ।
विद्यया कर्मजात ते गता [illegible]त्त्वादृताम् ॥ ८ ॥

(च) 'प्रातिलोम्य' ... य-प्रशंसा ।

... होता है, यथा—वित्त । विनय नयसम्मतम् ।

(छ) सुहृद सर्वे भुवि पञ्चजनास्तव ॥ ९ ॥
गुणाम्भो गौरवं पुसां प्रवर्द्धयति सर्वत ।
... विश्चन्द्रमसो दिवा जायते किल भास्करात् ॥ १० ॥
... विनय स्यात् परिपरो मैत्र्यस्यापायवर्जित ।
परमोत्कर्षमाप्नोति मित्रतागौरवं यत ॥ ११ ॥
विनयोऽभ्युदित कुर्य्यान्मानव मञ्जुलाशयम् ।
विनयो महतामेकं प्रकृष्टं लक्षणं मतम् ॥ १२ ॥
मनुष्यो य स नियत यस्माद्विनयमाश्रयेत् ।
मनुष्यत्वं विना क्वापि न मनुष्यो विरोचते ॥ १३ ॥
विनय कुरुतेऽवश्यमादृतो मतिमान् नरः ।
शिरो धरण्यामायत्ते शाखा फलभरानता ॥ १४ ॥
विनयस्तव आर्येन नित्यं सम्मानवर्द्धक ।
स्थानञ्च त्रिदिवे दद्यात् तुभ्यमभ्युन्नते सुखम् ॥ १५ ॥
विनयो भवति स्वर्गद्वारस्य किल कुञ्चिका ।
उन्नतेर्गौरवस्यापि तथा ... स्व्यप्रसाधनम् ॥ १६ ॥
वर्त्तते पुरुषस्य ... नं गोच्छ्रितं शिर ।
तस्माद्विनयसम्पन्नो हृदयग्राहिणो भवेत् ॥ १७ ॥
विनयो यस्य लोकस्य स्वभावत्वेन जायते ।
प्रतिपदं स महत्त्वेन चासौ भवति लाभवान् ॥ १८ ॥
विनयस्त्वां प्रियं कुर्य्याज्जगतामिह सर्वथा ।

पुरतो मनसां
मर्त्येषु विनयान्नैव
यद्वाक्ये स्वमुद्दान ॥ २० ॥
उदग्रशिरसामत्र विनयः ...गरम ।
भिक्षुकश्चेद्विनीत स्यात् संसिद्धिरियमस्य हि ॥ २१ ॥

दया-प्रशंसा ।

अयि चेतो दयारूप पार्श्वं येन प्रसारितम् ।
दयाराज्येशिता नून बभूवासौ नरः कृती ॥ २२ ॥
दया प्रख्यातनामानं त्वा विदध्याद्धरातले ।
दया सम्पादयेल्लभ्यत् तव क्षेममनोरथ
दयां विहाय नैवान्यत् कृत्यं जगति विद्य
अस्यास्तीव्रतरः कश्चिदापणश्च नो दृश्
दया नीविः प्रमोदानामस्तया परिर्क्ष
दया स्थिरा जीवितस्य फल
दयया जगतश्चित्तं
कीर्तिसम्भृतमाधत्स्व वि
दयायां सर्वकालेषु वाले
यतश्चित्तविनिर्माता कार

दान-प्र

दानमाद्रियतेऽजस्रं दरिद्र
यतो दानेन मनुजः सौभाग्य
दानेन दयया चाधिक्रियतां दि